Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

महात्मा गांधी के शैक्षिक विचार तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

डॉ० अरविन्द कुमार सिंह
सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग
तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर
डॉ० अजय कुमार सिंह
सहायक आचार्य, शिक्षा संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सारांश

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय शिक्षा के विकास एवं गुणात्मक संवर्धन हेतु भारत सरकार ने समय–समय पर विभिन्न नीतियों का निर्माण किया। स्वतंत्र भारत की सबसे पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्माण वर्ष 1968 में किया गया। इस नीति में शिक्षा में गुणवत्ता के समावेशन को बढ़ावा देने के लिए कई ठोस कदम उठाए गए। वर्ष 1986 में पुनः राष्ट्रीय शिक्षा नीति, तत्पश्चात 1992 में संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति के सुझावों को शिक्षा के क्षेत्र में प्रस्तावित किया गया। वर्ष 2020 में, भारत सरकार द्वारा एक नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति को प्रस्तुत किया गया इसमें भारतीय ज्ञान परंपरा को केंद्र मानते हुए शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय मूल्यों, विश्वासों, मानकों, विचारों तथा आदर्शों को महत्वपूर्ण स्थान देते हुए व्यापक परिवर्तन करने के सुझाव को प्रस्तुत किया गया। आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में भारतीय ज्ञान परंपरा की महत्ता विश्वविख्यात प्रखर राष्ट्रवादी, महान दार्शनिक तथा उच्च कोटि के मानवतावादी व शिक्षाशास्त्री महात्मा गांधी के शैक्षिक विचारों एवं कार्यों में दृष्टिगोचर होती है। इस लेख में गांधी जी के शैक्षिक विचारों को राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में दिए गए सुझाव के दृष्टिकोण से अन्वेषित किया गया है। जिसके परिणामस्वरूप यह पाया गया है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के विभिन्न अध्यायों में वर्णित शिक्षा संबंधित सुझाव गांधी जी के शैक्षिक दर्शन तथा शैक्षिक सिद्धांतों को स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित करते हैं।

प्रस्तावना :

भारत अनन्त काल से ऋषियों व मुनियों की चिन्तन परम्परा का वाहक रहा है। जहां अनेक महान चिंतक एवं समाज सुधारकों ने जन्म लिया है और अपने विचारों के माध्यम से भारतीय जनमानस को चैतन्य, जाग्रत एवं उद्वेलित किया। इसी समूह परम्परा के वाहक हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी थे। गांधी जी ने कहा था *"मैं भारत के लिए काम करूंगा, जिसमें निर्धन लोग यह महसूस कर सकें कि यह उनका देश है, जिनके निर्माण में उनकी प्रभावकारी वाणी रही है। वह भारत, जिसमें लोगों की कोई उच्च व*

निम्न श्रेणी नहीं है, वह भारत जिसमें सभी समुदाय के लोग मित्रभाव से रह सकें।" गांधी जी ने युद्ध रहित विश्व, अंधविश्वास रहित समाज, बंधुआ मजदूर रहित कारखाने, गैर–हिंसात्मक और गैर–शोषित सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था, विकासोन्मुखी शिक्षा की कल्पना की थी। शिक्षा की परिकल्पना में गांधी ने तीन एच (3H) की बात की। जिससे प्रथम – सोचने वाला मस्तिष्क, ऐसा मस्तिष्क जो अहिंसक, गैर–शोषण की सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने वाला हो। जिसमें मस्तिष्क, शरीर एवं आत्मा का चहुंमुखी विकास हो। दूसरा – हृदय अर्थात सहृदय मानवीय प्रेम से परिपूर्ण हो जिसमें अस्पृश्यता, भेदभाव की कोई जगह न हो। तीसरा – कर्ममुखी हाथ जो आत्मनिर्भर कर्म की श्रेष्ठता को प्रतिस्थापित करता है।

गांधी जी ने अहिंसा को मूल मंत्र बताया और कहा कि यह महान शिक्षाविदों की सक्रियता का परिणाम है, जिसे विचारपूर्ण मस्तिष्क की संज्ञा दी। जिसने मानव और समाज के विकास का मार्गदर्शन किया। अतः मनुष्य की पूरी शिक्षा प्रारम्भिक हस्तशिल्प के माध्यम से ही की जानी चाहिए। इस प्रकार की शिक्षा स्वतन्त्रता, समानता, भाई–चारे के लक्ष्य को प्राप्त कर सकती है। गांधी जी इसे *"रचनात्मक कार्यक्रमों के सभी कार्यों का सम्मिश्रण मानते हैं। गांधी जी के विचार में भारत में इस प्रकार की शिक्षा पद्धति की आवश्यकता है जिसमें सीखने वाले अपने प्रयासों से स्वास्थ्य के सुव्यवस्थित तरीके, शालीन सांस्कृतिक अस्तित्व और बौद्धिक ही नहीं अपितु अपने शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों को विकसित कर सकें।"*

स्वतंत्रता के बाद देश के नीति नियन्ताओं ने अंग्रेजों द्वारा निर्मित कुलीनवादी शिक्षा प्रणाली को जन सामान्य की उस शिक्षा प्रणाली में बदलने के लिए कठिन प्रयास प्रारम्भ किये; जिसके अन्तर्गत राधाकृष्णन आयोग 1948, मुदालियर माध्यमिक शिक्षा आयोग 1952 एवं कोठारी शिक्षा आयोग 1964 ने महत्वपूर्ण संस्तुतियां कीं, जिसके फलस्वरूप प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में लागू हुई। तदुपरान्त राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में, शिक्षा तकनीकी के प्रयोगों एवं आपरेशन ब्लैकबोर्ड के माध्यम से शिक्षण अधिगम संसाधनों की पहुँच ने शिक्षा को आम जनमानस तक पहुँच को उत्तरोतर गतिशील बनाया। शिक्षा में तेजी ने तथा बेहतर करने की इच्छा ने एक चिन्ताजक स्थिति भी उत्पन्न कर दी जहाँ विद्यार्थियों पर उपलब्धियों एवं प्रदर्शन का बड़ा दबाव हो गया है; जो बच्चे को मशीनी शिक्षा प्रणाली के उत्पाद के रूप में देखे जाने के कारण व्यक्तिगत विकास एवं जीवनोपयोगी कौशल विकास के महत्व को अनदेखी किया गया, जो व्यक्ति तैयार किये जा रहे हैं, वे स्वयं विचार करने अथवा जिम्मेदारी लेने एवं स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने में असमर्थ हैं; गांधी जी ऐसी शिक्षा प्रणाली के घोर आलोचक थे। सामर्थवान मानव निर्माण से पोषित शिक्षा प्रणाली की वकालत की जो देश, समाज एवं व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए अपने गौरवशाली इतिहास को पुनर्जीवित करने का स्वप्न दिखाती हो। इस प्रकार प्रगतिशील, समृद्ध, सृजनशील एवं नैतिक मूल्यों से परिपूर्ण भारत का सपना साकार करने की क्षमता राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में परिलक्षित होती दिख रही है। जो अपने सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण, जनसंख्या विस्फोट के दबाव से मुक्त, आत्मनिर्भरता की ओर एवं आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकी ज्ञान के विस्फोट के संवर्धन से युक्त विविध रूपों में देखा जा सकता है।

महात्मा गांधी के विचारों का नई शिक्षा नीति 2020 में सम्मिलन :

महात्मा गांधी ने अपनी पुस्तक *"हिंद स्वराज"* में मानव निर्माण को ही शिक्षा का उद्देश्य बताया है। उन्होंने लिखा है कि *"मैं सोचता हूं कि मनुष्य की शिक्षा उदार होनी*

चाहिए। युवाओं में उसका विकास इस प्रकार से किया जाना चाहिए कि उसका शरीर उसकी इच्छाओं के अधीन हो और एक संरचना के तौर पर वह सहजता और खुशी पूर्वक वे सभी कार्य करे जिनके लिए वह सक्षम हो, जिसकी बुद्धि एक ऐसी स्पष्ट, शान्त तर्क इंजन हो जिसके सभी कल पुर्जे समान रूप से मजबूत हों और सही प्रकार से कार्य करते हों; जिसका मस्तिष्क प्रकृति के आधारभूत सत्यों के ज्ञान से भरा हो, जिसके जोश को सशक्त इच्छाओं को पूरा करने के लिए प्रशिक्षित किया हो, नवीन चेतना का अनुयायी हो, जिसने सभी तरह की दुष्टता से घृणा करना और अपनी तरह ही दूसरों को सम्मान देना सीखा हो । मैं मानता हूँ कि ऐसे ही व्यक्ति के पास उदार शिक्षा है, दूसरे किसी और व्यक्ति के पास नही, जिसके लिए प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करता है। ऐसे स्त्री–पुरुष एक दूसरे को बेहतर बनाने का प्रयास करेंगे।" इस प्रकार गांधी की चैतन्य, आत्म अनुशासित, अपरिग्रही संवेदनशील मानव की कल्पना की, जो भारत के सांस्कृतिक विरासत एवं उदार मूल्यों, सामाजिक न्यास बहुलवाद से सुसज्जित हो। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रथम अध्याय में विद्यार्थियों के चरित्र निर्माण और व्यक्तित्व विकास को पूर्व प्राथमिक शिक्षा संरचना 5+3+3+4 से ही संज्ञान में लिया गया है। छात्र खेल – खेल में गतिविधियों द्वारा सीखें जिसमें उन विद्यार्थियों में सृजनात्मक, रचनात्मक एवं नवाचार की दृष्टि का विकास हो सके। चरित्र निर्माण हेतु भारतीय मूल्यों, संवैधानिक मूल्यों एवं सामुदायिक सेवा आदि का समावेश किया गया है।

निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा :

गांधी जी निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के बड़े हिमायती थे। उन्होंने भारत सरकार अधिनियम 1935 के तहत हुए चुनावों में आठ राज्यों में कांग्रेसी सरकारों का गठन हुआ। इस अवसर पर 7 से 14 वर्ष के बच्चों की शिक्षा का भार उठाने का सुझाव दिया। 2 अक्टूबर 1937 के हरिजन में लिखा कि *"प्राथमिक शिक्षा 7 वर्ष या इससे अधिक समय की हो और इसमें अंग्रेजी को छोड़कर वे सब विषय पढ़ाए जाएं जिन्हें मैट्रीकुलेशन परीक्षा के लिए पढ़ाया जाता है।"* कालान्तर में बुनियादी शिक्षा के रूप में विस्तृत कार्य योजना हरिपुरा सम्मेलन में स्वीकृत हुई। जिसे हम वर्धा शिक्षा योजना के नाम से जानते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अध्याय दो तथा 3.3 में बाल अधिकार अधिनियम को 14 वर्ष से बढ़ाकर 18 वर्ष कर दिया गया है। इस प्रकार प्राथमिक स्तर से लेकर माध्यमिक रतर तक निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की बात कही गई है। जिससे प्रशिक्षित अध्यापकों एवं कर्मियों के सहयोग से स्कूलों में बच्चों की सहभागिता सुनिश्चित हो सके साथ ही साथ गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति 2030 तक किया जा सके।

आत्मनिर्भरता :

गांधी जी कोई अर्थशास्त्री नहीं थे, उन्होंने कोई अर्थशात्र की डिग्री भी नहीं ली थी। लेकिन उनके अनुभव जनित प्रयोगों से उन्हें किसी भी अर्थशात्री से कम का दर्जा प्राप्त नहीं था। *हिन्द स्वराज* में ग्रामीण अर्थव्यवस्था और जीवन के बुनियादी पहलुओं में ग्रामीण समुदायों की आत्मनिर्भरता के बारे में उनकी कल्पना का वर्णन करती है। उनके अनुसार *"कोई व्यक्ति, कोई गांव, कोई देश केवल आत्मनिर्भर बनकर ही स्वतंत्र हो सकता है।"* इसकी शुरुआत गाँव के स्तर से स्थानीय स्तर पर उत्पादन और साथ ही साथ खपत करने से होती है। इस विचार पर बल देते हुए उन्होंने लिखा कि *"भारतीय गांव, भारतीय कस्बों व शहरों के जरूरत की सभी चीजों का उत्पादन और आपूर्ति करते थे। भारत उस समय दरिद्र हो गया जब हमारे शहर विदेशी बाजार बन गये और घटिया वस्तुओं को भरकर गांवों को खोखला करने लगे।"* गांधी जी ने हरिजन सेवक

(15–03–1935) में लिखा – *"मेरी राय में तो इस देश में जहाँ लाखों आदमी भूखों मरते हैं, बुद्धिपूर्वक किया जाने वाला श्रम ही सच्ची प्राथमिक शिक्षा या प्रौढ़ शिक्षा है....अक्षर ज्ञान हाथ की शिक्षा के बाद आना चाहिए। हाथ से काम करने की क्षमता हस्तकौशल की हो, यह वह चीज़ है जो मनुष्य को पशु से अलग करती है। लिखना–पढ़ना जाने बिना मनुष्य का सम्पूर्ण विकास नहीं हो सकता, ऐसा मानना एक वहम ही है। जीवन सार्थक नहीं होगा ऐसा कहना सर्वथा गलत है। इसमें कोई शक नहीं कि अक्षर–ज्ञान से जीवन का सौन्दर्य बढ़ जाता है। लोकिन यह बात गलत है कि उसके बिना मनुष्य का नैतिक, शारीरिक और आर्थिक विकास नहीं हो सकता।"* इस प्रकार गांधी जी हाथ को शिक्षा द्वारा ग्रामीण शिल्पकार और अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहित किया। ग्रामीण उद्योगों में रोजगार सृजन की क्षमता होती है और ग्रामीण जनों की आमदनी में वृद्धि होती है। गांधी जी के आत्मनिर्भरता के विचार की समाहित करते हुये राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अध्याय 4 के बिन्दु 4.25 और 4.26 व्यावसायिक शिक्षा पर जोर देती है। वर्तमान में प्रचलित मैकाले माडल की शिक्षा नौकरी ढूँढने वाले बेरोजगारो की बड़ी फौज तैयारी कर रही है, लेकिन गांधी जी की शिल्पकेन्द्रित शिक्षा के अनुरूप अब छठी कक्षा से व्यावसायिक शिक्षा शुरू की जाएगी। "कोडिंग" जैसे व्यावसायिक प्रशिक्षण जिनमें पहेलियां, गेम (खेल) का नियमित उपयोग शामिल है, जो गणितीय सोच को अधिक आकर्षक एवं आनन्ददायक बनाते हैं। इसी के साथ कक्षा 6 से 8 में अध्ययन के दौरान सभी विद्यार्थी दस दिन के लिए बस्ता रहित कक्षा में प्रतिभाग करेंगे। जिसमें स्थानीय शिल्प प्रशिक्षक जैसे – बढई, माली, कुम्हार आदि प्रशिक्षण देने का कार्य करेंगे।

मातृभाषा :

शिक्षा के माध्यम की भाषा कौन सी हो ? आमतौर पर ये बहस दो बिन्दुओं के इर्द–गिर्द घूमती है। एक पक्ष का मानना है कि मातृभाषा ज्ञान और शिक्षा के माध्यम के रूप में उसका उपयोग किसी व्यक्ति की राजनैतिक और संस्कृतिक चेतना विकास के लिए आवश्यक है; वहीं दूसरा पक्ष मानता है कि मातृभाषा के प्रति अनुराग का संकुचित नजरिया त्याग कर और भूमण्डलीय दौर की आवश्यकताओं की के साथ चलने में अंग्रेजी भाषा का ज्ञान आवश्यक है।

गांधी जी शिक्षा के माध्यम के प्रश्न को महत्वपूर्ण मानते हुए इस बात पर बल दिया कि भारत के विभिन्न प्रांतों में शिक्षा देने का काम प्रांतीय मातृभाषाओं में किया जाना चाहिए। इंडियन ओपिनियन पत्रिका के 19–08–1910 के अंक में छपे लेख *"शिक्षा का माध्यम क्या हो"* में का कथन प्रस्तुत है – *"हम लोगों में बच्चों को अंग्रेज बनाने की प्रवृति प्रायी जाती है मानो उन्हें शिक्षित करने का और साम्राज्य की सच्ची सेवा के योग्य बनाने का वही सबसे उत्तम तरीका है। हमारा ख्याल है कि समझदार से समझदार अंग्रेज भी यह नहीं चाहेगा कि हम अपनी राष्ट्रीय विशेषता अर्थात् परम्परागत प्राप्त शिक्षा और संस्कृति को छोड़ दें अथवा यह कि हम उनकी नकल किया करें। इसलिए जो अपनी मातृभाषा के प्रति चाहे कितना ही साधारण क्यों न हो, इतने लापरवाह हैं, वे एक विश्वव्यापी धार्मिक सिद्धांत को भूल जाने का खतरा मोल ले रहे हैं।"* मातृभाषा के महत्व को लेकर गांधी जी का यह विचार दक्षिण अफ्रीका में व्यक्त किया गया था। इसी सन्दर्भ में गांधी जी ने मातृभाषा के प्रति अनुराग को वर्ष 2016 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय के उद्घाटन के अवसर पर व्यक्त किया कि *"इस महान विद्यापीठ के प्रांगण में अपने देशवासियों से अंग्रेजी में बोलना पड़े यह अप्रतिष्ठा और*

लज्जा की बात है।" उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि गांधी जी मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने के प्रबल पक्षधर रहे। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 अवलोकन से स्पष्ट है कि गांधी जी के दृष्टि को स्वीकार करते हुये प्राथमिक स्तर पर परीक्षा का माध्यम मातृभाषाओं को बनाया गया है। मातृभाषाओं के माध्यम से ही कलाओं के सम्यक स्वल्प की समझ एवं उसका व्यापक प्रसार बच्चो में सांस्कृतिक पहचान को संजोने का कार्य किया जा सकता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अध्याय 22 में भारतीय भाषाओं के महत्व को गम्भीरता से स्वीकार किया गया। सम्पूर्ण देश में शिक्षागत व्यवहार में उत्तरोत्तर विकास बनाये रखने पर जोर दिया गया है। भाषा की निरन्तरता को बनाए रखने के लिए भारतीय भाषा के शिक्षण अधिगम को आधारभूत स्तर की कक्षा से उच्चतर शिक्षा स्तर तक की कक्षा तक कार्ययोजना बनाने की बात शिक्षा नीति में कही गई है। भारत इसीलिए सभी शास्त्रीय भाषाओं और साहित्य अध्ययन करने वाले अपने संस्थानों और विश्वविद्यालयों का विस्तार करेगा। इस प्रकार भारत की कलाओं तथा भाषाओं के बहुविध संरक्षण और प्रचार दृ प्रसार के दूरगामी परिणाम देश की सांस्कृतिक एकता को अधिक मजबूती प्रदान करेंगे।

पाठ्यक्रम :

बेसिक शिक्षा के पाठ्यक्रम को गांधी जी ने देश, काल, परिस्थितियों में एवं समुदाय की आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखकर तैयार किया। शिक्षा में स्थानीय ग्रामीण परिवेश के मद्देनजर हस्तशिल्प केन्द्रित खादी, कढ़ाई, बुनाई, लकड़ी के काम, मिट्टी के काम, कृषि कार्य, मछली पालन, बागवानी आदि का प्रावधान किया। वहीं लड़कियों एवं लड़कों के आवश्यकता के क्रम में स्थानीय आधाररित लचीलेपन पाठ्यक्रम का सिद्धांत अपनाया। 16 वर्ष की आयु तक सह–शिक्षा का समर्थन किया। कुछ विषयों में लड़कियों की अलग से शिक्षा देना आवश्यक बताया। गांधी जी प्रयोगधर्मी थे, उनका आग्रह था जहाँ तक संभव हो सके शिक्षा अनेक क्रियाकलापों युक्त अनुभवजनित होनी चाहिए। गांधी जी ने हरिजन के अंक दिनांक 01.07.1937 में लिखा – *"बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य दस्तकारी के माध्यम से बालकों का शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक विकास करना है। मैं मानता हूँ कि कोई भी पद्धति जो शैक्षणिक दृष्टि से सही हो और जो अच्छी तरह चलायी जाय, आर्थिक दृष्टि से भी उपयुक्त सिद्ध होगी।"* राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में गांधी जी के मन्तव्यों को प्रारम्भिक बाल्यावस्था में पाठ्यक्रम विभाजन, स्कूली शिक्षा पाठ्यक्रम का पुनर्गठन एवं विद्यालयी व्यवस्था 5+3+3+4 के पाठ्यक्रमों की विषय वस्तुयें प्रयोगात्मक खोजों पर आधारित होंगी। जिससे तर्कपरक चिंतन का विकास हो सकेगा, जो विद्यर्थियों के अधिगम लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक हो सकेंगे।

कौशल विकास :

गांधी जी प्रारंभ से ही निर्धनता और बेरोजगारी दूर करने का अचूक हथियार कौशल विकास को मानते थे। दिनांक 01.09.1921 के *यंग इंडिया* में उन्होने लिखा कि *"अन्य देशों के बारे में कुछ भी सही हो, कम से कम भारत में तो जहाँ अस्सी फीसदी आबादी खेती कारने वाली है और दस फीसदी आबादी उद्योगों में काम करने वाली है। शिक्षा को निरी साहित्यिक बना देने तथा लड़कों व लड़कियों को उत्तरदृजीवन में हाथ के काम के लिए अयोग्य बना देना गुनाह है। मेरी राय है कि चूंकि हमारा अधिकांश समय रोजी कमाने में लगता है, इसलिए हमारे बच्चों को बचपन से ही इस प्रकार के परिश्रम का गौरव सिखाना चाहिए। हमारे बालकों की पढ़ाई ऐसी नहीं होनी चाहिए जिससे वे मेहनत का तिरस्कार करने लगे। कोई कारण नहीं कि क्यों एक किसान का*

बेटा किसी स्कूल में जाने के बाद खेती के मजदूर के रूप में आजकल की तरह निकम्मा बन जाए। यह अफसोस की बात है कि हमारी पाठशाला के विद्यार्थी शारीरिक श्रम को तिरस्कार की दृष्टि से चाहे न देखते हों, पर नापसंदगी की नजर से जो जरूर देखते हैं।"

गांधी जी की उपर्युक्त चिंताओं के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में बिन्दुवार 16.2 एवं 16.8 राष्ट्रीय कौशल योग्यता फ्रेमवर्क को प्रत्येक विषय व रोजगार के लिए निर्मित किया जाएगा। इसी के बिन्दु 11.1, 11.2 एवं 11.3 में विभिन्न प्रकार के रोजगारपरक व्यावसायिक कार्यों में सम्प्रेषण, चर्चा और वाद–संवाद करने के व्यावहारिक कौशलों का प्रावधान किया गया है, यद्यपि कौशल विकास के महत्व को हमारे राष्ट्र निर्माताओं ने देर से समझा। एक महाशक्ति के रूप में उभरने के लिए अपने युवाओं को कौशल सम्पन्न बनाना होगा। सरकारी नौकरियाँ वर्तमान उपलब्ध जनसंख्या का तीन प्रतिशत ही है। जाहिर तौर इतनी बड़ी नही है कि सबको संतुष्ट किया जा सके। अधिकांश जनसंख्या दिशाहीन और असंतुष्ट है। सरकारी नौकरियां लाखों लोगों के लिए सृजित नहीं की जा सकती। युवा केवल भारत में रोजगार करने लायक नहीं बनेगें बल्कि वैश्विक स्तर पर रोजगार करने योग्य बनेंगे। इसके लिए बड़े पैमाने पर अभियांत्रिकी संस्थानों की स्थापना विकास एवं सुविधा सम्पन्न बनाना होगा। जिसकी रूपरेखा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में निहित है।

उच्च शिक्षा :

गांधी जी ने बुनियादी शिक्षा की प्रारम्भिक शिक्षा भारतीयों के लिए प्राण वायु की संज्ञा दी । जिसमें प्रारम्भिक शिक्षा, मातृभाषा में शिक्षा, दस्तकारी शिक्षा एवं नैतिक, सांस्कृतिक व मूल्यों को महत्वपूर्ण बताया परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उन्होंने उच्च शिक्षा की अवहेला की। हरिजन 31.07.1937 में लिखा – *"मैं कालेज की शिक्षा में कायादृपलट करके राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप बनाऊंगा। यन्त्र विद्या तथा अन्य इंजीनियरों के लिए डिग्रियां होंगी। वे भिन्नदृभिन्न उद्योगों के साथ जोड़ दिये जायेंगे और इन उद्योगों को जिन स्नातकों की जरूरत होगी, उनके प्रशिक्षण का खर्च वे उद्योग देंगे। वाणिज्य–व्यवसाय वालों का अपना कालेज होगा।"* इसके पश्चात *हरिजन* के अंक दिनांक 25.08.1946 के पृष्ठ संख्या दृ 283 में लिखा कि *"विश्वविद्यालय शिक्षा का ध्येय देश के सच्चे सेवक तैयार करना होना चाहिए जो देश की स्वतंत्रता के लिए जिए और मरे। इसलिए मेरी राय है कि विश्वविद्यालय शिक्षा का बुनियादी शिक्षा के साथ समन्वय किया जाना चाहिए और उसी सांचे में ढली होनी चाहिए।"*

इस प्रकार गांधी जी बुनियादी शिक्षा की इमारत पर एक उच्च शिक्षा का भव्य महल खड़ा करना चाहते थे। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के बिन्दु संख्या 9 में उच्च शिक्षा की रूपरेखा में भारत को एक लोकतांत्रिक, न्यायपूर्ण, सामाजिक रूप से सचेत सांस्कृतिक और मानवीय राष्ट्र की बातें कही गई है एवं विभिन्न व्यावसायिक तकनीकी युक्त विभिन्न विषयों में 21वीं सदी की क्षमताओं को विकसित करती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के बिन्दु संख्या 9.1.3 में रोजगार सृजन के अवसर प्रदान करना, इसके साथ ही साथ व्यावसायिक समूहों में सहकारी भावना का विकास करके उत्पादक माहौल को खुशनुमा बनाकर के उत्पादक राष्ट्र का निर्माण करना अपेक्षित है।

प्रौढ़शिक्षा :

गांधी जी शिक्षा की अवधारणा में जीवन पर्यन्त शिक्षा की बात करते हैं। वह मानव के निरन्तर स्वदृअध्ययन के पोषक थे। औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली के निष्यपन्दन सिद्धान्त के कारण सभी के लिए शिक्षा का आयोजन करना प्राथमिकता में नहीं रहा।

परिणाम स्वरूप में भारत में निरक्षरता और बेकारी बहुतायत रही। जन चेतना जागृति के लिए शिक्षा की एक महवपूर्ण भूमिका रही है। इसके लिए गांधी जी ने बुनियादी शिक्षा से लेकर प्रौढ़ शिक्षा तक जीवनपर्यन्त शिक्षा, भारतीय जनमानस के लिए प्रस्तुत की। इस सम्बन्ध में गांधी जी ने 1 सितम्बर 1945 में प्रौढ़ शिक्षा समिति में कहा कि *"जीवन के लिए शिक्षा का मतलब ………… जीवन काल के लिए शिक्षा से नहीं है, अपितु प्रौढ़ शिक्षा एक तरह से जीने की कला की शिक्षा है, जो व्यक्ति जीने की कला सीख लेता है, वह पूर्ण मानव बन जाता है। इस दृष्टि को सामने रखकर नई तालीम का आदर्श तुम्हारे काम को प्रेरणा देगा।"*

इससे स्पष्ट है कि गांधी जी प्रौढ़ शिक्षा में जीने की कला के अन्तर्गत बुनियादी साक्षरता, जीवन कौशल, व्यावसायिक कौशल, स्वास्थ्य जागरूकता और परिवार कल्याण के साथ समाज कल्याण के तत्व शामिल हैं। रचनात्मक कार्यक्रम में *"बड़ों की तालीम"* शीर्षक में उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि अगर उन्हें बड़ी उम्र के लोगों को पढ़ाने का काम मिले तो वे देश के विस्तार और महत्ता का बोध कराकर पढ़ाई की शुरुआत करेंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के बिन्दु संख्या 21 में बुनियादी साक्षरता, जीविकोपार्जन, प्रत्येक नागरिक को मौलिक अधिकार प्रदान करने, व्यक्ति को निजी और वृत्तिक स्तरों पर मदद प्रदान करने का जिक्र है। उसी प्रकार बिन्दु संख्या 21.5 में प्रौढ़ शिक्षा के पाठ्यचर्या ढ़ांचे में कम से कम निम्न पांच प्रकार के कार्यक्रम यथा दृ (क) बुनियादी शिक्षा और अक्षर ज्ञान, (ख) महत्वपूर्ण जीवन कौशल (जैसे – वित्तीय साक्षरता, डिजिटल साक्षरता, व्यावसायिक कौशल, स्वास्थ्य सम्बन्धी जागरूकता, शिशु पालन एवं शिक्षा और परिवार कल्याण), (ग) व्यावसायिक कौशल विकास (स्थानीय रोजगार प्राप्ति के मद्देनजर), (घ) बुनियादी शिक्षा (प्रारम्भिक, माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तर के समकक्ष), एवं (ड़) सतत शिक्षा (जैसे – कला, विज्ञान, तकनीकी, संस्कृति, खेल, मनोरंजन इत्यादि के अलावा स्थानीय शिक्षार्थियों की रुचि अथवा लाभ की दृष्टि से अन्य विषयों, उदाहरण के लिए महत्वपूर्ण जीवन कौशलों पर अधिक उन्नत सामाग्री, पर प्रौढ़ शिक्षा कोर्स) शामिल है। इसके साथ ही विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय ऐसे पाठ्यक्रमों के लिए पुस्तकों की समुचित आपूर्ति सुनिश्चित करेंगे। निशक्त जन, वंचित, श्रमिक और ग्रामीण व दूरदृदराज में रहने वाले लोगों को ध्यान में रखकर आनदृ लाइन तथा जीवंत पुस्तकालय खड़ा करने की कोशिश होगी। जिससे सभी इक्छूक प्रौढ़ों को आजीवन अधिगम प्राप्त हो सके।

ललित कलाएं :

ललित कलाएं अपनी सभ्यता, संस्कृति व परम्परा से परिचित कराने का अद्वितीय साधन रही हैं। नृत्य, संगीत, नाटक, लोकगीत एवं चित्र कलाएं इत्यादि भारतीयता को जीवंत बनाते हैं। यद्यपि गांधी जी के सादगी भरे जीवन में ललित कलाओं के दर्शन नहीं मिलते परन्तु सभी कलाओं में गांधी जी को संगीत सर्वाधिक प्रिय था। भक्ति गीत व भक्तिपूर्ण संगीत बेहद प्रिय थे। एक जगह उन्होंने लिखा है कि *"मीरा के गीत बहुत सुन्दर हैं। इसका कारण यह है कि वे मीरा के ह्रदय से निकले हैं। मैं तो संगीत के बिना भारत के धार्मिक जीवन के विकास की कल्पना नहीं करता हूँ।"* वे कहते हैं – *"कला के लिए कला मेरी समझ के बाहर है, जो कला हमें आत्मदर्शन करना न सिखाये, वह कला ही नहीं है …………. जो कला मन की शान्ति न दे सके, वह भी कला नहीं है।"* गांधी जी का कहना है कि *"जो सर्वोत्तम जीवन जीता है वही*

सबसे बड़ा कलाकार है, क्योंकि जिस कला के पीछे उदात्त जीवन न हो, वह कला कैसी?" अर्थात कलाकार का व्यक्तित्व व चरित्र निर्दोष होना चाहिए।

ललित कलाएं व्यक्ति के सामाजिक जीवन को सरल व सहज बनाती हैं और तनाव प्रबन्धन प्रक्रिया को संवर्धित करती हैं। विद्यार्थी जीवन के एकांगीपन को खुशनुमा बनाती हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में गांधी जी के कला संबन्धी विचारों को अंगीकृत करने का प्रावधान बिन्दु संख्या 4.6 में कलाओं के सम्वर्द्धन से बच्चों में सकारात्मक सांस्कृतिक पहचान एवं आत्मदृसम्मान का भाव जागृत किया जा सकता है। अनुभव आधारित अधिगम में कला के माध्यम से सृजनात्मक चिंतन के विकास के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के बिन्दु संख्या 22.19 में स्थानीय कला एवं संस्कृति का वेब आधारित प्लेटफार्म के माध्यम से इसका दस्तावेजीकरण किया जाएगा। जिसमें अतुल्य भारत के लक्ष्यों की प्राप्ति सम्भव हो सकेगी।

उपसंहार :

गांधी जी प्रयोगधर्मी व्यक्ति थे। वे जिन नियमों व सिद्धांतों को अपनाने की बात करते थे वे स्वयं उनके अनुभव जनित थे। वह प्राचीन भारतीय संस्कृति से सम्मोहित थे परन्तु आधुनिकता से ओतप्रोत थे। उनके व्यक्तित्व में अतीत और वर्तमान का अनूठा सम्मिश्रण था। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में बहुभाषावाद एवं मातृभाषा, जीवन कौशल, नैतिकता और संवैधानिक मूल्यों, रचनात्मकता और आधुनिक प्रौद्योगिकी प्रयोग, बहुविषयक, समग्र शिक्षा आदि की शक्ति को बढ़ावा देने के बारे में उनके विचारों को समाहित किया गया है, यदि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का क्रियान्वयन बेहतर तरीके से हो तो आत्मनिर्भर भारत के गांधी जी के सपने को पूरा किया जा सकता है।

सन्दर्भ :

1. मिश्र, एस. के. 2012. भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास. आर. लाल बूक डिपो, मेरठ.
2. लाल, आर. बी. 2013. शिक्षा के दार्शनिक तथा सामाजिक आधार. रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ.
3. शिक्षा मन्त्रालय. 2020. राष्ट्रिय शिक्षा नीति 2020. शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार.
4. गांधी, महात्मा. 1960. मेरे सपनों का भारत. नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद.
5. जौहरी, जे. सी. 2019. गाँधीवादी विचारधारा. एस बी पी डी पब्लिकेशन, आगरा.
6. श्रीवास्तव, आर. पी. 1992. भारत के महान शिक्षाशास्त्री. प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली.
7. गांधी, मोहनदास करमचंद. 2009. हिन्द स्वराज. नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद.
8. गांधी, मोहनदास करमचंद. 2022. आटोबायोग्राफी . नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद.
9. यंग इण्डिया – दिनांक 01.09.1921
10. हरिजन – दिनांक 01.07.1937, 31.07.1937 एवं 25.08.1946
11. इंडियन ओपिनियन पत्रिका – दिनांक 19–08–1910

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

आधुनिक शिक्षा, कौशल विकास एवं उद्यमिता एक अवलोकन

अनन्त कुमार शर्मा
शोधार्थी– प्रबन्धन विज्ञान विभाग,
महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, बिहार
प्रो. पवनेश कुमार
संकायाध्यक्ष– प्रबन्धन विज्ञान विभाग
महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतीहारी (बिहार)

सारांश
शिक्षा वर्तमान में और भविष्य के लिए एक अनूठा निवेश है। मानव जीवन और राष्ट्र के समग्र विकास में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह एक ऐसी प्रणाली है जो उद्योगों के लिए प्रशिक्षित और कुशल जनशक्तिप्रदान करती है। वर्तमान उद्योग का रोजगार बाजार निरंतर बदल रहा है, इसलिए यह जरूरी है कि हमारी शिक्षा प्रणाली कौशल प्रदान करने के नए प्रतिमान के अनुरूप हो और किसी भी कार्य के लिए उन्हें तैयार करने के लिए युवाओं के बीच विश्लेषणात्मक सोच प्रक्रिया को विकसित करे। प्रत्येक देश मौजूदा संभावनाओं का लाभ उठाने के लिए समय की चुनौतियों का सामना करने के अलावा, अपनी विशिष्ट सामाजिक सांस्कृतिक पहचान व्यक्त करने और उसे बढ़ावा देने के लिए शिक्षा की अपनी प्रणाली विकसित करता है। शिक्षा के इस तरह के व्यावहारिक उत्पादक कार्य से मानवीय एवं बौद्धिक श्रमिकों के बीच भेदभाव के वर्तमान बंधनों को तोड़ना होगा। शिक्षा का उद्देश्य लोगों को बेहतर बनाना और उन्हें अपने कौशल और विश्वास को विकसित करने देना है जो उनके जीवन के लिए आवश्यक है तथा छात्रों का समग्र विकास करना और आत्मनिर्भरता की भावना पैदा करना है। यह उनके जीवन में सामना की जाने वाली चुनौतियों को कम करता है और उन्हें कमाने के तरीके सीखने में मदद करता है। जितना अधिक ज्ञान प्राप्त होता है, उतना अधिक कैरियर में अवसर और व्यक्तिगत विकास में बेहतर संभावनाएं प्राप्त करने के अवसर पैदा होते हैं।

कुन्जी शब्द–मानव शिक्षा, उद्यम एवं कुशल कार्यबल, नई शिक्षा नीति, छात्र स्टार्टअप, सरकारी पहल

प्रस्तावना

वर्तमान में भारत 30 वर्ष से कम आयु के 50 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या वाले विश्व के सबसे युवा देशों में से एक है। यह अनुमान है कि 2025 तक भारत के पास

विश्व के कुल कार्यबल का 25 प्रतिशत होगा। पूर्ण जनसांख्यिकीय लाभांश का फायदा उठाने के लिए, भारत को उच्च गुणवत्ता की शिक्षा प्रणाली की जरूरत है । राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अन्तर्गत कस्तुरी आयोग ने विगत आयोगों और पूर्व की नीतियों का मूल्यांकन तथा कुछ अधूरे कामों के साथ विचार किया। यह नीति, समग्र शिक्षा एवं सतत विकास के लक्ष्यों के साथ एक समानता रखता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति को लागू करते समय, समग्र रूप से सभी के लिए समावेशी और समान गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करना तथा सभी के लिए आजीवन सीखने के अवसरों को बढ़ावा देना, जिससे युवा स्नातकों को राष्ट्रीय एवं वैश्विक स्तर पर स्वीकार किया जाएगा। साथ ही, भविष्य में भी यह अधिक प्रासंगिक होना चाहिए कि विशेष रूप से युवाओं को वैश्विक चुनौतियों का सामना करने का पूरा परिणाम मिल सके जो भारत को विकास के शिखर तक ले जाने का संकल्प इस नीति में परिलक्षित होता है।

केंद्र सरकार द्वारा घोषित नई शिक्षा नीति आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में प्रमुख भूमिका निभाएगी और भारतीय विद्यार्थियों के लिए और अधिक वैश्विक अनुभव की सुविधा के लिए शिक्षा क्षेत्र की शुरुआत करेगी। भारत में विदेशी विश्वविद्यालयों के परिसर खोलने का इरादा है जिससे विद्यार्थियों को वैश्विक अनुभव प्राप्त होना चाहिए। इसी तरह, भारतीय और विदेशी विश्वविद्यालयों के बीच अनुसंधान सहयोग और छात्रों के आदान–प्रदान कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया जाएगा। हमारे विद्यार्थी द्वारा अर्जित क्रेडिट की गणना भारतीय संस्थानों में की जाएगी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति भारत को एक वैश्विक शिक्षा केन्द्र के रूप में स्थापित करेगी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति विशेष रूप से देश को सच्चे अर्थों में आत्मनिर्भर बनाने में बहुत उपयोगी होगी। कौशल, खोज, संचार, अनुसंधान योग्यता, और डेटा के संचय को संभालने की क्षमता आमतौर पर अपरिहार्य होगी। इसके तीन स्तर निर्धारित किये गए है–

- ☐ गुणवत्ता और सक्षम शैक्षिक प्रबंध,
- ☐ विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास, और
- ☐ रक्षा और रोजगार का सृजन।

साहित्य समीक्षा

- योजना आयोग (2006), विशेष रूप से कम शिक्षित, गरीब और स्कूल न जाने वाले युवाओं के कौशल विकास पर जोर देने के महत्व को कई मंचों पर रेखांकित किया गया है। श्रम शक्ति का कौशल स्तर और शैक्षिक उपलब्धि बदलते परिवेश में उत्पादकता, आय स्तर और श्रमिक वर्ग की अनुकूलन क्षमता निर्धारित करती है। भारत की आबादी का एक बड़ा हिस्सा गरीबी में जी रहा है। प्रमुख कारणों में से एक श्रम बल में कुशल श्रमिकों का कम प्रतिशत है। सैनी, पी. (2014), कौशल निर्माण और शिक्षण तंत्र के माध्यम से एमएसएमई को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए
- अबिसुगा–ओयेकुनले, ओ.ए., और फिलिस, आई. (2016), दक्षिण अफ्रीका में, अनौपचारिक प्रशिक्षण के माध्यम से सूक्ष्म उद्यम और हस्तशिल्प क्षेत्रों में मानव संसाधन विकास के तरीकों में से एक है, जिसे कौशल शिक्षुता और प्रशिक्षण के माध्यम से प्राप्त किया जाता है। जहां, सर्वेक्षण कुछ शिल्पकारों के परिणाम दिखाता है, 18 प्रतिशत औपचारिक शिक्षा और 52 प्रतिशत कुशल प्रशिक्षण प्राप्त करने के इच्छुक हैं, जबकि 30 प्रतिशत का मानना है कि उन्हें उद्यमशीलता प्रशिक्षण की आवश्यकता है, जो उन्हें व्यवसाय का प्रबंधन और विकास करने में मदद करेगा, और उत्पादकता की क्षमता भी प्रदान की जा सकती है। उसके बाद भविष्य में उनके करियर को देखा जा सकता है, अधिकांश शिल्पकारों ने मूल्यवान शैक्षिक और

कौशल ज्ञान और क्षमताओं को प्राप्त करने के लिए सीखने और प्रशिक्षण माध्यम का उपयोग किया है और अपना स्वयं का हस्तशिल्प व्यवसाय स्थापित करने के लिए आगे बढ़े हैं।

- अबिसुगा–ओयेकुनले, ओ.ए., और फिलिस, आई. आर (2017), दक्षिण अफ्रीकी हस्तशिल्प उत्पादन में संचालन विशेष रूप से घर–आधारित और छोटे पैमाने पर होता है, जिसमें अंतिम उत्पाद के प्रमुख प्रदाता के रूप में हाथ–प्रसंस्करण होता है। जैसा कि दक्षिण अफ्रीकी हस्तकला क्षेत्र अपने डिजाइन और व्यावसायिक कौशल में सुधार करता है, इसमें ग्रामीण और शहरी दोनों अर्थव्यवस्थाओं पर एक प्रगतिशील, सकारात्मक प्रभाव बनाने और पर्याप्त संख्या में नई नौकरियों का उत्पादन करने की संभावना है।
- एसोचैम (2019), श्रम बाजार में व्यक्ति के परिवर्तन को सुविधाजनक बनाकर, किसी व्यक्ति की रोजगार क्षमता को बढ़ाने के लिए व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण महत्वपूर्ण हैं। भारत में वर्तमान कुशल कार्यबल केवल 2 प्रतिशत है, जो विकासशील देशों (कोरिया (96 प्रतिशत), जापान (80 प्रतिशत), जर्मनी (75 प्रतिशत), यूके (68 प्रतिशत) और चीन (40 प्रतिशत) की तुलना में बहुत कम है जैसा कि लेबर ब्यूरो की रिपोर्ट द्वारा बताया गया है।
- एनईपी 2020 के तहत कौशल विकास और उद्यमिता मंत्रालय (MSDE) शिक्षा मंत्रालय (MoE) के साथ मिलकर 'कौशल हब पहल' योजना लागू कर रहा है। इसमें स्किल हब नोडल स्किल सेंटर होंगे, जिन्हें स्कूल छोड़ने वाले और शिक्षा से बाहर के छात्रों को लक्षित करने के लिए कौशल विकास और व्यावसायिक प्रशिक्षण के अवसर प्रदान करने के लिए चिन्हित किया जाएगा। स्किल हब के माध्यम से एकीकृत स्किलिंग को लागू करने की दिशा में एक कदम के रूप में 1 जनवरी, 2022 से एक पायलट लॉन्च किया गया है।

यह शोध अध्ययन एक वर्णनात्मक शोध डिजाइन पर आधारित है। यह पेपर केंद्र सरकार द्वारा घोषित नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में प्रमुख भूमिका, भारतीय विद्यार्थियों के लिए और अधिक वैश्विक अनुभव की सुविधा के लिए तकनीकी शिक्षा क्षेत्र, समावेशी और गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने तथा रोजगार/स्वरोजगार अवसर के मामले पर विचार करने के दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है। इस शोध पत्र के तर्क एवं सत्यता द्वितीयक डेटा पर आधारित हैं, जिसमें अनुसंधान गेटवे, गूगल स्कालर, सरकारी वेबसाइट, आदि शामिल हैं।

इस शोध पत्र का उद्देश्य समावेशी और समान गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने तथा अवसरों को बढ़ावा देने एवं आत्मनिर्भर बनाने के सरकारी नीतियों एवं पहलों का अध्ययन करना है।

शिक्षण व्यवस्था

भारत की वर्तमान शिक्षा प्रणाली का ढाँचा औपनिवेशिक है, जब कि प्राचीन भारत की शिक्षा प्रणाली गुरुकुल आधारित थी। वर्तमान शिक्षा प्रणाली एक संशोधित एवं अद्यतन शिक्षा प्रणाली तो है ही यह ज्ञान–विज्ञान के नए–नए विषयों को भी समाहित करती है। जिसने मानव जीवन एवं आद्योगिक ज्ञान–विज्ञान को सहज, सुंदर एवं सुविधाजनक बनाया है जिसमें कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य इस प्रकार है–

- राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद द्वारा वर्ष 2022 तक 'शिक्षकों के लिये राष्ट्रीय व्यावसायिक मानक' National Professional Standards for Teachers (NPST) का विकास किया जाएगा।
- शिक्षकों की नियुक्ति में प्रभावी और पारदर्शी प्रक्रिया का पालन तथा समय–समय पर किये गए कार्य–प्रदर्शन आकलन के आधार पर पदोन्नति।
- राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद द्वारा NCERT के परामर्श के आधार पर 'अध्यापक शिक्षा हेतु राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा' National Curriculum Framework for Teacher Education (NCFTE) का विकास किया जाएगा।
- वर्ष 2030 तक अध्यापन के लिये न्यूनतम डिग्री योग्यता 4–वर्षीय एकीकृत बी.एड. डिग्री का होना अनिवार्य किया जाएगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति का लक्ष्य 2035 तक सकल नामांकन अनुपात (जीईआर) का लक्ष्य हासिल करना है, जिसमें विषयों में लचीलापन, बहु–अनुशासनिक शिक्षा, संस्थागत ढांचागत परिवर्तन, राष्ट्रीय अनुसंधान संस्थान की स्थापना, व्यावसायिक समेकन, समग्र और बहु आयामी शिक्षा प्रदान करना है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुसार 2030 तक एसडीजी4 से जुड़ी ईसीसीई से माध्यमिक शिक्षा तक सार्वभौमिकता होगी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुसार 2030 तक प्री–स्कूल से माध्यमिक स्तर तक 100 प्रतिशत सकल नामांकन अनुपात (जीईआर) होगी। 2025 तक नेशनल मिशन के माध्यम से फाउंडेशन लर्निंग और न्यूमेरेशी कौशल प्राप्त करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

नए 5+3+3+4 ढांचे में 3 वर्ष के बच्चों को शामिल कर प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा (ईसीसीई) की एक मजबूत बुनियाद को शामिल किया गया है जिससे आगे चल कर बच्चों का विकास बेहतर हो, वे बेहतर उपलब्धियां हासिल कर सकें और खुशहाल हों। ईसीसीई का समग्र उद्देश्य बच्चों का शारिरिक–भौतिक विकास, संज्ञानात्मक विकास, समाज– संवेगात्मक–नैतिक विकास, सांस्कृतिक विकास, संवाद के लिए प्रारंभिक भाषा, साक्षरता और संख्यात्मक ज्ञान के विकास में अधिकतम परिणामों को प्राप्त करना है।

उच्च शिक्षा से संबंधित प्रावधान

- NEP–2020 के तहत उच्च शिक्षण संस्थानों में 'सकल नामांकन अनुपात' (Gross Enrolment Ratio) को 26.3 प्रतिशत (वर्ष 2018) से बढ़ाकर 50 प्रतिशत तक करने का लक्ष्य रखा गया है, इसके साथ ही देश के उच्च शिक्षण संस्थानों में 3.5 करोड़ नई सीटों को जोड़ा जाएगा।
- NEP–2020 के तहत स्नातक पाठ्यक्रम में मल्टीपल एंट्री एंड एक्जिट व्यवस्था को अपनाया गया है, इसके तहत 3 या 4 वर्ष के स्नातक कार्यक्रम में छात्र कई स्तरों पर पाठ्यक्रम को छोड़ सकेंगे और उन्हें उसी के अनुरूप डिग्री या प्रमाण–पत्र प्रदान किया जाएगा (1 वर्ष के बाद प्रमाण–पत्र, 2 वर्षों के बाद एडवांस डिप्लोमा, 3 वर्षों के बाद स्नातक की डिग्री तथा 4 वर्षों के बाद शोध के साथ स्नातक)।
- विभिन्न उच्च शिक्षण संस्थानों से प्राप्त अंकों या क्रेडिट को डिजिटल रूप से सुरक्षित रखने के लिये एक 'एकेडमिक बैंक आफ क्रेडिट'(Academic Bank of Credit) दिया जाएगा, ताकि अलग–अलग संस्थानों में छात्रों के प्रदर्शन के आधार पर उन्हें डिग्री प्रदान की जा सके।

पाठयक्रम और मूल्यांकन

- कला और विज्ञान, व्यवसायिक तथा शैक्षणिक विषयों एवं पाठयक्रम व पाठ्येतर गतिविधियों के बीच बहुत अधिक अंतर नहीं होगा।
- कक्षा–6 से ही शैक्षिक पाठ्यक्रम में व्यावसायिक शिक्षा को शामिल कर दिया जाएगा और इसमें इंटर्नशिप की व्यवस्था भी की जाएगी।
- 'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद' (National Council of Educational Research and Training & NCERT) द्वारा 'स्कूली शिक्षा के लिये राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा'(National Curricular Framework for School Education) तैयार की जाएगी।
- छात्रों के समग्र विकास के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए कक्षा–10 और कक्षा–12 की परीक्षाओं में बदलाव किया जाएगा। इसमें भविष्य में समेस्टर या बहुविकल्पीय प्रश्न आदि जैसे सुधारों को शामिल किया जा सकता है।
- छात्रों की प्रगति के मूल्यांकन के लिये मानक–निर्धारक निकाय के रूप में 'परख (PARAKH) नामक एक नए 'राष्ट्रीय आकलन केंद्र (National Assessment Centre) की स्थापना की जाएगी।
- छात्रों की प्रगति के मूल्यांकन तथा छात्रों को अपने भविष्य से जुड़े निर्णय लेने में सहायता प्रदान करने के लिये 'कृत्रिम बुद्धिमत्ता'(Artificial Intelligence) आधारित सॉफ्टवेयर का प्रयोग।

HECI (Higher Education Council of India)के कार्यों के प्रभावी निष्पादन हेतु निकाय–

- राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा नियामकीय परिषद (National Higher Education Regulatroy Council [NHERC])– यह शिक्षक शिक्षा सहित उच्च शिक्षा क्षेत्र के लिये एक नियामक का कार्य करेगा।
- सामान्य शिक्षा परिषद (General Education Council [GEC])– यह उच्च शिक्षा कार्यक्रमों के लिये अपेक्षित सीखने के परिणामों का ढाँचा तैयार करेगा अर्थात उनके मानक निर्धारण का कार्य करेगा।
- राष्ट्रीय प्रत्यायन परिषद (National Accreditation Council [NAC])– यह संस्थानों के प्रत्यायन का कार्य करेगा जो मुख्य रूप से बुनियादी मानदंडों, सार्वजनिकस्व–प्रकटीकरण, सुशासन और परिणामों पर आधारित होगा।
- उच्चतर शिक्षा अनुदान परिषद (Higher Education Grants Council [HGFC])– यह निकाय कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों के लिये वित्त पोषण का कार्य करेगा।
- देश में आई आई टी (IIT) और आई आई एम (IIM) के समकक्ष वैश्विक मानकों के 'बहुविषयक शिक्षा एवं अनुसंधान विश्वविद्यालय' (Multidisciplinary Education and Reserach Universities [MERU]) की स्थापना की जाएगी।

डिजिटल शिक्षा

ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली (ई–लर्निंग) को सभी प्रकार के समर्थित शिक्षा और अध्यापन के रूप में परिभाषित किया जाता है, जो स्वाभाविक तौर पर क्रियात्मक होते हैं और जिनका उद्देश्य शिक्षार्थी के व्यक्तिगत अनुभव, अभ्यास और ज्ञान के सन्दर्भ में ज्ञान के निर्माण को प्रभावित करना है। ऐसे में सरकार ने भी नई शिक्षा नीति 2020 में ऑनलाइन और डिजिटल शिक्षा पर जोर देने की कोशिश की है। शिक्षा नीति में तकनीक के समावेशी उपयोग यानि सबको साथ लेकर चलने की बात कही गई है ताकि कोई भी इससे वंचित ना रहे। साथ ही इसमें शिक्षकों के प्रशिक्षण की बात भी

कही गई है क्योंकि ये जरूरी नहीं कि जो शिक्षक पारंपरिक क्लासरूम शिक्षण में अच्छा है वो ऑनलाइन क्लास में भी उतना ही बेहतर कर सके।

स्कूल से लेकर उच्चतर शिक्षा तक सभी स्तरों पर शिक्षण के लिए प्रौद्योगिकी के महत्व को देखते हुए शिक्षा नीति में कई सिफारिशें की गई हैं। स्वयं, दीक्षा जैसे ई–लर्निंग प्लेटफॉर्म का विस्तार किया जाएगा ताकि शिक्षक विभिन्न यूजर फ्रेंडली उपकरणों की मदद से छात्रों की प्रगति की निगरानी कर सकें। वर्तमान में कोविड महामारी ने साफ कर दिया है कि ऑनलाइन कक्षाओं के लिए के लिए टू–वे वीडियो और टू–वे ऑडियो वाले इंटरफेस की सख्त जरूरत है।

डिजिटल शिक्षा की चुनौतिया–

- **इंटरनेट की अपर्याप्त पहुँच–**वर्ष 2017–18 के राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के आँकड़ों के अनुसार, केवल 42 प्रतिशत शहरी और 15 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों के पास इंटरनेट की सुविधा मौजूद थी और केवल 34 प्रतिशत शहरी एवं 11 प्रतिशत ग्रामीण व्यक्तियों ने पिछले 30 दिनों में इंटरनेट का उपयोग किया था। ये आँकड़े स्पष्ट रूप से इस बात की ओर संकेत करते हैं कि ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली के संचालन में स्वभाविक रूप से कम से कम दो तिहाई बच्चे ऑनलाइन शिक्षा प्रक्रिया के दायरे से बाहर हो जाएंगे। हमेशा की तरह इस प्रक्रिया में भी सबसे अधिक प्रभावित हाशिए पर मौजूद, ग्रामीण और गरीब आबादी ही होगी।

डिजिटल शिक्षा से संबंधित प्रावधान

- एक स्वायत्त निकाय के रूप में 'राष्ट्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी मंच'(National Educational Technol Foruem) का गठन किया जाएगा जिसके द्वारा शिक्षण, मूल्यांकन योजना एवं प्रशासन में अभिवृद्धि हेतु विचारों का आदान–प्रदान किया जा सकेगा।
- डिजिटल शिक्षा संसाधनों को विकसित करने के लिये अलग प्रौद्योगिकी इकाई का विकास किया जाएगा जो डिजिटल बुनियादी ढाँचे, सामग्री और क्षमता निर्माण हेतु समन्वयन का कार्य करेगी।
- आकांक्षी जिले (Aspirational districts) जैसे क्षेत्र जहाँ बड़ी संख्या में आर्थिक, सामाजिक या जातिगत बाधाओं का सामना करने वाले छात्र पाए जाते हैं, उन्हें 'विशेष शैक्षिक क्षेत्र'(Special Educational Zone) के रूप में नामित किया जाएगा।
- देश में क्षमता निर्माण हेतु केंद्र सभी लड़कियों और ट्रांसजेंडर छात्रों को समान गुणवत्ता प्रदान करने की दिशा में एक 'जेंडर इंक्लूजन फंड'(Gender Inclusion Fund) की स्थापना करेगा।
- गौरतलब है कि 8 वर्ष की आयु के बच्चों के लिये प्रारंभिक बचपन देखभाल और शिक्षा हेतु एक राष्ट्रीय पाठ्यचर्या और शैक्षणिक ढाँचे का निर्माण एनसीआरटीई द्वारा किया जाएगा।
- देश में ऑनलाइन स्कूल का ऐसा माहौल बनेगा जो कठिन समय में अक्सर नए अवसर प्रदान करते हैं. वर्तमान समय में ऑनलाइन शिक्षा हमारे एजुकेशन सिस्टम में कल्चर बन गया है। इंटरनेट कनेक्टिविटी के महत्त्व को देखते हुए आगामी एक हजार दिनों में 6 लाख गांवों को ऑप्टिकल फाइबर से जोड़ा जायेगा।

व्यावसायिक शिक्षा

भारत सरकार ने छात्रों के कौशल विकास की आवश्यकता पर ध्यान देते हुए राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा योग्यता ढांचा विकसित किया, जिसे बाद में राष्ट्रीय कौशल योग्यता ढांचे में शामिल कर लिया गया। विभिन्न कौशल परिषदें उद्योग की जरूरतों के अनुरूप अपने क्षेत्र में शिक्षा की अपनी प्रणाली तंत्र विकसित कर रही हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए यूजीसी ने तत्कालीन एमएचआरडी मंत्रालय भारत सरकार की पहल पर पायलट मोड में सामुदायिक महाविद्यालयों की योजना कार्यान्वित की। तथापि विद्यार्थियों के बीच कौशल विकसित करने तथा बड़े स्तर पर कार्य कर रहे लोगों के लिए कौशल विकास करने की आवश्यकता को महसूस करते हुए आयोग ने वर्ष 2014–15 से अपनी स्वतंत्र योजनाओं में सामुदायिक कॉलेजों की योजना को कार्यान्वित करने का निर्णय लिया। व्यावसायिक शिक्षा के दायरे का विस्तार करने के लिए विश्वविद्यालयों और कालेजों में भर्ती छात्रों को सीधे गतिशीलता प्रदान करने के लिए डिग्री कार्यक्रम और डिप्लोमा पाठ्यक्रम योजना भी शुरु की। व्यावसायिक शिक्षा को और व्यापक स्तर पर और अधिक बल देने के लिए यह प्रस्ताव किया गया है कि योजना अवधि के दौरान ज्ञान की प्राप्ति और कौशल और आजीविका (कौशल) के उन्नयन के लिए 100 दीनदयाल उपाध्याय कौशल केन्द्र स्थापित किए गये। ये केंद्र व्यावसायिक शिक्षा को नए स्तर तक ले जाएंगे और बी. वोक (बैचलर आफ वोकेशन) से आगे के पाठ्यक्रम प्रस्तुत करेंगे। ये कौशल केंद्र के प्रशिक्षण मार्गदर्शी सिद्धांतों का भी अनुकरण करेंगे और अपने कार्यक्रमों के लिए न केवल कौशल पर ध्यान देंगे बल्कि उद्यमिता विशेषताओं के विकास पर भी ध्यान देंगे। सरकारी एजेंसियों और उद्योग संघों के साथ समन्वय, संबंधित क्षेत्रों के लिए 'श्रम बाजार सूचना'बनाए रखना तथा कौशल विकास के क्षेत्रों में शिक्षा और प्रशिक्षण के लिए संकाय, उच्च शिक्षा प्रणाली और उद्योग के बीच तथा समन्वय के लिए विशेष क्षेत्रों में कौशल विकास के लिए उत्कृष्ट केंद्र बनाने का कार्य करेंगे।

कौशल विकास और उद्यमिता

विशिष्ट क्षेत्रों में कौशल विकास के लिए उत्कृष्टता का केंद्र बनने के लिए उच्च शिक्षा प्रणाली और उद्योग के बीच समन्वय से काम करने की आवश्यकता है। स्नातकोत्तर और अनुसंधान स्तर पर कौशल शिक्षा और विकास, उद्यमिता रोजगार, श्रम बाजार के रुझान आदि से संबंधित क्षेत्रों में अनुसंधान और विकास किया जाना चाहिए।

कौशल विकास और आत्म निर्भर भारत के सफल कार्यान्वयन हेतु देश में उद्योग को सही प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए विशेषकर सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों की सहायता के उद्देश्य से सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम मंत्रालय ने अपने प्रयास में विभिन्न उभरते हुए तथा परम्परागत क्षेत्रों में उद्यमों के विभिन्न खंडों के कुशल कार्यबल की मांग को पूरा करने के लिए एक सशक्त कौशल पारिस्थितिक प्रणाली विकसित की है जिसके माध्यम से मौजूदा एवं भावी उद्यमियों को उनकी क्षमता निर्माण के लिए कौशल विकास पाठ्यक्रम चलाया जा रहा है। इस पाठ्यक्रम के अन्तर्गत उद्यम पारिस्थितिकी प्रणाली के बदलते परिदृश्य तथा भारत में वर्तमान चुनौतियों के अनुरूप प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित एवं संचालित किया जा रहा है। भारत सरकार ने दीनदयाल उपाध्याय कौशल केन्द्र के सफल कार्यान्वयन के लिए दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल्य योजना (डीडीयू–जीकेवाई) की शुरुआत की। जिसके माध्यम से ग्रामीण युवाओं को नौकरियों में नियमित रूप से न्यूनतम मजदूरी के बराबर या उससे ऊपर मासिक मजदूरी प्रदान करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। यह ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार के द्वारा ग्रामीण आजीविका को बढ़ावा देने के लिए की गई पहलों में से

एक है। आजीविका एवं गरीबी कम करने के लिए एक मिशन है जो राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (एनआरएलएम) का एक हिस्सा है। इस योजना से 5.50 लाख से अधिक ऐसे गरीब ग्रामीण युवाओं को जो कुशल होने के लिए तैयार हैं, स्थायी रोजगार प्रदान करने के द्वारा लाभ होगा।

भारतीय और वैश्विक नियोक्ता के लिए ग्रामीण गरीबों को वांछनीय बनाने के लिए स्किलिंग के विवरण हेतु गुणवत्ता और मानक सर्वोपरि हैं। भारत के जनसांख्यिकीय अधिशेष को एक लाभांश में विकसित करने के लिए सामाजिक एकजुटता के साथ ही मजबूत संस्थानों के एक नेटवर्क का होना आवश्यक है।

दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल्य योजना का कवरेज

यह योजना वर्तमान में देश के 33 राज्य/संघ राज्य क्षेत्रों के 610 जिलों में 202 से अधिक पीआइए (प्रोजेक्ट इम्प्लीमेंटेशन एजेन्सी) के साथ साझेदारी में 50 से अधिक क्षेत्रों एवं 250 से अधिक व्यापार क्षेत्रों में संचालित की जा रही है।

इस योजना का महत्त्व गरीबी कम करने से है। इसकी संरचना प्रधानमंत्री के अभियान 'आत्म निर्भर भारत' और 'मेक इन इंडिया'के लिए एक प्रमुख योगदानकर्ता के रूप में की गई है। गरीबी कम करने के लिए परिवारों को नियमित मजदूरी के माध्यम से लाभकारी और स्थायी रोजगार का उपयोग करने के लिए गरीबों को आत्म निर्भर और सक्षम बनाना है।

छात्र स्टार्टअप और नवाचार नीति

छात्र स्टार्टअप और नवप्रवर्तन नीति (एसएसईपी) देश की अपनी तरह की पहली नीति है, जो पूरे राज्य में विद्यार्थियों (आईपीई) के लिए बेहद जरूरी नवाचार और ऊष्मायन पारिस्थितिकी तंत्र सहायता का सृजन करेगी। इस नीति में युवा, शिक्षाविदों, उद्योगपति और सरकारी अधिकारी शामिल हैं। इसके लिए संकाय सदस्यों, अनुसंधान संसाधनों, विश्वविद्यालयों और शैक्षणिक संस्थाओं में आम सुविधाएं उपलब्ध हैं, ताकि नए विचारों को पोषित किया जा सके। शिक्षा विभाग का लक्ष्य छात्रों को केंद्रित कर नवान्वेषण और विकास पूर्व प्रक्रियाओं के निर्माण द्वारा व्यवस्थित तरीके से इन अवसरों का लाभ उठाना है।**सुझाव :**

- वर्तमान परिदृश्य में बुनियादी शिक्षा के नैतिक मूल्य और रोजगार योग्यता को ध्यान में रखते हुए आधुनिक शिक्षा प्रणाली में सुधार किया जाना चाहिए।
- दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रमों में रचनात्मक एवं तकनीकी पक्ष को शामिल करने पर विशेष बल दिया जाना चाहिये, विशेष रूप से कम आय वाले समूहों से आने वाले सामान्य एवं निशक्त छात्रों की उपस्थिति के लिये यह बहुत महत्त्वपूर्ण है।
- अधिकांश शिक्षक और अभिभावक तकनीकी रूप से दक्ष नहीं हैं और उनमें से कई तो ऐसे हैं जिनके पास तकनीक के बारे में बुनियादी ज्ञान का भी अभाव है। ऐसे में यह बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि उन्हें इस विषय में प्रारंभिक प्रशिक्षण उपलब्ध कराया जाए ताकि वे अपने बच्चों को भी शिक्षित कर सकें।
- सरकार को स्कूलों में तकनीकी शिक्षा के लिये बजट में अधिक धन आवंटित करने के बारे में बहुत गंभीरता के साथ सोचना होगा। सरकार द्वारा शिक्षकों का डिजिटलीकरण करने के साथ–साथ बच्चों को ऑनलाइन शिक्षा के ऐसे प्लेटफॉर्म और अध्ययन सामग्री को निशुल्क उपलब्ध कराने पर बल देना चाहिये।

निष्कर्ष :

21वीं सदी के भारत की जरूरतों को पूरा करने के लिये भारतीय शिक्षा प्रणाली का क्रियान्वयन सफल तरीके से होता है तो यह नई प्रणाली भारत को विश्व के अग्रणी देशों के समकक्ष ले आएगी। इस समय विभिन्न शैक्षिक संस्थान शिक्षा रोजगार उन्मुख और स्वरोजगार के लिए उपयोगी बनाने पर जोर दे रही हैं। कोरोना महामारी ने हमें नए और रचनात्मक तरीकों में बदलाव के साथ समायोजन स्थापित करने के विषय में बहुत कुछ सिखाया है। लेकिन इस मार्ग में अपेक्षित एवं कमजोर वर्गों को साथ लेकर चलना भी उतना ही आवश्यक है, जितना कि शिक्षा तकनीक और विज्ञान को जीवन के नए आयामों में समाहित करना। स्नातक शिक्षा में आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस, थ्री–डी मशीन, डेटा–विश्लेषण, जैव प्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों के समावेशन से अत्याधुनिक क्षेत्रों में भी कुशल पेशेवर तैयार होंगे और युवाओं की रोजगार क्षमता में वृद्धि होगी। डिजिटल लर्निंग को छात्र एक लचीले विकल्प के रूप में देखते हैं जो उन्हें अपने समय और गति के अनुसार अध्ययन करने की अनुमति देता है। शिक्षण में तकनीकी के प्रवेश से यह एनीमेशन, गैमिफिकेशन और विस्तृत ऑडियो– विजुअल प्रभावों के मिश्रण के साथ और अधिक प्रभावी एवं तेजी से ग्रहण करने योग्य हो जाता है। इसी तरह शिक्षकों को भी तकनीकी के सहयोग से अपनी अध्यापन योजना को बेहतर बनाने में सुविधा होती है, साथ ही नवाचार एवं नए विचारों के समावेशन से वे छात्रों को और अधिक प्रभावी ढंग से प्रशिक्षित भी कर पाते हैं।

इसी प्रकार सरकार द्वारा शुरू किया गया नवान्वेषण विश्वविद्यालयों और उच्च शिक्षा संस्थान के माध्यम से आत्मनिर्भर भारत अभियान के निर्देशन में सबसे अच्छा उदाहरण है। सरकार की छात्र स्टार्टअप और नवप्रवर्तन नीति का लक्ष्य युवा विद्यार्थियो के नवान्वेष और विचारों का समर्थन करने के लिए एकीकृत, राज्यव्यापी, सार्वभौमिक नवप्रवर्तन तंत्र का सृजन करना और उनके रचनात्मक प्रयासों के इष्टतम उपयोग के लिए अनुकूल माहौल उपलब्ध कराना है, जो प्रत्येक युवा के मस्तिष्क में प्रतिष्ठित संभावित नवान्वेषी कौशल को जगाने के लिए नवान्वेषण योजना बहुत उपयोगी और प्रेरणादायक होगी।

सन्दर्भः

1. Ghosh, C. (2021). a comparative study on msme sector at urban and rural area in india, in the aftermath of covid-19 pandemic (special measure under atmanirbhar bharat abhiyaan
2. Kapoor, B., & Tyagi, C. (2017). atmanirbhar bharat abhiyan: an initiative for startups ventures. contemporary social sciences, 35.
3. Kumar, B., & Devi, A. integral humanism of pandit deen dayal upadhaya and its contemporary relevance in indian politics.
4. Mcgrath, S., & Powell, l. (2016). skills for sustainable development: transforming vocational education and training beyond 2015. international journal of educational development, 50, 12-19

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and SociPublished by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

भारत के विशेष संदर्भ में
हिंद महासागर का ऐतिहासिक एवं भू–राजनीतिक महत्व

डॉ. अम्बिका प्रसाद तिवारी
एसोसिएट प्रोफेसर– इतिहास
बुद्ध स्नातकोत्तर महाविद्यालय
कुशीनगर (उ0प्र0)

सारांशिका
वर्तमान समय में हिन्द महासागर एशिया और यूरोप के बीच व्यापार व उर्जा प्रवाह हेतु एक सेतु के रूप में नया वैश्विक केन्द्र बन गया है। इस महासागर से होकर दुनिया का आधा से अधिक माल वाहक जहाजों का आवागमन और लगभग सत्तर प्रतिशत खनिज तेल का व्यापार इसकी आर्थिक एवं रणनीतिक महत्ता को दर्शाता है। लेकिन इसी के साथ इस महत्वपूर्ण क्षेत्र के वैश्विक भू–राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता का केन्द्र बनने का खतरा भी बढता जा रहा है। विश्व की शक्तियों के बीच अपने संसाधनों लिए बढती प्रतिस्पर्धा से समुद्री सुरक्षा के लिए भी खतरे बढ रहे हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में भारत के सन्दर्भ में हिंद महासागर के ऐतिहासिक एवं भू–राजनीतिक महत्व के बारे में विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

हिंद महासागर एकमात्र ऐसा महासागर है जिसका नाम किसी देश के नाम पर रखा गया है। इसकानाम प्राचीन काल से इस क्षेत्र में भारत की प्रमुख स्थिति के कारण ही पड़ा है।इस महासागर का भारत के लिए बड़ा ही सामरिक महत्व है। इस महासागर पर भारत की शीर्ष स्थिति के कारण भारत के लिए इसकी महत्ता और बढ़ जाती है। अफ्रीका के पूर्वी तट और फारस की खाड़ी के तट से लेकर मलक्का की जलसंधि तक, कोई अन्य देश हिंद महासागर में भारत की प्रमुखता का मुकाबला नहीं करता है। हिंद महासागर व्यापार और ऊर्जा उत्पादों के आयात–निर्यात के लिए एशिया और यूरोप के बीच एक सेतु के रूप में नया वैश्विक केंद्र बन गया है, जिसमें दुनिया के आधेमाल वाहक पोत और लगभग 70प्रतिशत पेट्रोलियम उत्पाद इसकी जलराशिसे होकर गुजरते हैं।किन्तु इस महत्वपूर्ण क्षेत्र पर वैश्विक भू–राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता का केंद्र बनने का एक बहुत हीबडा खतरा मंडरा रहा है। इसके संसाधनों के लिए प्रमुख राजनीतिक शक्तियों के बीच प्रतिस्पर्धा बढ़ती जा रही है। कुछ समय पहले तक इसेअपेक्षाकृत कम महत्व का माना जाता था। हालाँकि, द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, हिंद महासागर, जिसमें 36तटवर्ती और 11आन्तरिक देश हैं, भू–राजनीतिक गतिविधि के सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में से एक बन गया है। इतने सारे समुद्री तटों के बावजूद, इन

क्षेत्रों ने कभी भी एक या एकीकृत रणनीतिक इकाई का गठन नहीं किया जिसका कारण इसका वृहद फैलाव, त्रि–महाद्वीपीय आयाम और जातीय–सांस्कृतिक विविधताएँ हो सकतीं हैं।[1]

वर्तमान समय में हिंद महासागर वैश्विक शक्तियों के आर्थिक और भू–राजनीतिक सन्दर्भ में एक केन्द्र के रूप में उभरा है। इस क्षेत्र का भू–रणनीतिक महत्व और विश्व की महान शक्तियों की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा एवंवैश्विकशक्ति बनने की उनकी केंद्रीय गतिशीलता की राजनीति के कारण इसकी प्रासंगिकताबढ़ी है जिसने बहुध्रुवीय संदर्भों में आर्थिक, राजनीतिक और सामरिक मुद्दों के संघर्ष और प्रतिस्पर्धा का एक जटिल स्वरुप विश्व के सामने रखा है।[2]इसी सन्दर्भ में हार्वर्ड के सेंटर फॉर इंटरनेशनल डेवलपमेंट के एक अध्ययन समेत कई अन्य आकलनों के अनुसार प्रशांत महासागर परिमण्डल जो विश्व के सर्वाधिक महत्वपूर्ण आर्थिक क्षेत्रके रूप में प्रतिष्ठित है, को भी हिंद महासागरीय क्षेत्र तेजी से हो रही आर्थिक एवं सामरिक गतिविधियों के मामले में जल्द ही पीछे छोड़ सकता हैं।

हिंद महासागर को रणनीतिक भू–राजनीतिक विमर्श में एक नया आयाम मिला है जो आने वाले दशकों में वैश्विक सुरक्षा के सन्दर्भ में महती भूमिका निभाएगा। पश्चिम में इस्लामिक क्षेत्र और अफ्रीका से पूर्व में ऑस्ट्रेलिया तक हिंद महासागरीय क्षेत्र(IOR) का विशाल विस्तार और इसके आस–पास की जलराशि को इक्कीसवीं सदी में संघर्ष और प्रतिस्पर्धा का रंगमंच माना जा रहा है। हिंद महासागरीय क्षेत्रकी भू–राजनीति का एशिया में तेजी से हो रहे परिवर्तनों, वैश्विक अर्थव्यवस्था और प्रमुख वैश्विक संबंधों पर व्यापक प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी है।

वैश्विक आर्थिक संतुलन को पूर्व की तरफझुकता देख, अमेरिका ने अपना ध्यान अटलांटिक से हटा कर एशिया के विकास कार्यों पर केंद्रित कर दिया है। शीत युद्ध के पश्चातवैश्विक अर्थव्यवस्था की कल्पित स्थिरता एवं वर्तमान में चल रहे वैश्विक शक्ति वितरण के अभूतपूर्व बदलाव ने एशिया और साथ ही साथ आई0ओ0आर0 को तेजी से राहत प्रदान की है। यद्यपि चीन और भारत के उत्थान के बीच भू–राजनीतिक गतिविधियों को एक नया आयाम मिला है जिससे यह क्षेत्रकई महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों केआर्थिक एवं शक्ति–संतुलन का रणनीतिक केंद्र बनता जा रहा है।

चीन और अन्य कुछ विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं में विकास की गति आशातीत नहीं दिखाई पड़रही है। इधर भारत और पूर्वी अफ्रीका के अगले कुछ दशकों में वैश्विक विकास के नए नायक के रूप में उभर कर आने की सम्भावना को देखते हुए हिंद महासागर क्षेत्र एक वैश्विक समुद्री और आर्थिक विकास का केंद्र बन जाएगा।[3] इस प्रकार महान शक्तियों द्वारा इस तरह की रणनीतिक लामबंदी निस्संदेह आने वाले वर्षों में बढ़ती हुई दिखाई देगी।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण

हिंद महासागर का भू–राजनीतिक अतीत स्थानीय संघर्षों, विदेशी विजयों और वर्चस्व की एक सतत घटना का केन्द्र बिन्दु रहा है । स्थानीय शक्तियों के बीच प्रतिद्वंद्विता और आपसी सामंजस्य की कमी ने इस क्षेत्र के भू मार्ग और समुद्री मार्ग से बाहरी आक्रांताओं के प्रवेश की संभावनाओं में खासा योगदान दिया है।हिंद महासागर क्षेत्र में स्थानीय शक्तियों द्वारा साम्राज्य निर्माण एवं पंद्रहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी में अन्य राष्ट्रों के क्षेत्रीय औपनिवेशिक विस्तार के उद्देश्यसमानथे। यूरोपीय उपनिवेशवादियों की युद्ध की बेहतर तकनीकों, युद्धपोतों के संचार, विज्ञान और उद्योग शक्ति के योगदान ने

पूर्वी देशों की कम विकसित और औसत शक्तियों के साथ उनके संघर्ष के परिणाम को प्रभावित किया।[4]

इस उभरती हुई स्थिति की जड़ मैकिंडर के हार्टलैंड थ्योरी में देखी जा सकती है, जिसने इस क्षेत्र को सुपर पावर देशों के बीच संघर्ष के क्षेत्र केरूप में ला दिया। हिंद महासागर जिसे मैकिंडर द्वारा आंतरिक अर्धचंद्राकार और स्पाईकमैन द्वारा ''रिम–लैंड'' के रूप में संदर्भित किया गया था, विश्व मानचित्र पर एक रणनीतिक स्थान रखता है।यह माना जाता था कि इस क्षेत्र पर नियंत्रणरखने वाले को विश्व राजनीति में प्रमुख स्थान प्राप्त होगा।

यूनाइटेड किंगडम की मदद से दुनिया के समुद्री गलियारों को नियंत्रित करने की संयुक्त राज्य अमेरिका की इच्छा ने हिंद महासागर में सुपर पावर प्रतिद्वंद्विता को जन्म दिया। एफ्रो–एशियाई देशों पर नियंत्रण हासिल करने के अपने साम्राज्यवादी उत्साह को संतुष्ट करने के लिए, अमेरिका ने तेल आपूर्ति का स्वांग करते हुए वर्ष 1973 में डिएगो गार्सिया को ''परमाणु बेस'' में परिवर्तित कर दिया, लेकिन वास्तव में इसके माध्यम से कोई भी तेल वाहक जहाज अमेरिका और ब्रिटेन को नहीं जाता है।

वर्षों पहले पूर्व सोवियत संघ भी अपने आर्थिक हित के लिए इस महासागर में बहुत सक्रिय था, लेकिन चूँकि अब पूर्व सोवियत संघ कई स्वतंत्र देशों में विभाजित हो गया है और कम्युनिस्ट दुनिया में जबरदस्त बदलाव आया है तो अब संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन को हिंद महासागर में अपने ठिकानों को विकसित करने के लिए पूर्व सोवियत संघ से डर का दिखावा करने की कोई आवश्यकता नहीं रह गयी है, जो वास्तव में इस क्षेत्र में व्यापार को नियंत्रित करने और एफ्रो–एशियाई देशों के समृद्ध संसाधनों के दोहन के लिए है। हिंद महासागर में संयुक्त राज्य अमेरिका की उपस्थिति इन राष्ट्रों की संप्रभुता के लिए एक सीधा खतरा है जो अमेरिका की नव–उपनिवेशवादी रणनीति का एक हिस्सा है। वर्तमान समय में चीन इस क्षेत्र में सबसे सक्रिय बाहरी ताकत बनकर उभरा है और मौजूदा शक्ति संतुलन को चुनौती दे रहा है। यह उस बड़ी समुद्री भूमिका को ध्यान में रखते हुए है जिसकी वह खुले तौर पर तलाश कर रहा है। चीन द्वारा जारी एक रक्षा पत्र में कहा गया है कि चीनी नौ सेना ''अपतटीय जल रक्षा'' से ''खुले समुद्र की सुरक्षा'' पर ध्यान केंद्रित करेगी। हिंद महासागर में चीन की बढ़ती दिलचस्पी का एक उदाहरण जिबूती में एक नौसैनिक अड्डा स्थापित करने का उसका कदम है, जो संकरे बाब–अल–मंदेब की जलसंधि के ऊपर है।समुद्री मार्ग पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए दृढ़ संकल्पित चीन स्वंय को वैश्विक शक्ति के रूप में स्थापितकरने और अमेरिका के नेतृत्व वाली व्यवस्था को चुनौती देने के लिए हिंद महासागर में अपनी रणनीतिक भूमिका को आगे बढ़ाने में लगा हुआ है ।

हिंद महासागर में महाशक्तियों की नौसैनिक उपस्थिति को आमतौर पर तीसरी दुनिया के विकाससम्भावी क्षेत्रों में उनकी राजनयिक और सैन्य प्रतिद्वंद्विता के संदर्भ में समझा जा सकता है । शक्ति निर्वात और पारस्परिक वृद्धि की धारणाओं ने हिंद महासागर क्षेत्र में महाशक्ति की नीतियों की पारंपरिक अवधारणा को काफी हद तक प्रभावित किया है।[5]

सुरक्षा के प्रति चुनौतियां

हिंद महासागर परिक्षेत्र सुरक्षा के मामले में अनेक चुनौतियों का सामना कर रहा है। मध्य पूर्व एशिया में तेल संपदा की खोज के साथ हिंद महासागर के सामरिक महत्व ने विश्व की महान शक्तियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। इसलिए हिंद महासागर का पश्चिमी देशों के लिए विशेष महत्व है। उनके के लिए ये आवश्यक है कि मध्य पूर्व एशिया से आने वाला तेल बिना किसी रुकावट के उन तक पहुंचे। इस

महासागर को ''पश्चिम की तेल रेखा'' कहा जाता है क्योंकि उनकी अधिकांश तेल आवश्यकता हिंद महासागर के तटवर्ती देशों पर निर्भर करती है।

इसके साथ ही, इस क्षेत्र में यमन और सोमालिया से लेकर पाकिस्तान और मालदीव तक दुनिया में बारूद की ढेर पर बैठे असफल राष्ट्रों का सबसे बड़ा जमावड़ा है। इसके अलावा यह क्षेत्र अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद से प्रभावित दुनिया की सबसे ज्यादा घटनाओं से टूट चुका है। इसके समुद्री संसाधनों और समुद्री मार्गों के बढ़ते महत्व को देखते हुए हिंद महासागर में सुरक्षा एक गंभीर चिंता का विषय है।

हिंद महासागर की भू–राजनीति में अन्य कारकों की भूमिका

हिंद महासागर पश्चिम और पूर्व के बीच का एक वृहद समुद्री मार्ग है। सिंगापुर, इंडोनेशिया और मलेशिया के बीच स्थित मलक्का जलसंधि, ईरान और ओमान के बीच होर्मुज जलसंधि, अफ्रीका का हॉर्न, जिबूती, इरिट्रिया और यमन के बीच स्वेज नहर और मोजाम्बिक चैनल के माध्यम से केप ऑफ गुड होप इसके महत्वपूर्ण समुद्री द्वार हैं। हिंद महासागर के इन विभिन्न द्वारों की सुरक्षा एक महत्वपूर्ण मुद्दा है और बाहरी शक्तियों ने प्रमुख तटीय राष्ट्रों के साथ रणनीतिक सहयोग करके इन बिंदुओं को सुरक्षित करने की मांग की है।

गहरे समुद्र में खनन भी एक प्रमुख नए रणनीतिक मुद्दे के रूप में उभरा है और ऐसे खनिजों पर प्रतिस्पर्धा तेज हो रही है। यहां तक कि चीन जैसी बाहरी शक्ति ने भी समुद्र तल के खनिजों का पता लगाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय समुद्र तल प्राधिकरण से दक्षिण–पश्चिमी हिंद महासागर में एक ब्लॉक हासिल किया है। कई अप्रयुक्त भूमि इस मार्ग पर स्थित हैं। हाल ही में हुई अंतर्राष्ट्रीय समुद्र तल संधि के बाद समुद्री संसाधनों केखोज की संभावना प्रबल हो गई है।

हिंद महासागर के मूल राज्य और देश अपनी अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक विचारधारा और व्यवहार में भिन्न हैं।शक्ति को संतुलित करने के लिए, देशों का समूह बनाना एक सामान्य घटना है जिसके कारण हिंद महासागर का सैन्यीकरण हुआ है।

तेजी से बदलती इस नई दुनिया में नए राजनीतिक हित तेजी से उभर रहे हैं। बदलते परिदृश्य ने पश्चिमी देशों की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भागीदारी को आकर्षित किया है जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण खाड़ी क्षेत्र के देशों में अमेरिकी उपस्थिति के कारण होने वाली अस्थिरता है। इस क्षेत्र में अमेरिका और उसके सहयोगियों की उपस्थिति का एक अन्य कारण भारतीय उपमहाद्वीप के देशों के बीच अस्थिर राजनीतिक परिस्थितियों और बिगड़ते संबंध भी रहे हैं।

गुट निरपेक्ष देशअपने क्षेत्रों में विदेशी ठिकानों की स्थापना की अनुमति न देने पर सहमत हुए हैं। 1971 के संयुक्त राष्ट्र के प्रस्ताव में भारतीय महासागर को ''शांति का क्षेत्र'' घोषित करने के बावजूद, यह महासागर ''संघर्ष का क्षेत्र'' बन गया है तथा अब तक इसे शांति क्षेत्र बनाने के संयुक्त राष्ट्र के प्रयास आंशिक रूप से ही सफल रहे हैं।

भारत की भूमिका

हिंद महासागर में भारत की महत्वपूर्ण भूमिका को चिह्नित करते हुए, प्रधान मंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने कहा, ''हमारे लिए, हिंदी महासागर पड़ोसी राष्ट्रों के साथ एक रणनीतिक सेतु के रूप में भी कार्य करता है।मॉरीशस में मैंने हिंद महासागर के लिए अपना विजन बताया था। हिंद महासागर क्षेत्र मेरी प्रमुख नीतिगत प्राथमिकताओं में से एक है। हमारा दृष्टिकोण हमारे विजन 'सागर'[6]में स्पष्ट है, जिसका अर्थ है महासागर और क्षेत्र में सभी के लिए सुरक्षा और विकास के लिए खड़े रहना।''[7]

भारत का लगभग 80 प्रतिशत ऊर्जा आयात हिंद महासागर और इसके विभिन्न चैनलों से होकर गुजरता है। इसकी 7500 किमी की तटरेखा अपनी अंतरराष्ट्रीय सीमाओं के तीन तरफ महासागरों और समुद्रों से घिरा हुआ है। जहां तक हिंद महासागर का संबंध है, इसके विभिन्न चैनल दुनिया के दो–तिहाई तेल यातायात, दुनिया के एक तिहाई माल वाहक पोत यातायात एवं अन्य परिवहन हेतुलगभग आधेके लिए जिम्मेदार हैं।[8]
ऐसे कई कारक हैं जो भारत को एक व्यापक समुद्री नीति की ओर ले जा रहे हैं। हिंद महासागर पर चीन की विशेष नजर (अपनी सिल्क रोड परियोजना और तटीय देशों के साथ बढ़ते सहयोग के माध्यम से) के साथ–साथ ब्लू वाटर नेवी का गठन शायद नई दिल्ली पर एक सीधा प्रहार था जिसने भारत को इसका 'स्ट्रैटेजिक बैकयार्ड' माने जाने वाले हिन्द महासागर में अपनी समुद्री क्षमता को मजबूत करने के लिए उकसाया।[9]इस बदली हुई धारणा को 2008 में मुंबई पर हुए हमले केसंदर्भ में समझा जाना चाहिए, जिसके अपराधी समुद्र के रास्ते आए और इस बात का खुलासा हुआ कि भारत को अभी भी अपने समुद्र तटों और राष्ट्रीय हितों की रक्षा के मामले में कुछ चुनौतियों को पार करना है।
 भारतीय नौसेना द्वारा 2015के एक दस्तावेजमेंभारतीय समुद्री सुरक्षा रणनीति समुद्री सुरक्षा के लिए भारत की नई नीति को व्यक्त करता है। यह दस्तावेज स्पष्ट करता है कि भारतीय नौसेना के हित क्षेत्र अब लाल सागर, ओमान की खाड़ी, अदन की खाड़ी, आई0ओ0आर0 के द्वीप राष्ट्र, दक्षिण पश्चिम हिंद महासागर और अफ्रीका के पूर्वी तट के कई अन्य देशों और क्षेत्रों में हैं।भारत इसके लिए स्वयं को सक्षम बनाने के लिए, रक्षा क्षमताओं के स्वदेशीकरण, अपने नौ सैनिक हार्डवेयर के स्रोतों में विविधता लाने, आई0ओ0आर0 भागीदार देशों के साथ संयुक्त अभ्यासों की संख्या बढ़ाने,''ब्लू इकोनॉमी''और सहकारी तरीके से समुद्री संसाधनों के सतत उपयोग पर विचार कर रहा है।[10]
यद्यपि भारत को उन जोखिमों के बारे में नहीं भूलना चाहिए क्योंकि वह हिंद–प्रशांत क्षेत्र में एक मजबूत खिलाड़ी बनने की इच्छा रखता है। निश्चित रूप से चीन द्वारा पेश की गई चुनौती इनमें से एक है। हिंद महासागर में संचार के समुद्री मार्गों को नियंत्रित करने की चीन की महत्वाकांक्षा और मित्र द्वीप देशों की एक श्रृंखला का निर्माण भारत और चीन के बीच मौजूदा द्विपक्षीय तनाव को ही बढ़ाता है। इसी के साथ भारत के लिए एक और चुनौती पाकिस्तान से आती है। पाकिस्तान भारत को लगातार खतरा मानता रहा है, जिसका निवारण सुनिश्चित करना होगा। इसके साथ ही ओसामा प्रकरण के बाद अमेरिका के साथ पाकिस्तान के रिश्ते भी तनावपूर्ण हो गए हैं। इसलिए आई0ओ0आर0[11] में भारत–अमेरिका साझेदारी को संतुलित करने के लिए पाकिस्तान की चीन के साथ निकटता बढ़ना सामान्य बात है। बहुपक्षीय तंत्र (उदाहरण के तौर पर SAARC, BIMSTECआदि) बनाने में भारत का पूर्व का अपेक्षाकृत औसत प्रदर्शन एक और चिंता का विषय है जिसके कारण भारत को ज्यादातर द्विपक्षीय सम्बन्धों के पसंदीदा देश के रूप में देखा जाता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हिंद महासागर में शांति एक दिवा स्वप्न–सी प्रतीत होती है और इसे केवल तटीय राष्ट्रों के सहयोग से ही बनाए रखा जा सकता है क्योंकि इस महासागर के आसपास के लगभग सभी देश विकासशील अवस्था में हैं। ऐसे में ये देश टकराव और

युद्ध वहन करने की स्थिति में नहीं हैं और उनका प्रयास है कि किसी भी कीमत पर हिंद महासागर में शांति बनी रहे ।

इस वास्तविकता को देखते हुए अमेरिका,जापान, भारत, ऑस्ट्रेलिया और अन्य महत्वपूर्ण देशों को अपनी हिंद महासागर की नीतियों को फिर से परखना चाहिए और शांति सुनिश्चित करने, समुद्री मार्गों की सुरक्षा और सम्पूर्ण विश्व के जन सामान्य तक पहुंच की गारंटी पर अधिक ध्यान देना चाहिए।

सन्दर्भ

1. Chari, P.R., "The Indian Ocean: Strategic Issues", International Studies (India), 18 (April- June), 1979, p. 164
2. Colin S. Gray, TheGeopolitics of the Nuclear Era: Heartland, Rimlands and the Technological Revolution, New York: Crane, Russak and Co., 1977.
3. Chelany, Brahma, Water: Asia's New Battleground, June 2015
4. Husen, Kent Bob, "Geopolitics of Indian Ocean: India, Bangladesh and the Great Powers", ResearchGate Publication. htttp://www.researchgate.net
5. Bhasin, V.K., Superpower Rivalry in the Indian Ocean, New Delhi: S. Chand and Co., 1981; K.R. Singh, Politics of the Indian Ocean, New Delhi Thomson Press, 1974; S.N. Kohli, Sea power and the Indian Ocean, New Delhi:Tata McGraw Hill, 1978.
6. SAGAR- Security and Growth for All in the Region
7. Speech of Prime Minister Modi at the International Fleet Review 2016 at Vishakhapatnam, India
8. Eleanor Albert, "Competition in the Indian Ocean", CFR Backgrounder, November 2015

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

NAAGS KANPUR

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

महिला सशक्तिकरण : संविधिक सुरक्षा चक्र

डॉ. दीपक कुमार श्रीवास्तव
सहायक आचार्य
स्नातकोत्तर, विधि विभाग
महाराज बलवन्त सिंह, पी0जी0 कॉलेज
गंगापुर, राजातालाब, वाराणसी (उ0प्र0) भारत

किसी भी देश के विकास सम्बन्धी सूचकांक को निर्धारित करने के लिए उद्योग, व्यापार, खाद्यान्न उपलब्धता, शिक्षा इत्यादि के स्तर के साथ–साथ उस देश की महिलाओं की स्थिति का भी मूल्यांकन किया जाता है। नारी की सुदृढ़ व सम्मानजनक स्थिति एक उन्नत, समृद्ध व मजबूत समाज का द्योतक है। प्राचीन धर्म गन्थो मे **"यंत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तंत्र देवता"** सूत्र वाक्य द्वारा इसे स्पष्ट करने का प्रयास किया। गया है। हमारे देश भारत मे जहाँ एक ओर लक्ष्मी, सीता, दुर्गा पार्वती के रूप मे नारी का देवीतुल्य बताया जाता है वही उसे अबला बताकर परम्परा एव रूढ़ियो की बेड़ी मे जकड़ा जाता रहा है।[1]।

प्राचीन काल भारतीय महिलाओ का स्वर्णिम काल कहा जा सकता है। पुरूष प्रधान व्यवस्था के। बावजूद महिलाओं का समाज में सम्मान था, प्रतिष्ठा थी, उन्हे आगे बढ़ने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। अपने अध्यात्म। ज्ञान, प्रखर पाण्डित्य और अगाध प्रतिभा से वे समाज को यह बता सके कि वे पुरूषों से किसी भी प्रकार से कम नही है। परन्तु मध्यकाल मे महिलाओ की स्थिति उतनी सुखद नही रहीं। उनकी प्रगति अवरूद्ध रही। ब्रिटिश काल मे यद्यपि महिलाओ में सामाजिक चेतना आयी, लेकिन अधिक प्रगति नही हुई, क्योकि। ब्रिटिश सरकार ने इस ओर ध्यान नही दिया।[2]

1. स्वतंत्रता के पूर्व महिलाओं की स्थिति

- **प्राचीन भारत में महिलाओं की स्थिति**

प्राचीन भारत में महिलाओं को किसी भी दशा में पति को तलाक देने का अधिकार न था। मनु के अनुसार तो पति यदि पत्नी को बेच दे या छोड़ दे तो भी पत्नी को उसको तलाक देने का अधिकार नही था।[3] परन्तु मनु ने स्वंय। लिखा है कि यदि पति नपुसंक हो, पागल हो, छूत का रोगी हो, या ऐसे रोग से पीड़ित हो जिसकी चिकित्सा न हो सके। तो यदि पत्नी उसका परित्याग कर दे तो वह दोषी नही हैं। मनु के अनुसार कन्यादान एक बार ही होता है।

---

[1] *परीक्षा मंथन निबंध संगह*–4 मंथन प्रकाशन इलाहाबाद जुलाई 2009 पृ0 सं0 80
[2] वही, पृ0 सं0 240
[3] डॉ0 चमनलाल गौतम–मुनस्मृति टीका, 1992, 9/46।

धर्मसूत्र के अनुसार :-(600 ई0 पू0 से 300 ई0 पू0) यदि किसी ब्राह्मणी महिला का पति विदेश गया हो तो उसे पाँच वर्ष तक पति के लौटने की प्रतीक्षा करनी चाहिए, उसके बाद वह दूसरे पुरूष से विवाह कर। सकती है।[4] जिस प्रकार मनु स्त्रियो को अधिपत्य की वस्तु मानना चाहते थे तथा जिस प्रकार युधिष्ठिर द्वारा धूत क्रीड़ा में द्रौपदी को दांव पर लगाया गया था, उससे तो यही सिद्ध होता है कि सभ्यता के प्रारम्भिक युगो मे स्त्रियो को गुलाम तथा मूल्यवान प्रतिभुति ही माना जाता था।

- **वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति**

वैदिक काल मे पति को विवाह के समय प्रतिज्ञा करनी पडती थी कि वह पत्नी के आर्थिक अधिकारो की अवहेलना नही करेगी। तथा दोनो ही परिवार की सम्पत्ति के सम्पूर्ण स्वामी होगे। पत्नी के रूप मे स्त्री को अपने पति की सम्पत्ति मे कोई प्रत्यक्ष भाग नही होता था। परन्तु परित्यक्ता को अपने पति के धन का एक तिहाई भाग प्राप्त करने का अधिकार था। यदि पत्नी गरीब होती थी तो पति उसके भरण-पोषण के लिए गुजारा भत्ता देने के लिए बाध्य था।[5] **विज्ञानेश्वर** के अनुसार यदि कोई पति अपनी गर्भवती पत्नी को छोड़ दे या जानबुझकर उसकी सम्पत्ति का दुरूप्रयोग करे या उसे वापिस न दे तो पत्नी न्यायालय मे जाकर अपने दुःखो को दूर करा सकती है।[6] प्रभावती मुखर्जी ने पौराणिक काल मे महिलाआ को निम्न वर्णित कारणो को बताते हुए अल्टेकर (1930) विष्टरनिज (1920) मित्तर और चौधरी (1956) को उद्धृत किया है। ये कारण है।

- सम्पूर्ण समाज पर ब्राह्मणो द्वारा थोपे गए संयमों के कारण।
- जाति प्रथा द्वारा लगाए प्रतिबन्धो के कारण।
- संयुक्त परिवार के कारण।
- महिलाओं के लिए शिक्षा के कम सुविधाओं के कारण।
- आर्य परिवार में गैर-आर्य पत्नी का प्रवेश तथा,
- विदेशी आक्रमण के कारण[7]।
- **बौद्धकाल में महिलाआं कीस्थिति**

बौद्ध काल मे महिलाओ की स्थिति मे कुछ सुधार हुआ। धार्मिक क्षेत्र मेमहिलाओं को स्पष्ट रूप से उत्कृष्ट स्थान प्राप्त हुआ। उस समय उनका अपना संघ बना जिसे भिक्षुणी संघ कहा गया इस संघ के वही नियम व निर्देश थे जो भिक्षको के, थे उनकी आर्थिक व राजनैतिक स्थिति मे कोई परिवर्तन नही हुआ।

- **इस्लाम में महिलाओं की स्थिति**

इस्लाम के अनुसार स्त्री का भी सम्पत्ति पर पूरा हक है। कुरान में महिलाओ की सम्पत्ति के हिस्से को निश्चित किया गया है। उसे यह भी अधिकार होता है कि वह अपनी सम्पत्ति को इनाम (हिब्बा) के तौर पर बांट दे अथवा सम्पत्ति का 1/3 हिस्सा अपनी वसीयत मे दे दे। विवाह को मंजूर, नामंजूर करने का अथवा तलाक लेने का अधिकार है। पति को हर दशा मे पत्नी का भरण-पोषण करना पड़ता है। तलाक लेने के बाद भी पत्नी को इद्दत के लिए खर्च पति द्वारा दिया जाता हैं।[8] कुछ बुरी प्रथाओ के कारण उनकी स्थिति दयनीय हुई है।

- **मध्यकाल में महिलाओं की स्थिति :-**

---

4 वशिष्ठ, ***धर्म सूत्र*** 17, 67

5 राम आहूजा भारतीय सामाजिक व्यवस्था, प0 सं0 83

6 विज्ञानेष्वर, दायभाग (टीका याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/32)

7 प्रभाती मुखर्जी, मन इन इण्डिया जुलाई-सितम्बर 1964, 267

8 निलोफर समीद अख्ता, इस्लाम में औरतों के कानूनी अधिकार, अतरंग संगिनी, सितम्बर 2000, प0 स0 10 वही, प0 सं0 85

मध्यकाल में महिलाओ की दशा अत्यन्त निम्न हो गयी थी। पर्दा प्रथा इस सीमा तक बढ गई कि महिलाओ के लिए कठोर एकान्त एक नियम बन गया। तथापि पन्द्रहवीं शताब्दी में स्थिति में कुछ परिवर्तन आया। इसी अवधि में **रामानुजाचार्य** ने प्रथम भक्ति आन्दोलन का आयोजन नवीन प्रवृत्तियो का सूत्रपात किया। **चैतन्य, नानक, मीरा, कबीरदास, तुलसी व तुकाराम** जैसे सन्तो ने स्त्रियो के लिए धार्मिक पूजा/अर्चना का सबल पक्ष प्रस्तुत किया। किन्तु इस आन्दोलन ने आर्थिक संरचना मे कोई परिवर्तन नही किया। अतः महिलाओं की स्थिति निम्न बनी रही।

- **ब्रिटिश काल में महिलाओं की स्थिति :–**

ब्रिटिश काल मे महिलाओ की स्थिति मे परिवर्तन हुआ। महिलाओ की स्थिति मे परिवर्तन लाने के लिए छः महत्वपूर्ण पक्षो को रखा है –

1. औद्योगीकरण
2. शिक्षा का विस्तार
3. जाति प्रथा का कमजोर होना
4. कुछ प्रबुद्ध नेताओं द्वारा चलाए गए सामाजिक आन्दोलन
5. महिलाओ के संगठनोका विकास
6. सामाजिक विधानो को पारित किया जाना।[9]

इस काल मे महिलाओ के विरूद्ध अपराधो एव हिंसा के निवारण हेतु निम्न वर्णित प्रावधान किये गये जिनका उल्लेख किया जाना समीचीन होगा –

(क) प्राचीन काल से वेश्यावृत्ति भारतीय समाज में चली आ रही थी। वर्ष 1668 में कम्पनी ने इस सम्बन्ध मे विनिमय बनाकर उन्हे कड़ाई से लागू करने के लिए कदम उठाया।[10] वर्ष 1860 में भारतीय दण्ड संहिता को अधिनियमित किया गया जिसमें यौन– अपराध तथा नाबालिक लड़कियों को उनकी इच्छा के लिए रोका गया तथा उनके अनैतिक व्यापार को प्रतिबन्धित एवं दण्डनीय बनाया गया।[11]

(ख) हिन्दूओ के उच्च जातियों मे सती पथा का प्रचलन प्राचीन काल से चला आ रहा था इसमें पति के मृत्यु के पश्चात् उसकी पत्नी को भी उसके साथ समाप्त कर दिया जाता था। मध्यकाल में स्थिति और बिगड़ गयी। ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत केवल बंगाल प्रेसीडेंसी में ही वर्ष 1815 से वर्ष 1829 लार्ड बैंटिक के कार्यकाल मे बने सती निरोधक कानून द्वारा इन क्रूर प्रथा पर रोक लगा दी गई। इसमें शामिल सभी व्यक्ति अपराधी होंगे।[12]

(ग) बलात्संग जैसी समस्या निवारण हेतु वर्ष 1860[13] मे अधिनियम बना।

(घ) विधवा की स्थिति प्राचीनकाल से ही अत्यन्त दयनीय थी। **ईश्वरचन्द विद्यासागर** के शक्तिशाली आन्दोलन के परिणाम स्वरूप विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856 पास हुआ।[14]

(ङ) महिलाओ की स्थिति सुधारने के लिए हिन्दू उत्तराधिकारी अधिनियम 1929 हिन्दू स्त्रियो का सम्पत्ति अधिकार अधिनियम 1939, कारखाना अधिनियम, 1948, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 तथा प्रसुति लाभ अधिनियम, 1984 आदि ब्रिटिश शासक द्वारा पारित किया गया जो महिलाओं की दशा मे कोई विशेष सुधार न कर सका।[15]

उपरोक्त विश्लेषण से यह संकेत मिलता है कि महिलाओ का निरन्तर निकृष्ट, आश्रित तथा शोषण के चंगुल से बचाने के प्रयत्नों में परिवर्तन आ रहा है, यह परिवर्तन मन्द तथा

---

[9] पूवैक्त, (8) पृ0 सं0 85

[10] एन0 एन0 ओझा (सम्पादक) भारत की सामाजिक समस्याए कानिकल प0 सं0 182

[11] भारतीय दण्ड सहिता की धारा 366–क स 373 तक

[12] विपिन चन्द, आधुनिक भारत, एन0 सी0 ई0 आर0 टी0 प0 79

[13] पूवौक्त (11) धारा 366–क स 373 तक

[14] पूवौक्त (12) प0 79

[15] पूवौक्त (8), प0 सं0 88

योजनाबद्ध नही हुआ है। भारत मे वर्ष 1940 तक महिलाओं की निम्न दशा के प्रमुख कारण अशिक्षा, आर्थिक निर्भरता, धार्मिक निषेध, जाति बन्धन, स्त्री नेतृत्व का अभाव तथा पुरूषों का उनके प्रति अनुचित दृष्टिकोण आदि थे। हमारी संस्कृति मे महिलाओं की एकान्तता तथा उनके स्तर के लिए पाँच कारको को उत्तरदायी ठहराया है। हिन्दू, जाति व्यवस्था, संयुक्त परिवार इस्लामी शासन तथा ब्रिटिश उपनिवेशवाद।[16]

2. स्वतंत्रता के पश्चात् महिलाओं की स्थिति :–

स्वतन्त्रता के बाद सरकारी महिला संगठनो, महिला आयोगो आदि के प्रयासों से महिलाओं के लिए विकास के द्वार खुले। उनमें शिक्षा का प्रसार बढ़ा जिसमें उनमें जागृति आयी, आत्मविश्वास उत्पन्न हुआ। परिणामस्वरूप वे प्रगति पथ पर आगे बढ़ी। आज के राजनीति, समाज सुधार, शिक्षा, पत्रकारिता साहित्य, विज्ञान, उद्योग, व्यावसायिक प्रबन्धक, शासन–प्रशासन, डॉक्टरी, इंजीनियरिंग, पुलिस, सेना, का, संगीत, अध्यात्म, खेलकूद आदि क्षेत्रों में पुरूषों के साथ अपनी उपस्थिति बना रही है, उनके कंधे से कंधा मिलाकर कार्य कर रही है। भारत में महिलाओं की स्थिति में वर्ष 1950 के बाद से पर्याप्त सुधार हुए है। संरचनात्मक तथा सांस्कृतिक दोनों ही प्रकार के परिवर्तनों ने स्त्रियो को न केवल शिक्षा, रोजगार तथा राजनैतिक भागीदारी में सम्मान अवसर। प्रदान किए है बल्कि महिलाओं के शोषण को भी कम किया है तथा उन्हे अपने संगठन बनाने के लिए अवसर प्रदान किए है, जिनसे वे अपनी समस्याओ मे अधिक रूचि ले सकें।

महिलाओं की स्थिति सुधारने हेतु कई विधिक प्रयास किये गये जो निम्न है :–

1. सभी प्रकार के विभेद से मुक्त होकर उन्हे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि अधिकार की प्राप्ति।[17]
2. वेश्यावृत्ति निवारण एवं उनका अनैतिक व्यापार निवारण हेतु अधिनियम बनाया गया।[18]
3. विवाह, दत्तक, भरण–पोषण, उत्तराधिकार आदि के लिए विधान बनाकर उनकी स्थिति मे सुधार किया गया।[19]
4. दहेज प्रथा का प्रतिबंध किया गया।[20]
5. आपराधिक विधि के अन्तर्गत भरण–पोषण की व्यवस्था।[21]
6. उनको प्रसूति प्रसूविधा प्रदान करने हेतु विधायन।[22]
7. सती जैसी क्रूर प्रथा का निवारण कर दिया गया ह।[23]
8. उनकी स्थिति सुधारने हेतु महिला आयोग का गठन किया गया है।[24]
9. लिंग के चयन पर रोक लगाया गया ह।[25]
10. .घरेलू हिंसा का निवारण कर दिया गया ह[26] आदि।

---

[16] पूर्वोक्त, (5) प0 सं0 89

[17] भारतीय संविधान

[18] अनैतिक व्यपापार (निवारण) अधिनियम, 1956

[19] हिन्द विवाह अधिनियम, 1953 विशेष विवाह अधिनियम, 1954 हिन्दू दत्तक एवं भरण पोषण अधिनियम, 1956 हिन्दूउत्तराधिकार अधिनियम, 1956

[20] दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961

[21] दण्ड पक्रिया संहिता, 1973 की धारा 125 स 128 तक

[22] पसूति पसविधा अधिनियम, 1961

[23] सती (निवारण) अधिनियम, 1987

[24] राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990

[25] गर्भाधान पूर्व और प्रसव पूर्व निदान तकनीक लिंग चयन रोकथाम अधिनियम, 1994

भारतीय संविधान में महिलाओं की स्थिति :–

1. उद्देशिका एवं महिलाएँ :–

भारतीय संविधान का मुख्य उद्देश्य भारतीय नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय विचार, मत, विश्वास तथा धर्म की स्वतन्त्रता पद एवं अवसर की समानता, व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता एवं अखडता के लिए बन्धुत्व के सिद्धान्त का प्रावधान करता है। संविधान का उद्देश्य तभी पूरा होता है जब महिलायें इन अधिकारों का प्रयोग करे।

2. मूल अधिकार एवं महिलाएँ

कौर सिंह बनाम जग्गर सिंह संविधान का अनुच्छेद 14 प्रथमतः महिलाओ को समान स्तर प्रदान करता है और द्वितीयतः इस सिद्धान्त के उल्लंघन से रक्षा करता है। यह अनुच्छेद 'महिलाओं' को एक वर्ग के रूप मे मान्यता देता है, न्यायालय ने महिला वर्ग को पुरूष वर्ग से भिन्न घोषित किया है तथा इसके लिए हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम को पारित करके विधायिका ने महिलाओ को केवल नियोग्यता दूर की थी।[27] महिलाओ के विरूद्ध हिंसा में कमी हो, इस उद्‌देश्य हेतु वर्ष 2005 में भारतीय उत्तराधिकार[28] में संशोधन कर पुत्री को पुत्र के समान अधिकार प्रदान किया है। इसी प्रकार **नरगिस मिर्जा' के मामले** मे महिलाओं के विरूद्ध विभेद के आधार पर इण्डियन एयर लाइन्स (फ्लाइंग क्रयू) सर्विस रेगुलेशन्स को विनियम 46 को अनुच्छेद 14 के उल्लंघन के आधार पर असंवैधानिक माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित किया गया है।

पुरूषों एवं महिलाओं के बीच समता रखने के लिए भारतीय संविधान विशेष रूप से लिंग के आधार पर किसी प्रकार का विभेद करने से राज्य को प्रतिषिद्ध करता है। महिलाओं के विरूद्ध हिंसा समाप्त हो इसके लिए संविधान राज्य को महिलाओं के पक्ष में आवश्यकतानुसार वरीयता का व्यवहार करने की शक्ति प्रदान करता है।[30] अमेरिका का उच्चतम न्यायालय[31] भी महिलाओं के विरूद्ध हिंसा समाप्त करने हेतु कदम उठाते हुए कहां कि "अस्तित्व के संघर्ष में स्त्रियों की शारीरिक बनावट तथा उनके स्त्री जन्य कार्य उन्हें दुःखद स्थिति में कर देते है। अतः उनकी शारीरिक कुशलता का संरक्षण जनहित का उद्‌देश्य हो जाता है। जिससे जाति, शक्ति और निपुर्णता को सुरक्षित रखा जा सके।" समाज मे समता लाया जाये इसके लिए सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के लिए विशेष प्रावधान किया गया है।[32] यह महिलाओ की स्थिति मजबूत करता है और उनके विरूद्ध हिंसा को दूर करने का औजार प्रदान करता है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 16 के अन्तर्गत भारतीय नागरिको के लिए अवसर की समानता है। **यह धर्म, मूलवंश जाति, लिंग, उद्भव, जन्म् स्थान एवं निवास** के आधार पर भेदभाव को प्रतिबंधित करता है।[33] इसमें लिंग के आधार पर विभेद न करने का प्रावधान इसलिए किया गया ताकि कमजोर वर्ग के विरूद्ध हिंसा न हो। यह अनुच्छेद सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ा वर्ग को एक वर्ग माना है।[34] महिलाए पिछड़े वर्ग का एक भाग है इसलिए उनका संरक्षण

---

[26] घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005

[27] भारतीय संविधान का अनुच्छेद 14

[28] भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1956

[29] ए0 आइ0 आर0 1961 पंजाब 489, जोगिन्दर सिंह बनाम केहर सिंह, ए0आइ0आर0 1965 पंजाब 407

[30] पवौक्त, (18) अनच्छेद 15 (3)

[31] मूलर बनाम ओरेगन, 12 लॉ एड 551

[32] पूवौक्त (18) अनच्छेद 15 (4), यह पावधान पथम (संविधान), 1951, द्वारा जोड़ा गया।

[33] वही, अनच्छेद 16 (2)

[34] वही, अनच्छेद 16 (4)

यह अनुच्छेद करता है। ***विजयलक्ष्मी बनाम पंजाब*** यूनिवर्सिटी[35]द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि महिलाओं के विद्यालय मे नियुक्ति नही है क्योंकि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 16 से अनुच्छेद 15 (3) पर प्रतिबन्ध नही लग जाता है।
भारतीय संविधान में नागरिको को वाक् एव अभिव्यक्ति[36] किसी भी व्यक्ति को 'जीवन' एव 'दैहिक स्वतन्त्रता' की प्रत्याभुति प्रदान करता है। इस अनुच्छेद का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत **'व्यक्ति'** शब्द गर्भ में मौजूद अजन्मे शिशु सहित सभी मनुष्यों पर लागू होता है। राज्य पूर्णकाम भ्रूण के विरूद्ध किसी प्रकार भेदभाव नहीं कर सकता है। अन्य मनुष्यों की भांति उसे भी समान संरक्षण प्राप्त होना चाहिए। अनुच्छेद 21 केवल नागरिको को ही मौलिक अधिकार नही प्रदान करता। बल्कि अनागरिक अर्थात व्यक्ति को भी मौलिक अधिकार प्रदान करता है।

अनुच्छेद 21 में जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अधिकार दिया गया है

''जीवन के अधिकार'' का अर्थ पाश्विक जीवन नहीं है, बल्कि सम्मान के साथ जीना है। इसलिए। बलात्कार मूलभुत मानव अधिकारो के विरूद्ध एक अपराध है तथा अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत पीड़ित व्यक्ति के जीवन के अधिकार का उल्लंघन है। इस प्रकार प्राण का अधिकार केवल भौतिक अस्तित्व तक ही सीमित नही है बल्कि। इसमें मानव गरिमा को बनाये रखते हुए जीने का अधिकार भी सम्मिलित है।[37] भारतीय संविधान का अनुच्छेद 23 मानव के दुर्व्यापार और बलात्श्रम का प्रतिषेध करता है और इसका उल्लंघन अपराध होगा तथा विधि के अनुसार दण्डनीय होगा। यह अनुच्छेद व्यक्ति को न केवल राज्य के विरूद्ध संरक्षण प्रदान करता है वरन प्राइवेट व्यक्तियो के विरूद्ध भी संरक्षण प्रदान करता है।[38] इस अनुच्छेद द्वारा दो प्रकार की कलंकात्मक कुरितियों का अंत किया गया–(1) नारी क्रय–विक्रय तथा (2) बेगार।[39]

राज बहादुर बनाम लीगल रिमेम्ब्रान्सर[40]

'मानव–दुर्व्यापर' एक बहुत ही विस्तृत शब्दावली है। इसमें केवल मनुष्यों या स्त्रियों को वस्तुओं की भांति क्रय–विक्रय ही शामिल नहीं है वरन् इसमें स्त्रियों और बच्चो का अनैतिक व्यापार करना और इसी पकार के अन्य प्रयोजनो के लिये प्रयोग करना भी शामिल है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु संसद स्त्री तथा लड़की अनैतिक व्यापार दमन (संशोधन) अधिनियम, 1986 तथा स्त्री अशिष्ट रूपण (प्रतिषेध) अधिनियम, 1986 पारित किया। महिलाओ के विरूद्ध हिसा समाप्त हो इसके लिए भारतीय संविधान समाज कल्याण और समाज सुधार विषयक विधियों के लिए विधि निर्माण की अनुमति प्रदान करता है।[41]

3. नीति निर्देशक तत्व एवं महिलाएं–

आज हम कल्याणकारी राज्य के नागरिक है जहाँ कि राज्य जनता की सामाजिक आर्थिक स्थिति सुधारने का प्रयास करता है। राज्य की नीति समाज कल्याण की होनी चाहिए।[42] इस उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए भारतीय संविधान के भाग–4[43] के अन्तर्गत राज्य के नीति निर्देशक तत्वों को उपबन्धित किया है। राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति

[35] 2003.8 एस0 सी0 सी0 440
[36] पूवौक्त (18) अनच्छेद 19(1) (क)
[37] बोधिसत्व गौतम बनाम शुभ्रा चक्रवर्ती, (1996) 1 एस0सी0सी0 490, 499, 500।
[38] मेनका गाँधी बनाम भारत संघ, ए0आई0आर0 1978 स0 को0 579
[39] पीप्ल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइटस बनाम भारत संघ ए0 आई0 आर0, 1982 स0 को0 1473
[40] ए0 आई0 आर0 1953 कलकत्ता 523
[41] डॉ0 अंजनी कान्त, 'महिला एव बाल कानून' प0 79
[42] वही, प0 सं0 85
[43] पूवौक्त (18) अनुच्छेद 36 से 51 तक

को समाज में सम्मानजनक स्थान है। नीति निर्देशक तत्व देश के शासन में मूलभूत है और विधि बनाने मे इन तत्वो को लागू करना राज्य का कतर्व्य होगा।[44] परन्तु यह न्यायालय द्वारा प्रवर्तित नही कराया जा सकता।[45] आर्थिक न्याय प्राप्त करने हेतु भारतीय संविधान के अनुच्छेद 29 के अन्तर्गत राज्य को अपनी नीति इस प्रकार संचालित करने का संविधान निर्देश देता है। जिससे राज्य निम्न लक्ष्य को प्राप्त हो सके–

पुरूष और महिलाओं सहित सभी नगारिकों को जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो।

समुदाय की भौतिक सम्पदा को स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बांटा गया हो, जिससे सामूहिक हितो को सर्वोत्तम साधन बन सके।

पुरूषों एवं महिलाओं दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन हो।

पुरूषों और महिला कर्मकारो के स्वास्थ्य और शक्ति का दुरूप्रयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु की शक्ति के अनुकूल न हो।[46]

भारतीय संविधान महिलाओ की स्थिति सुधारने के लिए कुछ अन्य राज्य केनीति निर्देशक तत्वों का उल्लेख करता है, उदाहरणतः अनुच्छेद 42 उपबन्धित करता है कि राज्य काम की न्याय संगत और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए और प्रसूति सहायता के लिए उपबन्ध करेगा। अनुच्छेद 44 के प्रावधानित करता है कि राज्य भारत के समस्त राज्य क्षेत्र मे नागरिको के लिए एक **समान सिविल संहिता** प्राप्त करने का प्रयास करेगा। परन्तु इस हेतु प्रयास अभी तक प्रारम्भ नही किया गया। जब कभी इस मु द्दे को उठाया जाता है तो इसे स्वीकार करने के बजाय अधिकत्र विरोध होता है यद्यपि विभिन्न विचारो वालेव्यक्तियो को एक स्थान पर लाने में काफी परेशानियां है फिर भी यदि भारतीय संविधान कुछ भी मायंने रखता है तो इस हेतु प्रयास अवश्य किया जाना चाहिए।[47]

4. मूल कर्तव्य एवं महिलाएँ

:–

भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि ''वह भारत के सभी लोगों में समरसता और समानभातृत्व की भावना का निर्माण करे, जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जा स्त्रियो के सम्मान के विरूद्व है।[48] यह प्रावधान नगारिको पर यह कर्तव्य अधिरोपित करता है कि वे महिलाआ के विरूद्ध हिंसा को त्याग करे।

5. पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण :–

भाग–9, संविधान के 73 वें और, संविधान के 74 वे संसोधन अधिनियम 1992 प्राप्त संविधान में जोड़े गये है। संविधान के 73 वें संशोधन के द्वारा पंचायतीराज संस्थाओं के ओर 74 वें संविधान संशोधन द्वारा नगरपालिकाओ में लोकतान्त्रिक प्रणाली की स्थापना को संवैधानिक मान्यता प्रदान की गयी हैं। संविधान में अनुच्छेद–40 के स्पष्ट निर्देशों के बावजूद इस दिशा में समुचित कदम नहीं उठाए गये थे। स्वायत्त शासन की ईकाइयों के रूप में ग्राम पंचायतों की स्थापना के लिए हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने बहुत अधिक बल दिया था। यह संविधान संशोधन महिलाओं की सत्ता में भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए अपना अनूठा महत्व रखता है। सन् 1992 में संविधान में संशोधन को पंचायती राज संस्थाओ मे

---

44 वही, अनुच्छेद 36

45 वही, अनुच्छेद 37

46 पूर्वोक्त (18) अनुच्छेद 39

47 मोहम्मद अहमद खान बनाम शाहबानों बेगम ए0 आई0 आर0 1985 सु0 को0 945

48 पूर्वोक्त (18), अनुच्छेद 51–ड, यह 42 वें संविधान संशोधन अधिनियम 1976 द्वारा जोड़ गया

महिलाओं के लिए 1/3 स्थान आरक्षित किए गये। अनुच्छेद–243 (घ) के अनुसार प्रत्येक पंचायत मे प्रत्यक्ष निर्वाचन से भरे गये स्थानो की कुल संख्या के 1/3 स्थान जिनके अन्तर्गत अनुसूचित जातियों और जनजातियों की स्त्रियो के लिए आरक्षित स्थानो की संख्या सम्मिलित है स्त्रियो के लिए आरक्षित रहेगी और चक्रानुकक्रम से पंचायत के विभन्न निर्वाचन क्षेत्रों को आवंटित किए जाएगे (खण्ड तीन)।

नगरपालिकाओ में भी अनुच्छेद–243 अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजातियों और स्त्रियो के लिए आरक्षण का उपबन्ध करता है। प्रत्येक नगर पालिका मे प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले स्थानो की कुल संख्या के 1/3 स्थान जिसके अन्तर्गत अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियो की स्त्रियो के लिए आरक्षित स्थानों की संख्या भी शामिल है स्त्रियों के लिए आरक्षित किए जाएगें। **कृष्ण कुमार मिश्रा बनाम् बिहार राज्य के** मामले मे इस प्रकार के आरक्षण को चुनौती दी गयी, लेकिन पटना उच्च न्यायालय द्वारा चुनौती को नकार दिया गया। हमारे संविधान मे महिलाओं की स्वतंत्रता एव समानता हेतु अनेक प्रावधान लिए गये है। उपरोक्त बिन्दुओं के अतिरिक्त–जिन अन्य बिन्दुओं पर पूर्व में संक्षेप में चर्चा की गयी है उन पर विस्तार से विवेचन करना और इस निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास करना ही भारतीय संविधान में जिस सीमा तक स्त्री की रक्षा हेतु प्रयास किया है जिन उद्देशो की प्राप्ति हेतु भारतीय संविधान में महिला संविधिक सुरक्षा चक्र में हित रक्षा की बात की गयी है उन्हे किस सीमा तक मूर्तरूप प्रदान किया जा सकता है।

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

21वीं सदी में श्री अरबिंदो के शैक्षिक दर्शन की प्रासंगिकता

डॉ. हरजिंदर कौर
सहयक प्रोफेसर
खालसा कॉलेज ऑफ एजुकेशन
रंजीत एवेन्यू, अमृतसर (पंजाब)

सार

महान दार्शनिक, शिक्षाविद् और विचारक अरबिंदो वास्तव में 21वीं सदी के भारतीय में असाधारण प्रतिभा के प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। अरबिंदो ने बदलाव लाने में बहुत योगदान दिया ताकि आने वाली पीढ़ी शिक्षा में बेहतर प्रणाली और नवीन विचारों को प्राप्त कर सके। वर्तमान पत्र 21 वीं सदी में शिक्षा के विभिन्न घटकों के साथ अरबिंदो के शैक्षिक दर्शन के निहितार्थ पर चर्चा करता है। शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण के तरीके, स्कूल, शिक्षक की भूमिका और शिक्षा की वर्तमान प्रणाली पर अरबिंदो के शैक्षिक दर्शन की प्रासंगिकता। अरबिंदो का मानना है कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है और शिक्षा लक्ष्य को प्राप्त करने का साधन है।

कीवर्ड: शिक्षा की अवधारणा, समग्र शिक्षा, शैक्षिक दर्शन, शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली, शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण के तरीके

परिचय

15 अगस्त, 1872 को कलकत्ता में पैदा हुए श्री अरबिंदो एक रहस्यवादी, क्रांतिकारी, कवि, दार्शनिक और पत्रकार थे। उनका संपूर्ण दर्शन और कार्य चेतना के विकास पर केंद्रित था, और यह जीवन के सभी पहलुओं को शामिल करने का एक प्रयास था। अरबिंदो का आदर्शवादी जीवन दर्शन वेदांतिक उपनिषद दर्शन पर आधारित था। उन्होंने मानव आत्मा के विकास की अवधारणा की उन्नति के लिए आध्यात्मिक तपस्या, योग अभ्यास और ब्रह्मचर्य पर जोर दिया। अरबिंदो के अनुसार, वास्तविक शिक्षा वह है जो एक बच्चे को एक स्वतंत्र और रचनात्मक वातावरण प्रदान करती है जिसमें व्यक्ति अपनी जिज्ञासा, कल्पना, मानसिक, नैतिक और सौंदर्य बोध को विकसित कर सकता है, जो अंततः उसकी आध्यात्मिक शक्तियों के विकास की ओर ले जाता है।

श्री अरबिंदो का सामान्य दर्शन

अरबिंदो ने इस बात पर जोर दिया कि उच्चतम सत्य, विज्ञान और धर्म के सत्य, पहले से ही वेदों में पाए गए हैं क्योंकि गीता और उपनिषदों में वेद तार्किक रूप से जारी हैं। अरबिंदो व्यक्तिगत आत्मा और सर्वोच्च आत्मा के मिलन पर शास्त्रीय विचारों को अपनाते हैं और मनुष्य की पारंपरिक परिभाषा में विश्वास करते हैं। अरबिंदो का उद्देश्य धीरे–धीरे

समाज को आध्यात्मिक बनाना था और एक सुपर माइंड युग की कामना की जिसमें सभी सामाजिक वर्गों में अच्छी स्वतंत्रता और सद्भाव की प्राप्ति हो। अरबिंदो का सिद्धांत अभिन्नता की गहरी समझ पर आधारित है। यह आदर्शवाद, यथार्थवाद, व्यावहारिकता और अध्यात्मवाद को जोड़ती है। अरबिंदो ने सद्भाव की स्थिति बनाने की अपील की जो सभी सामाजिक वर्गों को एकात्म जीवन के रूप में व्याप्त करेगी और अभिन्न व्यक्तित्व का विकास मानव जाति को एक साथ लाएगा।

शिक्षा की अवधारणा

अरबिंदो ने हमेशा शिक्षा को उच्च मूल्य दिया। एक शिक्षित व्यक्ति होने के नाते अरबिंदो को युवाओं में विश्वास था और उन्हें लगता था कि युवा ही नई दुनिया के निर्माता हैं। अरबिंदो को भरोसा था कि युवा राष्ट्र के पुनर्निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। अरबिंदो ने हमेशा राष्ट्रीय शिक्षा की वकालत की। अरबिंदो ने शिक्षा को परिभाषित किया जो अतीत से शुरू होकर वर्तमान पर समाप्त होकर एक महान राष्ट्र का निर्माण करती है। व्यापक अर्थ में जीवन ही शिक्षा है और शिक्षा ही जीवन है। कुछ भी जो हमारे क्षितिज को विस्तृत करता है, हमारी समझ को गहरा करता है, हमारी प्रतिक्रियाओं को परिष्कृत करता है, और हमारे विचारों और भावनाओं को उत्तेजित करता है और एक व्यक्ति को शिक्षित करता है। जीवन शिक्षा की एक लंबी प्रक्रिया है। शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य में सर्वश्रेष्ठ को बाहर लाना है, उसकी क्षमता को अधिकतम करना है, उसे अपने साथ, अपने परिवेश, अपने समाज, अपने देश और मानवता के साथ एकीकृत करना है ताकि उसे 'पूर्ण मनुष्य', 'एकीकृत व्यक्ति' बनाया जा सके। अरबिंदो के शब्दों मेंः केवल वही एक सच्ची और जीवित शिक्षा होगी जो पूर्ण लाभ लाने में मदद करती है, मानव जीवन को पूर्ण उद्देश्य और दायरे के लिए तैयार करती है जो कि व्यक्तिगत मनुष्य में है, और जो एक ही समय में उसकी मदद करती है।' उन लोगों के जीवन, मन और आत्मा के साथ अपने सही संबंध में प्रवेश करें जिनसे वह संबंधित है, और मानवता के महान समग्र जीवन, मन और आत्मा के साथ, जिसकी वह एक इकाई है और उसके लोग या राष्ट्र एक जीवित, अलग अभी तक अविभाज्य सदस्य।

अभिन्न शिक्षा

अरबिंदो को व्यापक रूप से एक आधुनिक द्रष्टा और एक वैदिक विद्वान के साथ–साथ कलकत्ता के पहले राष्ट्रीय शिक्षा महाविद्यालय के संस्थापक और शिक्षा के विषय पर एक विपुल लेखक के रूप में माना जाता था। 'समग्र शिक्षा' के प्रति उनका दृष्टिकोण अपने आप में एक नई अवधारणा है। शिक्षा पर अपने लेखन में उन्होंने शरीर, मन और आत्मा की शिक्षा की अलग–अलग चर्चा की है, लेकिन उनका एकीकरण कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। अरबिंदो ने शिक्षा के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर भी विचार किया है। समग्र शिक्षा शिक्षा की बढ़ती मांग के जवाब में लोकप्रियता प्राप्त कर रही है जिसमें एक व्यक्ति के शारीरिक, महत्वपूर्ण, मानसिक, मानसिक और आध्यात्मिक तत्व शामिल हैं। यह देखा गया है कि, एकात्म शिक्षा ने पिछले दशक (1987– 97) के दौरान भारत में एक लंबी प्रगति की है। समग्र शिक्षा ने भारत में गहरी जड़ें जमाना शुरू कर दिया है। इस अवधि के दौरान शिक्षकों को प्रणाली के सिद्धांत और व्यवहार से परिचित कराने के लिए माध्यमिक और प्राथमिक दोनों स्तरों पर शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं। इस विषय पर शोध भी लगातार बढ़ रहा है। पानी (2007) गंगोत्री इंटीग्रल एजुकेशन के प्रवर्तक हैं और भारत में राष्ट्रीय महत्व के उच्च शिक्षा के पांच संस्थानों में से एक हैं। अरबिंदो की मां ने जो प्रणाली विकसित की थी वह अभी भी वहां उपयोग में है। अरबिंदो शिक्षार्थियों और शिक्षकों के आंतरिक और

बाहरी स्वभाव के अभिन्न विकास और परिवर्तन के साथ–साथ शिक्षा के एक ऐसे केंद्र से संबंधित है जो ऐसी समग्र शिक्षा प्रणाली के साथ प्रयोग करता है जो समाज के लिए एक गतिशील आदर्श बन जाता है। चेतना के व्यक्तिगत और सामूहिक विकास को सुविधाजनक बनाने में काम करते हैं। केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सी बी ,स सी) द्वारा अपनाई गई राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद द्वारा तैयार की गई पद्धति में 'राष्ट्रीय शिक्षा की एक प्रणाली' का समापन हुआ है, और अब इसे राष्ट्रीय स्तर पर लागू किया जा रहा है, जिसे ,न सी ,फ' हेमसेल (2011) के रूप में जाना जाता है। शिक्षा सुधार के सिद्धांतों पर आधारित था जिसे सबसे पहले अरबिंदो ने 100 साल पहले अपने निबंध मेहरा (2011) में व्यक्त किया था। 20वीं शताब्दी, जिसे 'वैश्विक युग' कहा जाता है, परस्पर जुड़ी हुई सामाजिक व्यवस्था के युग के रूप में विकसित हो रही है, मानव जाति से अपेक्षा करती है, वैश्विक सामाजिक एकीकरण की दिशा में विकासवादी आंदोलन को सुविधाजनक बनाने के लिए जिम्मेदार है, जिसके परिणामस्वरूप एक नई सामाजिक वास्तविकता का निर्माण होता है और ग्रहों की सामूहिक चेतना पैदा होती है। श्री अरबिंदो आश्रम के शैक्षिक कार्यक्रमों ने उनके विचारों को अमल में लाया है।

वर्तमान संदर्भ में अरबिंदो के दर्शन के शैक्षिक निहितार्थ

इस सन्दर्भ में हम शिक्षा के उद्देश्य, हम छात्रों के लिए पाठ्यचर्या कैसे विकसित करते हैं, शिक्षण के तरीके आदि पर अरबिंदो के विचारों का अध्ययन कर सकते हैं। इसके अलावा हम छात्रों की शिक्षा में छात्रों की भूमिका और शिक्षक की भूमिका पर गौर कर सकते हैं। अरबिंदो के शिक्षा दर्शन के मुख्य विषय इस प्रकार हैं।

शिक्षा के उद्देश्यः

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बढ़ती हुई आत्मा की मदद करने से संबंधित है जो सबसे अच्छा है और इसे एक महान उपयोग के लिए परिपूर्ण बनाता है (अरबिंदो, 2003, पृष्ठ 384)। उनके अनुसार, शिक्षा का नया उद्देश्य बच्चे की मदद करना है। अपने बौद्धिक, सौन्दर्यपरक, भावनात्मक, नैतिक, आध्यात्मिक अस्तित्व और अपने सांप्रदायिक जीवन और आवेगों को अपने स्वयं के स्वभाव और क्षमताओं से विकसित करने के लिए। यह पारंपरिक शिक्षा से बहुत अलग है, जिसने बच्चे के प्रतिरोधी मस्तिष्क में इतना अधिक रूढ़िबद्ध ज्ञान भर दिया है और उसके संघर्षशील और हावी आवेगों पर आचरण का एक रूढ़िबद्ध नियम लागू कर दिया है (श्री अरबिंदो 1997, पृ.45)। विभिन्न प्रकार की जानकारी प्राप्त करना शिक्षा के साधनों और आवश्यकताओं का प्रमुख नहीं, केवल एक है। इसका मुख्य उद्देश्य मानव मन और आत्मा की शक्तियों का निर्माण है। शिक्षा को ज्ञान और इच्छा को विकसित करने या बेहतर बनाने के साथ–साथ ज्ञान, चरित्र और संस्कृति को नियोजित करने की क्षमता का प्रयास करना चाहिए – अगर कुछ और नहीं। (अरबिंदो, 2003ए, पृष्ठ 420)। अरबिंदो ने आधुनिक जीवन की जरूरतों को पूरा करने में शिक्षा के महत्व पर जोर दिया। दूसरे शब्दों में, शिक्षा को ऐसे गतिशील नागरिक तैयार करने चाहिए जो आधुनिक जटिल जीवन की माँगों को पूरा करने में सक्षम हों। शिक्षा का उद्देश्यः

- बढ़ती हुई आत्मा को अपने आप में सबसे अच्छा बाहर निकालने में मदद करने के लिए और इसे एक महान उपयोग के लिए परिपूर्ण बनाने के लिए। ((डायरी, पृ.13)
- 'शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को जीवन और समाज में सफल होने के लिए तैयार करना नहीं है, बल्कि उसकी पूर्णता को चरम सीमा तक बढ़ाना है।' ((द मदर इन द राइट ऑब्जेक्ट ऑफ एजुकेशन, पृ.12)

• शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए कि एक 'सम्पूर्ण मनुष्य' की शारीरिक और आध्यात्मिक क्षमताओं और क्षमता को यथासंभव पूर्ण रूप से विकसित किया जाए।

अरबिंदो ने मानव प्रकृति को पांच भागों में वर्गीकृत कियाः शारीरिक, मानसिक, मानसिक और आध्यात्मिक, जो शिक्षा के पांच पहलुओं के अनुरूप हैंः शारीरिक शिक्षा, महत्वपूर्ण शिक्षा, मानसिक शिक्षा, मानसिक शिक्षा और आध्यात्मिक या अतिमानसिक शिक्षा।

• शारीरिक शिक्षा में भौतिकी नियंत्रण, शारीरिक गति का सामंजस्यपूर्ण विकास, शारीरिक सीमाओं का शक्तिशाली और शरीर की चेतना की जागरूकता शामिल है। अरबिंदो खेलों और खेलों पर जोर देते हैं क्योंकि वे ऊर्जा को नवीनीकृत करने के लिए महत्वपूर्ण हैं।

• समग्र शिक्षा में महत्वपूर्ण शिक्षा बहुत महत्वपूर्ण थी। अरबिंदो के अनुसार, मनुष्य का महत्वपूर्ण अस्तित्व, इच्छाओं, संवेदनाओं, भावनाओं, जुनून और इच्छा की प्रतिक्रिया से बना है – मनुष्य में आत्मा, साथ ही वह सब जो एक अधिकार और अन्य जुड़ी वृत्ति, क्रोध, भय, गति, और अन्य चीजें जो प्रकृति के इस क्षेत्र से संबंधित हैं।

• संज्ञान, विचार और ज्ञान सभी मानसिक शिक्षा के भाग थे। मानसिक शिक्षा में श्री अरबिंदो का योगदान यह धारणा थी कि विचारों को लगातार एक केंद्रीय विचार के आसपास व्यवस्थित किया जाना चाहिए।

• शैक्षिक संरचनाओं में अरबिंदो का योगदान मानसिक शिक्षा था। मनुष्य के मानसिक सार की खोज एक समग्र व्यक्तित्व के विकास का रहस्य थी।

• आध्यात्मिक और अतिमानसिक शिक्षा शैक्षणिक, नैतिक, या यहाँ तक कि धार्मिक शिक्षा की तुलना में आध्यात्मिक विकास पर अधिक ध्यान देती है। 'मनुष्य स्थायी रूप से तब तक आराम नहीं कर सकता जब तक कि वह किसी उच्चतम भलाई तक नहीं पहुँच जाता।' 'जीवन में ईश्वर को पूरा करना मनुष्य की मर्दानगी है। आध्यात्मिक शिक्षा को छात्रों को भौतिक और आध्यात्मिक जीवन को तर्कसंगत तरीके से देखने के लिए आत्मा और पदार्थ के बीच संबंध की पहचान करना सिखाना चाहिए।'

पाठ्यक्रमः

पाठ्यचर्या डिजाइन प्रचलित पाठ्यचर्या प्रवृत्तियों से घृणा करता है, अरबिंदो ने छात्रों को हर विषय से कुछ सीखने की आवश्यकता और कई विषयों में सतहीपन और सतहीपन के बजाय कुछ विषयों में गहन जानकारी की आवश्यकता के द्वारा पाठ्यक्रम की अधिकता का विरोध किया। उनके अनुसार शिक्षा लचीली और अभिन्न होनी चाहिए। उन्होंने बच्चे के सर्वांगीण विकास के लिए निम्नलिखित विषय की सिफारिश की, अर्थात् मानविकी, भाषा, विज्ञान, इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिकी। सीखने, चित्रकला, संगीत और नृत्य, नाटक, शिल्प, व्यावहारिक और पारिस्थितिकी आदि के लिए सुव्यवस्थित प्रावधान होना चाहिए। अरबिंदो चाहते थे कि भारतीय इतिहास और संस्कृति का अध्ययन पाठ्यक्रम का एक महत्वपूर्ण घटक हो क्योंकि वह प्राचीन भारतीय संस्कृति के भक्त थे। संस्कृति और सभ्यता, जिसमें समाज और व्यक्ति को कैदी की प्राप्ति और आध्यात्मिक पूर्णता के लिए एक अनुशासन के विकास की ओर मोड़ने के लिए गहन ज्ञान और कौशल शामिल था। यह स्वीकार करते हुए कि हर कोई पूछताछ, जांच, मूल्यांकन और शरीर रचना करना चाहता है, अरबिंदो ने अपने पाठ्यक्रम कार्यक्रम में विज्ञान के विश्लेषण को शामिल किया जो मनुष्य के प्राकृतिक परिवेश का वर्णन करता है। उन्होंने विज्ञान के कठोर अनुशासन, उसकी भावनाहीन बुद्धि की प्रशंसा की, जो हर चीज को परखने और ज्ञान और वास्तविकता की खोज करने पर केंद्रित है। अरबिंदो ने मनुष्य के

मन और मानस पर ध्यान केंद्रित करने के कारण मनोविज्ञान के अध्ययन को प्रोत्साहित किया और जीवन का समग्र दृष्टिकोण प्रदान करने में सिद्धांत और तर्क के महत्व पर जोर दिया। वह चाहते थे कि बच्चे की सृजनात्मक क्षमता व्यक्ति की नकल और कल्पना की प्राकृतिक शक्तियों के प्रकाश में ठीक से बने। ,न सी ,फ दस्तावेज भारत के स्कूली शिक्षा कार्यक्रमों में पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों और शिक्षण विधियों को विकसित करने के लिए रूपरेखा प्रदान करता है। यह दस्तावेज और शिक्षा के सिद्धांत जो दुनिया के कई स्कूलों में आज प्रचलित सबसे प्रगतिशील, बाल–केंद्रित शैक्षिक विचारों और रणनीतियों को उजागर करते हैं, और अरबिंदो द्वारा एक सदी पहले व्यक्त की गई अंतर्दृष्टि की व्यापक प्रकृति को दर्शाते हैं। उनके समान विचार प्रगतिशील शिक्षा सुधार के मानदंड बन गए हैं। उदाहरण के लिए, अरबिंदो के बाल–केंद्रित शिक्षाशास्त्र के विचारों और शिक्षक की भूमिका के लिए एनसीएफ जैसे वर्तमान शैक्षिक सुधारों की वकालत की जा रही है।

शिक्षण विधियों:

अरबिंदो ने प्रस्तावित किया कि बच्चे को आत्म–खोज, आत्म–समझ और आत्म–अभ्यास के माध्यम से सीखना चाहिए और चाहते थे कि सीखना सहज और स्वतः बिना किसी बाहरी दबाव के होना चाहिए। स्मृति और निर्णय, ध्यान और एकाग्रता के अलावा, प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। यह यांत्रिक पुनरावृत्ति के माध्यम से पूरा नहीं किया जाना चाहिए। याददाश्त को प्राकृतिक चीजों के इस्तेमाल से प्रशिक्षित किया जा सकता है। आज भी पूरे विश्व में आत्मनिरीक्षण, आत्म–बोध, सीखने पर बल दिया जाता है।

शिक्षक और उनकी भूमिकाः

अरबिंदो के अनुसार 'विद्यालय को शिक्षक के साथ–साथ छात्र के लिए भी प्रगति का अवसर होना चाहिए। प्रत्येक को स्वतंत्र रूप से विकसित होने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। और 'सीखने के लिए प्यार करना सबसे कीमती उपहार है जो एक बच्चे को दे सकता है, हमेशा और हर जगह सीखने के लिए।' ((डायरी, पृ.253) 'माता–पिता और शिक्षक दोनों की जिम्मेदारी है कि वे बच्चे को आत्म–शिक्षा में सहायता और सहायता करें, अपनी बौद्धिक, नैतिक, कलात्मक और व्यावहारिक क्षमताओं को विकसित करें, और गूंधने के बजाय एक जैविक प्राणी के रूप में स्वतंत्र रूप से विकसित हों। और एक अक्रिय प्लास्टिक वस्तु की तरह आकार में दबाया गया।' ((डायरी, पृ.253) 'बहुत शांत और बहुत धैर्यवान बनोय कभी गुस्सा मत करोय दूसरों का स्वामी बनने के लिए व्यक्ति को स्वयं का स्वामी होना चाहिए। ((डायरी, पृ. 253) आज भी शिक्षक को तानाशाह के बजाय एक सूत्रधार के रूप में महसूस किया गया है। शिक्षक को लचीला, दार्शनिक और मार्गदर्शक होना चाहिए, समय–समय पर गठित सभी आयोगों और समितियों द्वारा समर्थित सिद्धांत है। 'शिक्षक को छात्रों से जो बनने के लिए कहता है उसका जीवंत उदाहरण होना चाहिए।' ((डायरी, पृ.254) 'शिक्षक को पाठ सुनाने की मशीन नहीं होना चाहिए, उसे एक मनोवैज्ञानिक और एक पर्यवेक्षक होना चाहिए।' ((डायरी, पृष्ठ 255) 'मुझे आपको सूचित करना है कि एक शिक्षक को सभ्य होना चाहिए यदि वह सम्मान पाना चाहता है।' (माँ 'एक अच्छा शिक्षक' द ट्रू टीचर, पृष्ठ 2 में) 'प्रशिक्षक को उन विशेषताओं और चेतना का उदाहरण देना चाहिए जो वह अपने छात्रों में पैदा करना चाहता है।' (डायरी, पृष्ठ 261)।

विद्यालयः

स्कूल का अंतिम लक्ष्य मानव निर्माण है। यह छात्रों को पहले मनुष्य के रूप में, फिर राष्ट्रों के सदस्य के रूप में और अंत में व्यक्तियों के रूप में काम करने के लिए तैयार

करता है। व्यक्तित्व, समानता और अनिवार्यता अरबिंदो द्वारा रखे गए तीन अंतिम सिद्धांत हैं। दूसरे शब्दों में, ये छात्र, समाज और मानवता हैं। उनका मानना है कि समग्र विकास में इन तीनों तत्वों का विकास शामिल होना चाहिए। स्कूल को सभी बच्चों के साथ समान व्यवहार करना चाहिए और समानताओं पर जोर दिए बिना उनके व्यक्तिगत मतभेदों के विकास के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करना चाहिए।

वर्तमान परिदृश्य में श्री अरबिंदो के शैक्षिक दर्शन की प्रासंगिकता

अब प्रश्न उठता है कि क्या विज्ञान और कंप्यूटर प्रौद्योगिकी के इस आधुनिक युग में अरबिंदो के शैक्षिक दर्शन की कोई प्रासंगिकता रही है? उत्तर है, हाँ'। अरबिंदो का शैक्षिक दर्शन हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली को बेहतर बनाने की कुंजी है। छात्रों में घटी हुई नैतिकता, कम संज्ञानात्मक क्षमताओं में तत्काल सुधार की आवश्यकता है। हालांकि अरबिंदो ने शिक्षा के इस दर्शन को बीसवीं सदी के शुरुआती दशकों में दिया था, और छात्रों के लिए एक एकीकृत पाठ्यक्रम की सिफारिश की थी जिसमें अभ्यास, बातचीत और विषय शामिल होंगे। सीखने के बजाय आत्म–खोज, गतिविधि, अवलोकन और करके सीखने का परिणाम है। फिर से, अरबिंदो ने शिक्षकों को वह प्रकाश होने का आह्वान किया जो उस दिशा को रोशन करता है जिस पर एक छात्र को स्वयं चलना चाहिए। अरबिंदो ने सर्वांगीण विकास का सुझाव दिया, जैसा कि अरबिंदो ने सुझाव दिया, व्यावसायिक शिक्षा, नवाचार, छह से चौदह वर्ष की आयु तक अनिवार्य शिक्षा पर ध्यान देने के साथ, और आध्यात्मिक शिक्षा के साथ संयुक्त विज्ञान और मानविकी दोनों पर ध्यान केंद्रित करने से छात्रों में मूल्यों का संचार होगा संज्ञानात्मक क्षमताओं में सुधार हुआ है, लेकिन यह आज के आधुनिक युग और शिक्षा प्रणाली में भी प्रासंगिक है। उन्होंने सर्वांगीण विकास में एक को महत्व दिया है – बौद्धिक ज्ञान, आध्यात्मिकता का विकास, विज्ञान और प्रौद्योगिकी में जिज्ञासा बढ़ाना, आत्म–विकास अभी भी प्रासंगिक है। उनकी दार्शनिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य खुद को भविष्य के लिए तैयार करना और किसी भी अप्रत्याशित परिस्थितियों के लिए तैयार करना, हालांकि बीसवीं सदी के शुरुआती दिनों में प्रचारित किया गया, आज भी आधुनिक समाज और शिक्षा प्रणाली के लिए प्रासंगिक और उपदेशित है। अगर मनुष्य शांति और सद्भाव में रहना चाहता है, तो अरबिंदो की शिक्षा और दर्शन का अत्यधिक महत्व है। अरबिंदो इस इक्कीसवीं सदी में बहुत अधिक प्रासंगिक है जहां विज्ञान और अध्यात्म को साथ–साथ चलना चाहिए। जिस वैज्ञानिक विकास की दृष्टि केवल भौतिकवादी प्रगति पर टिकी है, वह विश्व में स्थायी शांति प्राप्त नहीं कर पाएगा, लेकिन साथ ही साथ आध्यात्मिकता के माध्यम से मनुष्य का उत्थान करना बहुत आवश्यक है। अरबिंदो ने लोगों को उनके भविष्य के जीवन की योजना बनाने में मदद करने का फैसला किया। ग्रामीण और असंगठित क्षेत्रों में राष्ट्रीय एकीकरण, अंतर्राष्ट्रीय एकीकरण, मूल्य शिक्षा और औपचारिक और गैर–औपचारिक कार्यक्रम आज भी सभी आवश्यक माने जाते हैं और न केवल भारत में बल्कि वैश्विक स्तर पर भी इसकी अच्छी तरह से वकालत की जाती है। शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति (एनपीई), 1986 और संशोधित एनपीई, 1992 ने न केवल विज्ञान और प्रौद्योगिकी, तकनीकी और प्रबंधन शिक्षा, मुक्त और दूरस्थ शिक्षा, शैक्षिक प्रौद्योगिकी और संचार मीडिया, पर्यावरण और पारिवारिक जीवन शिक्षा पर बल दिया है, बल्कि इस पर भी जोर दिया है। हमारी सांस्कृतिक विरासत, मूल्य शिक्षा और आध्यात्मिक विकास पर। हालांकि, ,न सी ,फ दस्तावेज, अरबिंदो के लेखन और एनपीई 1986 की तरह, लगभग पूरी तरह से 'कैसे,' यानी कार्यप्रणाली पर केंद्रित है। और यह वह पहलू है जिसे आम तौर पर अरबिंदो के तीन सिद्धांतों द्वारा सुझाए गए 'बाल–केंद्रित शिक्षा सुधार' के रूप

में जाना जाता है।' ,न सी ,फ का उद्देश्य शिक्षा प्रणाली में सुधार लाना है ताकि एक ऐसा पाठ्यक्रम लाया जा सके जो शिक्षार्थी केंद्रित हो, एक लचीली प्रक्रिया हो और शिक्षार्थी को स्वायत्तता प्रदान करे। शिक्षक एक सूत्रधार की भूमिका निभाता है, सीखने का समर्थन करता है और सीखने को प्रोत्साहित करता है, शिक्षार्थियों की सक्रिय भागीदारी शामिल करता है, बहु–विषयक पाठ्यक्रम विकसित करता है, शिक्षा पर ध्यान केंद्रित करता है, कई और अलग–अलग जोखिम लाता है, शैक्षिक प्रणाली में विविध, निरंतर मूल्यांकन भी ,न सी ,फ द्वारा वकालत की जाती है। अरबिंदो को अक्सर यूनेस्को में 'हू' से उद्धृत किया गया है, जो उनके दर्शन की निरंतर प्रासंगिकता को रेखांकित करता हैः 'आसमान के नीले रंग में...... विशाल और अकेला,' 21 वीं सदी में उनके दर्शन की प्रासंगिकता बनाता है। सभी आयोगों और समितियों ने अरबिंदो की शिक्षा की अवधारणा की वकालत की हैः विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1949) ने इस बात पर जोर दिया कि स्कूल और कॉलेज मूर्खता के उसी कार्य की पुनरावृत्ति के लिए नहीं करेंगे जो कि मैकेनिकल लर्निंग पर सबसे अच्छा नियोजित है। क्योंकि इस प्रक्रिया से शिक्षा नीरस और उबाऊ हो जाती है। यही कारण है कि प्राचीन काल से ही भारतीय साथ–साथ या निकटता में रहते थे। .... स्मृति, आदि। माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952) ने परिकल्पना की कि बच्चा एक निष्क्रिय श्रोता है और यांत्रिक रूप से कुछ ज्ञान सीखने के लिए मजबूर है और रट्टा सीखने को कम करने का सुझाव दिया है। कौशल विकास और उद्यमिता पर राष्ट्रीय नीति में अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद (2019) ने शिक्षा आयोग द्वारा प्रस्तावित स्कूल परिसर का विचार दिया और देखा कि पुनरावृत्ति के जोखिम को पहचानना उचित होगा ...... परीक्षा में रटने का महत्व। इसी तरह, एनपीई ((1986–1992) ने भी पारंपरिक नीरस पाठ्यक्रम को अलविदा कह दिया है। बच्चे का समग्र विकास आधुनिक 21वीं सदी की अवधारणा है और अरबिंदो द्वारा शिक्षक की भूमिका के रूप में इसकी वकालत की गई है।

निष्कर्ष

अरबिंदो के शैक्षिक दर्शन के गहन अध्ययन और विश्लेषण के बाद यह देखा गया है कि, एक महान शिक्षाविद् अरबिंदो ने शिक्षा को हमारे समाज के आधुनिकीकरण के लिए सबसे अच्छा और सबसे प्रभावी हथियार माना है। अरबिंदो ने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की सराहना की, शिक्षा के माध्यम से मानव सभ्यता के उत्थान की कल्पना की और शिक्षा में लोकतंत्र के विभिन्न आदर्शों को शामिल करने का समर्थन किया। उनके शैक्षिक विचार और दर्शन 21वीं सदी के प्रतीत होते हैं और उन्हें काफी प्रासंगिक माना जा सकता है क्योंकि उन्होंने जो कुछ भी वकालत की वह अभी भी अनगिनत आधुनिक दिमागों के दिल और दिमाग में जगह पाता है। शिक्षा के महानायक को आधुनिक भारतीय शिक्षा का प्रतिपादक माना जा सकता है। हमारी शिक्षा प्रणाली को बनाने में अरबिंदो का योगदान अद्वितीय और अविस्मरणीय है और आज भी प्रासंगिक है।

संदर्भ

1. अबेदी, ए. (2017). शिक्षा पर श्री अरबिंद के विचार
2. कौर, बी. (2013). शिक्षा की वर्तमान प्रणाली में श्री अरबिंदो घोष के शैक्षिक दर्शन का योगदान, अंतर्राष्ट्रीय बहुआयामी ईजर्नल
3. चौबे, एस. (1993). भारत में शैक्षिक दर्शन, विकास पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली पृ.103
4. मां. (2002) ऑन एजुकेशन, कलेक्टेड वर्क्स ऑफ द मदर, अंक12

5. योगिंदर, एस. (2015) वर्तमान भारतीय संदर्भ में श्री अरबिंदो के शैक्षिक विचारों का एक अध्ययन,जर्नल ऑफ ग्लोबल रिसर्च एंड एनालिसिस, 4,(1),130–139
6. रानी, सी. (2017). अरबिंदो घोष की शैक्षिक दृष्टि का अध्ययन, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंडियन साइकोलॉजी, 5 (1)
7. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, (2020). मानव संसाधन विकास मंत्रालयः भारत सरकार
8. शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति, (1986). मानव संसाधन विकास मंत्रालयः भारत सरकार
9. श्री अरबिंद. (1950). मानव चक्र, न्यूयॉर्कः श्री अरबिंदो लाइब्रेरी, पृष्ठ –105
10. श्री अरबिंद. (1997). भारत में पुनर्जागरण, श्री अरबिंदो आश्रम प्रकाशन विभाग, पांडिचेरी
11. श्री अरबिंद. (2002). कर्म योगिन, श्री अरबिंदो आश्रम प्रकाशन विभाग, पांडिचेरी
12. सैनी, ए. (2017). श्री अरबिंदो का शैक्षिक दर्शन, इंटरनेशनल रेफरीड एंड ब्लाइंड पीयर–रिव्यूड मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च जर्नल

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना का ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य पर प्रभावः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

महेन्द्र कुमार
शोधार्थी,
समाजशास्त्र विभाग,
महाराज बलवन्त सिंह पीजी कॉलेज
गंगापुर वाराणसी
प्रो0 आलोक कुमार कश्यप
शोध निदेशक
समाजशास्त्र विभाग
महाराजा बलवंत सिंह पीजी कॉलेज
गंगापुर, वाराणसी, उ0प्र0

भारत के ऐसे ग्रामीण और वंचित परिवारों, जो कि ईंधन के जलावन लकड़ी, कोयला, गोबर के उपले आदि जैसे पारम्परिक खाना पकाने के ईंधन का प्रयोग कर रहे थे, के लिए एल० पी०जी० जैसे स्वच्छ खाना पकाने के ईंधन को उपलब्ध कराने के उद्देश्य से प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना के नाम से एक प्रमुख योजना आरम्भ किया गया। ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य सुधारने में प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना एक ऐतिहासिक कदम है। प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना के माध्यम से गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों के महिला के नाम से मुफ्त रसोई गैस कनेक्शन प्रदान किया जाता है। इस योजना का उद्देश्य महिलाओं को सशक्त बनाना, पौष्टिक खाना पकाने के लिए ईंधन प्रदान करने, जीवाश्म ईंधन के उपयोग के परिणामस्वरूप लाखों ग्रामीण लोगों के बीच खतरों और स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का निराकरण करना है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में खाना पकाने के पारम्परिक ईंधन का प्रयोग किया जाता है जिससे ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य के साथ–साथ पर्यावरण पर भी हानिकारक प्रभाव पड़ता है। प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना के अन्तर्गत केन्द्र सरकार सभी बी. पी. एल० तथा ए०पी० एल. राशनकार्ड धारक परिवारों की महिलाओं को 1600 रूपये की आर्थिक सहायता प्रदान कर रही है जिससे महिलाओं को आसानी से स्वच्छ ईंधन प्राप्त हो सके। यह योजना विशेष रूप से ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण एवं स्वच्छ, स्वस्थ समाज बनाने में अति महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए इस शोध

प्रपत्र का उद्देश्य प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना का ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना है।

मुख्य शब्द : ग्रामीण महिला, स्वास्थ्य, ईंधन, एल0पी0जी0, बी0पी0एल0, ए0पी0एल0

प्रस्तावना –

भारत एक विकासशील देश है, फिर भी पूरी दुनिया में विभिन्न मामलों में अग्रणी है और विकसित राज्य बनने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील है। इसके बावजूद भारत की एक प्रमुख समस्या गरीबी की है जिससे जुझने वाले लोग आज भी जीवनोपयोगी वस्तुएं जैसे– रोटी, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य आदि के लिए संघर्षरत है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में भोजन पकाने के लिए परम्परागत ईंधन जैसे– गोबर के उपले, लकड़ी, लकड़ी का कोयला, कोयला आदि का प्रयोग करते रहे हैं, जिसे प्राप्त करने का कार्य महिलायें ही करती रही है। इस तरह के ईंधन के प्रयोग करने से महिलाओं के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इन ईंधनों के प्रयोग से उत्पन्न धुंये महिलाओं तथा बच्चों को श्वास संबंधी बीमारियों का सामन करना पड़ता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में लगभग 5 लाख मृत्यु सिर्फ और सिर्फ अशुद्ध ईंधन के प्रयोग से उत्पन्न होने वाले रोग से हुई है, ''कई कम उम्र के लोगों की मृत्यु भी इसमें शामिल हैं, जिसके अन्तर्गत हृदय संबंधित विकार, स्ट्रोक आदि बड़े कारण है। महिलाओं के स्वास्थ्य सुधार और सशक्तिकरण को ध्यान में रखते हुए प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने 1 मई 2016 को उत्तर प्रदेश के बलिया से शुभारम्भ की। इस योजना के पहले चरण में 8 करोड़ गरीब, दलित, वंचित, पिछड़े, आदिवासी परिवारों की बहनों के नाम से मुफ्त गैस कनेक्शन दिया गया।

10 अगस्त 2021 को प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना 2.0 को प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने उत्तर प्रदेश के महोबा जिले से शुभारम्भ किया। प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना 2.0 के तहत कुल 4 करोड़ लाभार्थी शामिल किए गए हैं। इस उज्ज्वला 2.0 योजना में लाभार्थियों को पहली रिफिल मुफ्त में उपलब्ध कराने के साथ ही चूल्हा भी मुफ्त में दिया जाएगा। 30 नवम्बर 2021 तक कुल 8.8 करोड़ इस योजना के तहत एल पी जी कनेक्शन जारी किए जा चुके हैं। इस योजना के लाभार्थी वह सभी लोग है जोSECC 2011 (socio&Economic cast censes) के अन्तर्गत सूचीवद्ध है, जैसे–

- प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना के सभी एस०सी० एस० टी० परिवारों के लोग
- गरीबी रेखा के नीचे आने वाले लोग
- अन्त्योदय योजना के अन्तर्गत आने वाले लोग
- वनवासी
- अधिकांश पिछड़े वर्ग के लोग
- द्वीप में रहने वाले लोग
- नदी के द्वीपों में रहने वाले लोग

इस योजना का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित हैः–

1–योजना का नाम –प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना

2–संबंधित मंत्रालय –पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस मंत्रालय, भारत सरकार

3–शुभारंभ दिनांक–1 मई 2016

4–मुख्य उद्देश्य –गरीबी रेखा से नीचे वाले परिवारों को मुफ्त मेंएल0पी0जी0 कनेक्शन उपलब्ध कराना।

5–लाभार्थी को क्या मिलेगा – एक नया खाली एपीजी सिलिंडर,एक प्रेशर रेगुलेटर, मुफ्त DGCC पुस्तिका, एक सुरक्षा नली, मुफ्त इंस्टालेशन।

6–अन्य उद्देश्य :– महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देना, बच्चों और महिलाओंमें ईंधन के कारण होने वाले रोगों में कमी लाना, भीतरी और बाहरी वायु प्रदूषण को कम करना।

7–योजना का लक्ष्य –10 करोड़ से अधिक गरीब परिवारों को एल0पी0जी0कनेक्शन वितरित करना।

8–कुल बजट–16000 करोड़।

9–वित्तीय सहायता–प्रत्येक बी0पी0एल0 परिवार को 1600 रूपये की सहायता।

10–प्रत्येक पात्रता, शर्ते व नियम–SECC–2011 डेरा, प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना के लाभार्थी SC/ST व अन्य गरीब परिवार।

11– PM उज्ज्वला योजना हेल्पलाइन नम्बर – 1800–266–66 96

इस शोध पत्र का उद्देश्य प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना का महिलाओं के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना है

शोध प्रविधि :– इस शोध पत्र में द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है।

पूर्ववर्ती शोध समीक्षाः–

प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना की शुरूआत एक सामाजिक आन्दोलन के रूप में महिलाओं को खाना पकाने के लिए स्वच्छ ईंधन प्राप्त कराने के लिए की गई। प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना के विषय में तथा ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों की जानने के लिए निम्नलिखित समसामयिक निबन्धों, शोध प्रपत्रों आदि का अध्ययन किया ।

1–बीना श्रीवास्तव (2017) ने अपने अध्ययन प्रतिवेदन "प्रधानमंत्री उज्वला योजना प्रभाव एवं आंकलन'' में यह बताया कि गैस चूल्हा उपयोग के बाद परिवार व बच्चों के स्वास्थ्य सकारात्मक परिवर्तन आया है। उसे सीधे रूप में "धुंआ युक्त वातावरण से मुक्त होने के लाभ से जोड़ा जो सकता है।

2–अमोसे टी0 और श्रीदेवी एन0 (2017)ने अपने समीक्षा लेख ''एन इकोनोमिक एसेसमेन्ट टू प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना ऑफ सेन्ट्रल गवर्नमेंट आफ इंडिया" के सामाजिक–आर्थिक तत्वो, आय, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि पर पड़ने वाले प्रभावों की चर्चा की है।

3–अग्रवाल, एस0 कुमार एवं तिवारी एन0के0 (2018) द्वारा प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना, ऊर्जा नीति के लिए निर्णय समर्थन प्रणाली" विषय पर प्रकाशित शोध पत्र में इस योजना के बारे में विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की गई है।

4–विवेक आनन्द (2018) ने अपने लेख ''टू ईयर्स आफ उज्ज्वला योजना : दलित्स इन वेस्टर्न यूपी एण्ड बेनेफिट्स डिस्पाइट रेसेन्टमेन्ट अंगेन्स्ट सेन्टर आन अदर इस्यूस'' में योजना के जमीनी स्तर पर अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति पर व्यापक प्रभाव को स्वीकार किया है। विवेक आनन्द जी ने इस लेख में महिलाओं की इस योजना के पक्ष में प्रतिक्रिया को सामने लाया है।

5–अहमद एन0, सिंह अंजनी कुमार एवं शर्मा श्लग्या (2018) ने अपने लेख '' प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना स्टेप टूवर्डस सोशल इनक्लूसन इन इण्डिया" में इस योजना को बताते हुए, इसका महिला सशक्तिकरण, स्वस्थ समाज के निर्माण में एवं स्वच्छ पर्यावरण उपलब्ध कराने में योगदान की चर्चा की है।

6–घोष एस० के० (2020) द्वारा "एल० पी०जी० की कीमतों में वृद्धि के बाद उज्ज्वला योजना को ग्रामीण भारत का लाइव वायर बनाना" विषय पर इकोरैप एस०बी० आई० में विस्तृत जानकारी उपलब्ध करायी है।

7–मिश्रा राहुल कुमार, सिंह उद्यम एवं मिश्रा मोनिका (2021) ने अपने शोध प्रपत्र "उज्ज्वला योजना का ग्रामीण महिलाओं के जीवन पर प्रभाव" में यह निष्कर्ष दिया कि यह योजना ग्रामीण महिलाओं के लिए मील का पत्थर साबित हो रही है। इस योजना ने महिलाओं को सशक्त बनाया, उन्हें गम्भीर बीमारियों से बचाया और स्वस्थ जीवन का मार्ग प्रशस्त किया।

इस योजना को प्राप्त करने की प्रक्रिया एवं आवश्यक कागजातः–

सामाजिक–आर्थिक कागजात जातीय जनगणना 2011 की सूची में जिन परिवारों के नाम है उनके परिवार की 18 वर्ष से अधिक उम्र की महिला के नाम से गैस कनेक्शन जारी किया जाता है बशर्ते उस परिवार में पहले से कोई गैस कनेक्शन किसी अन्य सदस्य के नाम से न हो ।

इस योजना के लिए आवेदन पत्र प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना की वेबसाइट से प्राप्त किया जा सकता है अथवा एल० पी०जी० विक्रय केन्द्र से प्राप्त किया जा सकता है। आवेदन पत्र के साथ परिवार के राशन कार्ड, सामाजिक–आर्थिक जातीय जनगणना 2011 की सूची का फोटो प्रति, पासपोर्ट साइज फोटो, आधार कार्ड की छाया प्रति राष्ट्रीयकृत बैंक के खाते की छाया प्रति किसी राजपत्रित अधिकारी द्वारा प्रमाणित स्वघोषण–पत्र लगते है।

इस योजना के लाभार्थी को गैस कनेक्शन निःशुल्क दिया जाता है परन्तु गैस स्टोव और पहली बार गैस भरवाने के खर्च लाभार्थी को उठाना पड़ता है, अगर लाभार्थी यह खर्च उठाने में असमर्थ हो तो EMI की सुविधा भी योजना में उपलब्ध है जिसकी भरपाई उनकी सब्सिडी से काटी जाती है। जब सब्सिडी की भरपाई हो जाती है तो वह लाभार्थी के खाते में जाने लगती है।

प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना के लाभ :

प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं को स्वच्छ ईंधन उपलब्ध कराने में अति महत्वपूर्ण भूमिका है। इस योजना का शुभारम्भ प्रधानमंत्रीय श्री नरेन्द्र मोदी जी ने 1 मई 2016 को उत्तर प्रदेश के बलिया जिले से किया। इस योजना के द्वारा प्रारम्भ में 5 करोड़ परिवारों को मुफ्त गैस कनेक्शन देने का लक्ष्य रखा गया था जिसे समय–समय पर बढ़ाया गया जैसे– सन् 2020 में 8 करोड़ परिवारों तक इस योजना का लाभ पहुँचाने का लक्ष्य बनाया गया। प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना 2.0 के माध्यम से 1 करोड़ अन्य परिवारों को योजना का लाभ पहुंचाना लक्ष्य रखा गया और 30 नवम्बर 2021 तक कुल 8.8 करोड़ इस योजना के तहत एल0पी0जी0 कनेक्शनों जारी किए जा चुके हैं। इन कनेक्शनों को मिलाकर देश में कुल 29 करोड़ कनेक्शन हो गई है, इस योजना के तहत प्रारम्भ में जहाँ सिर्फ गैस कनेक्शन मुफ्त दिया जा रहा था, वही प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना 2.0 के द्वारा लाभार्थियों को पहली रिफिल मुफ्त में उपलब्ध कराने साथ चूल्हा भी मुफ्त में दिया जा रहा है।

इस योजना के माध्यम से मुफ्त गैस कनेक्शन मिलने वाले परिवारों को अब स्वच्छ एवं धुंआ धुंवा रहित ईंधन का प्रयोग कर रहे है। योजना के प्रारम्भ में वित्ति वित्तीय वर्ष 2016–17 में कुल 8000 करोड़ रूपये के बजट का आवंटन किया गया। अभी तक का कुल बजट 16000 करोड़ है। योजना का लक्ष्य कुल 10 करोड़ से अधिक परि गरीब परिवारों को एलजी०जी० कनेक्शन वितरित करना है। यह योजना देश के 75 जिलों

को कबर कर रही है। साथ ही अमीर लोगों से अपनी गैस सब्सिडी छोड़ने का अनुरोध भी किया गया है।

प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना से देश के लोगों को कई तरह के लाभ प्राप्त है, जो कि इस योजना के उद्देश्य से सम्बद्ध है जैसे– इस योजना के लागू होने से ग्रामीण महिलाओं का जो समय पारंपारिक ईंधन लकड़ी, गोबर के उपले, फसलों के अपशिष्ट आदि इक्ट्ठा करने में लगता था, वह अब किसी अन्य सामाजिक, आर्थिक एवं पारिवारिक कार्यों में लग रहा है। ग्रामीण महिलाओं को पारम्परिक ईंधन. कोयला, लकड़ी वगैरह से भोजन पकाने में बहुत धुंए का सामना करना पड़ता था जिसके परिणामावा उन्हें एवं परिवार के बच्चों, वृद्धों को श्वास संबंधी, फेफड़े से संबंधित, आँख से संबंधित एवं कैंसर जैसी गम्भीर बीमारियों खतरा रहता था, उनसे मुक्ति मिली है। किसी भी समाज की प्रगति तभी सम्भव है जब समाज के लोग स्वस्थ हो । प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना से महिलाओं, बच्चों, गर्भवती महिलाओं एवं वृद्धों के स्वास्थ्य में सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। साथ–ही–साथ पारम्पारक ईंधन के स्थान पर रसोई गैस के प्रयोग करने से न सिर्फ घर का वातावरण में शुद्धता आयी है बल्कि हमारे पर्यावरण को भी स्वच्छ बनाने में सहायता मिली है।

प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना की चुनौतियां एवं समाधान :–

प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना के लाभार्थी की पालता है कि वह बी०पी० एल० सूची, SECC सूची 2011, अंत्योदय योजना के अन्तर्गत आने वाले लोग, अधिकांश पिछड़ा वर्ग आदि लेकिन बहुत से ऐसे परिवार भी है जो यह पालता नहीं रखते हैं और अक्षम है, को गैस कनेक्शन नहीं मिल पाता है। उन्हें भी इसका लाभ देने का व्यवस्था की जानी चाहिए!

इस योजना के लाभार्थी को सब्सिडी सहित गैस के खर्च की व्यवस्था करनी पड़ती है, फिर भी वही सब्सिडी लाभार्थी के खाते बैंक खाते में आती है जिससे समय और धन दोनों का नुकसान होता है। बहुत से लाभार्थी पर्याप्त धन के अभाव में दोबारा गैस नहीं भरवा पाते है । इन चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए सरकार को चाहिए कि जो सब्सिडी वह लाभार्थी के बैंक खाते में डालती है उसे सीधे तेल एवं प्राकृतिक गैस कम्पनी को ही दे दे, जिससे लाभार्थी पर इसका बोझ नहीं पड़ेगा औरवह आवश्यकतानुसार वह गैस दोबारा भरवाने के लिए उत्साहित रहेगा। इनके अतिरिक्त सरकार को निम्नलिखित बातों पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है –

1– सरकार को यह देखना चाहिए कि जितने गैस कनेक्शन जारी किये गये हैं। उनमें से कितने लाभार्थियों ने दोबारा गैस भरवाई है। जिन्होंने दोबारा नहीं भरवाई उनकी समस्याओं के समाधान किए जाने चाहिए।

2– सरकार एवं गैर–सरकारी संगठनों, महिलाओं को गैस उपयोग करने के लाभ के प्रति जागरूकता फैलाने की व्यवस्था की जानी चाहिए, जिसमें मीडिया भी अहम भूमिका निभा सकती है।

3. रसोई गैस पर भोजन पकाते समय कौन कौन सी सीखव सावधानियाँ बरतनी चाहिए तथा अगर आग लग जाये तो उसे कैसे बुझाना है। इन सभी बातों की जानकारी देने के लिए बड़े पैमाने पर जागरूकता कार्यक्रम भी चलाया जाना चाहिए।

निष्कर्ष :–

प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना से महिलाओं को खाना पकाने के लिए स्वच्छ ईंधन प्राप्त हुआ है एवं ईंधन से खाना पकाने पर होने वाले धुंए की समस्या से उन्हें मुक्ति मिली है। यह योजना गरीब ग्रामीण महिलाओं के लिए वरदान है। इस योजना की लाभार्थी

महिलाओं को यह लाभ मिला है कि रसोई गैस पर भोजन पकाने में जो समय बच रहा है उस समय का वे किसी अन्य पारिवारिक, सामाजिक एवं आर्थिक कार्य में लगा रही है। गरीब ग्रामीण महिलाओं को रसोई गैस कनेक्शन उपलब्ध कराने से महिलाओं के स्वास्थ्य में सुधार हुई है।यह एक ऐसी योजना है जिसने न सिर्फ महिलाओं को स्वच्छ ईंधन उपलब्ध कराया है बल्कि पर्यावरण को शुद्ध करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस योजना का ही प्रभाव रहा है कि अधिकांश महिलाओं को पारम्परिक ईंधन के प्रयोग से मुक्ति मिल रही है, तथा भोजन पकाने का कार्य भी आसान हुआ है। इस योजना ने एक स्वस्थ समाज एवं स्वच्छ पर्यावरण उपलब्ध कराने में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

सन्दर्भ

1. श्रीवास्तव, बीना (2017) प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना, प्रभाव एवं आंकलन, अटल बिहारी वाजपेयी, सुशासन एवं नीति विश्लेषण संस्थान, भोपाल,
2. अग्रवाल एस, कुमार एस०, तिवारी एम. के. (2018) प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना, ऊर्जा नीति के लिए निर्णय समर्थनप्रणाली, खण्ड – 118, पृष्ठ– 455

3.अमोसे टी० एवं श्रीदेवी एन० (2017) एन इकोनोमिक एसेसमेन्ट टू प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना स्कीमआफसेन्ट्रल गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया, इन्टरनेशनल जनल आफ करेन्ट रिसर्च, 9, 60747–60750

4. अहमद एन० सिंह अंजनी कुमार, शर्मा श्लग्या (2018) प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना (च्डन्ल) स्टेप ट्वर्ड सोशलइनक्लूसन इन इण्डिया, इंटरनेशनल जनल आफ ट्रेन्ड अन रिसर्च एण्ड डेवेलपमेन्ट, 5 पृष्ठ –५७–५१
5. आनन्द विवेक (2018) टू ईयर्स आफ उज्ज्वला योजना : दलित्स इन वेस्टर्न यू० पी० लैण्ड बेनेफिट्स रेसेटमेन्ट एग अगेन्स्ट सेन्टर आज अंदर इस्यूस. फर्स्ट पोस्ट।

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

आगम साहित्य में उत्तराध्ययनसूत्र

डॉ. ममता देवी
सहायक प्रोफेसर प्राचीन इतिहास विभाग,
महाराज बलवन्त सिंह पीजी कॉलेज
गंगापुर वाराणसी

आगम साहित्य में उत्तराध्ययनसूत्र एक अंगबाह्य के रूप में जाना जाता है सामान्य रूप से मूलसूत्रों की संख्या चार है। चाहे कितने मतभेद रहे हों, पर सभी ने उत्तराध्ययन को मूल सूत्र माना है। उत्तराध्ययन में दो शब्द–'उत्तर' और 'अध्ययन' है। समवायांग में 'छत्तीसं उत्तरज्झयाणा' वाक्य मिलता है। इस वाक्य में उत्तराध्ययन के 36 अध्ययनों का प्रतिपादन नहीं है लेकिन 36 उत्तर अध्ययन प्रतिपादित किए गए हैं। नन्दीसूत्र में भी 'उत्तरज्झयपाणि' यह बहुवचनात्मक नाम प्राप्त होता है। उत्तराध्ययन की अंतिम गाथा में भी 'छत्तीसं उत्तरज्यझाए' बहुवचनात्मक नाम मिलता है। चूर्णि में 36 उत्तराध्ययनों का एक श्रुतस्कन्ध माना गया है, फिर भी इसका नाम बहुवचनात्मक नाम से ही जाना जाता है। बहुवचनात्मक नाम से यह ज्ञात होता है कि उत्तराध्ययन अध्ययनों का एक योग मात्र है, प्रतिनिधि रूप से एक ग्रन्थ नहीं है। उत्तर शब्द पूर्व की अपेक्षा से ही है। चूर्णि में इन अध्ययनों की तीन प्रकार से योजना प्राप्त होती है–(1) स–उत्तर–पहला अध्ययन, (2) निरुत्तर–छत्तीसवां अध्ययन और (3) स–उत्तर–निरुत्तर–बीच के सारे अध्ययन। किन्तु चूर्णिकार के अनुसार उत्तर शब्द की प्रस्तुत अर्थ योजना अधिकृत नहीं है। श्रुतकेवली आचार्य शय्यंभवसूरि के पश्चात् ये अध्ययन दशवैकालिक के उत्तरकाल में पढ़े जाने लगे, अतएव ये उत्तर अध्ययन ही बने रहे जो उत्तर शब्द की संगत व्याख्या प्रतीत होती है।

दिगम्बर ग्रन्थों में उत्तर शब्द की अनेक दृष्टियों से व्याख्या प्राप्त होती है। धवला के अनुसार उत्तराध्ययन उत्तरपदों का वर्णन करता है। यह उत्तर शब्द समाधान का प्रतीक है। अंगपण्णत्ती में उत्तर शब्द के दो अर्थ मिलते हैं–(1) उत्तरकाल–किसी ग्रन्थ के पश्चात पढ़े जाने वाले अध्ययन एवं (2) उत्तर–प्रश्नों का उत्तर देने वाले अध्ययन। इन अर्थों में उत्तर और अध्ययनों के सम्बन्ध में सत्य तथ्यों को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है। उत्तराध्ययन में 4, 16, 23, 25 और 29वां–ये अध्ययन प्रश्नोत्तरी शैली में लिखे गए हैं और कुछ अन्य अध्ययनों में भी आंशिक रूप से कुछ प्रश्नोत्तर आए हैं। प्रस्तुत दृष्टि से उत्तर का 'समाधानसूचक' अर्थ संगत होने पर भी

सभी अध्ययनों में यह घटित नहीं होता। उत्तरकालवाची अर्थ संगत होने के साथ पूर्ण रूप से व्याप्त भी है। अतः उत्तर का मुख्य अर्थ यही उचित प्रतीत होता है। अध्ययन का अर्थ पढ़ना है किन्तु यहां पर अध्ययन शब्द परिच्छेद अथवा अध्याय के अर्थ में प्रयोग किया गया है।

उत्तराध्ययन के मूल पाठ पर ध्यान देना उसके कर्तृत्व के सम्बन्ध में कुछ चिन्तन करने योग्य है। इससे यह परिलक्षित होता है कि दूसरा और उन्तीसवां अध्ययन तो भगवान महावीर द्वारा प्ररूपित है और सोलहवां अध्ययन स्थविर द्वारा रचित है। निर्युक्तिकार ने द्वितीय अध्ययन को कर्मप्रवादपूर्व से निर्यूढ़ माना है जबकि इस अध्ययन के प्रारम्भिक वाक्य से यह स्पष्ट होता है कि वह जिनभाषित है।

जब हम उत्तराध्ययनसूत्र के रचना के बारे में चिन्तन करते हैं तो यह पाते हैं कि निर्युक्तिकार ने चार वर्गों में विभक्त कर उसके कर्तृत्व पर प्रकाश डालना चाहा किन्तु उस कर्तृत्व पर तो प्रकाश नहीं पड़ता है, तथापि विषयवस्तु पर अवश्य ही प्रकाश पड़ता है। दसवें अध्ययन में जो विषयवस्तु है वह भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित है किन्तु उनके द्वारा रचित नहीं क्योंकि प्रस्तुत अध्ययन की अंतिम गाथा 'बुद्धस्स निसम्म भासियं' से यह बात स्पष्ट होती है। इसी तरह दूसरे और उन्तीसवें अध्ययन के प्रारम्भ के वाक्यों से भी यह तथ्य उद्घाटित होता है।

छठें अध्ययन की अन्तिम गाथा है—अनुत्तरज्ञानी, अनुत्तरदर्शी, अनुत्तर—ज्ञान—दर्शन के धर्ता, अर्हत्—तत्व के व्याख्याता ज्ञातपुत्र वैशालिक (तीर्थंकर महावीर) ने ऐसा कहा है। इसी प्रकार प्रत्येकबुद्ध—भाषित अध्ययन भी प्रत्येक बुद्ध द्वारा ही विरचित हो, यह बात नहीं है क्योंकि आठवें अध्ययन की अंतिम गाथा में कहा गया है कि विशुद्ध प्रज्ञा वाले कपिलमुनि ने इस प्रकार धर्म कहा हैं—जो इसकी सम्यक् आराधना करेंगे, वे संसार समुद्र को पार करेंगे। उनके द्वारा ही दोनों लोग आराधित होंगे। उनके द्वारा रचित होता तो इस प्रकार कैसे कहते?

सम्वाद—समुत्थित अध्ययन नवें और तेइसवें अध्ययनों का पर्यवेक्षण करने पर यह ज्ञात होता है कि वे नमि राजर्षि और केशरी—गौतम द्वारा विरचित नहीं हैं। नवें अध्ययन की अन्तिम गाथा है—सम्बुद्ध, पण्डित और विलक्षण पुरुष इसी प्रकार भोगों से निवृत्त होते हैं जैसे कि नमि राजर्षि। तेइसवें अध्ययन की अन्तिम गाथा है कि समग्र सभा धर्मचर्चा से सन्तुष्ट हुई। अतः सन्मार्ग में समुपस्थित उसने भगवान् केशरी और गौतम की स्तुति की कि वे दोनों प्रसन्न रहें।

वस्तुतः निर्युक्तिकार द्वारा जिस उत्तराध्ययनसूत्र को कर्तृत्व की दृष्टि से चार वर्गों में विभक्त किया गया उसका तात्पर्य इतना ही है कि भगवान् महावीर, कपिल, नमि और केशी—गौतम के उपदेश एवं संवादों को आधार बनाकर इन अध्ययनों की रचना हुई। इन अध्ययनों के रचयिता कौन हैं और उन्होंने कब इन अध्ययनों की रचना की? इस प्रश्न का उत्तर न निर्युक्तिकार भद्रबाहु ने, न चूर्णिकार जिनदास महत्तर ने और न बृहद्वृत्तिकार शान्त्याचार्य ने ही दिया है।

ऐसा माना जाता है कि वर्तमान में उपलब्ध उत्तराध्ययनसूत्र किसी एक व्यक्ति विशेष की रचना नहीं है अपितु अनेक स्थविर मुनियों की रचनाओं का संकलन है। उत्तराध्ययनसूत्र के कुछ अध्ययन भगवान् महावीर तो कुछ अध्ययन स्थविरों द्वारा संकलित हैं।[14] इसके बावजूद इतना निश्चित है कि देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के समय तक उत्तराध्ययन छत्तीस अध्ययन के रूप में संकलित हो गया था, इसीलिए समवायांग में छत्तीस उत्तर अध्ययनों के नामों का उल्लेख हुआ है। विषयवस्तु की दृष्टि से

उत्तराध्ययनसूत्र के अध्ययन चार विभागों धर्मकथात्मक, उपदेशात्मक, आचारात्मक और सैद्धान्तिक में विभक्त किए जा सकते हैं। जैसे–

1. धर्मकथात्मक–7, 8, 9, 12, 13, 14, 18, 19, 20, 21, 22, 23, 25 और 27।
2. उपदेशात्मक–1, 3, 4, 5, 6 और 10।
3. आचारात्मक–2, 11, 15, 16, 17, 24, 26, 32 और 35।
4. सैद्धान्तिक–28, 29, 30, 31, 33, 34 और 36।

जैन आगमों को आर्यरक्षिता (विक्रम की प्रथम शती) ने चार अनुयोगों में विभक्त किया। उसमें उत्तराध्यनसूत्र को धर्मकथानुयोग के अन्तर्गत गिना है। सम्भवतः उत्तराध्ययन में धर्मकथानुयोग की प्रधानता होने से वर्गीकरण में लिया गया होगा किन्तु आचारात्मक अध्ययनों को चरण–करणानुयोग में और सैद्धान्तिक अध्ययनों को द्रव्यानुयोग में सहज रूप से लिया जा सकता है। इस प्रकार उत्तराध्ययनसूत्र का जो वर्तमान रूप है उसमें अनेक अनुयोग सम्मिलित हैं।

कुछ आधुनिक चिन्तकों का विचार है कि उत्तराध्ययनसूत्र के पहले के अट्ठारह अध्ययन प्राचीन हैं और उसके बाद के अट्ठारह अध्ययन नवीन हैं किन्तु अपने मन्तव्य को सिद्ध करने के लिए वे कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर पाए हैं। कुछ विद्वान यह भी मानते हैं कि बाद के अट्ठारह अध्ययन तो नवीन नहीं हैं, बल्कि उसमें से कुछ अध्ययन बाद के हो सकते हैं। यथा–इकतीसवें अध्ययन में आचारांग, सूत्रकृतांग आदि प्राचीन नामों के साथ दशाश्रुतस्कन्ध, वृहत्कल्प, व्यवहार और निशीथ जैसे अर्वाचीन आगमों के नाम भी मिलते हैं जो श्रुतकेवली भद्रबाहु द्वारा निर्यूढ़ या कृत हैं। इनका समय वीर–निर्वाण की दूसरी शती है, अतएव प्रस्तुत अध्ययन की रचना भद्रबाहु के पश्चात् की ही मानी जानी चाहिए।

प्राचीन आगम साहित्य अन्तकृतदशांग[18] आदि में श्रमण–श्रमणियों के चौदह पूर्व, ग्यारह अंग या बारह अंगों के अध्ययन का वर्णन उपलब्ध नहीं होता किन्तु उत्तराध्ययनसूत्र के अट्ठाइसवें अध्ययन में अंग और अंगबाह्य–इन दो प्राचीन विभागों के अतिरिक्त ग्यारह अंग, प्रकीर्णक और दृष्टिवाद का उल्लेख मिलता है, अतएव प्रस्तुत अध्ययन भी उत्तरकालीन आगम व्यवस्था के सन्निकट की रचना होनी चाहिए। दिगम्बर साहित्य में भी उत्तराध्ययन की विषयवस्तु का संकेत किया गया है जो इस प्रकार है–

धवला में उल्लेख मिलता है कि उत्तराध्ययनसूत्र में उद्गम, उत्पादन और एषणा से सम्बन्धित दोषों के प्रायश्चितों का विधान है[20] और उत्तराध्ययनसूत्र उत्तरपदों का वर्णन करता है। अंगपण्णत्ती में वर्णन है कि बाइस परीषहों और चार प्रकार के उपसर्गों के सहन का विधान, उसका फल तथा प्रस्तुत प्रश्न का यह उत्तर है। यह उत्तराध्ययन का प्रतिपाद्य विषय है। हरिवंश पुराण में आचार्य जिनसेन ने लिखा है कि उत्तराध्ययन में वीर–निर्वाण गमन का वर्णन है। इसमें आंशिक रूप से अंगपण्णत्ती का विषय मिलता है। जैसे–(1) बाइस परिषहों के सहन करने का वर्णन–दूसरे अध्ययन में, (2) प्रश्नों के उत्तर–उन्तीसवें अध्ययन में।

उत्तराध्ययनसूत्र में भगवान् महावीर के निर्वाण के साथ ही प्रायश्चित का विधान भी मिलता है। सम्भव है कि इन लेखकों को उत्तराध्ययनसूत्र की प्रति प्राप्त नहीं हुई हो और भ्रान्तिपूर्ण अनुश्रुतियों के आधार पर 'ऐसा होगा' लिख दिया हो अथवा उन्हें उत्तराध्ययन का अन्य संस्करण प्राप्त हुआ हो। तत्त्वार्थराजवार्तिक में उत्तराध्ययनसूत्र को गणधरों के पश्चात् के आचार्यों की रचना माना गया है। उत्तराध्ययनसूत्र की जो सूची समवायांग[25] में दी गई है वह उत्तराध्ययन में ज्यों की त्यों प्राप्त होती है, इसलिए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उत्तराध्ययन की विषयवस्तु प्राचीन है।

दशवैकालिक सूत्र की रचना वीर—निर्वाण की प्रथम शताब्दी में हो चुकी थी। उत्तराध्ययनसूत्र दशवैकालिक के पहले की रचना है। वह आचारांग के पश्चात् पढ़ा जाता था, अतएव इसकी संकल्पना वीर—निर्वाण की प्रथम शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही होना सिद्ध होती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या उत्तराध्ययन भगवान् महावीर की अंतिम वाणी है? इसके निमित्त कुछ जैन विद्वानों के विचारों पर ध्यान देना अपेक्षित है। यथा—श्रुतिकेवली भद्रबाहु स्वामी के कल्पसूत्र में आया है कि श्रमण भगवान् महावीर कल्याणफल—विपाक वाले पचपन अध्ययनों और पाप फल वाले पचपन अध्ययनों एवं छत्तीस अपृष्ट—व्याकरणों का व्याकरण कर प्रधान नामक अध्ययन का प्ररूपण करते—करते सिद्ध—बुद्ध—मुक्त हो गए। इसलिए यह माना जाता है कि छत्तीस अपृष्ट—व्याकरण उत्तराध्ययनसूत्र के ही छत्तीस अध्ययन हैं। उत्तराध्ययनसूत्र के छत्तीसवें अध्ययन की अंतिम गाथा का अर्थ करते हुए जिनदासगणि महत्तर ने कहा है कि ज्ञातकुल में उत्पन्न वर्द्धमान स्वामी छत्तीस अध्ययनसूत्र का प्रज्ञापन या प्रकाशन कर परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।[27] बृहद्वृत्ति में जिन शब्द का अर्थ श्रुतजिन—श्रुतकेवली बताया है,[28] निर्युक्तिकार के विचार से छत्तीस अध्ययन श्रुतकेवली प्रभृत स्थविरों द्वारा प्ररूपित हैं। उन्होंने निर्युक्ति के सम्बन्ध में कोई चर्चा नहीं की है कि यह भगवान् ने अन्तिम देशना में कहा है।

इसी प्रकार समवायांग में छत्तीस अपृष्ट—व्याकरणों का कोई भी उल्लेख नहीं है। उसमें मात्र इतना ही सूचना है कि भगवान् महावीर अंतिम रात्रि के समय पचपन कल्याणफल—विपाक वाले अध्ययनों तथा पचपन पाप—फल विपाक वाले अध्ययनों का व्याकरण कर परिनिर्वृत्त हुए।

उत्तराध्ययनसूत्र का गम्भीरतापूर्वक अवलोकन करने पर स्पष्ट परिलक्षित होता है कि इसमें भगवान् महावीर की वाणी का विवेचन सम्यक् रूप से हुआ है। यह भगवान् महावीर की वाणी का प्रतिनिधित्व करने वाला आगम है। इसमें जीव, अजीव, कर्मवाद, षट्द्रव्य, नवतत्व, पार्श्वनाथ और महावीर की परम्परा जैसे सभी विषयों का सम्यक् ढंग से प्रतिपादन हुआ है। केवल धर्मकथानुयोग का ही नहीं अपितु चारों अनुयोगों का सम्मिलन हुआ है, इसलिए यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि यह भगवान् महावीर की वाणी का प्रतिनिधित्व करने वाला आगम है। इसमें वीतराग वाणी का विमल प्रवाह प्रवाहित है। इसके अर्थ के प्ररूपक भगवान महावीर हैं किन्तु सूत्र के रचयिता स्थविर होने से इसकी गणना अंगबाह्य आगमों में की जाती है।

यह अधिकारपूर्ण ढंग से तो नहीं कहा जा सकता कि उत्तराध्यनसूत्र शब्दतः भगवान् महावीर की अंतिम देशना ही है, क्योंकि कल्पसूत्र में उत्तराध्ययनसूत्र को अपृष्ट व्याकरण अर्थात् बिना किसी के पूछे स्वतः कथन किया हुआ शास्त्र बताया है लेकिन वर्तमान में उपलब्ध उत्तराध्ययनसूत्र में आए हुए केशी—गौतमीय, सम्यकत्व—पराक्रम अध्ययन जो प्रश्नोत्तरी शैली में हैं, वे चिन्तकों को चिन्तन के लिए अवश्य ही प्रेरित करते हैं। केशी—गौतमीय अध्ययन में भगवान् महावीर का जिस भक्ति और श्रद्धा के साथ गौरवपूर्ण उल्लेख है वह भगवान् स्वयं अपने लिए किस प्रकार कह सकते हैं, अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तराध्ययनसूत्र में कुछ अंश स्थविरों ने अपनी ओर से संकलित किया हो और उन प्राचीन एवं तत्समय उपलब्ध अध्ययनों को वीर— निर्वाण की एक सहस्राब्दी के पश्चात देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने संकलन कर उसे एक रूप दिया हो। उत्तराध्ययनसूत्र भाषा और विषय की दृष्टि से एक प्राचीन रचना है। शार्पेन्टियर, जैकोबी और विण्टरनित्स आदि विद्वानों ने इसके बारे में विस्तृत चर्चा किया है।

उत्तराध्ययनसूत्र के अनेक स्थलों की तुलना बौद्धों के सुत्तनिपात, जातक और धम्मपद आदि से की जा सकती है। जैसे, राजा नमि को बौद्ध साहित्य में प्रत्येक बुद्ध मानकर उसकी कठोर तपस्या का वर्णन किया है। हरिकेशमुनि की कथा कुछ प्रकारान्तर से मातंग जातक में मिलती है। चित्तसंभूत की कथा की तुलना चित्तसंभूत जातक से की जा सकती है। इषुकार कथा की तुलना हत्थिपार जातक में वर्णित कथा से हो सकती है। प्रत्येक बुद्धों की कथा कुम्भकार जातक में कही गई है। इसी प्रकार उत्तराध्ययनसूत्र के सुभाषित एवं संवाद भी बौद्ध ग्रन्थों में मिलते हैं जो इसकी प्राचीनता को प्रमाणित करते हैं। उत्तराध्ययनसूत्र में कुल छत्तीस अध्ययन हैं। उपलब्ध मूलपाठ में 2100 श्लोक प्रमाण, 1656 पद्यसूत्र और 89 गद्यसूत्र हैं। उत्तराध्ययनसूत्र का प्रथम अध्ययन 'विनय–श्रुत' है। विनय का अर्थ अनुवर्तन, प्रवर्तन, अनुशासन, शुश्रूषा और शिष्टाचार का परिपालन है, इसीलिए इन्हें निजशासन का आधार बताया गया है। विनय केवल मानसिक आस्था नहीं वरन् आत्मिक और व्यावहारिक विशेषताओं की अभिव्यंजना है। जो गुरु की आज्ञा का पालन करता हो, गुरु के समीप रहता हो, गुरु के इंगित और मनोभावों को जानता हो वह विनीत है। अपनी आत्मा का दमन करके जिसने अपनी आत्मा को वश में कर लिया है वह इहलोक और परलोक–दोनों में सुखी होता है।[32] यदि कभी आचार्य क्रुद्ध हो जाय तो उन्हें प्रेमपूर्वक प्रसन्न करना चाहिए।

उत्तराध्ययनसूत्र के दूसरे अध्ययन में 'परीषह–प्रविभक्ति' का वर्णन है। जो सहा जाता है वह परीषह है। सहने के दो प्रयोजन हैं–(1) सुकृतमार्ग से च्युत न होने के लिए और (2) कर्मों को क्षीण करने के लिए। जो कष्ट इच्छा से झेला जाता है वह कायक्लेश है और जो इच्छा के बिना ही प्राप्त होता है वह परीषह है। परीषह सहने से अहिंसादि धर्मों की सुरक्षा होती है। परीषह 22 हैं जो इस प्रकार हैं–क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, अचेल (वस्त्ररहित होना), अरति (अप्रीति), स्त्री, चर्या (गमन), निषद्या (बैठना), शय्या, आक्रोश (कठोर वचन), वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, जल्ल (मल), सत्कार–पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और दर्शन। साधक की बाहु–जंघा तपोसाधना के कारण कृश हो जाय, शरीर की प्रत्येक नस दिखाई देने लगे, फिर भी भोजन–पान के लिए भिक्षु दीनवृत्ति नहीं करता। वह तृषा से पीड़ित होने पर भी संचित्त जल का उपयोग नहीं करता। सर्दी से ठिठुरता हुआ भी अग्नि की इच्छा नहीं करता। डांस–मच्छर उसे अपार कष्ट दे रहे हों फिर भी वह उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं पहुंचाता। इस प्रकार साधक सभी परीषहों में दृढ़ता के साथ आत्मचिन्तन में तल्लीन रहता है।

उत्तराध्ययनसूत्र का तीसरा अध्ययन 'चतुरंगीय' है। इस अध्ययन में मानवता, धर्मश्रवण, श्रद्धा एवं तपसंयम में पुरुषार्थ–इन चार दुर्लभ अंगों का निरूपण किया गया है। उत्तराध्ययनसूत्र का चौथा अध्ययन 'असंस्कृत' है। इस अध्ययन की 13 गाथाओं में संसार की क्षणभंगुरता का प्रतिपादन करके भारंड पक्षी की तरह अप्रमत्त रहने का उपदेश दिया गया है। जीवन असंस्कृत है, इसका संधान नहीं किया जा सकता, इसलिए प्रमाद से दूर रहना चाहिए। क्रोध, मान, माया और लोभ का परित्याग करना चाहिए।

उत्तराध्ययनसूत्र का पांचवां अध्ययन 'अकाममरणीय' है। निर्युक्ति में इसका दूसरा नामक 'मरणविभक्ति' मिलता है। जीवन की भांति मृत्यु भी कला है। जिनको यह कला नहीं आती वे सदा के लिए अपने पीछे दूषित वातावरण छोड़ जाते हैं, इसीलिए मरणविवेक जरूरी है। मरण–अकाममरण और सकाममरण रूप में दो प्रकार का है। सद्सत् विवेक से शून्य मूढ़ पुरुषों का मरण अकाममरण है जो बार–बार होता है। विवेकी पुरुषों का मरण सकाममरण है जो एक ही बार होता है। उत्तराध्ययनसूत्र का

छठां अध्ययन 'क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय' है। इसमें निर्ग्रन्थ के बाह्य और आभ्यन्तर ग्रन्थ त्याग का संक्षिप्त निरूपण है। निर्ग्रन्थ शब्द जैन परम्परा का विशिष्ट शब्द रहा है। बौद्ध साहित्य में भी इसका उल्लेख है। ग्रन्थ को त्राण मानना अविद्या है। समवायांग में इस अध्ययन का नाम 'पुरुषविद्या' मिलता है।

उत्तराध्ययनसूत्र का सातवां अध्ययन 'एलय (उरभ्रीय)' है। एलय और उरभ्रीय का अर्थ है बकरा। इस अध्ययन में पांच कथाओं का निरूपण है। जैसे–(1) कोई व्यक्ति अतिथि के लिए बकरे को चावल और यव (जौ) खिलाकर हृष्ट–पुष्ट बनाता है। जब तक अतिथि नहीं आता तब तक वह प्राण धारण करता है। अतिथि के आते ही लोग उसे मारकर खा जाते हैं। (2) जैसे काकिणी (रुपये का 100वां भाग) के लिए किसी मनुष्य ने हजारों सुवर्ण मुद्राएं खो दीं। (3) किसी राजा ने अपथ्य आहार करके अपना सारा राज्य खो दिया। (4) मनुष्य जीवन के सुख ओसकण की तरह अल्प और क्षणिक हैं और दिव्यसुख सागर के समान विशाल और स्थाई है। (5) पिता का आदेश पाकर तीन पुत्र व्यापार करने गए। एक व्यापार में बहुत धन कमाकर लौटा। दूसरा जैसे गया था, वैसे ही मूल पूंजी बचाकर लौट आया। तीसरा जो धन लेकर गया था, वह भी खो आया।

उत्तराध्ययनसूत्र का आठवां अध्ययन 'कापिलीय' है। कपिल लोभ से विरक्त होकर मुनि बनता है। चोरों ने उसे घेर लिया। उस समय उसने संगीतात्मक उपदेश दिया। उसी का इसमें संग्रह है। कपिलमुनि के द्वारा यह गाया गया है। अतः इसे कापिलीय कहा गया है। सूत्रकृतांगचूर्णि में इसे गेय माना गया है। नाम के दो प्रकार होते हैं–(1) निर्देश्य अर्थात् विषय के आधार पर और (2) निर्देशक अर्थात् वक्ता के आधार पर। इस अध्ययन का नाम निर्देशकपरक होने से कापिलीय रखा है। लोभ किस प्रकार बढ़ता है, इसका अनुभूत परिदृश्य इसमें खींचा गया है।

उत्तराध्ययनसूत्र का नवां अध्ययन 'नमिप्रव्रज्या' है। श्रमणमुनि वही बनता है जिसे बोधिप्राप्त हो। वे तीन प्रकार के होते हैं–(1) जो स्वयं बोधि प्राप्त करते हैं, उन्हें स्वयं बुद्ध कहा जाता है, (2) जो किसी एक घटना के निमित्त से बोधि प्राप्त करते हैं उन्हें प्रत्येकबुद्ध कहा जाता है, (3) जो बोधिप्राप्त व्यक्तियों के उपदेश से बोधि प्राप्त करते हैं उन्हें बुद्धबोधित कहते हैं। उत्तराध्ययनसूत्र के इस अध्ययन में प्रव्रज्या के लिए अभिनिष्क्रमण करने वाले राजर्षि नमि का ब्राह्मणवेशधारी इन्द्र के साथ आध्यात्मिक संवाद है। इस संवाद में नमि के प्रव्रज्या का वर्णन होने से इसका नाम नमि प्रव्रज्या है। उत्तराध्ययनसूत्र के दसवें अध्ययन का नाम 'द्रुमपत्रक' है। जैसे वृक्ष का पीला पड़ा हुआ पत्ता समय व्यतीत होने पर स्वयं ही झड़कर गिर जाता है, वैसे ही मनुष्य का जीवन भी क्षणभंगुर है। मनुष्यभव दुर्लभ है, जो जीवों को अनेक भवों के बाद प्राप्त होता है। कर्मों का विपाक घोर है, इसलिए सभी साधकों को आत्मसाधना में क्षणमात्र का भी प्रमाद न करने का संदेश भगवान् ने दिया है।

उत्तराध्ययनसूत्र के ग्यारहवें अध्ययन 'बहुश्रुत–पूजा' में बहुश्रुत की भावपूजा का निरूपण है। यहां पर बहुश्रुत का प्रमुख अर्थ चतुर्दशपूर्वी है। बहुश्रुतता का प्रमुख कारण विनय है। इसी का श्रुत फलवान होता है। जो सदा गुरुकुल में रहकर योग और तप साधना करता है, प्रियकारी है और प्रिय वचन बोलता है, वह शिक्षा का अधिकारी है। जैसे मेरु पर्वतों में महान है, वैसे बहुश्रुत ज्ञानी पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ है। उत्तराध्ययनसूत्र के बारहवें अध्ययन 'हरिकेशीय' में मुनि हरिकेशी का वर्णन है। चाण्डाल कुल में उत्पन्न हरिकेशी मुनि भिक्षा के लिए ब्राह्मणों की यज्ञशाला में पहुंचे। तप से कृश, वस्त्रों से मलिन, उन्हें आता हुआ देखकर अशिष्ट लोग हंसने लगे। लोगों द्वारा पूछने पर वह

बताते हैं कि मैं श्रमण हूं, ब्रह्मचारी हूं, धन–सम्पत्ति और परिग्रह से विरक्त हूं, इसलिए अनुद्रिष्ट भोजन ग्रहण करने के लिए यहां आया हूं। इसके पश्चात् तेरहवें अध्ययन 'चित्र–सम्भूतीय' में चित्त और संभूत नाम के दो भाइयों की छह जन्मों की पूर्व कथा का संकेत है, इसलिए इसका नाम 'चित्रसंभूतीय' है। पुण्यकर्म के निदान बन्धन के कारण संभूत के जीव का पतन तथा संयमी चित्रमुनि का उत्थान बताकर जीवों को धर्माभिमुख होने का तथा उसके फल की अभिलाषा न करने का उपदेश दिया गया है।

उत्तराध्ययनसूत्र के चौदहवें अध्ययन 'हषुकारीय' में छह पात्र हैं। भृगु पुरोहित, पुरोहितानी और उनके दो पुत्र, राजा–रानी। राजा की लौकिक प्रधानता के कारण इनका नाम 'इषुकारीय' रखा गया है। इस अध्ययन का प्रतिपाद्य है 'अन्यत्व भावना का उपदेश'। इसमें ब्राह्मण संस्कृति पर श्रमण संस्कृति की विजय बताई गई है। दोनों संस्कृतियों की मान्यताओं की मौलिक चर्चा भी इस अध्ययन के अन्तर्गत किया गया है। उत्तराध्ययनसूत्र के पन्द्रहवें अध्ययन 'सभिक्षुक' में भिक्षु के लक्षणों को दर्शाया गया। जो संयत है, तपस्वी है, सुव्रती, निर्मल आचार से युक्त है, जो आत्मा की खोज में लगा रहता है वह भिक्षु है। आगमयुग में कुछ श्रमण मंत्र, चिकित्सा आदि का प्रयोग करते थे। भगवान् महावीर ने उसका पूर्ण निषेध किया है।

उत्तराध्ययनसूत्र के सोलहवें अध्ययन का नाम 'ब्रह्मचर्य–समाधि स्थान' है। इसमें ब्रह्मचर्य समाधि का निरूपण किया गया है। इस अध्ययन में दस समाधिस्थानों का बहुत ही मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रतिपादन किया गया है। शयन–आसन, कामकथा, स्त्री–पुरुष का एक आसन पर बैठना, चक्षुगृद्धि, शब्दगृद्धि, पूर्व क्रीड़ा का स्मरण, सरस आहार, अति मात्रा में आहार, विभूषा, इन्द्रिय विषयों की आसक्ति–ये ब्रह्मचर्य साधना के मार्ग में बाधक हैं। उत्तराध्ययनसूत्र का सत्रहवां अध्ययन 'पाप–श्रमणीय' है। श्रमण बनने के पश्चात् साधक को अपना जीवन साधनामय व्यतीत करना चाहिए। जो साधक ऐसा नहीं करता वह पापश्रमण है। इस अध्ययन में श्रमण बनने का लक्ष्य जीवन परिवर्तन है। इसमें बताया गया है कि जो श्रमण होकर सदा निद्रामग्न रहता है, शान्त हुए विवाद को पुनः उभारता है, अधर्म में अपनी प्रज्ञा का हनन करता है, जो प्रतिलेखन नहीं करता, गुरुओं की आज्ञा का पालन नहीं करता, वह पापश्रमण है, अतएव साधक को इन सबसे बचना चाहिए।

उत्तराध्ययनसूत्र के अट्ठारहवें अध्ययन 'संजयीय' में राजर्षि संजय का वर्णन है। वह काम्पिल्य नगर का राजा था। एक बार जंगल में वह हिरनों का पीछा कर उन्हें बाणों से मार रहा था। मृत हिरनों के पास ही ध्यानस्थ मुनि के क्रोध से भयभीत होकर उसने उनसे क्षमायाचना की। मुनि के उपदेश से राजा संजय मुनि बन गया। उत्तराध्ययनसूत्र के उन्नीसवें अध्ययन का नाम 'मृगापुत्रीय' है। राजकुमार मृगापुत्र अपनी पत्नियों के साथ महल के गवाक्ष में बैठा हुआ नगर की शोभा को निहार रहा था कि तभी उसकी दृष्टि एक तेजस्वी सन्त पर जा टिकी। वह मंत्रमुग्ध–सा देखता रहा। उसे पूर्वभव की स्मृति हो आई। भोग उसे रोग प्रतीत हुआ। माता–पिता से वह प्रव्रज्या की बात करता है तो वे उसे समझाने का प्रयत्न करते हैं। उत्तराध्ययनसूत्र के बीसवें अध्ययन का नाम 'महानिर्ग्रन्थीय' है। इसमें अनाथी मुनि और राजा श्रेणिक के बीच हुए रोचक संवाद का वर्णन है। महानिर्ग्रन्थ का अर्थ सर्वविरत साधु है। क्षुल्लक निग्रन्थीय अध्ययन का ही विशेष रूप से वर्णन होने के कारण इसका नाम 'महानिर्ग्रन्थीय' है।

उत्तराध्ययनसूत्र के इक्कीसवें अध्ययन का नाम 'समुद्रपालीय' है। चम्पानगरी में पालित नामक एक व्यापारी था, जो महावीर का भक्त था। वह एक बार व्यापार करता हुआ पिहुंड नामक नगर में गया। वहां वणिक पुत्री के साथ उसका विवाह हुआ। नाव

द्वारा घर लौटते हुए पालित की पत्नी के पुत्र हुआ जिसका नाम समुद्रपालित रखा गया। बड़ा होकर समुद्रपालित बहत्तर कलाओं में निष्णात् हुआ। एक बार कर्मफल की गहराई को वह सोचता रहा और उसका मन संवेग और वैराग्य से भर गया। उसने मुनिदीक्षा ली। इसके साथ ही इसमें साधु के आन्तरिक आचार के बारे में भी बताया गया है। उत्तराध्ययनसूत्र के बाइसवें अध्ययन में 'रथनेमीय' में अरिष्टनेमि, श्रीकृष्ण, राजीमती, रथनेमि आदि का उल्लेख किया गया है। अध्ययन में रथनेमि को दिया गया राजीमती का दीप्तिमान उद्‌बोधन अद्वितीय है।

उत्तराध्ययनसूत्र के तेइसवें अध्ययन का नाम 'केशि–गौतमीय' है। इसके अन्तर्गत भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्य केशी और भगवान् महावीर के शिष्य गौतम के बीच एक ही धर्म में सचेल–अचेल, चार महाव्रत और पांच महाव्रत परस्पर विपरीत विविध धर्म के विषय भेद को लेकर संवाद हुआ है। इसमें यह संकेत किया गया है कि समय के अनुसार बाह्य आचरण में परिवर्तन कर लिया जाना उचित है। उत्तराध्ययनसूत्र के चौबीसवें अध्ययन 'प्रवचन–माता' में पांच समिति और तीन गुप्ति का वर्णन है। मां जैसे अपने पुत्र का लालन–पालन एवं रक्षा करते हुए उसे सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती है वैसे ही समितीय साधक को साधना पथ पर सम्यक् रूप से जाने की सीख देती है।

उत्तराध्ययनसूत्र का पच्चीसवां अध्ययन 'यज्ञीय' है। भारत में यज्ञ–पूजा का प्रारम्भ से महत्व रहा है। महावीर ने इसकी आलोचना करते हुए लोगों को बताया कि सच्चा यज्ञ क्या है, सच्चा ब्राह्मण कौन होता है? इस अध्ययन में सच्चे यज्ञ के बारे में बताते हुए कहा गया है कि यज्ञ–पूजा करना वास्तविक यज्ञ नहीं है। विषय, काषाय, वासनाओं को ज्ञानाग्नि में डालकर जलाना सच्चा यज्ञ है। सत्‌चरित्र से सच्चा ब्राह्मण होता है, जाति से ही कोई मानव ब्राह्मण नहीं होता। इस अध्ययन में ब्राह्मण की सत्य एवं शाश्वत व्याख्या बड़े मार्मिक ढंग से की गई है। उत्तराध्ययनसूत्र का छब्बीसवां अध्ययन 'सामाचारी' है जिसका अर्थ है सम्यक् व्यवस्था। इसमें साधक के परस्पर के व्यवहारों और कर्तव्यों का निरूपण है। सामाचारी दस प्रकार की है–आवश्यकी, नैषेधिकी, आपृच्छना, प्रतिपृच्छना, छन्दना, इच्छाकार, मिथ्याकार, तथेतिकार, अभ्युत्थान और उपसम्पदा। इस अध्ययन में साधक–जीवन की कालचर्या का विभागवार विधान है।

उत्तराध्ययनसूत्र का सत्ताइसवां अध्ययन 'खलुंकिय' है जिसका अर्थ है–दुष्ट बैल। गर्ग गोत्रीय 'गार्ग्य' मुनि अपने समय के योग्य आचार्य थे। वे सतत् संयम–साधना एवं स्वाध्याय में लीन रहते थे किन्तु उनके शिष्य उद्‌दण्ड, स्वच्छन्दी और अविनीत थे। उनके अभद्र व्यवहार से अपनी समत्व साधना में विघ्न आता देखकर गार्ग्य ने उन्हें छोड़ दिया क्योंकि इसके अतिरिक्त कोई मार्ग न था। इस अध्ययन में अविनीत शिष्यों का सम्पर्क पश्चात् आचार्य के कर्तव्य को भी दर्शाया गया है। उत्तराध्ययनसूत्र का अट्‌ठाइसवां अध्ययन 'मोक्षमार्ग–गति' है। सम्यक् दर्शन–ज्ञान–चरित्र और तप मोक्ष गति के साधन हैं। इन साधनों की पूर्णता ही मोक्ष है। नवतत्वों के यथार्थ स्वरूप की सम्यक् श्रद्धा दर्शन है। नवतत्वों का सम्यक् बोध ज्ञान है, रागादि आस्रवों का निग्रह तथा संवरण होना चरित्र है और आत्मोन्मुख तपनक्रियारूप विशिष्ट जीवन– शुद्धि तप है। इससे पूर्व संचित कर्मों का अंशतः नाश होता है। दर्शन, ज्ञान, चरित्र और तप की पूर्णता होने पर मोक्ष प्राप्ति होती है।

उत्तराध्ययनसूत्र के उन्तीसवें अध्ययन का नाम 'सम्यकत्व–पराक्रम' है। समवायांग में इसे अप्रमाद नाम से उल्लेखित किया गया है। विद्वानों का ऐसा मानना है कि संभवतः यह अध्ययन लुप्त हो गया होगा एवं बाद में नवीन रूप से इस अध्ययन का निर्माण हुआ होगा क्योंकि इस अध्ययन के प्रारम्भ में ही 'सम्यकत्व– पराक्रम' का

उल्लेख है। इस अध्ययन में संवेग, निर्वेद, धर्मश्रद्धा, गुरुसाधर्मिक शुश्रूषणा, आलोचना, निन्दा, गर्हा, सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग आदि तिहत्तर स्थानों का प्रश्नोत्तर रूप में प्रतिपादन किया गया है। यह प्रश्नोत्तरमाला उत्तराध्ययनसूत्र का सार है। ये बातें अध्यात्मभाव को अत्यन्त गहराई से स्पर्श करने वाली हैं।

उत्तराध्ययनसूत्र का तीसवां अध्ययन 'तपो—मार्ग—गति' है। तप एक दिव्य रसायन है जो शरीर और आत्मा के यौगिक भावों को मिटाकर आत्मा को अपने मूल स्वभाव में स्थापित करता है। इस अध्ययन में उल्लेख है कि प्राणवध, मृषावाद, अदत्त, मैथुन, परिग्रह एवं रात्रि भोजन की विरति से जीव आस्रवरहित होता है। करोड़ों भवों के संचित कर्म तप से नष्ट हो जाते हैं। तप के प्रमुख बारह भेद हैं और उनके अवान्तर अनेक भेद हैं जिनका अध्ययन में विस्तार से निरूपण किया गया है।

उत्तराध्ययनसूत्र का इकतीसवां अध्ययन 'चरण—विधि' है। चरणविधि का अर्थ है—विवेकमूलक प्रवृत्ति। विवेकमूलक प्रवृत्ति ही संयम है और अविवेकमूलक प्रवृत्ति असंयम है। प्रथम गाथा में चारित्र की विधि का वर्णन होने से इसका नाम चरणविधि रखा गया है। साधक को आहार, भय, मैथुन, परिग्रह आदि से मुक्त रहना चाहिए। साधक को बाधक तत्वों से बचने की प्रेरणा देने के साथ ही ऐसे तत्वों की सूची भी इसमें दी गई है। उत्तराध्ययनसूत्र के बत्तीसवें अध्ययन में प्रमाद के स्थानों का वर्णन होने से इसका नाम 'प्रमाद—स्थान' रखा गया है। साधना में प्रमाद सबसे बड़ा बाधक तत्व है। कर्म का बीज राग—द्वेष है। कर्म मोह से उत्पन्न होता है। वह कर्म जन्म—मरण का मूल है, अतएव मोह का त्याग करना चाहिए।

उत्तराध्ययनसूत्र के तैतीसवें अध्ययन 'कर्म—प्रकृति' में कर्म एवं प्रकृति का निरूपण है। विभावदशा में कर्म का प्रबन्ध होता है और स्वभावदशा में कर्म से मुक्ति होती है। स्वरूप की दृष्टि से इस विराट् विश्व में सभी जीव समान हैं किन्तु कर्मों के कारण उनमें भिन्नता है। कर्म जड़—पुद्गल हैं। रागादि विभाव परिणति के कारण जीव का कर्म के साथ बन्धन होता है। बन्धन अनादि है, वह कब हुआ, यह नहीं कहा जा सकता। इस अध्ययन में कर्मप्रकृति का वर्णन होने से इसका नाम कर्मप्रकृति हुआ। उत्तराध्ययनसूत्र के चौतीसवें अध्ययन 'लेश्याध्ययन' में लेश्या का वर्णन है। सामान्य रूप से मन आदि योगों से अनुरंजित और विशेष रूप से कषाय से अनुरंजित आत्मपरिणामों से जीव एक विशिष्ट पर्यावरण पैदा करता है, वह लेश्या है। द्रव्यलेश्याएं पौद्गलिक हैं, उनमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श आदि हैं। इस अध्ययन में कृष्ण, नील, कापोत, तेजस्, पद्म और शुक्ल—इन छहों लेश्याओं का वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, परिणाम, लक्षण, स्थान, स्थिति, गति आदि की दृष्टि से प्रतिपादन किया गया है।

उत्तराध्ययनसूत्र के पैतीसवें अध्ययन 'अनगार—मार्ग—गति' में 'अनगार' का निरूपण किया गया है। इसमें यह बताया गया है कि केवल घर छोड़ देने से ही कोई अनगार नहीं होता। अनगारधर्म एक महान साधना है। इस साधना में हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य, इच्छा—लोभादि से दूर रहा जाता है। साधक श्मशान, शून्यागार, वृक्ष के नीचे अथवा दूसरों के लिए निर्मित किए गए एकान्त स्थान में रहता है। वह क्रय—विक्रय से विरक्त होता है, स्वर्ण और मिट्टी को समान समझता है और आत्मध्यान में सतत् निरत रहता है। उत्तराध्ययनसूत्र के छत्तीसवें अध्ययन 'जीवाजीव—विभक्ति' में बताया गया है कि जीव और अजीव की विभक्ति ही तत्वज्ञान का प्राण है। जीव—अजीव का भेद—विज्ञान ही सम्यक् दर्शन है। जीव और अजीव द्रव्य जिस आकाश में है वह लोक है और जहां केवल आकाश ही है तथा अन्य कोई द्रव्य नहीं है वह अलोक है। अजीव के दो भेद हैं—रूपी और अरूपी। रूपी के चार भेद हैं और अरूपी के दस भेद हैं। रूपी

के वर्ण, गंध, रस और स्पर्श होते हैं। ऐसे रूपी पुद्गल के स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणु के चार भेद और अरूपी अजीव द्रव्य धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय—इन तीनों स्कन्ध, देश और प्रदेश से कुल नौ भेद और एक अद्धासमय का भेद मिलाकर अरूपी के दस भेद होते हैं। सब मिलाकर अजीव के कुल चौदह भेद होते हैं। इसके साथ ही इस अध्ययन में वर्ण आदि अवान्तर भेदों को भी समझाया गया है। जीव के दो भेद हैं—संसारी और सिद्ध। सिद्धों के अनेक भेद हैं। संसारी जीव के दो भेद हैं—त्रस और स्थावर। स्थावर जीवों के तीन भेद हैं—पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय। इनके अवान्तर भेद अनेक हैं। त्रस जीवों के तीन भेद हैं—अग्निकाय, वायुकाय, द्वीन्द्रियादि विकलेन्द्रिय जीव। इनके भी भेद—उपभेद अनेक हैं। पंचेन्द्रिय जीवों के चार प्रकार हैं—नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव। इनके भी उत्तरभेद अनेक हैं। इस अध्ययन के अन्त में समाधिकरण का भी वर्णन है। इस प्रकार 269 गाथाओं में विस्तार से वर्णन हुआ है।

उत्तराध्ययन के इन अध्यायों में प्रमुखतया से संसार की असारता और श्रमण जीवन के आचार का वर्णन किया गया है। यद्यपि उत्तराध्ययनचूर्णि में इस आगम को धर्मकथानुयोग में परिगणित किया गया है किन्तु इसमें आचार का प्रतिपादन होने से चरणानुयोग का और दार्शनिक सिद्धान्तों का वर्णन होने से द्रव्यानुयोग का सम्मिलन स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

सन्दर्भ :

1. दसवेआलियं तह उत्तरज्झयणं की भूमिका, आचार्य तुलसी; उत्तराध्ययनसूत्र की भूमिका, कवि अमरमुनि जी।
2. अत्र धम्माणुयोगेनाधिकारः।—उत्तराध्ययनचूर्णि, पृ0 9.
3. उत्तराध्ययनसूत्र, 31.16—18.
4. दशाश्रुतस्कन्धनिर्युक्ति गा0 1; पंचकल्पभाष्य, गा0 23 चूर्णि।
5. अन्तकृत प्रथम वर्ग; अन्तकृतदशा, 4 वर्ग, अ0 1.
6. उत्तराध्ययनसूत्र, 28.23.
7. धवला पत्र, 545 हस्तलिखित प्रति।
8. अंगपण्णत्ती, 3.25—26.
9. हरिवंशपुराण, 10.134.
10. तत्त्वार्थवार्तिक, 1.20, पृ0 78.
11. समवायांग, 36वां समवाय।
12. कल्पसूत्र 146, पृ0 210, (सं0 देवेन्द्र मुनि)
13. इइ पाउकरे बुद्धे नायए परिनिब्बुए।
    छत्तीसं उत्तरज्झाए, भवसिद्धियसंमए।। —उत्तराध्ययन चूर्णि, पृ0 283.

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

भारत में महिलाओं के मानवाधिकारों के संरक्षण का अनुभवपरक अध्ययनः जयपुर जिले के ग्राम गुढ़ा चक बस्सी के विशेष संदर्भ में

डॉ0 मुज़ीबुर्रहमान
सहायक आचार्य, विधि विभाग
विधि अध्ययन विद्यापीठ, बीबीएयू, लखनऊ।
रामचन्द्र मीना
शोध छात्र, विधि विभाग
विधि अध्ययन विद्यापीठ, बीबीएयू, लखनऊ।

भूमिका

महिलाओं के मानवाधिकारों का संरक्षण किसी भी सभ्य समाज की पहली आवश्यकता एवं उसका मूलाधार होता है। जो समाज महिलाओं के मानव अधिकारों की रक्षा एवं उसका सम्मान नहीं करता वह पिछड़ा समाज कहलाता है तथा वह मुख्यधारा से बिल्कुल अलग—अलग रहता है। महिलाओं के मानवाधिकार महिलाओं की प्रतिष्ठा को बढ़ाकर समाज में सम्यन्रता एवं सौहार्द्रपूर्ण स्थिति का निर्माण करता है। यह महिलाओं के जीवन में आने वाली अनेक बाधाओं को दूर करके स्वतंत्रता, समानता, शांति का पैगाम स्थापित करता है तथा महिलाओं की उन्नति एवं विकास के मार्ग को प्रशस्त करता है। प्रत्येक महिला अपना जीवन शांतिपूर्ण ढंग से जी सकें, इसके लिए उनको स्वतंत्रता एवं अधिकारों की आवश्यकता पड़ती है।

डॉ0 अंबेडकर भारतीय नारियों को महलों और झोपड़ियों से बाहर निकालकर उन्हें उनकी हैसियत से अवगत कराना चाहते थे ताकि वह भी पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर अपना उचित विकास कर सकें। इसके लिए उन्होंने अपने भाषणों तथा लेखों में बाल—विवाह, विधवा— पुनर्विवाह, स्त्रियों की संपत्ति में भागीदारी, स्त्रियों की शिक्षा तथा स्वतंत्रता से संबंधित कई मुद्दों को उठाया। आज भी महिलाएं अपने मानवीय अस्तित्व को प्राप्त करने के लिए जूझ रही हैं, आज भी अनेक पारम्पारिक, सामाजिक, नैतिक, धार्मिक बंधनों को झेल री हैं और अनेक प्रकार से उत्पीड़ित हैं।[1] अतः महिलाओं की उपरोक्त यथार्थ स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए ही प्रस्तुत अध्ययन प्रस्ताव भारत में ″महिलाओं के मानवाधिकारों के संरक्षण का अनुभवजन्य

---

[1] जाखड़ दिलीप, मानवाधिकार और पुलिस संगठन, यूनिवर्सिटी बुक हाउस, जयपुर, 2001, पृष्ठ सं.—37।

अध्ययन जयपुर जिले के ग्राम गुढ़ाचक, बस्सी के विशेष संदर्भ में" विषय का चयन किया गया है। चूंकि महिला अधिकारों, विधवाओं, महिला कैदियों के अधिकारों आदि अनेक अध्ययन हुए हैं परंतु राजस्थान राज्य के जयपुर जिले के ग्राम गुढ़ाचक, बस्सी की महिलाओं के मानवाधिकारों के संरक्षण के संबंध में अनुभवपरक अध्ययनों का अभाव है।

महिलाओं के अधिकार

विश्व की लगभग आधी आबादी महिलाओं की है परंतु उनके साथ सर्वत्र विभेद का व्यवहार किया जाता है। संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में "पुरुष और स्त्री के समान अधिकारों" में पुनः विश्वास व्यक्त किया गया है। चार्टर के अनुच्छेद 1(3) में संगठन का प्रयोजन लिंग विभेद बिना सभी के लिए मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान करना है। इसी के आधार पर संयुक्त राष्ट्र की आर्थिक और सामाजिक परिषद ने महिलाओं की स्थिति के बारे में 1946 में एक आयोग की स्थापना की थी। महिला स्थिति आयोग ने महिलाओं को समानता का अधिकार दिलाने में बहुत कार्य किया है। उदाहरण के लिए महिलाओं के राजनैतिक अधिकार, विवाहित महिलाओं की राष्ट्रीकता, संपत्ति और उत्तराधिकार के अधिकार, अभिवाहक और संरक्षकता के अधिकार और कर्तव्य, निवासस्थान (Domicile), अविवाहित महिला के अधिकार, महिलाओं के लिए शिक्षा के अवसर, प्रसव और मातृत्व लाभ, समान वेतन, विवाह का अधिकार, महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार, शिक्षा विज्ञान और संस्कृति में महिलाओं की भूमिका, महिला स्वास्थ्य की देख–रेख तथा सशस्त्र संघर्ष में बालकों और महिलाओं का संरक्षण आदि को आयोग की भूमिका रही है।[2]

संविधान के भाग 4 में राज्य से अपेक्षा की गई है कि वह स्त्री और पुरुष दोनों के लिए समान जीविका के साधन प्राप्त करने, पुरुष और स्त्री कर्मकारों के स्वास्थ्य का ध्यान रखने और पुरुष और स्त्री को समान काम का समान वेतन देने की नीति का कार्यान्वयन करें। अनुच्छेद 42 प्रसूति सहायता के लिए व्यवस्था करने का निर्देश देता है तथा अनुच्छेद 44 पर सभी नागरिकों के लिए समान सिविल संहिता का उपबंध है। इसका प्रयोजन स्त्री और पुरुष के विभेद दूर कर परिवारिक विधि में सुधार लाना है। अनुच्छेद 51(क)(ड़) के अनुसार भारत में प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध है। राजनैतिक क्षेत्र में स्त्रियों और पुरुषों को समान धरातल पर रखा गया है। लिंग के आधार पर किसी नागरिक को निर्वाचक नामावली में सम्मिलित किये जाने से नहीं रोका जा सकता है (अनु0 325)। लोकसभा और राज्यों की विधानसभाओं के लिए प्रत्येक वयस्क (18 वर्ष) नागरिक को मतदान का अधिकार है (अनु0 326)। सामाजिक और आर्थिक कारणों से महिलाओं की संख्या संसद और विधान मंडलों में कम है, इसलिए उनके लिए आरक्षण की व्यवस्था पर बहस चल रही है। इसी बिंदु को ध्यान में रखकर पंचायतों और नगर पालिकाओं में कम से कम एक तिहाई स्थान स्त्रियों के लिए आरक्षित किए गए हैं। (अनु0 243 नं. (3)। प्रस्तुत शोध का अग्र उद्देश्य भारत में जयपुर जिले के ग्राम गुढ़ाचक, बस्सी की महिलाओं के मानवाधिकारों के संरक्षण का अनुभवपरक अध्ययन करना है।

---

[2] प्रो0 के.सी. जोशी, अंतर्राष्ट्रीय विधि और मानवाधिकार, ईस्टर्न बुक कंपनी, तृतीय संस्करण : 2017, पृष्ठ नं. – 34

प्रस्तुत शोध कार्य की समष्टि जयपुर जिले के ग्राम गुढ़ाचक, बस्सी की 50 महिलाओं का स्नोबॉल न्यादर्श तकनीकी द्वारा चयन किया गया। इन महिलाओं की उम्र 20 वर्ष से 50 वर्ष थी और इन महिलाओं को अपने संवैधानिक और मानवाधिकारों की उतनी जानकारी प्राप्त नहीं थी। ज्यादातर महिलाएं शिक्षित थी लेकिन कुछ महिलाएं अशिक्षित भी थीं। ये महिलाएं भिन्न–भिन्न जाति, वर्ग व समुदाय से संबंधित थी, इनके परिवारों की सामाजिक, आर्थिक स्थिति, अति निम्न थी। प्रस्तुत शोध सर्वेक्षण प्रकार का था, जिसमें जयपुर जिले के ग्राम गुढ़ाचक, बस्सी की कुल 50 महिलाओं के संवैधानिक एवं मानवाधिकारों के संरक्षण का सर्वेक्षणात्मक अध्ययन किया गया। चयनित महिलाओं को मौखिक रूप से दिशा–निर्देश देकर शोध का उद्देश्य स्पष्ट किया गया व इस कार्य हेतु सम्पर्क स्थापित किया गया साथ ही शोधार्थी द्वारा उपयुक्त वातावरण में अनुकूल परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए प्रदत्त संकलन किया गया। प्रश्नावली में कुल 24 प्रश्न थे। इस प्रश्नावली में चार प्रश्नों के सम्मुख दो विकल्प हां और नहीं दिए गए थे और 19 प्रश्नों में हां, नहीं, कभी–कभी और कह नहीं सकते जैसे विकल्प दिए गए थे। महिलाओं से उक्त प्रश्नावली भरवायी गयी। महिलाओं से प्रश्नावली को हल करवाने के बाद प्रश्नावलियों को एकत्र कर लिया गया। अंत में महिलाओं के द्वारा दी गयी अनुक्रियाओं की विकल्प वार आवृत्तियों की गणना कर ली गयी और प्राप्त आवृत्तियों के आधार पर प्रतिशत मान ज्ञात कर सारणीकृत कर लिये गये।

1. परिणाम एवं व्याख्या

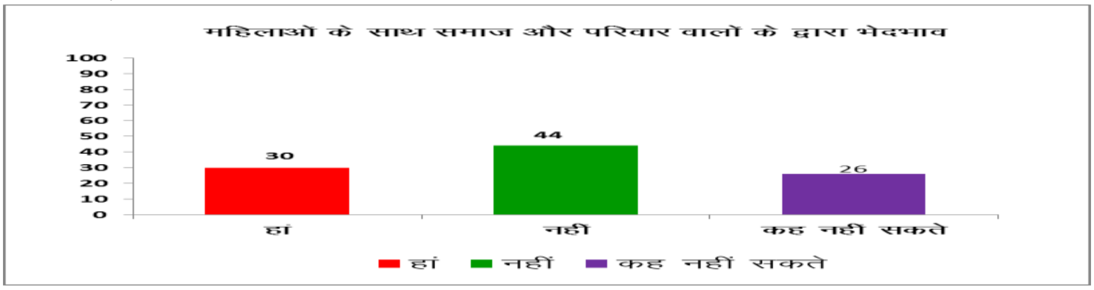

ग्राफ–1 के द्वारा यह दर्शाया गया है कि 30 प्रतिशत महिलाओं के साथ में समाज और परिवार वालों के द्वारा भेदभाव किया जाता है जबकि 44 प्रतिशत महिलाओं के साथ में समाज और परिवार वालों के द्वारा भेदभाव नहीं किया जाता है। वहीं पर 26 प्रतिशत महिलाओं ने अपने उत्तर में कहा   कि वह इस संदर्भ में कुछ कह नहीं सकती हैं।

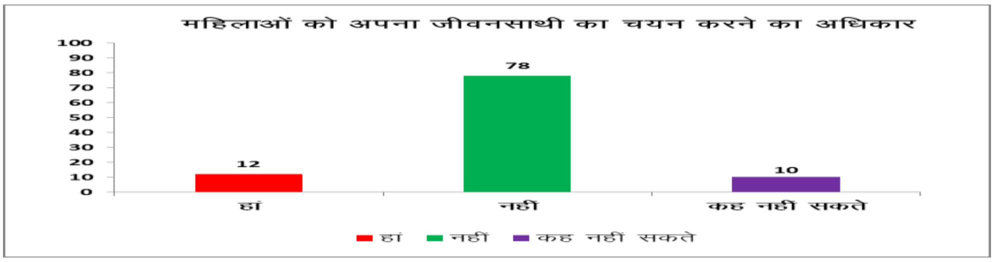

ग्राफ–2 के द्वारा यह दर्शाया गया है कि 12 प्रतिशत महिलाओं को अपने जीवन साथी का चयन करने का अधिकार प्राप्त था जबकि 78 प्रतिशत महिलाओं को अपने जीवन साथी का चयन करने का अधिकार प्राप्त नहीं था। वहीं पर 10 प्रतिशत महिलाओं ने

अपने जीवन साथी का चयन करने के प्रकार के बारे में उत्तर कह नहीं सकते रूप में दिया।

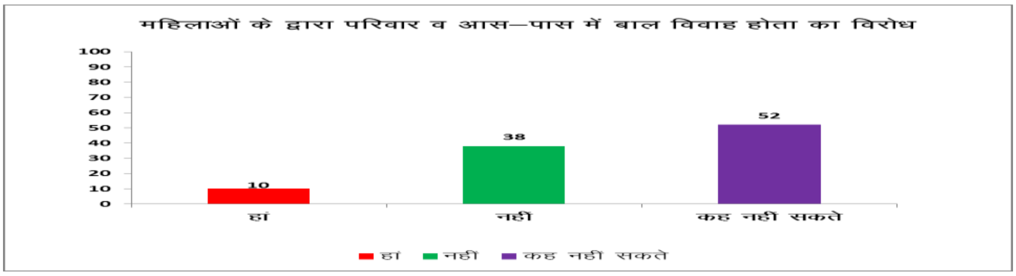

ग्राफ–3 के द्वारा यह दर्शाया गया है कि 10 प्रतिशत महिलाएं परिवार व आस–पास में बाल विवाह होता था तो उसका विरोध करते थीं जबकि 38 प्रतिशत महिलाएं परिवार व आस–पास में बाल विवाह होता था तो उसका विरोध नहीं करती थीं वही पर 52 प्रतिशत महिलाएं परिवार व आस–पास में बाल विवाह होता था तो उसके बारे में कोई विरोध नहीं कर पाते अथवा कह नहीं सकते के रूप में दिया।

ग्राफ–4 के द्वारा यह दर्शाया गया है कि 22 प्रतिशत महिलाओं को बचपन से ही यह बताया जाता है कि पति ही उसका परमेश्वर होता है जबकि 34 प्रतिशत महिलाओं को

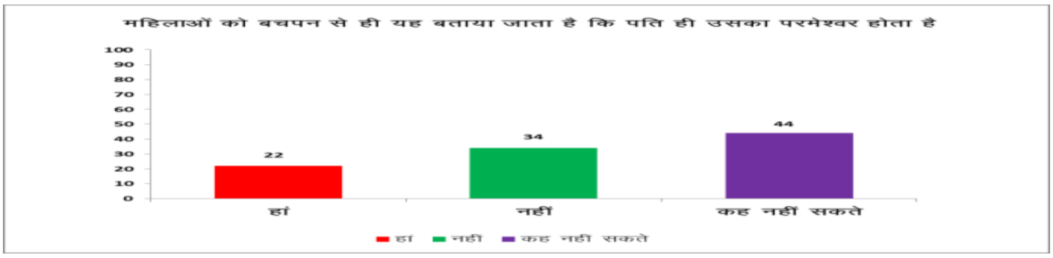

बचपन से ही यह बताया जाता है कि पति उसका परमेश्वर नहीं होता है। वहीं पर 44 प्रतिशत महिलाओं ने अपने उत्तर में कहा कि वह इस संदर्भ में कुछ कह नहीं सकती हैं।

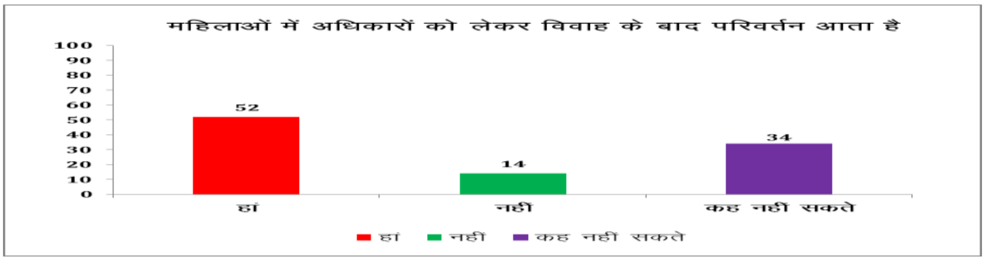

ग्राफ–5 के द्वारा यह दर्शाया गया है कि 52 प्रतिशत महिलाओं के जीवन में अधिकारों को लेकर विवाह के बाद परिवर्तन आता है जबकि 14 प्रतिशत महिलाओं के जीवन में अधिकारों को लेकर विवाह के बाद भी कोई परिवर्तन नहीं आता है। 25 प्रतिशत महिलाओं के जीवन में अधिकारों को लेकर विवाह के कुछ परिवर्तन आता है के बारे में महिलाओं ने अपने उत्तर में कहा कि वह इस संदर्भ में कुछ कह नहीं सकती हैं।

ग्राफ–6 के द्वारा यह दर्शाया गया है कि 100 प्रतिशत महिलाओं ने अपने उत्तर में कहा कि ग्राम–गुढ़ाचक में किसी भी प्रकार की महिला विद्यालय की सुविधा नहीं थी।

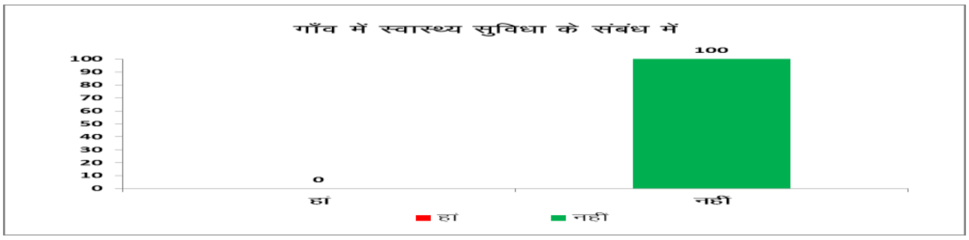

ग्राफ–7 के द्वारा यह दर्शाया गया है कि 100 प्रतिशत महिलाओं ने अपने उत्तर में कहा कि ग्राम–गुढ़ाचक में किसी भी प्रकार की स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध नहीं थी।

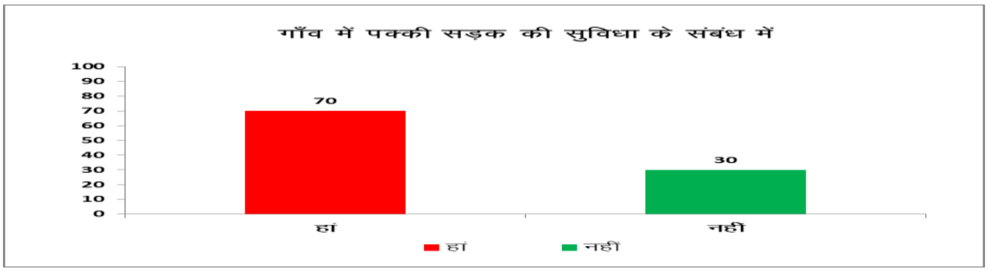

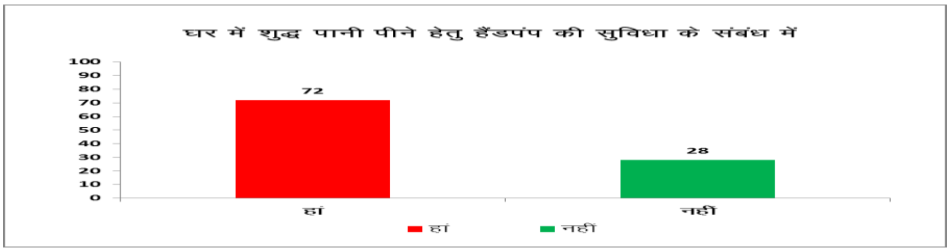

ग्राफ–8 के द्वारा यह दर्शाया गया है कि 70 प्रतिशत महिलाओं ने अपने उत्तर में कहा कि ग्राम–गुढ़ाचक में पक्की सड़क की सुविधा है जबकि 30 महिलाओं ने अपने उत्तर में कहा कि ग्राम–गुढ़ाचक में पक्की सड़क की सुविधा नहीं है।

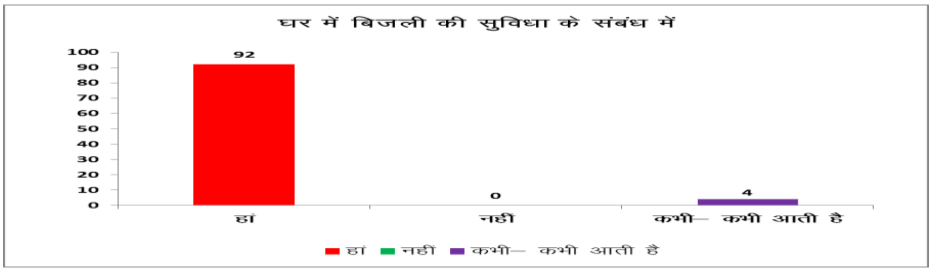

ग्राफ–9 के द्वारा यह दर्शाया गया है कि 72 प्रतिशत महिलाओं के घरों में शुद्ध पानी पीने हेतु हैंडपंप की सुविधा थी, वहीं 28 प्रतिशत महिलाओं के घरों में शुद्ध पानी पीने हेतु हैंडपंप की सुविधा उपलब्ध नहीं थी।

ग्राफ–10 के द्वारा यह दर्शाया गया है कि 70 प्रतिशत महिलाओं ने अपने उत्तर में कहा कि ग्राम–गुढ़ाचक में पक्की सड़क की सुविधा है जबकि 30 महिलाओं ने अपने उत्तर में कहा कि ग्राम–गुढ़ाचक में पक्की सड़क की सुविधा नहीं है।

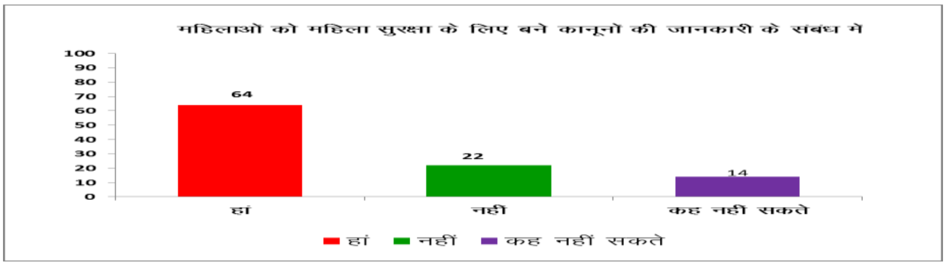

ग्राफ–11 के द्वारा यह दर्शाया गया है कि 64 प्रतिशत महिलाओं को महिला सुरक्षा के लिए बने कानूनों की जानकारी थी जबकि 22 प्रतिशत महिलाओं को महिला सुरक्षा के लिए बने कानूनों की जानकारी नहीं थी। वहीं पर 14 प्रतिशत महिलाओं को महिला सुरक्षा के लिए बने कानूनों की जानकारी के बारे में अपने उत्तर में कहा कि वह इस बारे में कुछ नहीं कह सकते हैं ।

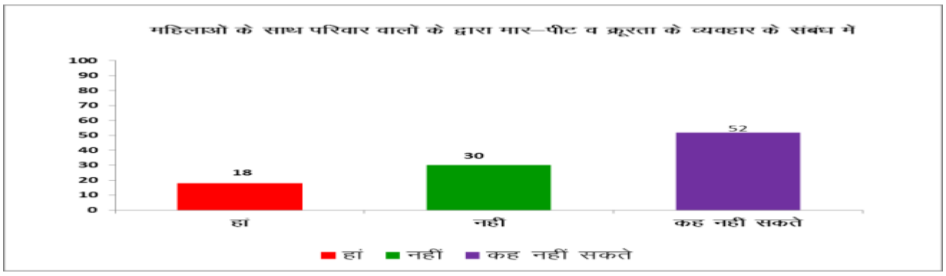

ग्राफ–12 के द्वारा यह दर्शाया गया है कि 18 महिलाओं के अनुसार उनके साथ परिवार वालों के द्वारा मारपीट व क्रूरता का व्यवहार किया जाता था जबकि 30 प्रतिशत महिलाओं के साथ में परिवार वालों के द्वारा मारपीट और क्रूरता का व्यवहार नहीं किया जाता था। वहीं पर 52 प्रतिशत महिलाओं के साथ परिवार वालों के द्वारा मारपीट व क्रूरता के व्यवहार के बारे में कुछ कह नहीं सकते हैं के रूप मे अपना उत्तर दिया।

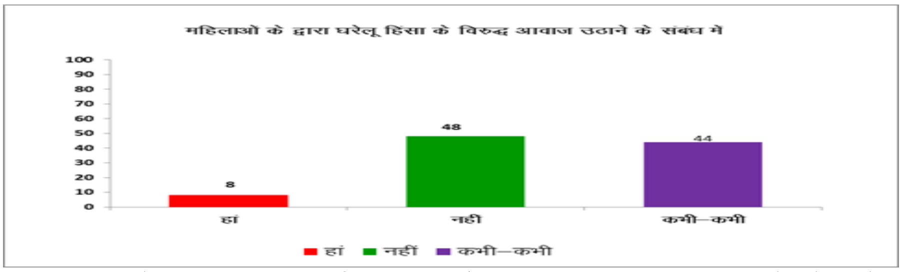

ग्राफ–13 के द्वारा यह दर्शाया गया है कि 8 प्रतिशत महिलाओं ने घरेलू हिंसा के विरुद्ध आवाज उठाई थी जबकि 48 प्रतिशत महिलाओं ने घरेलू हिंसा के विरोध में

आवाज नहीं उठाई थी। वहीं पर 44 प्रतिशत महिलाओं ने घरेलू हिंसा के विरुद्ध आवाज कभी–कभी उठाई थी।

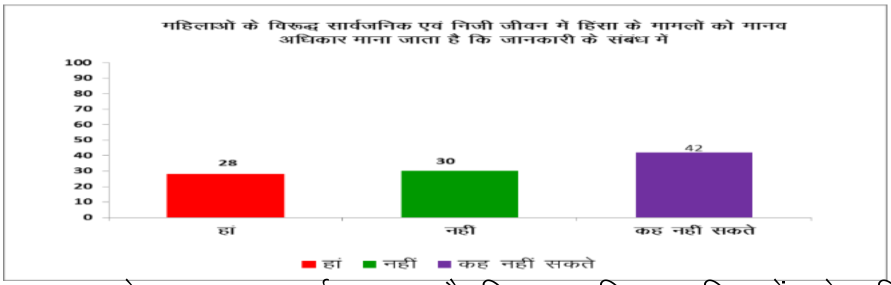

ग्राफ–14 के द्वारा यह दर्शाया गया है कि 28 प्रतिशत महिलाओं को महिलाओं के विरूद्ध सार्वजनिक एवं निजी जीवन में हिंसा के मामलों को मानवाधिकार माना जाता है कि जानकारी प्राप्त थी जबकि 30 प्रतिशत महिलाओं को महिलाओं के विरुद्ध सार्वजनिक एवं निजी जीवन में हिंसा के मामलों को मानवाधिकार माना जाता है कि जानकारी नहीं थी। वहीं पर 42 प्रतिशत महिलाओं को महिलाओं के विरुद्ध सार्वजनिक एवं जीवन में हिंसा के मामलों को मानवाधिकार माना जाता है की जानकारी बारे में अपना उत्तर कुछ कह नहीं सकते के रूप में दिया।

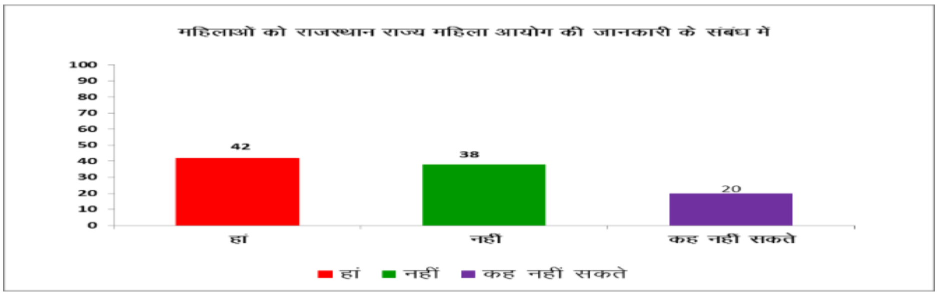

ग्राफ–15 के द्वारा यह दर्शाया गया है कि 42 प्रतिशत महिलाओं को राजस्थान राज्य महिला आयोग की जानकारी थी जबकि 38 प्रतिशत महिलाओं को राजस्थान राज्य महिला आयोग की जानकारी नहीं थी और वहीं 20 प्रतिशत महिलाओं ने राजस्थान राज्य महिला आयोग के बारे में अपना उत्तर कुछ कह नहीं सकते के रूप में दिया।

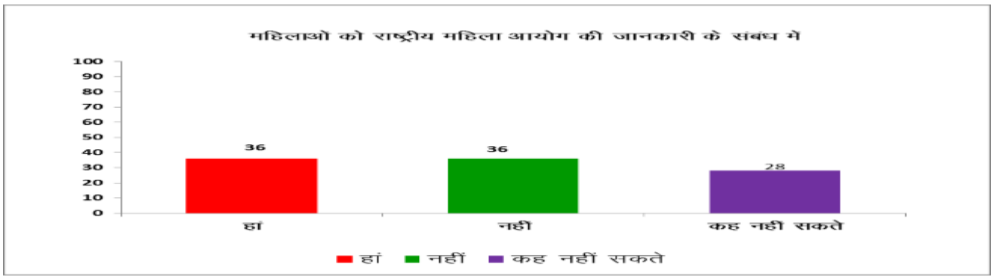

ग्राफ–16 के द्वारा यह दर्शाया गया है कि 36 प्रतिशत महिलाओं को राष्ट्रीय महिला आयोग की जानकारी प्राप्त थी जबकि 36 प्रतिशत महिलाओं को राष्ट्रीय महिला आयोग की जानकारी प्राप्त नहीं थी और वहीं पर 28 प्रतिशत महिलाओं ने राष्ट्रीय महिला आयोग के बारे में अपना उत्तर कुछ कह नहीं सकते के रूप में दिया।

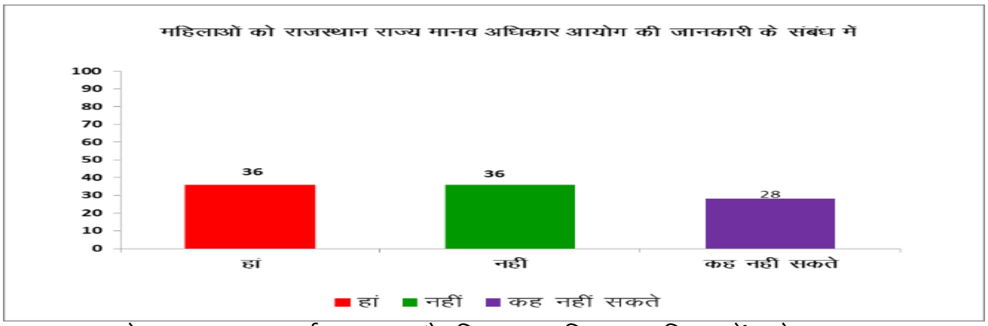

ग्राफ–17 के द्वारा यह दर्शाया गया है कि 70 प्रतिशत महिलाओं को राजस्थान राज्य मानवाधिकार आयोग की जानकारी थी जबकि 36 प्रतिशत महिलाओं को राजस्थान राज्य मानवाधिकार आयोग की जानकारी नहीं थी वहीं पर 28 प्रतिशत महिलाओं ने राजस्थान राज्य मानवाधिकार आयोग की जानकारी के बारे में अपना उत्तर कुछ कह नहीं सकते के रूप में दिया।

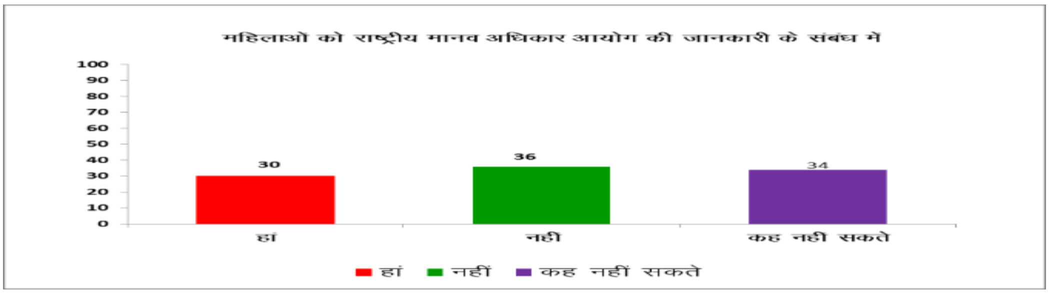

ग्राफ–18 के द्वारा यह दर्शाया गया है कि 30 प्रतिशत महिलाओं को राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की जानकारी थी जबकि 36 प्रतिशत महिलाओं को राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की जानकारी नहीं थी। वहीं पर 34 प्रतिशत महिलाओं ने राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की जानकारी के बारे में अपना उत्तर कुछ कह नहीं सकते के रूप में दिया।

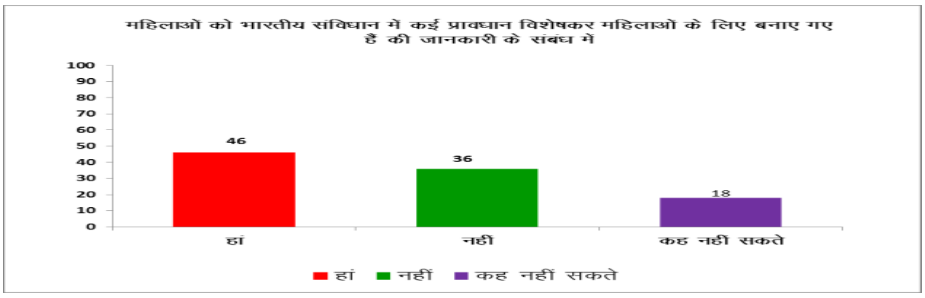

ग्राफ–19 के द्वारा यह दर्शाया गया है कि 46 प्रतिशत महिलाओं को भारतीय संविधान में कई प्रावधान विशेषकर महिलाओं के लिए बनाए गए हैं की जानकारी थी जबकि 36 प्रतिशत महिलाओं को भारतीय संविधान में कई प्रावधान विशेषकर महिलाओं के लिए बनाए गए हैं के बारे मे जानकारी नहीं थी। वहीं पर 18 प्रतिशत महिलाओं को भारतीय संविधान में कई प्रावधान विशेषकर महिलाओं के लिए बनाए गए के बारे में अपना उत्तर कुछ कह नहीं सकते के रूप में दिया।

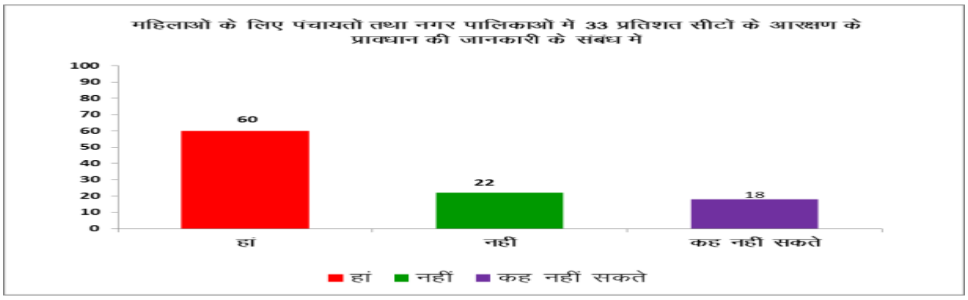

ग्राफ–20 के द्वारा यह दर्शाया गया है कि 60 प्रतिशत महिलाओं को महिलाओं के लिए पंचायतों तथा नगर पालिकाओं में 33 प्रतिशत सीटों का आरक्षण का प्रावधान किया गया है की जानकारी थी जबकि 22 प्रतिशत महिलाओं को इसकी कोई जानकारी नहीं थी। वही पर 18 प्रतिशत महिलाओं ने अपना उत्तर कह नहीं सकते के रूप में दिया।

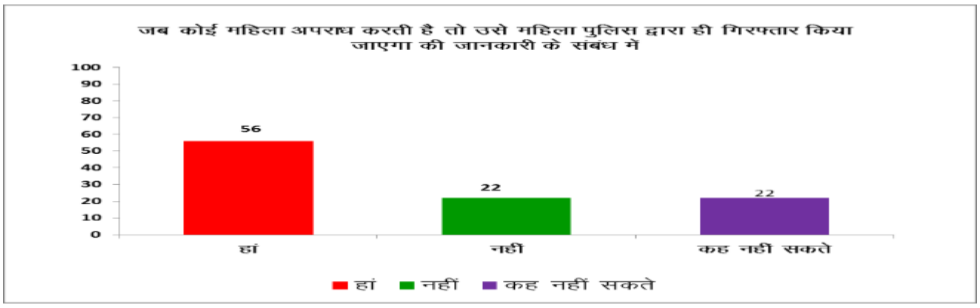

निष्कर्ष

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि वर्तमान में महिलाओं के मानवाधिकारों का कई प्रकार से उल्लंघन एवं अतिक्रमण होता रहता है किसी भी राष्ट्र की परंपरा और संस्कृति उस राष्ट्र की महिलाओं से परिलक्षित होती है। महिलाएं समाज के रचनात्मक शक्ति होती हैं। आने वाले कल को सुधारने के लिए वर्तमान महिला की स्थिति में सुधार

लाना होगा इसके अति रूढ़िवादी दृष्टिकोण से ऊपर उठकर नया विकासवादी दृ ष्टिकोण अपनाना होगा।

महिलाओं के मानवाधिकार का उल्लंघन एवं अतिक्रमण तथा हिंसा को रोकने के लिए बने कानूनों को लेकर काफी उदासीनता दिखायी जाती है। घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005, दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961, बाल विकास अधिनियम 2006, महिलाओं के कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न निवारण प्रतिषेध और प्रतिरोध अधिनियम 2013, लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम 2012, राज्य महिला आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग, राज्य मानवाधिकार आयोग, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग एवं संवैधानिक प्रावधानों के संबंध में बहुत ज्यादातर महिलाओं को जानकारी प्राप्त नहीं थी।

इस संदर्भ में महिलाओं के व्यापक स्तर पर चेतना जगाई जाने की आवश्यकता है शिक्षा विशेषकर महिलाओं में उच्च शिक्षा का प्रसार और उसके आर्थिक स्थिति में सुधार करने की दिशा में उत्प्रेरक का काम कर सकती है। राष्ट्र की महिलाओं का विकास करना चाहते हैं तो उनके प्रति सामूहिक जिम्मेदारी है, समाज की विकराल समस्याओं को समूल नष्ट करें जो महिला मानव अधिकारों का हनन करती है इसके लिये अपराधी व्यक्तियों को कठोर दंड दिया जाये, जेलों में सुधार किया जाये, पुलिस प्रशासन सक्रिय होकर सफलतापूर्वक ईमानदारी से कार्य करे, राजनेता निष्ठावान, ईमानदार एवं साफ चरित्र वाले हो, अभियोजन में तेजी लाई जाये, इससे महिलाओं के मानवाधिकारों के उल्लंघन एवं अतिक्रमण तथा हिंसा की दर बेहद कम होगी और महिलाएं अपने को सुरक्षित महसूस कर सकेंगी और देश तेजी से विकास के पथ पर अग्रसर होगा।

संदर्भ

1. डॉ0 सविता कुमारी, मानवाधिकार, इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेवलपमेंट एंड रिसर्च, रांची झारखंड, प्रथम संस्करण – 2017

2. जाखड़ दिलीप, मानवाधिकार और पुलिस संगठन, यूनिवर्सिटी बुक हाउस, जयपुर, 2001

3. प्रो0 के.सी. जोशी, अंतर्राष्ट्रीय विधि और मानवाधिकार, ईस्टर्न बुक कंपनी, तृतीय संस्करण, 2017

4. डॉ0 एच. ओ. अग्रवाल, मानवाधिकार, सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन, षष्ठम् संस्करण, 2019

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

उत्तर प्रदेश राज्य के सन्दर्भ में भौगोलिक संकेतकों का संरक्षण : एक विधिक अध्ययन

डॉ अनीस अहमद
सह–आचार्य, विधि विभाग
विधि अध्ययन विद्यापीठ
बीबीएयू, लखनऊ
निक्की कुमार
शोध छात्र, विधि विभाग
नीतेश कुमार चतुर्वेदी
शोध छात्र, विधि विभाग
विधि अध्ययन विद्यापीठ
बीबीएयू, लखनऊ

सारांश

भौगोलिक संकेत (जीआई) पिछले कुछ दशकों से वस्तुओं, गुणवत्ता, प्रतिष्ठा, या उनके भौगोलिक मूल से जुड़े अन्य संबंधित मामलों की विशेषताओं की सुरक्षा के लिए सबसे महत्वपूर्ण उपकरणों में से एक बन गए हैं। ट्रिप्स समझौते पर हस्ताक्षर करने के मद्देनजर भौगोलिक संकेतों की सुरक्षा बौद्धिक संपदा अधिकारों का एक हिस्सा बन गई है। यह भौगोलिक संकेतों सहित सभी प्रकार के बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के संरक्षण के न्यूनतम मानकों को निर्धारित करता है। ट्रिप्स समझौते के अनुपालन में, भारत सरकार ने ना केवल 1999 में वस्तुओं के भौगोलिक संकेतों के पंजीकरण और बेहतर सुरक्षा के लिए भौगोलिक उपदर्शन (रजिस्ट्रीकरण और संरक्षण) अधिनियम, 1999 पारित किया था। भौगोलिक संकेतको की सुरक्षा वस्तु के आर्थिक मूल्य की एक विशाल श्रृंखला प्रदान करती है जो देश के आर्थिक विकास को गति देती है। यह विशेष क्षेत्र और परिक्षेत्र के सामाजिक–सांस्कृतिक, पारंपरिक और स्थानिक ज्ञान के साथ–साथ कौशल के संरक्षण को भी प्रोत्साहित करता है। यह आलेख उत्तर प्रदेश में भौगोलिक संकेतक की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण करता है। वर्ष 1999 में उक्त अधिनियम के लागू होने के बाद से, भारत सरकार के अधिकार के साथ उत्तर प्रदेश राज्य में केवल 49 उत्पाद ही पंजीकृत हुए हैं। इस आलेख के लेखकों ने पंजीकरण के उत्पादों के जिलों को शामिल करते हुए विभिन्न श्रेणियों के आधार पर द्वितीयक स्रोतों का विश्लेषण किया है।

कुंजी शब्दः भौगोलिक संकेत, ट्रिप्स समझौता, भारत और उत्तर प्रदेश।

1. प्रस्तावना

भौगोलिक संकेत (जीआई) पिछले कुछ दशकों से मुख्य रूप से उनके भौगोलिक मूल से संबंधित वस्तुओं की गुणवत्ता, प्रतिष्ठा, या अन्य चरित्र की सुरक्षा के लिए सबसे महत्वपूर्ण उपकरणों में से एक के रूप में उभरा है। वे ''स्रोत पहचान'' और ''गुणवत्ता संकेतक

[1]'' के रूप में सुरक्षा करते हैं। वे उपभोक्ता को किसी विशेष क्षेत्र के मूल प्रचार और वस्तुओं और उत्पादों की गुणवत्ता को निर्दिष्ट करने के लिए समझने में मदद करते हैं।[2] वे साधारणतया सामूहिक परंपराओं और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में उपयोग किए जाते हैं। निरंतर विकास की अनुमति देते हुए परंपराओं को पुरस्कृत करें, मानव प्रयासों, संस्कृति, भूमि संसाधनों और पर्यावरण के बीच संबंधों पर जोर दे सकेंगे और यह एक स्वामी से दूसरे स्वामी को स्वतंत्र रूप से हस्तांतरणीय नहीं हैं।[3] ट्रिप्स समझौते से पूर्व, कुछ समय के लिए भौगोलिक संकेत का संरक्षण भी अंतर्राष्ट्रीय एजेंडे में रहा है। इसे 1883 के पेरिस अभिसमय में सीमित मात्रा तक संबोधित किया गया था और विशेष रूप से इसे लिस्बन एग्रीमेंट फॉर द प्रोटेक्शन ऑफ अपीलेशन ऑफ ओरिजिन एंड देयर इंटरनेशनल रजिस्ट्रेशन (1958) द्वारा भी अवलोकानार्थ प्रचलन में लाया गया था। इस संबंध में एक ठोस और अधिक विस्तृत प्रयास ट्रिप्स समझौते (विशेष रूप से अनुच्छेद 22 और 23) में शामिल होने के बाद किया गया था, जो भौगोलिक संकेतों की सुरक्षा के लिए अंतरराष्ट्रीय न्यूनतम मानकों को निर्धारित करता है। ट्रिप्स समझौते के प्रावधानों का पालन करने के लिए, भारत सरकार द्वारा सर्वप्रथम भौगोलिक उपदर्शन (पंजीकरण और संरक्षण) अधिनियम, 1999 अधिनियमित किया गया, जो इस विषयवस्तु पर पहला विशिष्ट कानून है जो भौगोलिक संकेतों के पंजीकरण और संरक्षण के लिए प्रदान करता है । वर्ष 1999 से पूर्व, भौगोलिक संकेतों पर भारत में कोई विशिष्ट कानून नहीं थे जो उत्पादकों के हितों की पर्याप्त रूप से रक्षा कर सके। ट्रिप्स समझौते का एक पक्षकार होने के बाद भी, भारत ने 1999 तक भौगोलिक संकेतों पर कोई कानून नहीं बनाया था। यह अधिनियम 15 सितंबर 2003 को सम्पूर्ण भारत में लागू हुआ। भारत में भौगौलिक संकेतक वस्तुओं के भौगौलिक उपदर्शन (रजिस्ट्रीकरण एवम संरक्षण) अधिनियम तथा इसके उपरांत भौगौलिक उपदर्शन (रजिस्ट्रीकरण एवम संरक्षण) नियम 2002 द्वारा प्रशासित होता हैं।[4]

भौगोलिक संकेतों के पंजीकरण की स्थिति राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर बहुत ही न्यूनतम है, वस्तुओं को भारत सरकार के सक्षम प्राधिकरण ने अधिनियम के कार्यान्वयन के उन्नीस वर्षों के बाद अब तक कुल 478 वस्तुओं को भौगोलिक संकेतक के रूप मे चिन्हित किया गया है, जहां तक उत्तर प्रदेश राज्य का संदर्भ है, उत्तर प्रदेश राज्य जनसँख्या और क्षेत्रफल की दृष्टि में भारत के सबसे बड़े राज्यों में से एक है, परन्तु यह

---

[1] सुरेश सी श्रीवास्तव, ''भारत में भौगोलिक संकेत और कानूनी ढांचा'' 38 आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक 422–433 (2003)।

[2] शाहिद खान और रघुनाथ माशेलकर, 21वीं सदी में बौद्धिक संपदा और प्रतिस्पर्धी रणनीतियां (क्लूवर लॉ इंटरनेशनल, नीदरलैंड, दूसरा संस्करण, (2009)।

[3] वी के आहूजा, बौद्धिक संपदा अधिकारों से संबंधित कानून 438 (लेक्सिस नेक्सिस, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण, (2017)।

[4] ई टी लोकनाथन, बौद्धिक संपदा अधिकार (आईपीआर): ट्रिप्स समझौता और भारतीय कानून 120 (न्यू सेंचुरी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, (2012)।

अब तक मात्र 49 वस्तुओं को ही भारत के सक्षम प्राधिकरण के साथ भौगोलिक संकेत के रूप में पंजीकृत कर पाया है।

इस आलेख का उद्देश्य सबसे बड़े भारतीय राज्यों में से एक, उत्तर प्रदेश में पंजीकृत वस्तुओं के भौगोलिक उपदर्शन के बारे में वर्तमान परिदृश्य का अध्ययन करना है। आलेख में कृषि, हस्तशिल्प, प्राकृतिक और निर्मित उत्पादों से संबंधित वस्तुओं को शामिल किया गया है। इनमें हस्तशिल्प श्रेणी सबसे ऊपर है तथा विशेष रूप में अन्य जैसे चिकन कारी, कारपेट मेकिंग और पॉटरी आदि भी अध्ययनार्थ सभी पंजीकृत वस्तुओं को शामिल किया गया है, जो 1999 के वस्तुओं के भौगोलिक संकेतक (पंजीकरण और संरक्षण) अधिनियम के कार्यान्वयन के सीमा में आती हैं।

2. अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में भौगोलिक संकेत

वैश्विक बाजार में संबंधित उत्पाद को अलग–अलग करने के लिए विशेष रूप से पनीर, स्पिरिट और शराब इत्यादि के लिए यूरोपीय देशों द्वारा उत्पादों की भौगोलिक संकेतको की सुरक्षा की आवश्यकता बहुत पहले से ही चिन्हित की गई थी। विभिन्न अंतरराष्ट्रीय समझौतों ने उन उत्पादों के नाम की रक्षा करने की मांग की जो किसी विशेष स्थान या इलाके से उत्पन्न हुए हैं ताकि प्रतिस्पर्धी व्यापारियों द्वारा नामों का दुरुपयोग या व्यावसायिक रूप से शोषण न हो, जो उत्पादन के मूल या स्रोत को गलत तरीके से प्रस्तुत करके उन उत्पादों का व्यापार करते हैं।[5] ट्रिप्स समझौते से पहले तीन अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों की स्थापना की गई है जिसमें भौगोलिक संकेतक या उत्पत्ति के अपीलों से संबंधित प्रावधान शामिल हैं।[6]

- ❖ औद्योगिक संपत्ति के संरक्षण के लिए पेरिस कन्वेंशन, 1883।
- ❖ माल पर स्रोत के झूठे या भ्रामक संकेतों के दमन के लिए मैड्रिड समझौता, 1891।
- ❖ उद्गम और उनके अंतर्राष्ट्रीय पंजीकरण की अपीलों के संरक्षण के लिए लिस्बन समझौता, 1958।

1883 के पेरिस सम्मेलन में भौगोलिक संकेतको की सुरक्षा शामिल थी, लेकिन एक अलग स्तर (गलत संकेत) के अंतर्गत हालांकि इसमें प्रतिभागियों की संख्या बहुत कम है। झूठे या भ्रामक संकेतों के दमन के लिए मैड्रिड समझौता, 1891 भी शामिल है, भौगोलिक संकेतको ने ट्रिप्स की बातचीत तक मानक निर्धारित किया।[7] उरुग्वे दौर की बातचीत के बाद, 1 जनवरी 1995 को लागू हुए बौद्धिक संपदा अधिकारों के व्यापार–संबंधित पहलू (ट्रिप्स) समझौते ने भौगोलिक संकेतको सहित सभी प्रकार के बौद्धिक संपदा अधिकारों की सुरक्षा के लिए न्यूनतम मानक निर्धारित किए। ट्रिप्स समझौता अंतरराष्ट्रीय कानून में जीआई का पहला आह्वान नहीं है, हालांकि यह कहा जा सकता है कि यह सबसे महत्वपूर्ण है। ट्रिप्स के पास भौगोलिक संकेतको के लिए दो सुरक्षा मानदंड हैं। ट्रिप्स ने आदेश दिया है कि राष्ट्र भौगोलिक संकेतों (जीआई) के उपयोग को प्रतिबंधित करने के लिए एक कानूनी साधन प्रदान करेंगे जो सुझाव देते हैं

---

[5] जयंत लाहिड़ी, बौद्धिक संपदा कानून पर व्याख्यान 243 (आर. कैम्ब्रे एंड कंपनी प्राइवेट लिमिटेड, कोलकाता, पहला संस्करण, (2009)।

[6] कार्लोस एम. कोरिया, ट्रेड रिलेटेड एस्पेक्ट्स ऑफ इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्सः ए कमेंट्री ऑन द ट्रिप्स एग्रीमेंट 213 (ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, पहला संस्करण, (2007)।

[7] काल रौस्टियाला और स्टीफन आर. मुंजर, ''द ग्लोबल स्ट्रगल ओवर ज्योग्राफिकल इंडिकेशंस'', 18 यूरोपियन जर्नल ऑफ इंटरनेशनल लॉ 337–365 (2007)।

कि माल उनके वास्तविक मूल स्थान के अलावा किसी अन्य स्थान पर उत्पन्न होता है।[8] समझौते का एक अन्य प्रावधान अनिवार्य करता है कि राष्ट्र ट्रेडमार्क के पंजीकरण को रद्द करने के लिए एक कानूनी तंत्र बनाए रखते हैं जिसमें संकेतित क्षेत्र से नहीं आने वाले सामानों के बारे में जीआई होता है।[9] ये नियम केवल तभी लागू होते हैं जब जीआई का उपयोग इस तरह से किया जाता है जो उत्पाद के मूल देश के बारे में जनता को धोखा देता है ।[10]

3. राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में भौगोलिक संकेतकः

भारत में, वस्तुओं के भौगोलिक उपदर्शन (पंजीकरण और संरक्षण अधिनियम), 1999 पारित होने से पूर्व भौगोलिक संकेतों की सुरक्षा से संबंधित कोई विशिष्ट कानून नहीं था, जो भौगोलिक संकेत के उपयोग को नियंत्रित करता हो। भौगोलिक उपदर्शन अधिनियम के बाद माल के भौगोलिक संकेत (पंजीकरण और संरक्षण) नियम, 2002 भी प्रावधानित किये गये। अखिल भारतीय क्षेत्राधिकार वाली भौगोलिक संकेत रजिस्ट्री कार्यालय का गठन केंद्र सरकार द्वारा भौगोलिक उपदर्शन अधिनियम के अंतर्गत किया गया था, जो 15 सितंबर, 2003 को प्रभावी हुआ और भौगोलिक संकेत रजिस्ट्री कार्यालय चेन्नई में स्थित है। निर्माता अपने संबंधित जीआई को पंजीकृत कराने के लिए वहां आवेदन कर सकते हैं। पेटेंट, डिजाइन और ट्रेडमार्क महानियंत्रक, जो भौगोलिक संकेतक के रजिस्ट्रार के रूप में भी कार्य करता है, जीआई के प्रबंधन के लिए जिम्मेदार है।[11] जीआई शब्द को अधिनियम में माल के बारे में ''भौगोलिक संकेत'' के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसका अर्थ है– "माल के संबंध मे, "भौगोलिक उपदशर्न" से वह उपदशर्न अभिप्रेत है जिससे ऐसे माल की कृषि माल, प्राकृतिक माल या विर्निमित माल के रूप मे ऐसे पहचान होती है कि उसका उद्‌भव या विनिमार्ण किसी देश के राज्यक्षेत्र मे या उस राज्यक्षेत्र के किसी राज्यक्षेत्र, या परिक्षेत्र, मे हुआ है ,जिसमे ऐसे माल की दी गई क्वालिटी, प्रतिष्ठा या अन्य लक्षण आवश्यक रूप से उसके भौगोलिक मूल से तात्पर्यित है, और किसी ऐसी दशा मे जिसमे ऐसा माल विर्निमित माल है संबंधित माल के उत्पादन या प्रसंस्करण या तैयार करने के क्रियाकलाप मे से कोई, यथास्थित, ऐसे राज्यक्षेत्र, क्षेत्र या परिक्षेत्र मे होता है।"[12]

4. उत्तर प्रदेश में भौगोलिक संकेतक उत्तर प्रदेश न केवल जैव विविधता का केंद्र है, बल्कि कुशल कारीगरों और उत्पाद विकासकर्ताओं का भी केंद्र है।[13] अधिनियम के कार्यान्वयन के बाद से, उत्तर प्रदेश राज्य के पास भारत में पंजीकृत सभी भौगोलिक संकेतक पट्टी में से 49 जीआई टैग हैं। इनमें से अधिकांश पंजीकृत जीआई टैग वित्तीय

---

[8] ट्रिप्स समझौता, 1995 अनु0 22(2).

[9] ट्रिप्स समझौता, 1995 अनु0 23(3).

[10] एसके यादव, आरसी चौधरी और ए साहनी, ''जियोग्राफिकल इंडिकेशन एंड रजिस्ट्रेशन फॉर इट इन उत्तर प्रदेश, इंडियाः प्रेजेंट एंड फ्यूचर पोटेंशियल'', 7 इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च इन एग्रीकल्चर साइंस 145–159 (2018)।

[11] सौम्य विनयन, ''भारत में भौगोलिक संकेतः मुद्दे और चुनौतियां–एक अवलोकन'', 20 जर्नल ऑफ वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी 119–132 (2017)

[12] भौगोलिक संकेत (पंजीकरण और संरक्षण) अधिनियम, 1999 (1999 का अधिनियम संख्या 48), धारा 2 (ई)।

[13] एसके यादव, आरसी चौधरी और ए साहनी, ''जियोग्राफिकल इंडिकेशन एंड रजिस्ट्रेशन फॉर इट इन उत्तर प्रदेश, इंडियाः प्रेजेंट एंड फ्यूचर पोटेंशियल'', 7 इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च इन एग्रीकल्चर साइंस 145–159 (2018)।

वर्ष 2022–23 के हैं, जिनकी संख्या दस है। हस्तशिल्प उत्पाद श्रेणी, जिसमें 34 भौगोलिक संकेतक पट्टी हैं, वह है जहां उत्तर प्रदेश राज्य भौगोलिक संकेतक में सबसे अधिक योगदान देता है। इसके विपरीत, कृषि वस्तुओं, निर्मित और प्राकृतिक वस्तुओं की श्रेणी में क्रमशः 11, 2 और 1 ही आते हैं। उत्तर प्रदेश राज्य 75 जिलों में विभाजित है। 75 में से केवल 30 जिलों ने भौगोलिक संकेतक पट्टी पंजीकरण में भाग लिया है, जिसका अर्थ है कि केवल 40 प्रतिशत जिलों में क्षेत्रीय वस्तुओं या वस्तुओं के लिए भौगोलिक संकेतक पट्टी पंजीकरण किया है। हालांकि, शेष जिलों में जो हस्तशिल्प, और प्राकृतिक और निर्मित वस्तुओं में विशेषज्ञता रखते हैं, उनके पास वस्तुओं के लिए पंजीकरण नहीं है। यह देखा गया है कि वाराणसी में भौगोलिक संकेतक पट्टी रजिस्टर वाले 14 उत्पाद हैं। भौगोलिक संकेतक पट्टी रजिस्टर वाले 3–3 उत्पादों के साथ लखनऊ और मिर्जापुर दूसरे स्थान पर हैं। शेष 27 जिलों यानी मेरठ, कानपुर और मुरादाबाद आदि में केवल एक भौगोलिक संकेतक पट्टी के साथ पंजीकृत किया गया है। 2018 में, उत्तर प्रदेश सरकार ने आदिवासी कला, शिल्प और प्राकृतिक और निर्मित उत्पादों को प्रोत्साहित करने और पुनर्जीवित करने के लिए ''एक जिला एक उत्पाद'' योजना शुरू की।

5. भौगोलिक उपदर्शन (संकेतक) के पंजीकरण का उद्देश्य

भौगोलिक उपदर्शन (संकेतक) के पंजीकरण का मुख्य लक्ष्य यह सुनिश्चित करना है, कि किसी विशिष्ट उत्पाद की पहचान उसके संबंधित क्षेत्र या परिक्षेत्र से की जाये, जैसे:[14]

(1) संबंधित परिक्षेत्र के साथ उस लोकप्रिय उत्पाद का नाम सुनिश्चित करने के लिए।
(2) उत्पाद और भौगोलिक क्षेत्र के बीच संबंध प्रदर्शित करने के लिए।
(3) निर्मित उत्पादों या वस्तुओं के साथ संबंधित क्षेत्र का नाम बनाए रखने के लिए।
(4) संबंधित स्थान के साथ उत्पाद की पहचान को समृद्ध करने के लिए।
(5) स्थानीय भोजन उत्पादन की स्थिरता को बढ़ावा देने के लिए।
(6) मूल समुदाय को उच्च खुदरा मूल्य लाभ प्रतिशत प्राप्त करने में सक्षम बनाना।
(7) उत्पादों के प्रतिलिपिकरण को प्रतिबंधित करने के लिए।
(8) भौगोलिक रूप से संकेतित उत्पादों की सहायता से स्थानीय पर्यटन उद्योग को बढ़ावा देने के लिए।
(9) क्षेत्र की प्रतिष्ठा को सुरक्षित करने के लिए।
(10) उन प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित करने के लिए जिनसे उत्पाद को कच्चा माल मिलता है।
(11) परंपरा और पारंपरिक ज्ञान को संरक्षित करने के लिए।
(12) स्थानीय अर्थव्यवस्था को विकसित करने के लिए।

2007–24 के मध्य उत्तर प्रदेश राज्य में पंजीकृत भौगोलिक संकेतक

क्र. सं.	आवेदन संख्या	अवधि	भौगोलिक संकेतक (जीआई)	माल (भौगोलिक उपदर्शन	जिला

[14] मोहम्मद मुदस्सिर अहमद और वीना एम. कांबले, ''महाराष्ट्र में भौगोलिक संकेत'', 27 जर्नल ऑफ इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स 38–41 (2022)।

				अधिनियम 1999 की धारा 2 (ई) के अनुसार)	
1.	50	2007—08	इलाहाबाद, सुर्ख अमरूद	कृषि	इलाहाबाद
2.	119	2008—08	लखनऊ चिकन क्राफ्ट	हस्तशिल्प	लखनऊ
3.	125	2009—10	दशहरी आम मलीहाबादी	कृषि	लखनऊ
4.	99	2009—10	बनारस की जरी वस्त्र और साड़ी	हस्तशिल्प	वाराणसी
5.	148	2010—11	भदोही का हस्तनिर्मित कालीन	हस्तशिल्प	भदोही
6.	233	2012—13	आगरा दरी	हस्तशिल्प	आगरा
7.	234	2012—13	फर्रुखाबाद प्रिंट्स	हस्तशिल्प	फर्रुखाबाद
8.	236	2012—13	लखनऊ, जरदोजी	हस्तशिल्प	लखनऊ
9.	237	2012—13	बनारस ब्रोसेड्स एंड साड़ी	हस्तशिल्प	वाराणसी
10.	205	2013—14	कालानमक चावल	कृषि	सिद्धार्थ नगर
11.	155	2013—14	फिरोजाबाद ग्लास	हस्तशिल्प	फिरोजाबाद
12.	157	2013—14	कन्नौज इत्र	निर्मित	कन्नौज
13.	159	2013—14	कानपुर काठी	हस्तशिल्प	कानपुर
14.	161	2013—14	मुरादाबाद मेटल क्राफ्ट	हस्तशिल्प	मुरादाबाद
15.	184	2013—14	सहारनपुर वुड क्राफ्ट	हस्तशिल्प	सहारनपुर
16.	389	2014—15	मेरठ निर्मित कैंची	निर्मित	मेरठ
17.	178	2014—15	खुर्जा पॉटरी	हस्तशिल्प	बुलंदशहर
18.	397	2014—15	बनारस गुलाबी मीनाकारी शिल्प	हस्तशिल्प	वाराणसी
19.	457	2014—15	बनारस लकड़ी के लैकरवेयर और खिलौने	हस्तशिल्प	वाराणसी
20.	458	2014—15	मिर्जापुर हस्तनिर्मित दरी	हस्तशिल्प	मिर्जापुर
21.	459	2015—16	निजामाबाद ब्लैक पॉटरी	हस्तशिल्प	आजमगढ़
22.	145	2015—16	बासमती	कृषि	उत्तर प्रदेश
23.	398	2016—17	बनारस मेटल रिपॉज क्राफ्ट	हस्तशिल्प	वाराणसी
24.	177	2016—17	वाराणसी ग्लास	हस्तशिल्प	वाराणसी

			बीड्स		
25.	555	2017–18	गाजीपुर वॉल हैंगिंग	हस्तशिल्प	गाजीपुर
26.	556	2017–18	वाराणसी सॉफ्टस्टोन जाली वर्क	हस्तशिल्प	वाराणसी
27.	557	2018–19	चुनार बलुआ पत्थर	प्राकृतिक	वाराणसी
28.	619	2019–20	गोरखपुर टेराकोटा	हस्तशिल्प	गोरखपुर
29.	620	2021–22	बनारस जरदोजी	हस्तशिल्प	वाराणसी
30.	621	2021–22	चुनार ग्लेज पॉटरी	हस्तशिल्प	मिर्जापुर
31.	622	2021–22	मिर्जापुर पिटल बार्टन	हस्तशिल्प	मिर्जापुर
32.	623	2021–22	बनारस वुड कार्विंग	हस्तशिल्प	वाराणसी
33.	624	2021–22	बनारस हैंड ब्लॉक पटिंट	हस्तशिल्प	वाराणसी
34.	206	2021–22	रतौल आम	कृषि	बागपत
35.	645	2021–22	मऊ साड़ी	हस्तशिल्प	मऊ
36.	401	2021–22	महोबा देसावरी पान	कृषि	भारत(उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश)
37.	715	2022–23	आदमचीनी चावल	कृषि	चंदौली
38.	664	2022–23	अलीगढ़ ताला	हस्तशिल्प	अलीगढ़
39.	665	2022–23	बखिरा पीतल के बर्तन	हस्तशिल्प	संत कबीर नगर
40.	666	2022–23	बांदा शाजर पत्थर शिल्प	हस्तशिल्प	बांदा
41.	667	2022–23	नगीना काष्ठ शिल्प	हस्तशिल्प	बिजनौर
42.	668	2022–23	प्रतापगढ़ आंवला	कृषि	प्रतापगढ़
43.	672	2022–23	हाथरस हींग	खाद्य सामग्री	हाथरस
44.	716	2022–23	बनारस लंगड़ा आम	कृषि	वाराणसी
45.	717	2022–23	रामनगर भांटा (बैंगन)	कृषि	वाराणसी
46.	730	2022–23	बनारस पान	कृषि	वाराणसी
47.	671	2023–24	महोबा गौरा पत्थर	हस्तशिल्प	महोबा
48.	673	2023–24	मैनपुरी तारकशी	हस्तशिल्प	मैनपुरी
49.	674	2023–24	संभल हॉर्न क्राफ्ट	हस्तशिल्प	संभल

2007–2024 के मध्य विभिन्न श्रेणियों के अंतर्गत उत्तर प्रदेश राज्य में भौगोलिक संकेतक पट्टी पंजीकरण

क्र.सं.	**श्रेणी**	**भौगोलिक संकेतको की संख्या**	**प्रतिशत**
1.	हस्तशिल्प	34	69.39
2.	कृषि	11	22.45
3.	निर्मित	2	4.08
4.	प्राकृतिक वस्तुएँ	1	2.04

5.	खाद्य सामग्री	1	2.04

2007–2024 के मध्य उत्तर प्रदेश में जिलेवार भौगोलिक संकेतक पट्टी पंजीकरण

क्र.सं.	**जिला**	**भौगोलिक संकेतको की संख्या**
1.	वाराणसी	14
2.	लखनऊ	3
3.	मिर्जापुर	3
4.	इलाहाबाद	1
5.	भदोही	1
6.	आगरा	1
7.	फरुखाबाद	1
8.	फिरोजाबाद	1
9.	कन्नौज	1
10.	कानपुर	1
11.	मुरादाबाद	1
12.	सहारनपुर	1
13.	मेरठ	1
14.	बुलंदशहर	1
15.	आजमगढ़	1
16.	गाजीपुर	1
17.	गोरखपुर	1
18.	बागपत	1
19.	मऊ	1
20.	सिद्धार्थनगर	1
21.	संतकबीरनगर	1
22.	अलीगढ़	1
23.	बाँदा	1
24.	प्रतापगढ़	1
25.	बिजनौर	1
26.	महोबा	1
27.	हाथरस	1
28.	चंदौली	1
29.	मैनपुरी	1
30.	संभल	1

6. निष्कर्ष

बौद्धिक संपदा अधिकारों के एक भाग के रूप में भौगोलिक संकेत किसी विशेष उत्पाद और उस क्षेत्र के बीच में संबंध स्थापित करने में मदद करता है, जिस स्थान विशेष से वह संबंधित है। यह स्थानीय कौशल और संस्कृति की रक्षा करता है और ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा देता है, जो बदले में यह भागौलिक

उपदर्शन (संकेतक) उत्पादन को बढ़ावा देता है। उत्तर प्रदेश राज्य के वर्तमान अध्ययन से पता चलता है, कि भौगोलिक संकेतक (पंजीकरण और संरक्षण) अधिनियम, 1999 जैसे व्यापक कानून की उपलब्धता के बावजूद भी ग्रामीण और शहरी जनता के बीच भागौलिक उपदर्शन (संकेतक) की पंजीकरण प्रक्रिया के बारे में जागरूकता सीमित है। 'एक जिला एक उत्पाद'' योजना के अंतर्गत लाभ प्राप्त करने के लिए तथा राज्य के सामाजिक–आर्थिक विकास के लिए उत्पादों को भागौलिक उपदर्शन (संकेतक) के अंतर्गत पंजीकृत होने से राष्ट्र एवं राज्य के आर्थिक विकास का लक्ष्य प्राप्त करने में सुविधा होगी तथा यह भारतवर्ष एवं उत्तर प्रदेश राज्य के आर्थिक विकास को द्रुतगति प्रदान कर सकेगा।

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

NAAGS KANPUR

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

पशु सम्पदा एवं विकास : जनपद प्रतापगढ़ का एक भौगोलिक अध्ययन

प्रिया सिंह
शोध छात्रा भूगोल विभाग
वी0एस0एस0डी0 कॉलेज
कानपुर (उ0प्र0)
डॉ0 आर0के0 चौरसिया
शोध निदेशक
प्रोफेसर भूगोल विभाग
वी0एस0एस0डी0 कॉलेज
कानपुर (उ0प्र0)

सारांश

प्रत्येक राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में पशुओं का एक महत्वपूर्ण स्थान होता है। भारत जैसे कृषि–प्रधान राष्ट्र के लिए पशुओं का विशेष महत्व है। पश्चिमी राष्ट्रों की कृषि में जो स्थान मशीनों व यन्त्रों को प्राप्त है, भारतीय कृषि में वही स्थान गाय, भैंस, बैल, तथा भैंसा आदि पालतू पशुओं को प्राप्त है। पशुओं की उन्नति के बिना भारत में कृषि विकास सम्भव नहीं है। पशु भारत की जैवीय सम्पत्ति है। ग्रामीण क्षेत्रों में करोड़ो लोग पशुओं को पालकर अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। अतः भारत में पशु सम्पदा ही नहीं संसाधन भी है। 20वीं पशुधन गणना 2019 के अनुसार देश में कुल पशुधन आबादी 535.78 मिलियन (53 करोड़ 57 लाख) है जो पशुधन गणना 2012 की तुलना में 4.6 प्रतिशत अधिक है। प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य प्रतापगढ़ जनपद के परिप्रेक्ष्य में पशु सम्पदा का मूल्यांकन करना है। अध्ययन क्षेत्र प्रतापगढ़ जनपद के आर्थिक विकास में कृषि एवं पशुपालन का विशेष महत्व है। जनपद में पाये जाने वाले पालतू पशुओं के अन्तर्गत गाय, भैंस, भेड़, बकरी, घोड़े टट्टू एवं सूकर तथा अन्य पशु सम्मिलित हैं जो जनपद के प्रमुख जैवीय संसाधन है। 20 वीं पशुधन गणना 2019 के अनुसार जनपद के पालतू पशुओं में 604203 गोजातीय, 596075 महिष जातीय, 9372 भेड़, 340666 बकरा एवं बकरी, 13192 सूकर तथा 2504 अन्य पशु हैं।

Key words–कृषि, जैवीय संसाधन, पशुधन, आर्थिक विकास

प्रस्तावनाः–

पशुपालन भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण उप–क्षेत्र है। भारत पशुधन की विशाल आाबादी से समृद्ध देश है जिन्हें विविध उत्पादन प्रणालियों और कृषि–जलवायु परिस्थितियों के अन्तर्गत पाला जाता है। पशुधन क्षेत्र भारत में 60% से अधिक ग्रामीण आबादी की आजीविका सहायता प्रदान करने में एक बहुआयामी भूमिका निभाता है और भारत की पोषण सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण हैं।

हालांकि देश की इस जीवंत परिसम्पत्ति को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, जिसमें आहार एवं चारे की कमी, बीमारी का प्रकोप, बदलता पशुधन विस्तार सेवाएँ, पशुधन उत्पादों के लिए असंगठित, बाजार आदि शामिल हैं, जो पशुधन स्वास्थ्य और उत्पादकता को समग्र रूप से देखने हेतु गम्भीर ध्यान देने की आवश्यकता रखते है।

अध्ययन क्षेत्र :–

उ0प्र0 राज्य के प्रयागराज मण्डल में स्थित प्रतापगढ़ जनपद पश्चिमी गंगा मैदान के मध्य में स्थित है। इसका विस्तार $25^0 34'$N से $26^0 11'$ उत्तरी अक्षांश तथा $81^0 19'$E से $82^0 27'$पूर्वी देशान्तर के मध्य है। जनपद का विस्तार पश्चिम से पूरब तक 110 किमी0 एवं उत्तर से दक्षिण 40 किमी0 तक है। जनगणना वर्ष 2011 के आधार पर इसका भौगोलिक क्षेत्रफल 3717 वर्ग किमी0 तथा समुद्र तल से औसत ऊँचाई 137 मी0 है। जनपद प्रतापगढ़ के उत्तर में अमेठी एवं सुल्तानपुर जनपद, पूर्व में जौनपुर जनपद, दक्षिण में प्रयागराज एवं कौशाम्बी तथा पश्चिम में अमेठी एवं रायबरेली जनपद स्थित है।

LOCATION MAP OF STUDY AREA

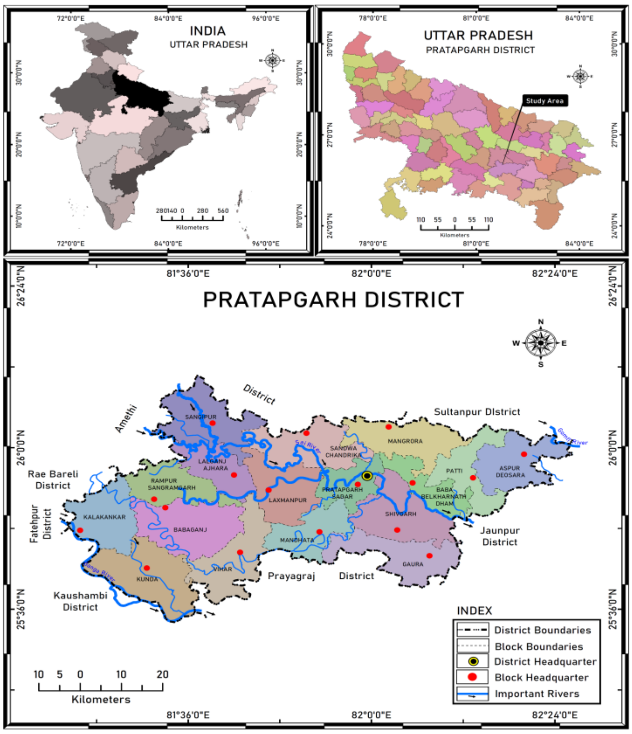

Source: Survey of India, Toposheets 2010, Census Of India, 2011

अध्ययन का उद्देश्य :–

1. जनपद के कुल पशु सम्पदा की वर्तमान स्थिति एवं परिवर्तन का मूल्यांकन करना।
2. जनपद में पशु सम्पदा को बढ़ावा देना।
3. जनपद में घटती पशु सम्पदा के कारणों का विश्लेषण कर पशु सम्पदा बढ़ाने हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

आँकड़ों का स्त्रोत एवं विधितंत्र :–

प्रस्तुत शोध पत्र में प्राथमिक एवं द्वितीयक आँकड़ों का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक आँकड़ों का संग्रहण जनपद के विभिन्न पशुपालकों से साक्षात्कार के माध्यम से प्राप्त किया गया है तथा द्वितीयक आँकड़े पत्र–पत्रिकाओं, सांख्यिकी पत्रिका, अखबार, इन्टरनेट, पुस्तकों आदि से लिये गये हैं।

विषय विवेचनः–

कृषि संसाधन पर आश्रित प्रतापगढ़ जनपद में पशुपालन एक प्रमुख व्यवसाय है। प्रतापगढ़ जनपद में पशुपालन के अन्तर्गत गोवंशीय पशु (गाय, बैल, बछड़ा), महिषवंशीय पशु, भेड़, बकरी, सूकर, घोड़े आदि पाले जाते हैं। पशुगणना वर्ष 2012 के अनुसार प्रतापगढ़ जनपद के प्रमुख पशुओं की स्थिति निम्नलिखित है–

1. **गोवंशीय पशुः**–अध्ययन क्षेत्र प्रतापगढ़ जनपद में गोवंशीय पशुओं का दुग्ध उत्पादन व कृषि कार्य में महत्वपूर्ण स्थान है। वर्ष 2012 की पशुगणना के अनुसार जपद में कुल गोवंशीय पशु 378127 है जिनमें 41007 नर गौवंशी, मादा गौंवशी 181276 तथा 155844 बछड़ा एवं बछियों का पालन होता है। जनपद में सर्वाधिक गौवंशीय पशु क्रमशः विकासखण्ड कुण्डा (33304), बिहार (30639), आसपुर देवसरा (29061), बाबागंज (27531) तथा मान्धाता (25221) में पाले जाते हैं।
2. **महिषवंशीय पशुः**–प्रतापगढ़ जनपद में दुग्ध उत्पादन एवं बोझा ढोने में महिषवंशीय पशुओं का विशेष महत्व है। वर्ष 2012 की पशुगणना के अनुसार जनपद में कुल महिषवंशीय पशु 356180 हैं जो गोजातीय पशुओं से कम हैं। 6951 नर महिषवंशी, 186466 मादा महिषवंशी तथा 162763 नर व मादा बच्चों का पालन होता है। जनपद में महिषवंशी पशुओं का सर्वाधिक पालन विकास खण्ड कुण्डा (34209), बिहार (29600), आसपुर देवसरा (25611), बाबागंज (22564) तथा मान्धाता (22048) में होता है।
3. **भेड़–बकरी तथा घोड़े एवं टट्टू पालनः**–प्रतापगढ़ जनपद में कुण्डा (22921), बिहार (21702), बाबागंज (20158), मान्धाता (18729) तथा आसपुर देवसरा (17578) विकासखण्डों में सर्वाधिक बकरियाँ, आसपुर देवसरा (2986), मंगरौरा (2404), पट्टी (2094), कुण्डा (1217) तथा बिहार (1152) विकासखण्डों में सर्वाधिक भेड़े एवं कुण्डा (603), बिहार (570), बाबागंज (530), कालाकांकर (434) तथा लक्ष्मणपुर (177) विकासखण्डों में सर्वाधिक घोड़े एवं टट्टू पाले जाते हैं। भेड़ का पालन ऊन, दूध व मांस के लिए, बकरी का पालन दूध, मांस, खाल, चमड़ा व बाल के लिए तथा घोड़े एवं टट्टु का पालन सवारी तथा बोझा ढोने के लिए किया जाता है। जनपद में पालतू पशुओं के अन्तर्गत घोड़े एवं टट्टुओं की संख्या सबसे कम है।
4. **सूकर पालनः**–सूकर का पालन जनपद में मुख्य रूप से कुण्डा (7185), बिहार (6803), बाबागंज (6318), कालाकांकर (5173) तथा सांगीपुर (3036) विकासखण्डों में होता है। इसका पालन मुख्य रूप निम्न जाति के लोग माँस

एवं तेल के लिए करते हैं।

जनपद में पशु वृद्धि (विविध दशकों में) :–अध्ययन क्षेत्र प्रतापगढ़ जनपद में पशुपालन विभाग द्वारा प्राप्त आँकड़ों के अनुसार पशु–वृद्धि का अध्ययन विभिन्न दशकों के अन्तर्गत करने से स्पष्ट होता है कि वर्ष 2003 में जनपद के कुल पशुओं की संख्या 1043315 थी, जिसको जाति या वंश के आधार पर वर्गीकृत कर विश्लेषित करने से ज्ञात होता है कि गोवंश के अन्तर्गत पशुओं की कुल संख्या 356821 थी, महिषवंश में कूल 304667 पशु, भेड़ वंश में 33429 पशु, बकरा/बकरी की कुल संख्या 235175, घोड़ व टट्टू की संख्या 3163 तथा सूकर वंश के पशुओं की कुल संख्या 1055955 व अन्य पशुओं की कुल संख्या 4105 थी।

जनपद प्रतापगढ़ : पशुधन वृद्धि (पशुगणना वर्ष 2003–2012)

क्र0 सं0	पशुधन (वर्गीकृत)	2003		2007		2012		पशुवृद्धि (2003–2007)		पशुवृद्धि (2007–2012)	
		पशु संख्या	प्रतिशत	पशु संख्या	प्रतिशत	पशु संख्या	प्रतिशत	निरपेक्ष	औसत वृद्धि दर	निरपेक्ष	औसत वृद्धि दर
1(a) (i)	**गोवंशीय (देशी) 2 वर्ष से अधिक के नर**	102766	9.8	68194	6.3	36965	3.4	-34572	-33.6	-31229	-45.7
(ii)	**3 वर्ष से अधिक की मादा**	90415	8.6	97731	9.1	135268	12.7	7316	8.09	37537	38.4
(iii)	**बछड़ा एवं बछिया**	140336	13.4	134023	12.4	115129	10.8	-6313	-4.4	-18894	-14.0
योग		333517	31.9	299948	27.9	287362	26.9	-33569	-10.06	-12586	-4.1
(b) (i)	**गोवंशीय (क्रोस ब्रीड) 1.5 वर्ष से अधिक के नर**	1597	0.1	3757	0.3	4042	0.3	2160	135.2	285	7.5
(ii)	**2.5 वर्ष से अधिक की मादा**	9561	0.9	11964	1.1	46008	4.3	2403	25.1	34044	284.5
(iii)	**बछड़ा एवं बछिया**	12146	1.1	11509	1.07	40715	3.8	-637	-5.2	29206	253.7
योग		23304	2.2	27230	2.5	90765	8.5	3926	16.8	63535	233.3
योग (देशी +क्रोस ब्रीड)		356821	34.2	327178	30.5	378127	35.5	-29643	-8.3	50949	15.5
2(i)	**महिष जातीय 2 वर्ष से अधिक के नर**	7053	0.6	1616	0.15	6951	0.6	-5437	-77.0	5335	33.01
(ii)	**3 वर्ष से अधिक की मादा**	143618	13.7	158565	14.7	186466	17.5	14947	10.4	27901	17.5
(iii)	**पड़वा एवं पड़िया**	153996	14.7	200530	18.7	162763	15.2	46534	30.2	-37767	-18.8
योग (महिषजातीय)		30466	29.2	36071	33.63	35618	33.4	5604	18.3	-4531	-1.25

		7		1		0		4			
3(i)	भेड़ देशी	32533	3.1	33945	3.1	16775	1.5	1412	4.3	-17170	-50.5
(ii)	क्रास ब्रीड	896	0.08	369	0.03	2111	0.1	-527	-58.8	1742	472.0
योग (देशी + क्रास ब्रीड)		33429	3.2	34314	3.1	18886	1.7	885	2.64	-15428	-44.9
4.	बकरा/बकरी	235175	22.5	239157	22.3	263750	24.7	3982	1.6	24593	10.2
5.	घोड़े एवं टट्टू	3163	0.3	1911	0.1	3268	0.3	-1252	-39.5	1357	71.0
6(i)	सुअर (देशी)	91488	8.7	92518	8.6	34450	3.2	1030	1.1	-58068	-62.7
(ii)	क्रास ब्रीड	14467	1.3	14380	1.3	9488	0.8	-87	-0.6	-4892	-34.0
योग (देशी + क्रास ब्रीड)		105955	10.1	106898	9.9	43938	4.1	943	0.8	-62960	-58.8
7.	अन्य पशु	4105	0.3	2159	0.2	529	0.04	-1946	-47.4	-1630	-75.4
योग (कुल पशुधन)		1043315	100.00	1072328	100.00	1064678	100.00	29013	2.7	-7650	-0.71

स्रोत : जिला सांख्यिकीय पत्रिका, जनपद प्रतापगढ़, 2020

जबकि वर्ष 2007 के अन्तर्गत जनपद में कुल पशु संख्या 1072328 थी, जिसमें कुल गोवंशीय पशु 327178, महिषवंशीय पशु 360711, भेड़ वंशीय पशुओं की कुल संख्या 34314, बकरा/बकरी वंशीय पशु संख्या 239157, घोड़े व टट्टू की संख्या 1911, सूकर जाति के पशुओं की संख्या 106898 व अन्य पशुओं की संख्या 2159 थी। इसी प्रकार पशुगणना वर्ष 2012 से प्राप्त आँकड़ोंनुसार जनपद में पशुओं की कुल संख्या 1064678 है, जिसमें गोवंश के अन्तर्गत पशुओं की संख्या 378127, महिषवंशीय पशु 356180, भेड़ वंशीय पशु 18886, बकरा/बकरी की संख्या 263750, घोड़े व टट्टू की संख्या 3268, सूकरवंशीय पशु 43938 व अन्य पशुओं की कुल संख्या 529 है।

जनपद प्रतापगढ़
पशुधन वृद्धि(पशुगणना वर्ष 2003–2012)

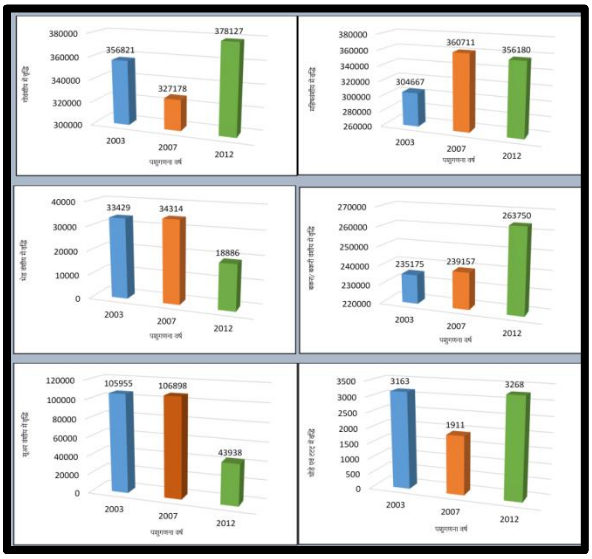

उपर्युक्त विवरण के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वर्ष 2003 की पशुगणना के अनुसार कुल पशुओं की संख्या 1043315 थी जो वर्ष 2007 में बढ़कर 1072328 हो गयी। अर्थात् उक्त 5 वर्षों के अन्तराल में 29013 पशु वृद्धि के साथ 2.7 औसत पशु वृद्धि दर में धनात्मक परिवर्तन हुआ। जबकि वर्ष 2012 की पशुगणना के अनुसार पशुओं की संख्या 1064678 रह गयी, अर्थात् वर्ष 2007 से 2012 के समयान्तराल में –7650 पशुओं के ह्रास के साथ औसत वृद्धि दर में –0.71 पशु की कमी हो गयी। इसी प्रकार गोवंशीय में 50949 (15.5) की पशु वृद्धि जबकि महिषवंशीय में –4531(–1.25) की हानि, भेड़ वंशीय में –15428 (–44.91) की हानि, बकरा/बकरी वंशीय में 24593 (10. 2) की पशु वृद्धि, सूकर वंश के पशुओं में –62960(–58.8) पशु हानि व अन्य पशुओं की संख्या में –1630 पशुओं की वृद्धि में गिरावट के साथ –75.4 औसत पशु वृद्धि दर में कमी हुयी।

प्रतापगढ़ जनपद में पशुपालन की समस्याएँः–

पशुपालन व्यवसाय चारागाह व चारे की पूर्ति पर निर्भर करता है, जबकि जनपद में चारागाह का कुल क्षेत्र मात्र 524 हेक्टेयर है, जो पशुपालन हेतु अपर्याप्त है।

जनपद में कृषि भूमि विस्तार एवं शहरीकरण के कारण हरे चारे का अभाव होता जा रहा है। पशुओं को मुख्यतः भूसा व धान के पुआल जैसे चारों पर रखा जा रहा है। यह चारा पशु चाव से नहीं खाते तथा इनसे पर्याप्त पोषक तत्व भी नहीं मिल पाता, परिणामस्वरूप इन चारों पर पालने वाले पशु से उत्पादन तो दूर अपना सामान्य स्वास्थ्य बनाये रखना भी सम्भव नहीं हो पाता है।

पशुओं में संचारी रोगों में वृद्धि देखी जा रही है। पशुओं के प्रमुख, संक्रामक रोग हैं–गलाघोंटू, खुरपका, मुँहपका रोग, लंगड़ी, प्लीहा/तिल्ली या बांगी रोग।

जनपद में पशुधन क्षेत्र पर उसकी क्षमता के अनुरूप अभी तक पर्याप्त नीतिगत और वित्तीय ध्यान नहीं दिया गया है।

जनपद में अच्छी पशु नस्लों का अभाव है। यहाँ 2019–20 तक मात्र 50 पशु चिकित्सालय 5 डी श्रेणी के पशु औषधालय, 45 पशु सेवा केन्द्र तथा 103 कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र हैं जो पशुधन की तुलना में काफी कम हैं।

अधिकांश पशुपालक अज्ञानी व लापरवाह हैं। वे मौसम के अनुसार पशुओं के रहने के लिए बाड़े नहीं बनाते हैं और न ही पशुओं को वैज्ञानिक ढंग से पालते हैं जिससे पशुओं की संख्या कम होती जा रही है।

प्रतापगढ़ जनपद में पशुपालन से सम्बन्धित समस्या का सुझावः–

- पशुओं को स्वस्थ रखने के लिए तथा उनकी उत्पादन क्षमता बनाये रखने के लिये उनके आहार में पोषक तत्वों का होना अति आवश्यक है। पशु–पालकों को मुख्यतः कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज तत्व व विटामिन से भरपूर चारा पशुओं को खिलाना चाहिए।
- पशुपालकों को प्रायः सभी संक्रामक बीमारियों का टीका अपने पशुओं को लगवाना चाहिए। अगर ऐसा नहीं कर सकते हैं, तो कम से कम गला घोंटू, खुरपका, मुँहपका एवं लंगड़ी बुखार के लिए टीका अवश्य लगवायें।
- रोगों और भंगुर जलवायु परिस्थितियों के प्रति अनुकूलन क्षमता तथा इनके दूध के पोषण मूल्य को देखते हुए स्वदेशी गोजातीय नस्लों का संरक्षण, विकास और प्रसार करना चाहिए। देशी नस्लों की गुणवत्ता बनाए रखना, नस्लों की बिगड़ने से व विलुप्त होने से बचाये रखने का प्रयास करना चाहिए।

- घायल/बीमार पशुओं को तत्काल प्राथमिक उपचार प्रदान करने के लिए पशु चिकित्सालयों में एम्बुलेंस सेवाओं का विस्तार किया जाना चाहिए।
- ग्रामीण क्षेत्रों में वैज्ञानिक ढंग से पशुपालन के तरीकों का प्रचार–प्रसार करना चाहिए जिससे कम पशुओं से ही अधिक दूध, मांस, ऊन प्राप्त किया जा सके एवं उनकी स्वच्छता का विशेष ध्यान रखा जाये जिससे उनकी अकाल मृत्यु न हो।
- केन्द्र एवं राज्य सरकार के द्वारा चलाई जा रही पशुपालन की विभिन्न योजनायें जैसे–राष्ट्रीय पशुधन मिशन, राष्ट्रीय गोकुल मिशन, राष्ट्रीय पशु रोग नियन्त्रण कार्यक्रम, राष्ट्रीय कृत्रिम गर्भाधान कार्यक्रम, यू0पी0 गोपालक योजना आदि का सही ढंग से क्रियान्वयन किया जाये जिससे पशुधन में वृद्धि हो सके।

निष्कर्षः–

शोध पत्र से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उपर्युक्त दिये गये सुझावों को यदि सही ढंग से अमल में लाया जाय तो हम पशुधन की घटती दर को काफी हद तक रोक सकते है। केन्द्र एवं राज्य सरकार को सटीक पशु गणना करानी चाहिये ताकि पशुओं की वास्तविक संख्या प्राप्त हो सके जिसके माध्यम से पशुपालन और उसके विकास के लिए बेहतर योजना बना कर किसानों को लाभ पहुँचाया जा सके।

सन्दर्भः

1 सांख्यिकीय पत्रिका 2020 जनपद प्रतापगढ़
2 सेंसस हैंडबुक 2011 जनपद प्रतापगढ़
3 एसडी मौर्य 2015 संसाधन भूगोल प्रयाग पुस्तक भवन इलाहाबाद
4 पशुपालन मार्गदर्शिका प्रसार पुस्तिका संख्या 52 कृषि विज्ञान केंद्र

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

नई शिक्षा नीति 2020 : बहुप्रविष्टि एवं निकास की संभावनाएं एवं चुनौतियां

डॉ विनोद कुमार जैन
सह आचार्य,शिक्षा संकाय,
तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय,
मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश
रूबी शर्मा
सहायक आचार्य शिक्षा संकाय,
तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय,
मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश

सारांश राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के शुभारंभ से भारतीय उच्च शिक्षा में एक नए युग की शुरुआत होगी, जो पहले से काफी बेहतर होगा और एक नये भविष्य का निर्माण करेगा। नई शिक्षा नीति में स्कूल स्तर के साथ–साथ उच्च शिक्षा में कई बदलाव शामिल हैं। उच्च शिक्षा में सामान्य नामांकन अनुपात को 2035 तक 26.3 प्रतिशत (वर्तमान में)से बढ़ाकर 50 प्रतिशत तक लाना है। उच्च शिक्षा में सर्टिफिकेट, डिप्लोमा एवं डिग्री पाठ्यक्रमों को शामिल किया जाएगा। देश में 34 सालों बाद नई शिक्षा नीति आई है जो शोधपरक, नवाचार और अनुसंधान को बढ़ावा देती है। इक्कीसवीं सदी के भारत की शिक्षा नीति के स्वरूप को दर्शाने वाली इस शिक्षा नीति में कुल 27 प्रमख बिंदओुं की विस्तार से चर्चा की गई है। इन 27 बिंदओं में से बिंदु संख्या 03 में बहुप्रविष्टि एवं निकास से संबंधित महत्वपर्ण सफिारिशें शामिल है। कुल मिलाकर यह सरकार की और से एक सराहनीय और बहुत ही सकारात्मक कदम है। समय बताएगा कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, वास्तव में निकट भविष्य की चुनौतियों से निपटने के लिए कारगर सिद्ध होती है या नहीं । कुल मिलाकर यह सरकार की और से एक सराहनीय और बहुत ही सकारात्मक कदम है। समय बताएगा कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, वास्तव में निकट भविष्य की चुनौतियों से निपटने के लिए कारगर सिद्ध होती है या नहीं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शिक्षा के क्षेत्र में किए गए बदलाव सराहनीय है लेकिन राष्ट्रीय शिक्षा नीति को लागू करने में सरकार को बुनियादी अवसंरचना को बहुत

अधिक मजबूत करना होगा। इस लेख में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के आलोक में बहुप्रविष्टि एवं निकास से संबंधित समस्याओ, वंर्तमान चुनौतियों तथा उनके संभावित समाधान की चर्चा की गई है।

संकेत शब्द– नई शिक्षा नीति 2020, बहुप्रविष्टि एवं निकास, चुनौतियाँ।

प्रस्तावना–

"विद्यार्थी करें अपने सपने साकार।
नई शिक्षा नीति का यही आधार"।।

1985 'शिक्षा की चुनौती' नामक एक दस्तावेज तैयार किया गया जिसमें भारत के विभिन्न वर्गों (बौद्धिक, सामाजिक, राजनैतिक, व्यावसायिक, प्रशासकीय आदि) ने अपनी शिक्षा सम्बन्धी टिप्पणियाँ दीं और 1986 में भारत सरकार ने 'नई शिक्षा नीति 1986' का प्रारूप तैयार किया। इस नीति की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इसमें सारे देश के लिए एक समान शैक्षिक ढाँचे को स्वीकार किया और अधिकांश राज्यों ने 10. 2. 3 की संरचना को अपनाया। इसे राजीव गांधी जी के प्रधानमन्त्रीत्व में जारी किया गया था। इस नीति में 1992 में संशोधन किया गया था। 1986 की शिक्षा नीति में ऐसी कौन सी कमियां रह गई थी जिन्हें दूर करने के लिए नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति लाने की आवश्यकता पड़ी साथ ही क्या यह नई शिक्षा नीति इन उद्देश्यों को पूरा करने में सक्षम होगी जिसका सपना महात्मा गांधी और स्वामी विवेकानंद ने देखा था। पूरे 34 वर्षों के अंतराल के बाद शिक्षा नीति में बदलाव लाया गया और बदलाव लाना भी जरूरी था। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 34 वर्ष पुरानी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 को प्रतिस्थापित करेगी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, 21 वीं सदी की पहली शिक्षा नीति है। वर्ष 1968 और 1986 के बाद यह भारत की तीसरी शिक्षा नीति है। नई शिक्षा नीति को प्रस्तुत करते हुए शिक्षा मंत्री डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक ने कहा–

"देश के प्रधानमंत्री ने एक नए भारत के निर्माण की बात की हैजो स्वच्छ भारत होगा, स्वस्थ भारत होगा, सशक्त भारत होगा, समृद्ध भारत होगा, श्रेष्ठ भारत होगा। उस नए भारत के निर्माण में यह नई शिक्षा नीति 2020 मील का पत्थर साबित होगी।"

आगे फिर उन्होंने कहा–

"यह शिक्षा नीति ज्ञान–विज्ञान अनुसंधान नवाचार प्रौद्योगिकी से युक्त संस्कारक्षम मूल्यपरक हर क्षेत्र में हर परिस्थिति का मुकाबला करने वाली पूरी दुनियाँ के लिए भारत में ज्ञान की महाशक्ति के रूप में उभर करके आएगी।"

भारत वर्ष के इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ कि शिक्षा नीति बनाने के लिए देश की लगभग 2.5 लाख ग्राम पंचायतें 6600 ब्लॉक और 650 जिलों से विचार लिए गए। इसमें शिक्षाविदो, अध्यापकों, अभिभावकों, जनप्रतिनिधियों एवं व्यापक स्तर पर छात्रों से भी सुझाव लेकर उनका मंथन किया गया। जन आकांक्षाओं के अनुरूप एवं राष्ट्रीय आवश्यकता और चुनौतियों के अनुरूप नई शिक्षा नीति 2020 की घोषणा की गई है। पूर्ववर्ती शिक्षा नीति में परिवर्तन की आवश्यकता क्यों ? शिक्षा व्यक्ति के संपूर्ण विकास के लिए बहुत आवश्यक है। इसलिए ये जरूरी है की शिक्षा की गुणवत्ता बनाये रखने के लिए वक्त के साथ शिक्षा नीति में भी बदलाव किया जाता रहे। नेशनल एजुकेशन पॉलिसी 2020 नई शिक्षा नीति भी समय की मांग और जरुरत के हिसाब से देश की शिक्षा व्यवस्था को प्रभावी बनाये रखने के लिए लाई गयी है। शिक्षा नीति में बदलाव 34 वर्ष बाद हुआ है। इससे पहले 1968 और 1986 के बाद ये तीसरी बार राष्ट्रीय शिक्षा नीति में बदलाव हुआ है। शिक्षा के संबंध में गांधी जी का तात्पर्य बालक और मनुष्य के

शरीर, मन तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से है। स्वामी विवेकानंद का कहना था कि मनुष्य की अंतर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। जरूरी हो जाता है कि पूर्ववर्ती शिक्षा नीति में परिवर्तन कर उसे किसी प्रकार एक नए बदलाव के रूप में रखा जाए। सबसे अहम् बात बदलते वैश्विक परिदृश्य में ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए मौजूदा शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन की आवश्यकता थी। शिक्षा के क्षेत्रा में गुणवत्ता में सुधार, नवाचार और अनुसंधान की नई तकनीकियों को बढ़ावा देने के लिए नई शिक्षा नीति की आवश्यकता थी। भारतीय शिक्षण व्यवस्था की वैश्विक स्तर पर पहुँच सुनिश्चित करने के लिए शिक्षा के वैश्विक मानकों को अपनाने के लिए शिक्षा नीति में परिवर्तन की आवश्यकता थी।

नई शिक्षा नीति के सिद्धांत

- प्रत्येक बच्चे की क्षमता की पहचान एवं क्षमता का विकास करना ।
- साक्षरता एवं संख्यामकता के ज्ञान को बच्चों के अंतर्गत विकसित करना ।
- शिक्षा को लचीला बनाना ।
- एक सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली में निवेश करना ।
- गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को विकसित करना ।
- बच्चों को भारतीय संस्कृति से जोड़ना ।
- उत्कृष्ट स्तर पर शोध करना ।
- बच्चों को सुशासन सिखाना एवं सशक्तिकरण करना ।
- शिक्षा नीति को पारदर्शी बनाना ।
- तकनीकी यथासंभव उपयोग पर जोर ।
- मूल्यांकन पर जोर देना ।
- विभिन्न प्रकार की भाषाएं सिखाना ।
- बच्चों की सोच को रचनात्मक एवं तार्किक करना ।
- उच्च शिक्षा से संबंधित प्रावधान ।
- नई शिक्षा नीति सन 2020 के अंतर्गत उच्च शिक्षण संस्थानों में सकल नामांकन अनुपात को 26.3 से बढ़ाकर 50 तक करने का लक्ष्य रखा गया है इसके साथ ही देश के उच्च शिक्षण संस्थानों में 3.30 करोड़ नहीं सीटों को जोड़ा जाएगा।
- नई शिक्षा नीति के अंतर्गत स्नातक पाठ्यक्रम में बहुप्रविष्टि एवं निकास की व्यवस्था को अपनाया गया है इसके अंतर्गत 3 या 4 वर्ष के स्नातक कार्यक्रम में छात्र छात्रा कई स्तरों पर पाठ्यक्रम को जोड़ सकेंगे और उन्हें उसी के अनुरूप डिग्री या प्रमाण पत्र की दिया जाएगा 1 वर्ष के बाद प्रमाण पत्र 2 वर्ष के पश्चात एडवांस डिप्लोमा 3 वर्ष के पश्चात स्नातक की डिग्री तथा 4 वर्ष के बाद शोध के साथ स्नातक।
- विभिन्न उच्च शिक्षण संस्थानों से प्राप्त अंकों या क्रेडिट को डिजिटल रूप से सुरक्षित रखने के लिए एकेडमिक बैंक ऑफ क्रेडिट दिया जाएगा जिससे अलग–अलग संस्थानों में छात्रों के प्रदर्शन के आधार पर उन्हें डिग्री प्रदान की जा सके।
- नई शिक्षा नीति के अंतर्गत एमफिल को समाप्त कर दिया गया है ।

बहुप्रविष्टि एवं निकास का संप्रत्यय – वर्तमान परिदृश्य में शिक्षा के मायने तीव्रता से परिवर्तित हो रहे है। सामाजिक परिवर्तन एवं विकास के लिए कौशल को संयंत्र माना जाता है इस प्रकार शिक्षा का संबंध वर्तमान से न होकर भविष्य से होता है। इसलिए शिक्षा को इस परिपेक्ष्य में देखें कि 21 वी शताब्दी में प्रवेश करने वाली नई पीढी अपने आप को नयी शताब्दी के लिए समर्थ बना सके। बहु प्रवेश और निकास प्रणाली(एमईईएस) का उद्देश्य प्रचलित कठोर सीमाओं को हटाना और आजीवन सीखने के लिए नई संभावनाएं बनाना है। बहु प्रवेश और निकास प्रणाली (एमईईएस) छात्रों को अपना खुद का डिग्री–निर्माता बनने की अनुमति देता है और उन्हें उस बिंदु से सीखने को फिर से शुरू करने के लिए प्रेरित करता है जो उन्हें बीच में छोड़ने के लिए आवश्यक था और उन्हें जीवन में अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में मदद करता है। इसके अनुसार, छात्रों के पास पाठ्यक्रम के प्रत्येक वर्ष के अंत में बाहर निकलने के विकल्प होंगे। सिफारिश यह है कि उन्हें एक वर्ष पूरा करने के बाद एक प्रमाण पत्र, दो साल पूरा करने के बाद एक डिप्लोमा, तीन साल के बाद स्नातक की डिग्री और चार साल के बाद कुछ शोध तत्व के साथ स्नातक प्राप्त होगा। पाठ्यचर्या संरचना में ये परिवर्तन न केवल छात्रों के लिए लचीले अवसर प्रदान करते हैं बल्कि शिक्षा के विचार में मूलभूत परिवर्तन भी करते हैं। आधुनिक युग में जहां एक और प्रगति पथ पर अग्रसर हुआ जा रहा है। वही पर जीवन मूल्यों, व्यक्तित्व विकास, प्रबन्धन क्षमता, व सम्प्रेषण क्षमता का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। केंद्र सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को मंजूरी दी है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 34 वर्ष पुरानी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 को प्रतिस्थापित करेगी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020–21 वीं सदी की पहली शिक्षा नीति है। वर्ष 1968 और 1986 के बाद यह भारत की तीसरी शिक्षा नीति है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत केंद्र एवं राज्य सरकार के सहयोग से शिक्षा के क्षेत्र पर देश की जीडीपी के 6 हिस्से के बराबर निवेश का लक्ष्य रखा गया है। ज्ञान अर्थव्यवस्था के युग में देश को विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनाने के लिए नीति में प्रमुख भविष्योन्मुखी बदलावों का प्रस्ताव है। प्रस्तावों में से एक बहु प्रवेश और निकास प्रणाली (एमईईएस) के साथ चार वर्षीय स्नातक की डिग्री शुरू करना है।

इस अध्ययन को प्रमुख उद्देश्य नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के तहत लागू किए गए बहुप्रविष्टि एवं निकास में छात्रों के समक्ष आने वाली चुनौतियों का अध्ययन करना है तथा उन चुनौतियों को किस प्रकार दूर किया जा सके उसके लिए संभावित समाधान की खोज करना हैं।

तकनीकी शब्दों का परिभाषीकरण

1.बहुप्रविष्टि एवं निकास– बहुप्रविष्टि एवं निकास सें तात्पर्य मसलन अगर कोई छात्र स्नातक स्तर में प्रवेश लेकर सिर्फ एक साल का ही कोर्स पूरा करता है, तो उसे इसके लिए सर्टिफिकेट दिया जाएगा। वहीं दो साल पूरा करने वालों को डिप्लोमा और तीन साल पूरा करने वालों को स्नातक स्तर की डिग्री दी जाएगी।

2.चुनौतियॉ–किसी विषयवस्तु के संबंध में आनें वाली समस्याएँ।

अध्ययन का उद्देश्य

- बहुप्रविष्टि एवं निकास के बारे में जानना।
- बहुप्रविष्टि एवं निकास की आवश्यकता के बारे में जानना।
- बहुप्रविष्टि एवं निकास के समक्ष आने वाली चुनौतियों के बारे में जानना।

यह लेखपत्र द्वितिय्क स्रोतों के माध्यम से लिखा गया है। इस हेतु विभिन्न रिपोर्ट, समाचार पत्रों एवं पुस्तकों से तथ्यों का संकलन किया गया है।

ड्रॉपआउट दर को कम करने बहुप्रविष्टि एवं निकास द्वारा जो छात्र अपनी डिग्री पूरी होने से पहले ही पढ़ाई छोड़ देते हैं, उन्हें उचित प्रमाणन दिया जाएगा। जिससे छात्र द्वारा उच्च शिक्षा में बिताया गया समय बर्बाद नहीं होगा ।

बहुप्रविष्टि एवं निकास के दो फायदे हैं एक यह है कि छात्र प्रमाण पत्र के साथ श्रम बाजार में प्रवेश कर सकते हैं।

छात्र क्रेडिट बचा सकते हैं और बाद में उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। इसके तहत 3 या 4 वर्ष के स्नातक कार्यक्रम में छात्रा कई स्तरों पर पाठ्यक्रम को छोड़ सकेंगे और उन्हें उसी के अनुरूप डिग्री या प्रमाण–पत्र प्रदान किया जाएगा (1 वर्ष के बाद प्रमाण–पत्र, 2 वर्षों के बाद एडवांस डिप्लोमा, 3 वर्षों के बाद स्नातक की डिग्री तथा 4 वर्षों के बाद शोध के साथ स्नातक) इस योजना के तहत स्कूल छोड़ने की दर को कम किया जा सके और हमारे देश के अधिक से अधिक छात्रों को शिक्षा प्रदान की जा सके और इस योजना से शिक्षा व्यवस्था को लचीला बनाया जाएगा जिससे हमारे देश के बच्चों को आसानी से शिक्षा मिल सकेगी और बच्चे अपनी पसंद का विषय चुन सकते हैं।

बहुप्रविष्टि एवं निकास के लाभ

- बहुप्रविष्टि एवं निकास से ड्रॉपआउट दर को कम करने में मदद मिलेगी।
- छात्रों के पास पाठ्यक्रम में शामिल होने या अपनी पसंद के अनुसार पाठ्यक्रम छोड़ने के लिए अधिक लचीलापन और स्वतंत्रता होगी, और यदि वे अपने भविष्य के कैरियर की जरूरतों के अनुसार एक अलग क्षेत्र के बारे में सीखना चाहते हैं तो उन्हें पाठ्यक्रम बदलने के अवसर भी प्रदान किए जाएंगे।
- उच्च शिक्षा में सकल नामांकन अनुपात बढ़ाना एनईपी 2020 के उद्देश्यों में से एक है। इस कदम से छात्रों की ड्रॉप–आउट दरों में कमी आएगी।
- इससे भारत में उच्च शिक्षा प्रणाली में क्रांति आने की संभावना है क्योंकि केवल इच्छुक छात्र ही बहुप्रविष्टि एवं निकास सिस्टम के माध्यम से डिग्री पूरी करेंगे। जो लोग पाठ्यक्रम को आगे बढ़ाने में रुचि नहीं रखते हैं, उन्हें इसे हर तरह से पूरा करने की कोई बाध्यता नहीं होगी।
- यह पथप्रदर्शक कदम इस दिशा में निरंतर सुधारों के साथ हमारी उच्च शिक्षा प्रणाली को वैश्विक प्रारूप जैसा बना देगा।
- यह छात्र को अपना पाठ्यक्रम छोड़ने और सुविधाजनक होने पर इसे फिर से शुरू करने की अनुमति देता है।
- वित्तीय कठिनाइयों के कारण अपनी पढ़ाई जारी रखने में असमर्थ एक छात्र नौकरी खोजने और पैसे कमाने के लिए बाहर निकल सकता है ताकि पढ़ाई फिर से शुरू की जा सके। दूसरे शब्दों में, बहुप्रविष्टि एवं निकास आर्थिक रूप से अक्षम छात्रों के लिए अपनी पढ़ाई पूरी करने का एक अवसर है। संभवत आर्थिक कारक एक है जो उच्च शिक्षा में ड्रॉपआउट का कारण बनता है।
- अन्य कारण जैसे सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक आदि भी भारत में प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए, जो लड़कियां जल्दी शादी कर लेती हैं या डिग्री हासिल करते हुए गर्भवती होती हैं और जो दुर्घटनाओं या बीमारियों के कारण शारीरिक कठिनाई का सामना कर रही हैं, वे बहुप्रविष्टि एवं निकास को एक आशीर्वाद के रूप में देखेंगी। लेकिन अवधारणा का अधिक गहन विश्लेषण व्यावहारिक

जटिलताओं और शिक्षा को सामाजिक जिम्मेदारी से व्यक्तिगत जिम्मेदारी में बदलने का प्रयास दिखाता है।

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में, बहुप्रविष्टि एवं निकास प्रणाली एक बहुत ही सकारात्मक परिवर्तन प्रतीत होता है।

बहुप्रविष्टि एवं निकास के समक्ष आने वाली चुनौतियां

प्रवेश सबंधित चुनौती– बहुप्रविष्टि एवं निकास को लागू करते समय शैक्षणिक संस्थानों को बहुत सारी चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है। मुख्य समस्याओं में से एक प्रत्येक वर्ष भर्ती होने वाले छात्रों की संख्या का निर्धारण करना होगा। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि एक कॉलेज के लिए डिग्री प्रोग्राम की कुल संख्या 30 छात्र प्रति वर्ष है। यदि, दूसरे सेमेस्टर तक, 10 छात्र बाहर निकलते हैं और लगभग 20 छात्र जो वर्षों पहले बाहर हो गए हैं, उसी समय प्रवेश के लिए कतार में हैं, तो यह शिक्षक–छात्र अनुपात और उपलब्ध बुनियादी सुविधाओं को परेशान करेगा।

बहुप्रविष्टि प्रतिबंध की संभावना– स्वाभाविक रूप से, प्रत्येक वर्ष अपनी पढ़ाई फिर से शुरू करने की संभावना वाले छात्रों की संख्या पर प्रतिबंध लगाया जा रहा है। इसलिए, बहुप्रविष्टि एवं निकास छात्रों की इच्छा के अनुसार प्रवेश सुनिश्चित नहीं करेगा, बल्कि संस्थानों की शर्तों पर। वहीं, सरकारी कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में बहुप्रविष्टि एवं निकास केवल आरक्षण नीति का पालन करके ही दिया जा सकता है। दूसरी ओर, निजी संस्थान इसे उन छात्रों से अत्यधिक शुल्क लेने का एक अच्छा अवसर मानेंगे जो अपनी पढ़ाई फिर से शुरू करने के लिए प्रवेश चाहते हैं।

पाठ्यचर्या निर्माण सबंधित चुनौती –छात्र एक साल के बाद सर्टिफिकेट के साथ, दो साल के बाद डिप्लोमा के साथ और तीन साल के बाद बैचलर डिग्री और 4 साल बाद रिसर्च के साथ बैचलर डिग्री के साथ बाहर निकल सकते हैं। इस प्रणाली को लागू करने में पाठ्यचर्या निर्माण एक बड़ी चुनौती है। एक या दो साल के डिग्री कोर्स के बाद एक छात्र किस प्रकार की दक्षता प्राप्त करेगा ? इस प्रकार, किसी विशेष विषय क्षेत्र में आवश्यक विशिष्ट दक्षताओं, ज्ञान और कौशल को शामिल करने के लिए पाठ्यक्रम को फिर से तैयार करने की आवश्यकता है।

उचित मार्गदर्शन सबंधित चुनौती–उचित मार्गदर्शन के अभाव में छात्रों के मन में भ्रम और शंका उत्पन्न हो सकती है जिससे अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। व्यक्तिगत, सामाजिक, भावनात्मक, सांस्कृतिक, आर्थिक या किसी अन्य कारण से स्कूल छोड़ने की अधिक संभावना वाले छात्रों के लिए छात्र सहायता सेवाओं को विभिन्न स्तरों पर प्रोत्साहित और विकसित करने की आवश्यकता है। 'एक और चिंता जो सभी को परेशान कर रही है, वह यह है कि बीच में पाठ्यक्रम छोड़ने वाले छात्रों की एक बड़ी आबादी कुछ मामूली कारणों से वापस नहीं लौट सकती है। यह सुनिश्चित किया जाना है कि मजबूत प्रेरणा और उचित मार्गदर्शन के अभाव में छात्रों का एक बड़ा वर्ग उच्च शिक्षा से वंचित न हो।

रोजगार सबंधित चुनौती– विभिन्न क्षेत्रों में प्रमाण पत्र और डिप्लोमा धारकों के लिए एक ही समय में किस प्रकार के अवसर उपलब्ध होंगे जब डिग्री धारकों को नौकरी पाने में कठिनाई हो रही है। छात्रों को प्रारंभिक प्रमाण पत्र या डिप्लोमा के आधार पर रोजगार खोजने में कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है जब तक कि यह तकनीकी रूप से विशिष्ट न हो।

लघु उद्यमियों के असफलता की आशंका– क्या हम कई प्रवेश और निकास बिंदुओं के माध्यम से एक या दो साल के पाठ्यक्रम को पूरा करने के बाद प्रमाण पत्र और

डिप्लोमा प्रदान करके कुशल उद्यमियों का एक पूल विकसित करने में सक्षम होंगे । काम की दुनिया में अर्ली एग्जिट सर्टिफिकेट को नाकामी की मोहर मानने की आशंका है। शैक्षिक संस्थानों को इस प्रणाली को लागू करते समय प्रवेश की परेशानी मुक्त व्यवस्था विकसित करने की आवश्यकता है। स्थिति गंभीर होने की संभावना है, मान लीजिए जब किसी विशेष संस्थान में डिग्री कोर्स की कुल संख्या तय हो जाती है। स्थिति से कैसे निपटा जाए जब इस प्रणाली के तहत मान लीजिए कि 15 छात्र दूसरे सेमेस्टर में बाहर निकलने का फैसला करते हैं और लगभग 25 छात्र जो साल पहले छोड़ चुके हैं, प्रवेश के लिए कतार में हैं । जाहिर है, यह संस्थान में उपलब्ध आवश्यक शिक्षक–छात्र अनुपात और अन्य बुनियादी सुविधाओं को बिगाड़ देगा।

शिक्षण शुल्क का एक त्रुटिहीन तंत्र विकसित–इस प्रणाली के वास्तविक अर्थ में क्रियान्वयन के लिए बहु प्रवेश विकल्प के तहत प्रवेश के समय फीस का एक त्रुटिहीन तंत्र विकसित करने की आवश्यकता है। यह सुनिश्चित किया जाना है कि यह प्रणाली निजी या अन्य संस्थानों के लिए उन छात्रों से अत्यधिक शुल्क लेने का सुनहरा अवसर न बन जाए जो अपनी पढ़ाई फिर से शुरू करने के लिए वापस प्रवेश चाहते हैं।

संक्षेप में, बहुप्रविष्टि एवं निकास को उच्च शिक्षा प्रणाली को अधिक छात्र–अनुकूल और न्यायसंगत बनाने के उद्देश्य से एक बड़ा सुधार माना जा सकता है। इस अभूतपूर्व कदम का रणनीतिक निष्पादन शिक्षार्थियों को कहीं से भी, कभी भी सीखने के अवसर के साथ उनके शून्य–वर्ष के नुकसान को सुनिश्चित करने के लिए सहज गतिशीलता प्रदान करेगा।

निष्कर्ष

शिक्षा नीति 2020 द्वारा प्रस्तावित सभी परिवर्तनों का स्वागत है, लेकिन इतिहास ने दिखाया हैं कि अच्छी नीतियाँ या तो क्रियान्वयन के स्तर पर अटक जाती हैं या क्रियान्वयन में देरी के परिणामस्वरूप नौकरशाही देरी का शिकार हो जाती हैं। यह अनुमान लगाना उचित है कि, शिक्षा नीति में प्रस्तावित परिवर्तनों के आलोक में, नीति निर्माताओं के लिए अगला कदम शिक्षक शिक्षा से संबंधित नीति के क्रियान्वयन के लिए तत्काल, मध्यम और दीर्घकालिक लक्ष्यों को स्थापित करना होगा। जिसमें स्पष्ट निर्देश होंगे इन लक्ष्यों को कैसे प्राप्त करें। यदि शिक्षा प्रक्रिया में शामिल सभी लोग पूरी ईमानदारी के साथ काम करते हैं। तो उपरोक्त चुनौतियाँ का हल ढूँढकर भारतीय शिक्षा प्रणाली को फिर से विश्वस्तरीय बनाया जा सकता है। इसके लिए सिर्फ सरकार, समाज, शिक्षक, प्रबंध समिति एवं विद्यार्थियों के प्रयासों की जरूरत है। इस क्रियान्वयन योजना के विकास और सकारात्मक रणनीति से जनता के मध्य यह संदेश भी जाएगा कि शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में सरकार की नीति और इरादे के बीच कोई टकराव नहीं है और सरकार इन अनुशंसाओं को लागू करने के लिए प्रतिबद्ध है।

सन्दर्भ

1. मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार. (2020), राष्ट्रीय शिक्षा नीति
2. गवाल सुभाष, (2020, 22 अगस्त)रू नई शिक्षा नीति 21वीं सदी की चुनौतियों का करेगी मुकाबला, दैनिक नवज्योति
3. Nandini, Ed. (2020, 29 July): "New Education Policy 2020 Highlights: School and higher education to see major changes".Hindustan Times.

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

शिक्षक शिक्षा के परास्नातक स्तर के विद्यार्थियों के प्रस्तुतीकरण कौशल के विकास हेतु आकलन उपकरण के रूप में रुब्रिक का प्रयोग

.डॉ0 रत्नर्तु: मिश्रा
असिस्टेंट प्रोफेसर शिक्षक शिक्षा विभाग
छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय कानपुर

सारांश

समय के साथ परिवर्तन आवश्यक होते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में भी विभिन्न परिवर्तन हो रहे हैं। आकलनए जोकिशिक्षा प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण भाग हैए में भी विविध परिवर्तन देखने में आ रहे हैं। कक्षा में बताए गए उत्तरों को याद करके विद्यार्थियों द्वारा लिख देना तथा अध्यापक द्वारा व्यक्तिनिष्ठता के साथ अंक प्रदान कर देनाए आधुनिक युग में संभव नहीं है। आज विद्यार्थी अपने प्रत्येक निष्पादन के मूल्यांकन का वस्तुनिष्ठ आधार चाहते हैं। शिक्षक शिक्षा के विद्यार्थीए जिनके प्रशिक्षण में गतिविधि आधारित क्रियाकलापों जैसे प्रस्तुतीकरण आदिए का विशिष्ट स्थान होता हैए अपने कार्यों के वस्तुनिष्ठ आकलन हेतु विशेष रूप से उत्सुक होते हैं। वे भावी शिक्षक होते हैं। अतः उन्हें वस्तुनिष्ठ आकलन की प्रक्रिया से परिचित भी कराया जाना चाहिए। रूब्रिक इस दिशा में एक उपयोगी उपकरण है। राष्ट्रीय शिक्षा नीतिए 2020 ने आकलन के क्षेत्र में व्यापक परिवर्तनों की आवश्यकता बताई है। पारंपरिक मूल्यांकन के स्थान पर रचनात्मक आकलन को महत्व देते हुए नीति ने दक्षता आधारित अधिगम पर बल दिया है। अतरू इस प्रकार के अधिगम के मूल्यांकन हेतु नवीन आकलन उपकरणों की आवश्यकता है। आकलन के इसी स्वरूप को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में आकलन के क्षेत्र में रुब्रिक को स्थान प्रदान किया है।प्रस्तुत प्रपत्र शिक्षक शिक्षा के परास्नातक स्तर के विद्यार्थियों के प्रस्तुतीकरण कौशल के विकास हेतु रुब्रिक निर्माण से संबंधित है जिसमें रुब्रिक निर्माण की आवश्यकताए रुब्रिक के स्वरूप और उसकेप्रमुख भागों के साथ ही शिक्षक शिक्षा से संबंधित एक स्वनिर्मित रुब्रिक प्रस्तुत किया गया है।

मुख्य शब्द : आकलनए रुब्रिकए शिक्षक शिक्षाए प्रस्तुतीकरण कौशलए वस्तुनिष्ठ अंकन।

प्रस्तावना –

शिक्षा समाज एवं राष्ट्र के विकास का आधार है। किंतु शिक्षा प्रक्रिया अपने लक्ष्यों को पूर्णता केसाथ तभी प्राप्त कर सकती है जब योग्य शिक्षक पूर्ण समर्पण के साथ शिक्षण कार्य में अपना योगदान दें। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए सम्पूर्ण देश में शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं। शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम मूलतः दो भागों में विभाजित होता है। प्रथम भाग सैद्धान्तिक होता है जिसमें शिक्षा तथा शिक्षण संबंधी विभिन्न दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक सामाजिक एवं तकनीकी सिद्धांतों की जानकारी शिक्षा प्रशिक्षुओं को प्रदान की जाती है जबकि द्वितीय भाग प्रायोगिक कार्यों से सम्बन्धित होता है जिसके अन्तर्गत विद्यार्थियों को शिक्षण सम्बन्धी विभिन्न कौशलों में दक्षता प्राप्त करने के अवसर प्रदान किए जाते हैं। इस स्थिति में यह ज्ञात करना महत्वपूर्ण हो जाता है कि अपने प्रशिक्षण के बाद शिक्षा-प्रशिक्षु अपने पाठ्यक्रम के उद्देश्य को किस सीमा तक प्राप्त कर सके हैंं निश्चित रूप से यह कार्य आकलन द्वारा ही सम्भव है। हम सभी इस तथ्य से परिचित हैं कि अध्ययन-अध्यापन की प्रक्रिया के बाद विद्यार्थियों का आकलन एक महत्वपूर्ण एवं गम्भीर कार्य है। आकलन से न केवल विद्यार्थी द्वारा प्राप्त दक्षता का ज्ञान प्राप्त होता है अपितु शिक्षकों को भी अपने शिक्षण के सकारात्मक और नकारात्मक पक्षों को जाननेए समझने और उसमें सुधार करने के लिए मार्गदर्शन प्राप्त होता है। जब हम शिक्षक शिक्षा जैसे पाठ्यक्रमों में आकलन की बात करते हैं तब यहां पर एक प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है कि कैसे आकलन प्रक्रिया को अधिकाधिक वस्तुनिष्ठ बनाया जाएं हम सभी जानते हैं कि शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में सैद्धान्तिक पाठ्यक्रम की लिखित परीक्षाएं होती हैं जबकि प्रायोगिक पाठ्यक्रम का आकलन मुख्यतः मौखिक प्रस्तुतीकरण अथवा शिक्षण कौशलों के प्रदर्शन आदि पर निर्भर रहता है। स्वाभाविक रूप से प्रायोगिक कार्यक्रम के अन्तर्गत शिक्षा प्रशिक्षुओं द्वारा किए जाने वाले प्रस्तुतीकरण के आकलन में परीक्षकों की व्यक्तिनिष्ठता विशेष रूप से योगदान देती है। प्रायोगिक पाठ्यक्रम में ग्रेड अथवा अंकन किस आधार पर मिल रहा है, इसमें विद्यार्थियों में भ्रम की स्थिति रहती है। कुछ परीक्षकों में नंबर देने की भी अधिक प्रवृत्ति होती है जबकि कुछ परीक्षक कम अंक प्रदान करने की प्रवृत्ति वाले होते हैं। कई बार विद्यार्थियों को लगता है कि उनका प्रस्तुतीकरण अच्छा था लेकिन उन्हें सही अंक अथवा ग्रेड प्राप्त नहीं हो पाए। विद्यार्थी कई बार यह भी जानना चाहते हैं कि उनके प्रस्तुतीकरण अथवा पाठ योजना इत्यादि को उनके द्वारा किस प्रकार विकसित किया जाए कि वह अच्छे ग्रेड या अंक प्राप्त कर सकेंं वे अपने आकलन का वस्तुनिष्ठ आधार चाहते हैं। वे चाहते हैं कि उन्हें पहले से पता रहे कि वे किसी भी पीपीटी, असाइनमेंट या पाठ योजना के निर्माण किस प्रकार करें कि वह अच्छे अंक अथवा ग्रेड प्राप्त कर लें। इन समस्याओं के समाधान में रुब्रिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

समस्या का चयन –

शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों को समय की आवश्यकताओं के अनुरूप अधिकाधिक व्यावहारिक बनाना आज के समय में अपरिहार्य है। शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम मूलतः प्रशिक्षुओं के कौशल निर्माण से सम्बन्धित है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत प्रशिक्षुओं में विभिन्न प्रकार के कौशलों का विकास किया जाता है जिनमें से एक प्रमुख कौशल प्रस्तुतीकरण से सम्बन्धित है। आज के तकनीकी आधारित युग में प्रत्येक शिक्षक अपने व्याख्यान को प्रभावी बनाने के लिए पावर पॉइंट प्रेजेंटेशन अर्थात प्रस्तुतीकरण का प्रयोग करता है। उत्तम प्रस्तुतीकरण व्याख्याता तथा अध्ययनकर्ताओं के मध्य सशक्त संप्रेषण माध्यम का कार्य करता है। अतः आज के समय में शिक्षा-प्रशिक्षुओं को प्रस्तुतीकरण कौशल में दक्ष बनाना अनिवार्य है। यही कारण है कि शिक्षक शिक्षा के पाठ्यक्रमों में पावर प्वाइंट प्रस्तुतीकरण का निर्माण महत्वपूर्ण स्थान रखता है। छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय के शिक्षक शिक्षा के परास्नातक स्तर के पाठ्यक्रम में प्रत्येक अनिवार्य प्रश्न पत्र के आन्तरिक मूल्यांकन में प्रस्तुतीकरण का महत्वपूर्ण स्थान है। इस परिस्थिति में विद्यार्थियों के मध्य अध्यापिका के रूप में अध्यापन कार्य करते हुए शोधकर्त्री को कुछ समस्याएं देखने में आईं कि -

1. विद्यार्थी अपने पावर पॉइंट प्रेजेंटेशन के निर्माण के प्रमुख मानदंडों को समझने में समस्या का अनुभव करते हैं।

2. उनमें यह जिज्ञासा भी बलवती होती है कि आखिर वे अपने प्रेजेंटेशन का निर्माण किस प्रकार करें कि वह उत्तम अंक प्राप्त कर सकें।

3. विद्यार्थी अपने प्रायोगिक पाठ्यक्रम के आकलन हेतु एक वस्तुनिष्ठ आधार भी चाहते हैं। जिससे उन्हें यह ज्ञात हो सके कि किसी विद्यार्थी विशेष को निश्चित अंक किस कारण से प्राप्त हुए हैंघ्

विद्यार्थियों की इसी समस्या को ध्यान में रखते हुए शोधकर्त्री ने अपनी कक्षाएम0एड0 चतुर्थ सेमेस्टर के विद्यार्थियों के लिए निर्धारित अनिवार्य प्रश्न पत्र "टीचर एजुकेशन इन इंडियन पर्सपेक्टिव्स" के पावर पॉइंट प्रेजेंटेशन हेतु एक रूब्रिक का निर्माण कियाए जिससे कि विद्यार्थियों के पावर पॉइंट प्रेजेंटेशन के आकलन को वस्तुनिष्ठ आधार प्रदान किया जा सके साथ ही साथ पावर पॉइंट प्रेजेंटेशन के निर्माण से पूर्व ही विद्यार्थियों को अपना प्रेजेंटेशन किन मानदंडों पर निर्मित करना हैए यह ज्ञात हो जाए।

आकलन उपकरण के रूप में रुब्रिक -

रूब्रिक एक आकलन उपकरण है जो विद्यार्थियों के निष्पादन के आकलन के लिए एक गणितीय निर्देशिका प्रस्तुत करता है जो कि एक आव्यूह के रूप में व्यवस्थित होती है। रुब्रिक एक गणनीय उपकरण है जो कार्य के किसी भाग अथवा "क्या अपेक्षित है" के लिए मानदंडों की सूची तैयार करता है। यह प्रत्येक मानदंड के लिए निकृष्ट से श्रेष्ठतम तक गुणवत्ता के वर्गीकरण को स्पष्ट करता है (गुडरिचए 1966.67द्ध।

विद्यार्थियों के त्वरित आकलन हेतु रुब्रिक विशेष उपकरण के रूप में कार्य करता है। रुब्रिक के द्वारा न केवल अध्यापक को दक्षता एवं कुशलता के साथ किसी भी निश्चित कार्य के वस्तुनिष्ठ आकलन में सहायता मिलती है अपितु विद्यार्थियों को भी किसी भी निश्चित कार्य को पूरा करने का सुनिश्चित आधार प्राप्त हो जाता है। रुब्रिक के द्वारा विद्यार्थियों को उनके कार्य के उन प्रमुख बिंदुओं की जानकारी मिल जाती है जिसके आधार पर उन्हें अंक अथवा ग्रेड प्रदान किए जाएंगे।

ष्अधिगम हेतु आकलन" तथा "आकलन अधिगम के रूप" में (ेमेउमदज वित स्मंतदपदह –ेमेउमदज ॅ स्मंतदपदहद्ध के संप्रत्यय के अनुपालन में रुब्रिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

रुब्रिक के तीन प्रमुख भाग होते हैं

1. **मानदंड** –किसी भी रूप में मानदंड से तात्पर्य कार्य के उन प्रमुख बिंदुओं की सूची से है जिन पर विद्यार्थी को अपना ध्यान केंद्रित करके अपने कार्य को पूर्णता प्रदान करनी होती है।

2. **स्केल -** स्केल से तात्पर्य उस पैमाने से है जिसके एक निश्चित स्तर की प्राप्ति परए विद्यार्थी एक निश्चित ग्रेड अथवा अंक प्राप्त करता है।

3. **विवरणक** -विवरणक वाक्यों का वह समूह है जिससे कि विद्यार्थी को यह विवरण प्राप्त हो जाता है कि उसे निश्चित ग्रेड प्राप्त करने के लिए क्या-क्या कार्य पूरे करने होंगे।विवरणक के आधार पर ही प्रत्येक मानदंड के लिए विद्यार्थी का स्तर निर्धारित किया जाता है।

अंकन –

रुब्रिक में मात्रात्मक आकलन के लिए अंक निर्धारण की भी व्यवस्था होती है। इसमें पैमाने के प्रत्येक स्तर हेतु अंक निश्चित कर दिए जाते हैं। जिसके आधार पर विद्यार्थी के संपूर्ण कार्य हेतु अंक प्रदान किए जाते हैं तथा आवश्यकतानुसार ग्रेड का निर्धारण किया जाता है। विद्यार्थियों के इन अंकों तथा ग्रेड के आधार पर कक्षा में विद्यार्थी के कार्य का तुलनात्मक अध्ययन भी संभव होता है।

सम्बन्धित साहित्य के अध्ययन से भी शोधकर्त्री के निर्णय को बल प्राप्त हुआ।मिकनिकए डेविस और जॉनसन (2020द्ध ने "यूजिंग रुब्रिक्स टू इंप्रूव द एसेसमेंट लाइफ साइकिल: ए केस स्टडी" शीर्षक से एक अध्ययन किया जिसका उद्देश्य रुब्रिक के उपयोग से विद्यार्थियों के अधिगम प्रतिफल में सुधार की संभावनाओं का अध्ययन करना था। परिणामों से ज्ञात हुआ कि रुब्रिक द्वारा सुसंगत अंकन प्रक्रिया में सहायता प्राप्त होती है और विद्यार्थियों को स्वआकलन के द्वारा अपनी योग्यताओं के प्रत्यक्षण हेतु अंतर्दृष्टि भी प्राप्त होती है।एंड्राइड तथा ड्यू (2005द्ध ने विद्यार्थियों के परिप्रेक्ष्य में रुब्रिक रेफरेंस्ड आकलन का अध्ययन किया और पाया कि विद्यार्थियों को अपने कार्य पर ध्यान केंद्रित करने में रुब्रिक के उपयोग से सहायता प्राप्त होती है और वह कार्य को उच्च गुणवत्ता के साथ पूरा कर पाते हैं। अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ कि विद्यार्थियों को अच्छा ग्रेड प्राप्त करने तथा असाइनमेंट को पूरा करने में विद्यार्थियों की मानसिक चिंताओं को कम करने में भी रुब्रिक सहायक है। एंड्राडे तथा डेलामेटर (1999द्ध नेअपने अध्ययन के दौरान कक्षा सात तथा आठ के विद्यार्थियों को निबंध संबंधी दत्तकार्य के साथ अनुदेशनात्मक रुब्रिक प्रदान किया। परिणामों से ज्ञात हुआ कि विद्यार्थियों के लेखन पर स्वआकलन की प्रक्रिया का सकारात्मक प्रभाव पड़ा।

शिक्षा प्रशिक्षुओं के प्रस्तुतीकरण कौशल के आकलन हेतु निर्मित रुब्रिक –

विद्यार्थियों की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए शोधकर्त्री द्वारा रूब्रिक का निर्माण किया गया। चित्र संख्या 1 में छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय के एम0एड 0 चतुर्थ सेमेस्टर के विद्यार्थियों के लिए निर्धारित अनिवार्य प्रश्न पत्र "टीचर एजुकेशन इन इंडियन पर्सपेक्टिव्स" के पावर पॉइंट प्रेजेंटेशन हेतु निर्मित रूब्रिक प्रदर्शित किया गया है।   चित्र संख्या 1

विद्यार्थियों के प्रस्तुतीकरण के मूल्यांकन हेतु रूब्रिक

मानदण्ड	स्तर-1	स्तर-2	स्तर-3
शीर्षक	शीर्षक का निर्माण पूर्णतः स्वयं किया गया।	अध्यापक द्वारा निर्धारित शीर्षकों में से शीर्षक का चयन किया गया।	विद्यार्थी द्वारा निर्धारित समय सीमा में शीर्षक का चयन नहीं किया गया और समय सीमा के पश्चात अध्यापक द्वारा प्रेजेंटेशन हेतु शीर्षक निर्धारण किया गया
विषयवस्तु	पीपीटी में प्रस्तुत विषयवस्तु में कक्षा में दिये गये व्याख्यान के अन्तर्गत उल्लिखित प्रमुख बिन्दुओं में से कम से कम 10 बिन्दुओं का समावेश किया गया।	पीपीटी में प्रस्तुत विषयवस्तु में कक्षा में दिये गये व्याख्यान के अन्तर्गत उल्लिखित प्रमुख बिन्दुओं में से कम से कम 7 बिन्दुओं का समावेश किया गया।	पीपीटी में प्रस्तुत विषयवस्तु में कक्षा में दिये गये व्याख्यान के अन्तर्गत उल्लिखित प्रमुख बिन्दुओं में से कम से कम 5 बिन्दुओं का समावेश किया गया।
निर्माण	पीपीटी का निर्माण निर्धारित समय पर किया गया।	पीपीटी का निर्माण निर्धारित प्रथम समय सीमा के पश्चात् किया गया।	पीपीटी का निर्माण द्वितीय समय सीमा के पश्चात् किया गया।
प्रस्तुतीकरण	प्रस्तुतीकरण के अन्तर्गत निर्मित पीपीटी के सामान्य वाचन के साथ-साथ उदाहरणोंए अतिरिक्त कथनों तथा विषयवस्तु के तुलनात्मक स्वरूप को भी व्यक्त किया गया।	प्रस्तुतीकरण के अन्तर्गत निर्मित पीपीटी के सामान्य वाचन के साथ-साथ केवल उदाहरणों अथवा अतिरिक्त कथनों को प्रस्तुत किया गया।	प्रस्तुतीकरण के अन्तर्गत केवल निर्मित पीपीटी का सामान्य वाचन किया गया।

चित्र संख्या एक में प्रदर्शित रुब्रिक में विद्यार्थियों के पावर पॉइंट प्रेजेंटेशन के आकलन के लिए चार मानदंड निर्धारित किए गए हैं। इसके साथ ही विद्यार्थियों के अंक निर्धारण के लिए तीन स्तर भी निश्चित किए गए हैं। प्रथमए द्वितीय तथा तृतीय स्तरों के लिए क्रमशः 3ए 2 तथा 1 अंक निर्धारित हैं। इस रूब्रिक के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि विद्यार्थियों के द्वारा निर्मित प्रेजेंटेशन के आकलन का आधार क्या होगाघ

उदाहरण के लिए यदि कोई विद्यार्थी अपने शीर्षक का निर्माण स्वयं करता है तब उसे प्रथम स्तर अर्थात 3 अंक प्राप्त होंगे। जबकि अध्यापक द्वारा निर्धारित शीर्षकों में से शीर्षक चयनित किए जाने पर विद्यार्थी को द्वितीय स्तर अर्थात 2 अंक प्राप्त होंगे। यदि विद्यार्थी द्वारा निर्धारित समय सीमा में शीर्षक का चयन नहीं किया गया और समय सीमा के पश्चात अध्यापक द्वारा प्रेजेंटेशन हेतु शीर्षक निर्धारण किया गया तब विद्यार्थी को तृतीय स्तर अर्थात मात्र एक अंक प्राप्त होगा। इसी प्रकार निर्माण संबंधी मानदंड के आकलन हेतु यदि विद्यार्थी द्वारा समय सीमा के अंदर प्रेजेंटेशन निर्मित कर लिया गया तब उसे प्रथम स्तर अर्थात 3 अंक प्रदान किये जाएंगे। निर्धारित समय सीमा के बाद प्रेजेंटेशन निर्मित करने पर विद्यार्थी को द्वितीय स्तर अर्थात 2 अंक प्रदान किए जाएंगे। विद्यार्थी द्वारा द्वितीय समय सीमा के निर्धारण के बाद प्रस्तुतीकरण तैयार किया जाता है तब उसे तृतीय स्तर अर्थात मात्र एक अंक प्रदान किया जाएगा। किसी भी कार्य के प्रारम्भ से पूर्व ही विद्यार्थियों को रुब्रिक प्रदान कर दिया जाना चाहिए। इससे विद्यार्थियों को किसी भी निश्चित कार्य हेतु आवश्यक अपेक्षाएं पूर्व में ही स्पष्ट हो जाती हैं। इसके साथ ही उन्हें समुचित दिशानिर्देश तो प्राप्त होते ही हैंए उनके निष्पादन में भी पर्याप्त सुधार होते हैं और वे स्वआकलन में भी सक्षम हो जाते हैं।

निष्कर्ष –

आज के आधुनिक युग में शिक्षा के क्षेत्र में जब क्रियात्मक पक्ष पर विशेष बल दिया जा रहा है उस स्थिति में रुब्रिक जैसे आकलन उपकरण विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाते हैं। छात्र छात्राओं की विभिन्न गतिविधियों के वस्तुनिष्ठ आकलन के लिए रुब्रिक विशिष्ट दिशानिर्देशों से युक्त एक ऐसी निर्देशिका है जोकि स्वआकलन के संप्रत्यय को विशिष्ट आधार प्रदान करती है। इस उपकरण के प्रयोग से अध्यापक की कार्यकुशलता में वृद्धि होती है साथ ही साथ कम समय में सन्तुष्टिदायक मूल्यांकन भी संभव हो पाता है। रुब्रिक द्वारा प्रयोगात्मक कार्य अथवा गतिविधियों के लिए अंकन की प्रक्रिया वस्तुनिष्ठ हो जाने के कारण विद्यार्थियों को संतुष्टि प्राप्त होना सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य है।यद्यपि रुब्रिक के निर्माण के लिए शिक्षकों को विशेष दक्षता तथा अतिरिक्त समय की आवश्यकता है फिर भी इसकी उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए न केवल शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में अपितु अन्य पाठ्यक्रमों में भी इसका प्रयोग किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति. 2020 मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार.
2. Andrade, H., & Delamater, B. (1999). Gender and the role of rubric-referred selfassessment in learning to write. In Andrade, H.G. (2000). Using rubrics to promote thinking and learning. Educational Leadership, 57(5), 1-7.
3. Goodrich, H. (1996-97). Understanding Rubrics, 54(4), 14-17.
4. Miknis, M., Davies, R. & Johnson, C.S. (2020). Using rubrics to improve the assessment lifecycle: a case study. Higher Education Pedagogies, 5(1), 200-209.

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

NAAGS KANPUR

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

श्रीरामचरितमानस में रामराज्य का स्वरूप

शोभा मिश्रा
दर्शन शास्त्र विभाग
गणपत सहाय पी0जी0 कॉलेज, सुल्तानपुर
शोध छात्रा
राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या

रामराज्य की दृष्टि एक प्राचीन दृष्टि है जिसे सबसे पहले **महर्षि वाल्मीकि** ने '**रामायण**' में व्यक्त किया है। मध्ययुगीन काल में **गोस्वामी तुलसीदासजी** ने '**श्रीरामचरितमानस**' में इस दृष्टि को प्रस्तुत किया और इसे लोकप्रिय स्तर पर लाए। आधुनिक समय के दौरान, **महात्मा गांधी** ने इसे मानव समाज के लिए एक वैश्विक दृष्टि के रूप में व्यक्त किया। रामराज्य की परिकल्पना शासन की उस अवस्था के रूप में की गई है, जहाँ शासक लोगों की भलाई को अपने हित से ऊपर रखता है।

जर्मन दार्शनिक **नीत्शे** ने सत्ता की व्याख्या इस प्रकार की थी कि मनुष्य में जो कुछ भी शक्ति की भावना, शक्ति की इच्छा, शक्ति की भावना को बढ़ाता है सत्ता है। **प्लेटो** के दार्शनिक राजा भी सत्तावादी बन गए जब रोमनों ने उनमें देवत्व का निवेश किया। **जूलियस सीजर** ने दर्जनों मूर्तिकारों को उनकी अलग–अलग मूर्तियां बनाने के लिए कमीशन दिया, जबकि हिटलर एक श्रेष्ठ जाति के अपने ज्ञान में रहस्योद्घाटन करता था। इस तरह की चापलूसी और आत्मतुष्टता ने पूरे इतिहास में क्रूर अधिनायकवादी पैदा किए हैं।[1]

रामराज्य के अनुसार, एक राजा, शासक या फिर नेता से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने लिए धन संचय करने के बजाय उन सभी की देखभाल करे और ईमानदारी व कर्मठता के साथ जनता के हितों को ध्यान में रखते हुए उनकी सहायता और समर्थन की आवश्यकता को पूरी करने का कार्य किया जाये। रामराज्य समाजवाद और पूंजीवाद के विचारों से परे है। रामराज्य को प्रशासन की एक प्रणाली के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो वास्तविक सिद्धांतों पर आधारित है। जब महात्मा गांधी रामराज्य का जिक्र कर रहे थे, तो वे लोकतांत्रिक व्यवस्था के बारे में बात कर रहे थे, जहां शासक लोगों की खुशी के लिए शासन करेंगे, जिस व्यवस्था में सभी के लिए समान अधिकार होंगे, चाहे वे किसी भी वर्ग के हों।[2]

रामराज्य का युग सबसे उत्तम माना जाता था क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह किसी भी श्रेणी का हो, धर्म के नियम का पालन करता है और इसलिए शांति और सद्भाव में रहता है। प्रभु श्री राम ने लोगों की इच्छा के आधार पर शासन के अपने सिद्धांतों को प्रतिपादित किया। सरल शब्दों में कहें तो रामराज्य की अवधारणा पूर्ण तरीके से सुशासन पर केंद्रित है।

श्रीरामचरितमानस में रामराज्य

श्रीरामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामराज्य को भलीभांती वर्णित किया है। **मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु श्री राम** के सिंहासन पर आसीन होते ही भारतवर्ष में हर्ष व्याप्त हो गया, सारे शोक दूर हो गए एवं दैहिक, दैविक और भौतिक तापों से मुक्ति मिल गई। कोई भी अल्पमृत्यु, रोग, पीड़ा से ग्रस्त नहीं था। सभी स्वस्थ, बुद्धिमान, साक्षर, गुणज्ञ, ज्ञानी तथा कृतज्ञ थे।[3]

"राम राज बैठे त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका।।
बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई।।
दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।।
अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।।
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी।।
राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं।।"[4]

भरत जी रामराज्य के विलक्षण प्रभाव का उल्लेख करते हुए कहते हैं, "राघव! आपके राज्य पर अभिषिक्त हुए एक मास से अधिक समय हो गया। तब से सभी लोग निरोग दिखाई देते हैं। बूढ़े प्राणियों के पास भी मृत्यु नहीं फटकती है। स्त्रियां बिना कष्ट के प्रसव करती हैं। सभी मनुष्यों के शरीर ह्ष्टदृपुष्ट दिखाई देते हैं। राजन! पुरवासियों में बड़ा हर्ष छा रहा है। मेघ अमृत के समान जल गिराते हुए समय पर वर्षा करते हैं। हवा ऐसी चलती है कि इसका स्पर्श शीतल एवं सुखद जान पड़ता है। राजन नगर तथा जनपद के लोग इस पुरी में कहते हैं कि हमारे लिए चिरकाल तक ऐसे ही प्रभावशाली राजा रहें।"[5]

प्रभु श्री राम द्वारा किया गया आदर्श शासन हिंदू संस्कृति में रामराज्य के नाम से प्रसिद्ध है। वर्तमान समय में रामराज्य का प्रयोग सर्वोत्कृष्ट शासन या आदर्श शासन के प्रतीक के रूप में माना जाता है। रामराज्य लोकतंत्र का परिमार्जित स्वरूप माना जाता है। रामराज्य की अवधारणा किसी धार्मिक संकीर्णता की द्योतक नहीं है, बल्कि एक जनहितकारी अवधारणा है। इस पर काफी गहन मनन व चिंतन की आवश्यकता है। रामराज्य मे स्वाभाविक रूप से प्रकृति प्रदत्त उपहारों का उपयोग ही रामराज्य का आदर्श है। आज का मानव जिन विसंगतियों और विडंबनाओं का सामना कर रहा है वह रामराज्य के विपरीत है। समाज अनेक वर्गों और वर्णों में विभाजित हो चुका है। मानव मानव के बीच विषमता शिखर पर पहुंच गई है । एक दूसरे के प्रति घृणा से परिचालित हो रहा है यह समाज सम्पूर्ण विश्व में इन दिनों भावनात्मक एकता की कमी हो गई है। रामराज्य में राजा द्वारा किसी तरह का पक्षपात नही था। समदर्शी होना राजा होने का सबसे महत्वपूर्ण स्वरूप माना जाता था।

रामराज्य में लोकतंत्र

रामराज्य की प्रशासन प्रणाली एक बेहतरीन लोकतंत्र था। वह एक आदर्श राजा, स्व–अनुशासित, आज्ञाकारी, कर्तव्यपरायण, धैर्यवान, गरिमामय, वचनबद्ध, कानून का पालन करने वाला और समन्वयक था। रामराज्य की मुख्य विशेषता यह थी कि इसमें लोकतंत्र के सभी पहलुओं को शामिल किया गया था। न्याय मिलने की पूरी संभावना थी। रामायण काल के दौरान शासन के सिद्धांतों के अनुसार, लोकतंत्र की अवधारणा को तभी साकार किया जा सकता है जब न्याय को सर्वव्यापी बनाया जाए। श्रीरामचरितमानस के अनुसार, सुशासन का एक महत्वपूर्ण कारक मंत्रियों की गुणवत्ता है। साहसी, जानकारी, दृढ़ इच्छाशक्ति वाले उच्च भावनात्मक गुण वाले मंत्री के रूप में प्रभावी शासन की कुंजी हैं।

श्रीरामचरितमानस के अनुसार व्यापार और कृषि महत्वपूर्ण हैं और वे चाहते थे कि शासक बारिश पर अत्यधिक निर्भर होने के बजाय अच्छी सिंचाई सुविधाएं सुनिश्चित करें। कानून और न्याय, वित्त और व्यापार, मौद्रिक लाभ के लिए निर्दोषों पर भ्रष्टाचार, गरीबों के साथ अन्याय, सभी का उल्लेख किया गया है। संक्षेप में, श्रीरामचरितमानस में शासन की अवधारणा अधिकतम लोगों को अधिकतम अवधि के लिए धर्मनिष्ठता और नैतिक मूल्यों के सिद्धांतों के आधार पर अधिकतम सुख प्रदान करने के लिए है।[6]

रामराज्य में प्रजा एवं उनका आचरण

''बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहि भय सोक न रोग ''[7]

जब प्रत्येक व्यक्ति अपने **वर्ण** एवं **आश्रम** धर्म के अनुसार जीवन व्यतीत करता है अथवा जब प्रत्येक व्यक्ति जीवन के विभिन्न चरणों के अनुसार अपने निहित कार्य उसी प्रकार करता है जैसा कि वेदों में परिभाषित है, जब कहीं भी किसी भी प्रकार का भय ना हो, दुख ना हो तथा रोग ना हो वही रामराज्य है। जो कार्य आपके लिए निहित है, उसे अपनी पूर्ण क्षमता के अनुसार प्रामाणिकता से करें। जब हम सब वे सभी कार्य सम्पूर्ण श्रद्धा से करेंगें जो हमारे लिए निहित है तो विश्व की 99 प्रतिशत समस्याएं चुटकी में हल हो जाएंगी।

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि रामराज्य में किसी को भी शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर किसी भी प्रकार की कोई पीड़ा नहीं होती थी। शास्त्रों में उल्लेख किये गए कर्तव्यों का पालन करते हुए प्रत्येक व्यक्ति दूसरों के साथ सामंजस्य एवं प्रेम का भाव रखता है। आज के परिवेश में हम इसे कानून का अनुसरण करते हुए नैतिकता से जीवनयापन करना कह सकते हैं। धर्म के चारों अंग सत्य, पवित्रता, करूणा एवं दान की पूर्ति हो तथा कोई भी व्यक्ति स्वप्न में भी पाप ना करे। सब प्रभु श्री राम की भक्ति करें तथा जन्म मृत्यु के चक्र से मुक्त हो कर मोक्ष प्राप्त करें। संभव है, यहाँ राम का संबंध अयोध्या के राजा से ना हो अपितु वे कबीर द्वारा कहे गए निर्गुण राम हों।[8]

किसी की भी अकाल मृत्य ना हो और प्रत्येक मनुष्य रोगमुक्त सुंदर शरीर युक्त हो। कोई भी दरिद्र, दुखी अथवा दयनीय ना हो। कोई भी शुभ–लक्षण–विहीन मूर्ख ना हो। कोई भी तुच्छ ना हो। प्रत्येक मानव धार्मिक हो तथा अपना धर्म निभाने में व्यस्त हो। सभी स्त्री एवं पुरुष बुद्धिमान एवं प्रतिभाशाली हों। सभी सुशिक्षित एवं ज्ञानी हों

तथा दूसरों के ज्ञान का सम्मान करें। प्रत्येक मनुष्य कृतज्ञ हो तथा किसी भी प्रकार के छल कपट में लिप्त ना हो। प्रत्येक व्यक्ति दानी, दयालु एवं सहायक हो तथा ज्ञानी का सम्मान करे। पुरुष केवल एक स्त्री से विवाह करे तथा स्त्री अपने तन, मन एवं आत्मा से अपने पति की ओर पूर्णतः समर्पित हो। रामराज्य में दंड केवल योगीयों के हाथों में विराजमान था। जाति भेद, यह शब्द केवल नर्तकों के शब्दकोश में पाया जाता था जिसका प्रयोग वे विभिन्न ताल, लय, स्वरों इत्यादि में भेद करने हेतु करते थे। जीत शब्द का प्रयोग केवल मन जीतने के लिए किया जाता था क्योंकि रामराज्य में राजा राम के पराक्रम से जीतने के लिए कोई शत्रु शेष नहीं था।[9]

रामराज्य में गाय व चारा की कमी न होने से गाय पर्याप्त दूध देती थी यही कारण था कि सभी लोग स्वस्थ और निरोगी थे। रामराज्य में सभी नदियां शुद्ध, निर्मल, शीतल पेय जल से परिपूर्ण थी और न जल प्रदूषण था, न वायु प्रदूषण और ना ही मृदा प्रदूषण था यह कह सकते है कि वातावरण पवित्र व शुद्ध था इसी से लोग बीमार नहीं होते थे एवं धरती हरी भरी थी। इससे किसान संपन्न थे और राज्य समृद्धिशाली था।[10]

गुरुकुल, समाज से दूर प्राकृतिक वातावरण में होते थे जहां शिक्षार्थियों को स्वावलम्बन के साथ–साथ नैतिक ज्ञान की शिक्षा और अन्य विषयों की शिक्षा युद्ध कला आदि की शिक्षा दी जाती थी, जिससे समाज की बुराइयों का असर शिक्षार्थियों पर नहीं पड़ता था। वह बड़े होकर ज्ञानी, विद्वान, गुणवान, नीतिज्ञ और शौर्यवाह होकर वापस समाज में लौटते थे। वहां का वातावरण, जल, मृदा, वायु सब पूर्णतया सुरक्षित थे। कृषि, गोधन, फल, फूल पशुधन आदि से परिपूर्ण था रामराज्य। लोग बाहर से गुरुकुल में शिक्षा पाकर आते थे जिसमें नैतिक शिक्षा और स्वावलम्बन पर विशेष बल दिया जाता था जो व्यक्ति को आर्थिक व भावनात्मक रूप से मजबूत बनाता था। कुल मिलाकर एक दूसरे के प्रति प्रेम था, समर्पण था, प्यार था, सेवा भाव था एवं कृतज्ञता थी, देश प्रेम था, गुरु प्रेम था, परिवार प्रेम था। यही था रामराज्य।

सन्दर्भ सूची

1. कौशलेन्द्र कुमार, गोस्वामी तुलसीदास और रामराज्य की अवधारणा, अन्तर्राष्ट्रीय जर्नल आफ हिन्दी रिसर्च, वल्यूम 6, ईशू 5, 2020 पृष्ठ सं. 1,3
2. चिखलिकर, एस. (2003) ऑब्जर्वेशन्स अबाउट रामायण वार, वेदा, भक्तिवेदांत बुक ट्रस्ट, प्राग।
3. रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
4. श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, दो. 20.7,8 21.1,5,6,8
5. गोस्वामी तुलसीदास, रामचरित मानस, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2012
6. बास, बी.एम. (1985) लीडरशिप एंड परफॉर्मेंस बियॉन्ड एक्सपेक्टेशंस। न्यूयॉर्क, एन.वाई. फ्री प्रेस।
7. श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, दो. 20
8. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 2004
9. डॉ. नगेन्द्र, संपादक, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, 2000
10. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरुप चतुर्वेदी पृष्ठ 49

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

NAAGS KANPUR

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की हिन्दी भाषा में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों का पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में विश्लेषणात्मक अध्ययन

विनय कुमार सिंह
शोधार्थी, शिक्षा विभाग
शिक्षा संकाय
स्वामी विवेकानंद सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ
डॉ0 अनोज राज
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
शिक्षा विभाग, शिक्षा संकाय
स्वामी, विवेकानंद सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ

सारांश
यह अध्ययन माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की हिन्दी भाषा में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों का पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में विश्लेषणात्मक अध्ययन करने से सम्बन्धित है। वर्तमान शोध अध्ययन हेतु उत्तर प्रदेश राज्य के वाराणसी जनपद के माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में कक्षा 9 के 600 विद्यार्थियों को यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा चयनित किया गया है। प्रदत्तों का संकलन शोधकर्ता द्वारा स्वनिर्मित हिन्दी भाषा वर्तनी त्रुटि निदानात्मक परीक्षण तथा शालू सैनी एवं प्रो0 परमिन्दर कौर द्वारा निर्मित पारिवारिक वातावरण मापनी के माध्यम से किया गया है। शोध अध्ययन में पाया गया कि पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों में सार्थक अंतर नहीं पाया गया जबकि पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों में सार्थक अंतर पाया गया।

शब्द कुंजी – माध्यमिक स्तर, हिन्दी भाषा, वर्तनी त्रुटियॉ, पारिवारिक वातावरण।

प्रस्तावना

किसी भी देश में माध्यमिक शिक्षा, प्राथमिक तथा उच्च–शिक्षा को जोड़ने की कड़ी है। माध्यमिक स्तर की शिक्षा अपने आप में पूर्ण इकाई होती है तथा बच्चों के निर्माण के दृष्टिकोंण से प्रमुख होती है। लेकिन यह शिक्षा विद्यार्थियों की किस आयु से किस आयु

तक या किस कक्षा से किस कक्षा तक चले तथा इसकी क्या पाठ्यक्रम हो, इस विषय में भिन्न–भिन्न देशों के भिन्न–भिन्न निर्णय हैं। भारत में माध्यमिक शिक्षा 9वीं से 12वीं तक के कक्षा को कहा जाता है। जिसमें 14 से 18 वर्ष के आयु के विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते हैं (एन.ई.पी., 2020, पृ.सं.–16)। इस स्तर पर भाषा की शिक्षा भाषा को वैज्ञानिकता प्रदान करती है। विचार विनिमय का एक प्रमुख साधन है। भाषा ही शिक्षा तथा ज्ञान का मुख्य आधार है। लिपि की सहयोग से भाषा में स्थायित्व आ गया है। भाषा के अभाव में शिक्षा व ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता है। भाषा के द्वारा ही किसी भी समाज का ज्ञान सुरक्षित रहता है। इसके अलावा भाषा सामाजिक एकता में सहायक होती है। भाषा के द्वारा ही बच्चे का शारीरिक, बौद्धिक व व्यक्तित्व का विकास होता है। भाषा से ही भावात्मक एकता, राष्ट्रीय एकता तथा अन्तर्राष्ट्रीय भावनाओं का विकास होता है। क्षेत्रीय भाषाओं के बीच सम्बन्ध बनाकर राष्ट्र–भाषा लोगों को राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाती है, जिससे उनमें एकीकरण की भावना का विकास होता है। मानव जिस शक्ति से आगे की ओर बढ़ा है वह शक्ति भाषा की ही शक्ति है। संसार में अन्य प्राणियों के पास अपनी–अपनी भाषाएँ हैं। परन्तु विचार को प्रकट करने वाले भाषा केवल मानव के पास ही है। इसके अलावा अन्य प्राणी जो भाव व्यक्त करते हैं, वे अस्थायी होते हैं। मानव सदियों से अपने पूर्वजों के भावों, विचारों व अनुभवों को सुरक्षित रखने में भाषा के कारण ही सफल हुआ है (संजय कुमार एवं मंजू शर्मा, 2008, पृ.सं.–19)। संविधान के 351वें अनुच्छेद में वर्णित हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है। यह संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त राजभाषा भी है। यह भारतवर्ष में बहुत से लोगों द्वारा बोली एवं समझी जाने वाली भाषा है। ये उत्तरी व मध्य भारत के 8 राज्यों की तो सम्पूर्ण रूप से स्वीकृत भाषा है। यह पूरे देश की सम्पर्क भाषा भी है। भारत में साठ प्रतिशत व्यक्ति हिन्दी को बोल, पढ़ व लिख सकते हैं। लगभग अस्सी प्रतिशत व्यक्ति इसे सुनकर समझ सकते हैं। विश्व की भाषाओं में भी हिन्दी का अपना विशिष्ट स्थान है। हिन्दी शब्द का निर्माण संस्कृत के सिन्धु शब्द से माना गया है। 'सिंधु' नदी के आधार पर उसके आस–पास के भू भाग को ही सिंधु कहा जाने लगा। यह सिंघु ही ईरान में हिन्दू हो गया। धीरे–धीरे इसका विस्तार होता चला गया तथा यह सम्पूर्ण भारत वर्ष में हिन्दू से हिन्द हुआ और भाषा के सन्दर्भ में हिन्द की भाषा हिन्दी कही जाने लगी। वर्तमान समय की हिन्दी भाषा संस्कृत से ही उत्पन्न व अनेक भाषाओं का मिश्रण है। वर्तमान हिन्दी भाषा की लिपि देवनागरी है। आज हिन्दी भाषा समृद्ध व अतिव्यापक है। वर्तमान हिन्दी में लगभग एक लाख से अधिक शब्द है। इसकी अपनी पारिभाषिक शब्दावली है। विश्व के सभी भाषाओं में से हिन्दी सर्वाधिक वैज्ञानिक भाषा है। इसका अपना व्याकरण है। प्रत्येक भाषा से हिन्दी के शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है। यह जैसी ही बोली जाती है वैसी ही लिखी जाती है (संजय कुमार एवं मंजू शर्मा 2008, पृ.सं.7–8)। भाषा विचारों एवं भावों का अर्थग्रहण एवं अभिव्यक्ति ही भाषा है (बैजनाथ शर्मा, 2003, पृ.सं. –6)। वर्तनी का सम्बन्ध बालकों की स्मृति से है। यदि किसी भी शब्द के रूप को बालकों के स्मृति में ठीक ढंग से अंकित करा दिया जाये तो वे वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियाँ नहीं करेंगे। अगर वास्तव में देखा जाय तो वर्तनी की समस्या इतनी हिन्दी में नहीं, जितना की आंग्ल तथा उर्दू आदि भाषाओं में है। जहाँ के उच्चारण के अनुरूप वर्ण नहीं है तथा वर्णों के अनुरुप उच्चारण नहीं है। देवनागरी लिपि की वर्णमाला ध्वनि पर आधारित है लेकिन फिर भी वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियाँ हिन्दी के विद्यार्थियों द्वारा प्रायः हो ही जाया करती है। शुद्ध वर्तनी व्यक्ति के अभिव्यक्ति को सशक्त बनाती है। वर्तनी के सन्दर्भ में यदि सन्देह बना रहे तो व्यक्ति अपने आप को ठीक प्रकार से अभिव्यक्त नहीं

कर पायेगा तथा अभिव्यक्ति के अभाव में उसकी सृजनात्मक प्रतिभा भी विकसित नहीं हो पायेगी। भाषा के दो रूप होते हैं–मौखिक तथा लिखित। मौखिक भाषा के द्वारा हम अपने मन के विचारों को एक दूसरे व्यक्तियों को समझाने की कोशिश करते हैं। मौखिक भाषा में उच्चारण का विशेष महत्व है, क्योंकि उच्चारण की त्रुटियाँ होने से अर्थ का अनर्थ तो होता ही है तथा साथ ही साथ भाषा प्रभावहीन हो जाती है और सुनने वाले को प्रभावित नहीं कर पाती है। परिवार को बालक का प्रथम पाठशाला कहा जाता है। प्रत्येक परिवार की रहन सहन की दशा प्रत्येक सदस्यों के आपसी सम्बन्धो के कारण एक विशेष पारिवारिक वातावरण का निर्माण होता है। पारिवारिक वातावरण से तात्पर्य घर के उस वातावरण से है जो बालक को जन्म से ही मिलना प्रारम्भ हो जाता है तथा वह अपना अधिकांश समय उसी में व्यतीत करता है। इसके अन्तर्गत उसके माता–पिता, भाई–बहन तथा अन्य सम्बंधी शामिल होते हैं। वह उनके साथ क्रिया–प्रतिक्रिया करता है, जो उसके विचार, व्यवहार, भाव एवं मूल्यों को निर्मित करने में महत्वपूर्ण होते हैं। परिवार की भौतिक स्थिति मुख्य रूप से बालक को प्रभावित करती है, जैसे– पास–पड़ोस, परिवार में सदस्यों की संख्या, घर में स्थान की पर्याप्तता, परिवार के सदस्यों का एक दूसरे के साथ प्रदर्शित व्यवहार आदि। प्रस्तुत शोध में पारिवारिक वातावरण से तात्पर्य परिवार में संचार, सुविधाओं, व्यक्तियों का प्रोत्साहन, पारिवार की प्रतिबद्धता, धार्मिक अभिविन्यास, सामाजिक जुड़ाव, ग्रहण करने की क्षमता, सराहना, अभिव्यक्तिकरण, स्पष्ट भूमिकाएँ एक दूसरे के साथ व्यतीत किया गया समय से है। इन सभी को सम्मिलित रूप से पारिवारिक वातावरण कहा गया है। पारिवारिक वातावरण प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सदस्यों की शैक्षिक स्थिति पर प्रभाव डालता है। जिसकी पुष्टि कई शोधों से भी होती है। कुमार (2006) के शोध निष्कर्षो से स्पष्ट है की एकाकी परिवार के छात्रों की शैक्षिक– उपलब्धि उच्च एवं संयुक्त परिवार के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि निम्न पायी है। राज (2012) के अध्ययन में शैक्षिक उपलब्धि पर पारिवारिक वातावरण का प्रभाव पाया। पारिक (2013) ने संस्कृत भाषा में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियाँ पायी। जाट (2014) ने हिन्दी भाषा में प्रयुक्त होने वाले वाक्य सूचना, प्रत्यय, वर्ण विचार, उपसर्ग, समास तथा वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों में अन्तर पाया। चन्द्राकार (2015) ने ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों से संबंधित हिन्दी माध्यम के स्कूलों में विद्यार्थियों में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियाँ पायी। पाण्डेय (2015) ने छात्राओं का पारिवारिक वातावरण, छात्रों की तुलना में अच्छा था। चौहान (2016) ने पाया कि शैक्षिक उपलब्धि बनाए रखने के लिए उपयुक्त पारिवारिक वातावरण व मानसिक स्वास्थ्य की आवश्यकता है। यादव (2019) ने विराम चिह्न का प्रयोग करने में छात्रों में त्रुटियाँ पायी। कुशवाहा (2020) ने भाषा सम्बन्धी विविधता पायी। कदम (2020) ने यह पाया कि पठन की तुलना में लेखन स्तर पर विद्यार्थी अधिक त्रुटियाँ करते हैं। संबन्धित साहित्य का अध्ययन के उपरांत यह निष्कर्ष निकलता है कि विद्यार्थियों की भाषा में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों से संबन्धित शोध कार्य हुए है, लेकिन सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों का पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में अध्ययन नहीं किये गये है अथवा बहुत सीमित है। अतः शोधकर्ता को माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की हिन्दी भाषा में वर्तनी सम्बंधी त्रुटियों का पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में विश्लेषणात्मक अध्ययन करने की आवश्यकता है ताकि विभिन्न विद्यालयों के छात्रों में पारिवारिक वातावरण की दशा जानकर हिन्दी भाषा के वर्तनी सम्बन्धित दोषों के निवारण हेतु निदानात्मक योजनाओं एवं प्रक्रियाओं का संचालन कर सकते है। माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी, माध्यमिक शिक्षा परिषद् द्वारा संचालित सरकारी, अनुदानित

एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में पढ़ने वाले कक्षा 9 से 12वीं तक के विद्यार्थी है। प्रत्येक विद्यालय में हिन्दी भाषा जो उत्तर प्रदेश राज्य की राजकीय भाषा भी है, हिन्दी भाषा अध्ययन का विषय है। भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है और एक ऐसी शक्ति है जो मनुष्य के विचारों, अनुभवों और सन्दर्भो को व्यक्त करती है अर्थात जिन ध्वनि चिन्हों के द्वारा मनुष्य परस्पर विचार–विनिमय करता है, उसकी समष्टि ही भाषा है। प्रायः भाषा के बोलने लिखने में कई त्रुटियाँ पायी जाती है जिसके कई कारण होते है। वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों से अभिप्राय हिन्दी भाषा में व्याकरण के ज्ञान के अभाव, भ्रम, असावधानी और अभ्यास के अभाव के कारण शुद्ध हिन्दी लिखने व बोलने में की जाने वाली त्रुटियों से है। वर्तनी सम्बन्धित त्रुटियों में परिवार और विद्यालय की भूमिका सर्वोपरी है और भाषा से रचनात्मक शक्ति का विकास होता है। इन्ही तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुये अध्ययन के उद्देश्य वर्तमान शोध हेतु पहचान की गयी है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. अत्यंत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के सन्दर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों का अध्ययन करना।
2. औसत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों का अध्ययन करना।
3. अत्यंत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों का अध्ययन करना।
4. औसत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों का अध्ययन करना।

शून्य परिकल्पना

1. अत्यंत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
2. औसत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
3. अत्यंत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
4. औसत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

शोध न्यादर्श

वर्तमान शोध हेतु वर्णनात्मक अनुसंधान के अर्न्तगत सर्वेक्षण विधि को अपनाया गया है शोध हेतु उत्तर प्रदेश राज्य के वाराणसी जिले में स्थित माध्यमिक शिक्षा परिषद् उत्तर प्रदेश द्वारा मान्यता प्राप्त कक्षा नवीं के 30 माध्यमिक विद्यालयों के 600 विद्यार्थियों को

न्यादर्श के रुप में चयनित किया गया है। जिसमें 10 सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के 200 विद्यार्थियों, 10 अनुदानित माध्यमिक विद्यालयों के 200 विद्यार्थियों तथा 10 स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के 200 विद्यार्थियों का चयन किया गया है। माध्यमिक विद्यालयों के न्यादर्श का चयन असमानुपाती स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन विधि से किया गया तथा विद्यार्थियों के न्यादर्श का चयन साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्शन विधि से किया गया है। शोध हेतु पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में विद्यार्थियों द्वारा हिन्दी भाषा में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियों से संबंधित आकड़ों के लिये 2 माननीकृत उपकरणों का प्रयोग किया गया है। हिन्दी भाषा में वर्तनी त्रुटि निदानात्मक परीक्षण हेतु शोधकर्ता द्वारा माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की हिन्दी भाषा में वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियाँ: निदानात्मक परीक्षण स्वनिर्मित उपकरण का प्रयोग किया गया। जिसके प्रथम भाग में आडियो के माध्यम से विद्यार्थियों द्वारा 100 शब्द लिखे, जिसके लिए उन्हें 6 मिनट का समय दिया गया। दूसरे भाग में 100 शब्दों का वाचन किया। वाचन के लिए 2 मिनट का समय निर्धारित था तथा विद्यार्थिंयों के वाचन को रिकार्ड कर वीडियों बनाया गया। पारिवारिक वातावरण मापने के लिए, पारिवारिक वातावरण (शालू सैनी एवं प्रो0 परमिन्दर कौर)

उद्देश्य – 1 अत्यंत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के सन्दर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों का अध्ययन करना।

परिकल्पना – 1 अत्यंत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों में कोई सार्थक अंतर नहीं है

तालिका संख्या – 1.0

अत्यंत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के सन्दर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों का अध्ययन

समूह	संख्या	योग	औसत	प्रसरण
अत्यंत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण में सरकारी विद्यालयों के छात्रों में वर्तनी त्रुटियों का प्राप्तांक	79	3486	44.13	1703.24
अत्यंत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण में अनुदानित विद्यालयों के छात्रों में वर्तनी त्रुटियों का प्राप्तांक	71	3290	46.34	1677.03
अत्यंत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण में स्ववित्तपोषित विद्यालयों के छात्रों में वर्तनी त्रुटियों का प्राप्तांक	75	2738	36.51	761.31

स्रोत–सरकारी, अनुदानित, स्ववित्तपोषित	SS	df	MS	F	P – मान	F. Crit
समूहों के मध्य	3938.43	2	1969.21	1.425	0.242	3.036

समूहों के अन्दर	306581.40	222	1380.99
कुल	310519.80	224	

0.05 सार्थकता स्तर पर असार्थक

तालिका संख्या 1.0 से स्पष्ट है कि अत्यन्त अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के अनुदानित विद्यालयों (M=46.34) में अध्ययनरत छात्रों की हिन्दी भाषा की वर्तनी में सबसे अधिक त्रुटियॉ की इसके बाद सरकारी विद्यालयों (M=46.13) और सबसे कम स्ववित्तपोषित विद्यालयों (M=36.51) के छात्रों द्वारा की गयी हैं। एफ–परीक्षण से ज्ञात है कि मुक्तांश (df=2,224) और एफ–परीक्षण का मान 1.425 है। जो कि सारणीय मान 3.036 से कम है। अतः सम्बन्धित परिकल्पना स्वीकृत की गयी। अतः अत्यंत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों में सार्थक अंतर नहीं है।

उद्देश्य – 2 औसत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों का अध्ययन करना।

परिकल्पना – 2 औसत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका संख्या – 2.0

औसत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों का अध्ययन

समूह	संख्या	योग	औसत	प्रसरण
औसत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण में सरकारी विद्यालयों के छात्रों में वर्तनी त्रुटियों का प्राप्तांक	21	1026	48.86	1006.13
औसत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण में अनुदानित विद्यालयों के छात्रों में वर्तनी त्रुटियों का प्राप्तांक	29	1723	59.41	2173.54
औसत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण में स्ववित्तपोषित विद्यालयों के छात्रों में वर्तनी त्रुटियों का प्राप्तांक	25	1352	54.08	1478.08

स्रोत–सरकारी , अनुदानित, स्ववित्तपोषित	SS	df	MS	F	P – मान	F. Crit
समूहों के मध्य	1370.87	2	685.44	0.423	0.656	3.123
समूहों के अन्दर	116455.4	72	1617.44			
कुल	117826.3	74				

0.05 सार्थकता स्तर पर असार्थक

तालिका संख्या 2.0 से स्पष्ट है कि औसत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के अनुदानित विद्यालयों (M=59.41) में अध्ययनरत छात्रों की हिन्दी भाषा की वर्तनी में सबसे अधिक त्रुटियॉ की इसके बाद स्ववित्तपोषित विद्यालयों (M=54.08) और सबसे

कम सरकारी विद्यालयों (M=48.86) के छात्रों द्वारा की गयी हैं। एफ–परीक्षण से स्पष्ट है कि मुक्तांश (df=2,72) और एफ–परीक्षण का मान 0.423 है जो कि सारणीय मान 3.123 से कम है। अतः सम्बन्धित परिकल्पना स्वीकृत की गयी। अतः औसत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों में सार्थक अंतर नहीं है।

उद्देश्य – 3 अत्यंत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों का अध्ययन करना।

परिकल्पना – 3 अत्यंत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका संख्या – 3.0

अत्यंत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों का अ**ध्ययन**

समूह	**संख्या**	**योग**	**औसत**	**प्रसरण**
अत्यंत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण में सरकारी विद्यालयों के छात्राओं में वर्तनी त्रुटियों का प्राप्तांक	74	2835	38.31	972.87
अत्यंत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण में अनुदानित विद्यालयों के छात्राओं में वर्तनी त्रुटियों का प्राप्तांक	73	3754	51.42	2314.83
अत्यंत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण में स्ववित्तपोषित विद्यालयों के छात्राओं में वर्तनी त्रुटियों का प्राप्तांक	70	2421	34.58	1132.16

स्रोत–सरकारीअनुदानित, स्ववित्तपोषित	SS	df	MS	F	P – मान	F. Crit
समूहों के मध्य	11289.48	2	5644.74	3.825	0.023	3.038
समूहों के अन्दर	315806.7	214	1475.73			
कुल	327096.2	216				

0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक

तालिका संख्या 3.0 से स्पष्ट है कि अत्यन्त अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के अनुदानित विद्यालयों (M=51.42) में अध्ययनरत छात्राओं की हिन्दी भाषा की वर्तनी में सबसे अधिक त्रुटियॉ की इसके बाद सरकारी विद्यालयों (M=38.31) और सबसे कम स्ववित्तपोषित विद्यालयों (M=34.58) के छात्रों द्वारा की गयी हैं। एफ–परीक्षण से स्पष्ट है कि मुक्तांश (df=2,214) और एफ–परीक्षण का मान 3.825 है। जो कि सारणीय मान 3.038 से अधिक है। अतः सम्बन्धित परिकल्पना अस्वीकृत की गयी। अतः अत्यंत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों में सार्थक अन्तर है।

उद्देश्य – 4 औसत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों का अध्ययन करना।

परिकल्पना – 4 औसत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका संख्या – 4.0

औसत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों का अध्ययन

समूह	**संख्या**	**योग**	**औसत**	**प्रसरण**
औसत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण में सरकारी विद्यालयों के छात्राओं में वर्तनी त्रुटियों का प्राप्तांक	26	989	38.04	406.44
औसत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण में अनुदानित विद्यालयों के छात्राओं में वर्तनी त्रुटियों का प्राप्तांक	27	2302	85.26	4236.28
औसत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण में स्ववित्तपोषित विद्यालयों के छात्राओं में वर्तनी त्रुटियों का प्राप्तांक	30	1085	36.17	376.76

स्रोत–सरकारीअनुदानित, स्ववित्तपोषित	SS	df	MS	F	P – मान	F. Crit
समूहों के मध्य	42412.31	2	21206.16	12.927	1.36	3.110
समूहों के अन्दर	131230.3	80	1640.38			
कुल	173642.6	82				

0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक

तालिका संख्या 4.0 से स्पष्ट है कि औसत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के अनुदानित विद्यालयों (M=85.26) में अध्ययनरत छात्राओं की हिन्दी भाषा की वर्तनी में सबसे अधिक त्रुटियॉ की इसके बाद सरकारी विद्यालयों (M=38.04) और सबसे कम स्ववित्तपोषित विद्यालयों (M=36.17) के छात्राओं द्वारा की गयी हैं। एफ–परीक्षण में स्पष्ट है कि मुक्तांश (df=2,80) और एफ–परीक्षण का मान 12.927 है। जो कि सारणीय मान 3.110 से अधिक है। अतः सम्बन्धित परिकल्पना अस्वीकृत की गयी। अतः औसत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों में सार्थक अंतर है।

निष्कर्ष

इस शोध अध्ययन में अत्यंत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों में अंतर नहीं पाया गया जबकि औसत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्रों द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों में अंतर नहीं पाया गया। लेकिन अत्यंत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी

अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों में अंतर पाया गया जबकि औसत अनुकूलित पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक स्तर के सरकारी, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में छात्राओं द्वारा हिन्दी विषय में वर्तनी संबंधी त्रुटियों में अंतर पाया गया। इसका कारण सबसे अधिक त्रुटि अनुदानित विद्यालय के छात्र व छात्राओं द्वारा की गयी अतः हिन्दी के अध्यापकों में प्रशिक्षण की कमी है तथा उनकी नियुक्ति पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। ऐसे परिवार से आने वाले विद्यार्थियों के अशुद्धियों को दूर करने के लिये विद्यालयों में भाषा प्रयोगशाला की स्थापना एवं अध्यापकों में प्रशिक्षण आवश्यक है।

सन्दर्भ :

1. शर्मा, बी. (2003). हिन्दी शिक्षण, साहित्य प्रकाशन आगरा।
2. कुमार एवं शर्मा, (2008). हिन्दी शिक्षण, नीलकण्ठ पुस्तक मंदिर, जयपुर।
3. पाण्डेय, आर. (2010). हिन्दी शिक्षण, अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा–2।
4. गुप्ता, ए. एवं गुप्ता, पी.एस. (2010). आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
5. सिंह, के. ए. (2017). मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी 221001।
6. कुशवाहा, एस. (2020).''वाराणसी शहर के उच्च प्राथमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों की भाषायी विविधता विषयों के अध्ययन में भाषा सम्बन्धी समस्या एवं उनके प्रति अध्यापको की अभिवृत्ति का अध्ययन'' शोध प्रबन्ध, शिक्षा संकाय, पुस्कालय का0हि0वि0 वाराणसी
7. एन.ई.पी. (2020).राष्ट्रीय शिक्षा नीति, मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार।

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

NAAGS KANPUR

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भाषा की भूमिका

डॉ. बालाजी चिरडे
डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर सिद्धू कान्हू मुर्मू
दलित एवं जनजाति अध्ययन
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, वर्धा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की भाषा नीति क्या है? इस नीति को 29 जुलाई 2020 को अपनाया गया था और तब से भाषा नीति सबसे अधिक चर्चा में रही है। अधिकांश विवाद भाषा नीति को लेकर रहा है। इस पूरे 60 पृष्ठ की नीति में भाषा नीति सबसे अधिक स्थान रखती है इसलिए हम सभी को इस भाषा नीति को अच्छी तरह से समझने की आवश्यकता है। हम सभी के सामने एक बहुत बड़ा प्रश्न है कि शिक्षा का माध्यम क्या होना चाहिए, आज तक शिक्षा के माध्यम पर अनेक शिक्षा विशेषज्ञों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। शोधकर्ताओं ने शोध कर यह साबित किया है कि मातृभाषा के माध्यम से बच्चों को शिक्षित करना बहुत जरूरी है। शिक्षा विशेषज्ञों ने बार–बार कहा है कि मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा से बच्चों के मन में ज्ञान का भय दूर होता है और बच्चे कुछ नया और रचनात्मक कर सकते हैं। इसलिए जापान, जर्मनी, फ्रेंच जैसे सभी विकसित देशों में प्राथमिक शिक्षा बच्चों को उनकी मातृभाषा में ही दी जाती है। दूसरी ओर, एशिया, अफ्रीका जैसे पिछड़े महाद्वीपों, अविकसित और विकासशील देशों में, यहाँ तक कि प्राथमिक शिक्षा भी बच्चों की मातृभाषा के बजाय अंग्रेजी के माध्यम से दी जाती है। महाराष्ट्र में 30 साल पहले से अंग्रेजी पढ़ाई जाती है। अब महाराष्ट्र सरकार पहले से सेमी मीडियम बनाने की योजना बना रही है‍ आंध्र प्रदेश ने तेलुगु भाषा को छोड़कर अंग्रेजी भाषा को अपना लिया है‍ममता बनर्जी का यही हाल है। ममता बॅनर्जी पहली बार 2010 के चुनाव में चुनी गईं, इस भाषा नीति के कारण ‍ उत्तर प्रदेश जैसे बड़े राज्यों में भी योगी आदित्यनाथ जैसे मुख्यमंत्री कह रहे हैं कि वे प्राथमिक शिक्षा में अंग्रेजी को शामिल करेंगे। तो अंग्रेजी भाषा केवल एक भाषा नहीं है बल्कि आज यह महत्वाकांक्षी माता–पिता, मध्यम वर्ग के माता–पिता और यहां तक कि गरीब माता–पिता के लिए आजीविका की भाषा है। माता–पिता महसूस करते हैं कि उनके बच्चों को इस भाषा में पढ़ना चाहिए क्योंकि यह दैनिक रोटी का स्रोत है। इस बीच, राष्ट्रीय शिक्षा नीति में, बिंदु 4 जोर देकर कहता है कि माता–पिता को अपने बच्चों को कक्षा पाँचवीतक मातृभाषा के माध्यम से पढ़ाना चाहिए। नीति में कहा गया है कि आठवीं

कक्षा और उससे आगे तक यदि संभव हो तो उच्च शिक्षा में मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा कोई समस्या नहीं है। यानी क्यापहली से पांचवीं तक मातृभाषा अनिवार्य कर दी गई है? यह प्रश्न सभी माता–पिता के मन में है कि क्या माता–पिता इसे मातृभाषा से अनिवार्य करना चाहेंगे? यह एक अहम सवाल है। एक ओर मातृभाषा के माध्यम से माता–पिता को शिक्षा देना आज कोई बाधा नहीं है। हालांकि यह आर्थिक रूप से वहन योग्य है, लेकिन माता–पिता को लगता है कि यह बच्चों के भविष्य के दृष्टिकोण के लिए वहनीय नहीं है। माता–पिता सोचते हैं कि उनके बच्चे अंग्रेजी स्कूल में पढ़कर कुछ कमाएंगे, अपना करियर बनाएंगे और इसलिए वे अंग्रेजी स्कूल पर जोर देते हैं। रिक्शा चालक जिनके पास पैसा नहीं है, कारखाने के कर्मचारी, निम्न वर्ग और गरीबी रेखा से नीचे के लोग भी अंग्रेजी पढ़ाने लगे हैं। तो इस नीति में मातृभाषा शिक्षा के बारे में नीति कहती है कि श्जहाँ भी संभव होश अर्थात श्जहाँ भी संभव होश मातृभाषा के माध्यम से बच्चों को शिक्षित करें अर्थात एक तरफ अंग्रेजी आज भारत की भाषा बन गई है। अंग्रेजी आज संचार का माध्यम है। यानी जब तमिलनाडु, केरल का कोई व्यक्ति उत्तर भारत के किसी व्यक्ति से बात करता है तो उसकी भाषा हिंदी नहीं बल्कि अंग्रेजी होती है। और इसलिए इस नीति में भी दक्षिणपंथियों पर हिंदी थोपी नहीं गई है। दक्षिणपंथियों को लगता है कि हिंदी भाषा हम पर थोपी गई है लेकिन इस नीति में हिंदी भाषा नहीं थोपी गई है.

यहाँ मातृभाषा के लिए घर की भाषा, मातृभाषा शब्द का प्रयोग किया गया है। सोनम वांगचुक का कहना है कि बच्चों को न केवल मातृभाषा यानी राज्य की भाषा बल्कि उस समुदाय में रहने वाले समुदाय की बोली में भी शिक्षित किया जाना चाहिए. लेकिन इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति में श्जहां भी संभव होश कहा गया है। इसमें मातृभाषा के माध्यम से बच्चों की अनिवार्य शिक्षा शामिल नहीं है। इसके दो कारण हैं, पहला महत्वपूर्ण कारण यह है कि जो वर्तमान सरकार के अनुयायी हैं या जो वर्ग उनके दृष्टिकोण से उनका अनुसरण करता है, वह अब महत्वाकांक्षी मध्यम वर्ग है और यह मध्यम वर्ग मूल रूप से मातृभाषा में पढ़ाना नहीं चाहता है। अपनी मातृभाषा में और उस मध्यम वर्ग के लोगों की वजह से सरकार आहत नहीं होना चाहती। एक और महत्वपूर्ण बात पांचवीं कक्षा तक मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान करना है।भारत में निजी संस्थान हैं, अंग्रेजी स्कूल हैं, कॉन्वेंट स्कूल हैं, इन कॉन्वेंट स्कूलों की पांचवीं कक्षा तक की शिक्षा का क्या करें? यह एक और महत्वपूर्ण प्रश्न है। तीसरा अहम सवाल यह है कि अगर कोई अभिभावक अपने बच्चे को कक्षा पाँचतक मातृभाषा में पढ़ाता है तो कक्षा छटीसे उसका मुकाबला कक्षा पहिलीसे अंग्रेजी सीखनेवाले छात्र से होगा और वैकल्पिक रूप से वह पिछड़ जाएगा। माता–पिता का असली डर क्या है, अंग्रेजी या मराठी या मातृभाषा नहीं है, लेकिन हमारा बच्चा जीवन में स्वाभिमान के साथ खड़ा हो, वह जिए, उसे रोजगार मिले, जिससे आज के माता–पिता सब कुछ बना रहे हैं। वे जो कुछ भी कर सकते हैं करने का प्रयास करते हैं और इसलिए इन भाषाओं को मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देना नीति में बहुत अच्छा है। हालांकि महात्मागांधीजी, रवींद्रनाथ टैगोर, तमाम शिक्षा विशेषज्ञ यह बात कह चुके हैं, लेकिन यह हकीकत है कि आज माता–पिता इसे मानने को तैयार नहीं हैं। माता–पिता यह नहीं मानते कि मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा उन्हें भविष्य के अवसर प्रदान करेगी और इसलिए वे मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान नहीं करते हैं। बच्चे एक ही समय में कई भाषाएं सीख सकते हैं। वे आराम से 6. 7भाषाएं सीख सकते हैं। लेकिन आप उन्हें पढ़ाने में मदद नहीं करते। वह कई भाषाएं सीख सकता है। इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति के 4.10 में कहा गया है कि बच्चे दो से आठ

भाषाओं को आसानी से सीख लेते हैं और अगर हम बच्चों के लिए एक सुखद वातावरण बनाते हैं तो वे आसानी से भाषा सीख सकते हैं। यदि हम उसके लिए कहानियों, कविताओं, नाटकों का प्रयोग करेंगे तो वे बच्चे बेहतर ढंग से सीखेंगे। नीति कहती है कि इसके लिए सभी राज्यों को एक आंतरिक समझौता करने की जरूरत है।अच्छे शिक्षक प्रदान करने के लिएआपसी समझौता(म्युचुअल अंडरस्टैंडिंग एग्रीमेंट) की आवश्यकता है। और हम सभी को प्रयास करना चाहिए कि सभी बच्चे भारत की आठ शास्त्रीय भाषाओं को सीखें। ऐसी शास्त्रीय भाषा सीखने के लिए दो राज्यों को उसके लिए एक राज्य से दूसरे राज्य की यात्रा करने की व्यवस्था करनी चाहिए। इस नीति में यह अपेक्षा की जाती है कि उनके लिए जो भी समझौते, एमओयू आवश्यक हों, उन्हें निष्पादित करें। हमारे देश में हमने पिछले साठ से सत्तर वर्षों में त्रिभाषा सूत्र को स्वीकार किया है। यानी हमारी पहली भाषा, दूसरी भाषा, तीसरी भाषा। पहली भाषा के रूप में हम अपनी मातृभाषा का उपयोग करते हैं, दूसरी भाषा के रूप में हम हिंदी का उपयोग करते हैं और तीसरी भाषा के रूप में हम अंग्रेजी का उपयोग करते हैं। यह त्रिभाषा सूत्र आगे भी जारी रहेगा। इस त्रिभाषा सूत्र में कोई भेद नहीं होगा। जो विषय लेना चाहते हैं वे ले सकते हैं। हम सभी इस तथ्य से परिचित हैं कि भारत में भाषा संघर्ष का एक प्रमुख कारण है। हिन्दी भाषा को लेकर दक्षिण और उत्तर में आज तक बड़ा विवाद रहा है और इसलिए दक्षिण के प्रदेश आज भी हिन्दी भाषा को स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। और इसलिए राज्य को अपनी भाषा चुनने की आजादी होनी चाहिए और इसलिए इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति में वो आजादी है। इस शिक्षा नीति में4.12 में कहा गया है कि यदि कोई बच्चा कक्षा 1 से मातृभाषा सीखता है तो उसे कक्षा 6 से अर्द्ध अंग्रेजी में पढ़ाएं ताकि कक्षा 9 तक आते–आते वह अंग्रेजी और अपनी मातृभाषा के बीच आसानी से बोल सके।

नीति ने कहा कि उसे आठवीं कक्षा तक मातृभाषा और अंग्रेजी के माध्यम से पढ़ाया जाना चाहिए ताकि हम इसकी व्यवस्था कर सकें। इस शिक्षा नीति से उत्पन्न सबसे बड़ा विवाद 4.13 है। 4.13 क्या कहता है? वह कहता है कि प्रत्येक भारतीय स्कूल में एक भारतीय भाषा को दूसरी भाषा के रूप में पढ़ाया जाना चाहिए। वास्तव में, नीति एक बहुत अच्छी नीति है। तो आज उत्तर भारत में क्या हो रहा है? वे हिंदी को अपनी पहली भाषा, हिंदी को दूसरी भाषा और अंग्रेजी को अपनी तीसरी भाषा के रूप में लेते हैं। यानी उत्तर भारत में कोई भी दक्षिणी भाषा नहीं सीखता। इसलिए दक्षिण में हम उम्मीद करते हैं कि बच्चे अपनी पहली भाषा के रूप में तमिल, अपनी दूसरी भाषा के रूप में हिंदी और तीसरी भाषा के रूप में अंग्रेजी सीखें, जबकि इसमें कहा गया है कि बच्चों को अपनी मातृभाषा के अलावा दूसरी भाषा के रूप में कोई अन्य भाषा सीखनी चाहिए। इसी बात को लेकर आज दक्षिण में लड़ाई छिड़ी हुई है। दक्षिणी लोगों को लगता है कि यह गलत है कि इस माध्यम से उन पर हिंदी थोपी गई है और इसलिए आज तमिलनाडु, केरल राज्यों में कुछ राजनीतिक दल और नेता इस नीति के खिलाफ जा रहे हैं।4.14 भारतीय भाषा की समृद्धि और भारत की एकता के बारे में बात करता है। 1947 के बाद भारत में भाषाई प्रांत बनाए गए और इससे भाषा–से–भाषा विवाद पैदा हुआ। लेकिन 1947 से पहले हमारे देश में सदियों से विभिन्न भाषाएं बोली जाती थीं। इसलिए यदि कोई व्यक्ति यात्रा कर रहा था, तो वह पूरे भारत में संचार कर सकता था। लेकिन यह नीति कहती है कि इसी वजह से भारत एक था और अब हम इन भारतीय भाषाओं का इस्तेमाल राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने के लिए कर सकते हैं

और इसके लिए अलग–अलग साधनों का इस्तेमाल कर सकते हैं। 4.15 में एक मजेदार प्रोजेक्ट है। इस शैक्षिक नीति द्वारा श्भारत की भाषाएँश नामक परियोजना का सुझाव दिया गया है। क्या है ये प्रोजेक्ट? कक्षा छठी से आठवीं तक के इन तीन सालों में पढ़ने वाले बच्चों को भारत की अलग–अलग भाषाओं के बारे में प्रोजेक्ट करना है। इसमें अलग–अलग बोलियां बोलने वाले लोग, अलग–अलग नैतिकता वाली भाषाओं के वर्ग, उनका उच्चारण, उनकी लिपि, इस भाषा का संस्कृत से संबंध, अलग–अलग भौगोलिक क्षेत्रों में बोली जाने वाली अलग–अलग भाषाएं, अलग–अलग पहाड़ी भाषाएं, हमने इसका अध्ययन सिर्फ आनंद के हेतू करना है। यह नीति कहती है कि इसे करना चाहिए। इस अध्ययन का मूल्यांकन नहीं किया जाएगा। यानी मूल्यांकन के लिए इसके अंकों पर विचार नहीं किया जाएगा। लेकिन यह राष्ट्रीय शिक्षा नीति बताती है कि हमें यह सब बातें मनोरंजन के रूप में, आनंद के रूप में, भाषा कौशल के रूप में करनी चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के 4.16 में कहा गया है कि संस्कृत भारत में एक अत्यधिक उन्नत भाषा है। समृद्ध भाषा है। इसका अर्थ यह है कि विश्व में ग्रीक और लैटिन को मिलाकर जितना ज्ञान संस्कृत भाषा में है उससे कहीं अधिक है और इसलिए भारत भर के स्कूलों में संस्कृत भाषा को वैकल्पिक विषय के रूप में रखा जा रहा है और इसके लिए बहुत ही सरल तरीके से संस्कृत की पुस्तकें तैयार की जानी चाहिए। पहली से आठवीं कक्षा तक के बच्चों को भाषा उपलब्ध कराई जाए और पढ़ाई के लिए दी जाए। तो एक समय था जब भारत में ब्राह्मण वर्ग बहुजन समुदाय को संस्कृत भाषा सिखाने के लिए तैयार नहीं था। परन्तु इस नीति में प्रथम से आठवीं तक की संस्कृत भाषा को सम्पूर्ण भारत में सभी भाषाओं में पढ़ाने की तत्परता इस नीति द्वारा दर्शायी गयी है। एक अर्थ में यह संस्कृत भाषा सीखने वालों के लिए एक महान अवसर है, लेकिन दूसरी ओर इसकी आलोचना की जाती है। ब्राह्मण वर्ग के रोजगार की समस्या के समाधान के लिए संस्कृत भाषा पढ़ाने की यह नीति अपनाई गई है। इस नीति के 4. 17 भारत में शास्त्रीय भाषाओं के पोषण और संरक्षण की भूमिका निभाते हैं। इस नीति में कहा गया है कि तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, उड़िया, पाली, प्राकृत जैसी इन भाषाओं के ज्ञान को संरक्षित, प्रचारित और प्रसारित करने के लिए कुछ प्रयास किए जाने चाहिए। उस शिक्षा नीति का एक और सबसे महत्वपूर्ण पैमाना यह है कि 4.19 में एक प्रोजेक्ट सुझाया गया है कि भारत का प्रत्येक बच्चा, चाहे वह निजी स्कूल में हो, सरकारी स्कूल में हो, या भारत के किसी भी प्रांत में हो, दो साल तक शास्त्रीय भाषा का अध्ययन करे। छह साल की अवधि के दौरान 6वीं से 12वीं तक की सिफारिश की जाती है यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसका मतलब है कि भारत में बच्चों को कक्षा 5वीं और 6वीं तक मातृभाषा से शिक्षा मिलनी चाहिए और कक्षा 6वीं से 12वीं तक उन्हें एक भारतीय भाषा पढ़नी चाहिए और इसके अलावा नीति यह भी कहती है कि बच्चों को सभी भाषाओं को सीखने का अवसर दिया जाएगा। यह नीति भारत की भाषा के अलावा बिंदू 4.20 कहती है कि चीनी, स्पेनिश, कोरियाई, जापानी, थाई, फ्रेंच, जर्मन, रूसी जैसी विश्व भाषाएं भी भारत के बच्चे सीख सकते हैं। यदि बच्चे इस विषय को वैकल्पिक विषय के रूप में चुनते हैं तो सरकार उस विषय को पढ़ाने की पूरी व्यवस्था करेगी, यह नीति बताती है। जब हम भाषा नीतियों के बारे में बात कर रहे हैं, तो यह नीति लिपि को बधिरों और नेत्रहीनों के लिए आवश्यक भाषा में पर्याप्त रूप से बदलने और उस भाषा को विकसित करने के लिए एक प्रणाली को भी अपनाती है। उच्च शिक्षा के लिए प्रवेश परीक्षा की नीति के 4.38 में कहा गया है कि सभी प्रवेश परीक्षाओं में भाषा के ज्ञान का भी परीक्षण किया जाएगा और इसलिए भाषाई ज्ञान का

बहुत महत्व होगा। शिक्षक भर्ती के मामले में भी नीति इस बात पर जोर देती है कि प्रत्येक शिक्षक को अपनी मातृभाषा या स्थानीय भाषा का ज्ञान होना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति की भाषा पर एक अलग खंड बनाया गया है और नीति में श्अतुल्य भारतश का नारा दिया गया है। नीति में कहा गया है कि भारत में जो भाषाएँ हैं उन्हें संरक्षित करने के लिए भारत में कुछ सचेत प्रयास करने की आवश्यकता है, क्योंकि उन भाषाओं में समृद्ध ज्ञान है। इसलिए हमें दुनिया भर में अपनी विविध भाषाओं और संस्कृतियों के लिए भारत की पहचान को बनाए रखने की आवश्यकता है। यह भाषा नीति एक बहुत ही महत्वपूर्ण बिंदु उठाती है जिसे हम सभी को समझने की आवश्यकता है। यानी इसे कैसे लागू किया जाता है, क्या होता है, यह अलग मसला है, लेकिन नीति के तौर पर इस नीति में यह भी कहा गया है कि यूनेस्को की राष्ट्रीय शिक्षा नीति का हवाला देते हुए कहा गया है कि भारत में 197 भाषाएं खतरे में हैं। लेकिन यह नीति यह भी कहती है कि यह हमारी जिम्मेदारी है कि हम उन बोलियों को संरक्षित करें और बढ़ावा दें जो भारत में मर रही हैं। अक्सर ऐसा होता है कि जब किसी भाषा का बोलने वाला मरता है तो उसके साथ भाषा भी मर जाती है। आज हम देखते हैं कि 20 साल पहले जो लोग अपनी मातृभाषा बोलते थे, उनके बच्चे और पोते–पोतियां उनकी भाषा नहीं बोलते हैं और इसलिए भाषा मर जाती है, उसमें शब्दावली धीरे–धीरे सिमटती जाती है। यह बात हम मराठी और अन्य सभी भाषा की कई बोलियों के बारे में कह सकते हैं। हम जानते हैं कि साहित्य के क्षेत्र में अनेक लोग बोलियों को जीवित रखने का कार्य कर रहे हैं। तो इस नीति 22.5 में इन बोलियों को जीवित रखने के लिए कुछ प्रयास किए जाने चाहिए, यह नीति कहती है कि एक भाषा सिखाने के लिए भी एक कला की आवश्यकता होती है। कोई अपनी एकमातृभाषा जानता हूं। तो यह किसी कि गलतफहमी हो सकती कि वह अपनी भाषा पढ़ा सकता हूँ। किसी भाषा को पढ़ाने के लिए अलग–अलग कौशल की आवश्यकता होती है। इस नीति के 22.6 में कहा गया है कि आज भारत में भाषा शिक्षकों की भारी कमी है। भाषा शिक्षकों की कमी है और इसलिए नीति में भाषा शिक्षकों की संख्या बढ़ाने और बोली को अगली पीढ़ी तक ले जाने के लिए कुछ प्रयास करने का उल्लेख है।

इस नीति में भाषा के बारे में बहुत अच्छी बातों का उल्लेख किया गया है जिसमें से एक महत्वपूर्ण बिंदु यह है कि आज भाषा को प्रस्तुत किया जाना चाहिएए यानी अगर मैं आज मराठी का उपयोग करता हूं तो मराठी भाषा नई चीजें हैं जो आज आई हैं, इंटरनेट आ गया है, व्हाट्सएप आ गया है, अलग–अलग अवधारणाएं आ रही हैं तो इन अलग–अलग अवधारणाओं को अपनी मातृभाषा में लाना जरूरी है, उसका अनुवाद करना जरूरी है। विश्व के शास्त्रीय साहित्य का हमारी मातृभाषा में अनुवाद और मुद्रण होना अत्यंत आवश्यक है, ताकि बच्चों को इस नवीनतम और अद्यतन भाषा में साहित्य मिले, मुद्रित सामग्री उपलब्ध हो। इस नीति में कहा गया है कि वीडियो, खेल पत्रिकाएं हमारी मातृभाषा में तैयार की जानी चाहिए। इसके अलावा सभी भाषाओं के शब्दकोशों को अद्यतन, आधुनिक, संपादित किया जाना चाहिए और उन नई अवधारणाओं को नए शब्दों के साथ प्रचारित किया जाना चाहिए। उस नीति में कहा गया है कि ऐसी भाषा अखबार की भाषा के काम आएगी और इसलिए विश्व के महत्वपूर्ण साहित्य का अनुवाद भी हमारी भाषा में होना चाहिए। यानी अनुवाद और व्याख्या पर जोर है।इसलिए भारत की विभिन्न भाषाओं में लिखे गए क्लासिक साहित्य का भारत की विभिन्न भाषाओं में अनुवाद किया जाना चाहिए और इसे छापा जाना चाहिए, यह हमारे बच्चों तक पहुँचने

का एक कदम है, जबकि दुनिया के क्लासिक साहित्य का भारतीय भाषाओं में अनुवाद किया जाना चाहिए। और दुनिया का साहित्य बच्चों को उनकी अपनी भाषा में उपलब्ध होना चाहिए। इसके अलावा भी ऐसे ढेर सारे बोरे हैं, ऐसे ढेर सारे दस्तावेज पूरे भारत में बिखरे हुए हैं। इन सभी को एक साथ लाना और संरक्षित करना भी इस नीति में महत्व दिया गया है। इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति का एक और बहुत महत्वपूर्ण पहलू है प्क्या है भारतीय अनुवाद और व्याख्या संस्थान (प्दकपंद प्देजपजनजम व ित्तंदेसंजपवद ंदक प्दजमतचतमजंजपवद) भारत भर के महत्वपूर्ण शहरों में स्थापित किया जाना है और उस क्षेत्र के स्थानीय साहित्य पर अनुवाद और टिप्पणी करना है। इसके अलावा, पाली, फारसी, प्राकृत, जैसी भाषाओं की रक्षा और संरक्षण करना है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में राष्ट्रीय स्तर के संस्थानों की स्थापना की नीति को अपनाया गया है। इस बात पर बल दिया जाता है कि समाचार पत्रों, पत्रिकाओं में हमें अपनी मातृभाषा की अवधारणाओं का आधुनिक भाषा में प्रयोग करना चाहिए। भारत में हमारे सभी शब्दकोश अपडेट होने चाहिए, हमारी मातृभाषा में नई अवधारणाएं आनी चाहिए और हमारी मातृभाषा में अवधारणाएं हमारी शिक्षा में शामिल होनी चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कहा गया है कि हमें अपने शब्दकोशों को अपडेट करने की जरूरत है ताकि अखबार में इस्तेमाल होने वाली भाषा में उन अवधारणाओं का इस्तेमाल हो और लिखने और बोलने में शब्दों का इस्तेमाल हो। जैसे हिंदी एक राज्य की भाषा नहीं है, वैसे ही संस्कृ त एक राज्य की भाषा नहीं है। उर्दू, सिंधी एक राज्य, एक प्रान्त की भाषाएँ नहीं हैं, अपितु जिस भाषा में एक से अधिक प्रान्तीय भाषाएँ हों, उस पर कार्य करने वाली राष्ट्रीय स्तर की अकादमी स्थापित करने की नीति यहाँ अपनाई गई है। अंत में एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि इन सभी शैक्षिक नीतियों में राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय भाषाओं के अलावा प्रांत की भाषा के अलावा भी कुछ सामग्री है। बोलियाँ हैं। इस नीति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा उन भाषाई नीतियों से परे जाना है जिनकी हमने चर्चा की है और उन भाषाओं में लोककथाओं, लोक नृत्यों के वीडियो बनाना, मौखिक बनाना, वीडियो बनाना है जिसमें आज तक कोई साहित्य नहीं बनाया गया है उसका निर्माण करना। इसलिए कहना पड़ेगा कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भाषा नीति का बहुत बड़ा स्थान है और इसलिए हमें यह अच्छी तरह से समझने की आवश्यकता है कि यह भाषा नीति क्या है?

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

NAAGS KANPUR

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

बुन्देलखण्ड (उ0प्र0) में गांधी के भारत छोड़ो आह्वान का प्रभाव

दुर्गेश कुमार शुक्ला
असिस्टेंट प्रोफेसर इतिहास विभाग
राजकीय डिग्री कॉलेज
मुंस्यारी पिथौरागढ़
प्रोफेसर पुरुषोत्तम सिंह
शोध पर्यवेक्षक
प्रोफेसर एवं प्राचार्य
महाराज बलवंत सिंह पीजी कॉलेज
गंगापुर वाराणसी

सर स्टैफोर्ड क्रिप्स के प्रस्थान के तुरंत बाद, गांधी ने भारतीयों के लिए 'भारत छोड़ो' की घोषणा की। गांधी ने कहा, ''भारत में अंग्रेजों की उपस्थिति जापान को भारत पर आक्रमण करने का निमंत्रण है। उनकी वापसी उस चारा को हटा देती है '' ।गांधी समझ गए कि अब समय आ गया है कि कुछ मजबूत और तीव्र गतिविधियां की जाएं। उन्होंने हरिजन में लेखों की एक श्रृंखला लिखना शुरू किया जहां उन्होंने लोगों को आगे बढ़ने और सीधी कार्रवाई का सहारा लेने पर जोर दिया। बुन्देलखण्ड (उ0प्र0) मई 1942 में की गई यह घोषणा गांधी की बेचौनी को दर्शाती है, जिन्होंने एक वर्ष के भीतर स्वराज की गारंटी दी थी और जो यह देखने के लिए उत्साहित और उत्सुक थे कि भारत के लिए स्वतंत्रता हासिल करने का उनका केंद्रीय लक्ष्य जल्द ही हासिल हो जाएगा। सुमित सरकार लिखते हैं ''हालांकि अहिंसा की आवश्यकता हमेशा दोहराई गई थी, गांधी का करो या मरो का मंत्र गांधी के उग्रवादी मूड का प्रतिनिधित्व करता है''। 14 जुलाई, 1942 को वर्धा में हुई कार्यसमिति की बैठक में कांग्रेस शुरू में संघर्ष के विचार पर सहमत हुई।अगस्त में बंबई में हुई अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने संघर्ष के लिए जाने के इस प्रस्ताव को मंजूरी दे दी।

[1]अपने प्रवचन में गांधी ने यह स्पष्ट कर दिया था, ''मैं पूर्ण स्वतंत्रता से कम किसी भी चीज से संतुष्ट नहीं होने जा रहा हूं। हो सकता है, वह (वायसराय) नमक कर, पेय बुराई को समाप्त करने का प्रस्ताव करे। लेकिन मैं आजादी से कम कुछ नहीं

[1] सुश्री संख्या 222 सार्वजनिक (गोपनीय), 24 अप्रैल 1919, **TN**।।

कहूंगा। बुन्देलखण्ड (उ0प्र0) गांधी तब प्रसिद्ध अपील करो या मरो के साथ पकड़े गए। ''यहाँ एक मंत्र है, एक छोटा मंत्र जो मैं आपको देता हूँ। आप इसे अपने दिलों पर अंकित कर सकते हैं और अपनी हर सांस को इसे अभिव्यक्त करने दें। मंत्र है करो या मरो। संक्षेप में, साम्राज्यवादी इतिहास—लेखन सांस्कृतिक आधिपत्य स्थापित करने और भारत से अधिक ब्रिटिश शासन को वैध बनाने के साधन के रूप में उपयुक्त इतिहास के लिए एक वैचारिक प्रयास का हिस्सा था। शाही इतिहास—लेखन की प्रथा में सन्निहित महत्वपूर्ण विचार साम्राज्यवादी शक्ति के संरक्षण के तहत समकालीन यूरोपीय नागरिक और राजनीतिक समाज के पैटर्न की ओर एक पिछड़े समाज की प्रगति का प्रतिमान था। बुन्देलखण्ड (उ0प्र0) ब्रिटिश अधिकारियों का मार्गदर्शक हाथ, समाज के निचले तबके के लिए 'निस्पंदन' के साथ संयुक्त शिक्षा, ऐसी संस्थाओं और कानूनों का आरोपण, जिनके लिए ब्रिटिश विचार भारतीय थे, और विकार राष्ट्रवाद के खतरे से पैक्स ब्रिटानिका की सुरक्षा विषय के मध्य के लोग — ये भारत की धीमी प्रगति के लिए आवश्यक तत्व थे। कभी—कभी इस कार्यसूची को 'ब्रिटेन के सभ्यता मिशन' के रूप में प्रस्तुत किया जाता था।

बुन्देलखण्ड (उ0प्र0) में गांधी का इतिहास और ऐतिहासिक योगदान एक क्षण (1920—1947)खेत में, गांधी सहयोगियों और शिष्यों का एक सच्चा परिवार बनाने और अपने नेतृत्व के तरीके का परीक्षण करने में आगे बढ़ने में सक्षम थे।

खुद को पेशेवर और पारिवारिक दायित्वों से मुक्त करते हुए, वह खुद को पूरी तरह से आंदोलन और समुदाय के लिए समर्पित कर सकते थे। उन्होंने कहा, ''टॉलस्टॉय फार्म में मेरा विश्वास और साहस अपने उच्चतम स्तर पर था।''

ढाई साल तक उन्होंने खुद को चरित्र विकास में अपने प्रयोगों के लिए समर्पित किया, जिसके लिए राजनीतिक संघर्ष की उपेक्षा करने के लिए उनकी आलोचना की गई। फिर भी उनकी दृष्टि में ये प्रयोग सभी वास्तविक परिवर्तनों की कुंजी थे।[2]

गांधी शांति प्रतिष्ठान के अध्यक्ष कुमार प्रशांत कहते हैं कि 30 जनवरी 948 को उनकी हत्या के साथ ही अनवरत चला आ रहा उनका संघर्ष खत्म हो गया। वो सिर्फ अंग्रेजों से नहीं अपनों से भी लड़ते रहे. जो उनके दाहिने हाथ कहे जाते थे, वो उन्हें भी आंदोलन, धरने, प्रदर्शन और सत्याग्रह को लेकर गांधी जी क्या सोचते थे, इस पर बात की जाए तो उनके लिए ये लोकतंत्र की प्राणवायु के समान था । वो कहते थे कि लोकतंत्र में जन संघर्ष को सतत चलाते रहना चाहिए । ये डेमोक्रेसी के लिए रक्त संचार जैसा है. ये पुरातन को तोड़ते और विकास की नई इबारत लिखते है।गांधी की धर्मनिरपेक्षता और सभी प्रकार के धार्मिक और दार्शनिक विद्यालयों के लिए खुलापन सर्वविदित है। यह विभिन्न अवधारणाओं और दार्शनिक सिद्धांतों को आत्मसात करने के माध्यम से था कि गांधी अहिंसा की अपनी समझ पर पहुंचे। वह आधुनिक समय में अहिंसा या अहिंसा के सिद्धांत के सबसे बड़े प्रतिपादक थे, लेकिन वे इसके लेखक नहीं थे। इससे सम्बन्धित सबसे महत्वपूर्ण शोध कार्य राजकुमार के द्वारा 'स्वाधीनता संघर्ष में बुन्देलखण्ड (उ0प्र0) के क्रान्तिकारियों का योगदान नामक शोध प्रबन्ध में किया गया है। इस शोध प्रबन्ध में राजकुमार ने बुन्देलखण्ड (उ0प्र0) में 1857 से 1947 तक हुयी क्रान्तिकारीगतिविधियों का अध्ययन किया हैं। राजकुमार के द्वारा एकल एवं संस्थागत रूप से की गयी क्रान्तिकारी गतिविधियों में शामिल लोगों एवं उनके प्रयासा ें का

---

[2] शर्मा (1978)। होलकर राज्य 1734—1948 में महिलाओं की स्थिति और स्थिति। भारतीय इतिहास कांग्रेस। पी। 801. आईएसएसएन 2249—1937।

अध्ययन किया गया हैं।चन्द्रशेखर आजाद की बुन्देलखण्ड(उ0प्र0) में की गयी क्रान्तिकारी गतिविधियों के बारे मेंविस्तृत रूप सेअध्ययन कया गया है। डॉ0 रजना मोदी ने 'बुन्दले खण्ड में स्वातन्त्रयआन्दोलन' बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय 1993 नामक शोध प्रबन्ध में सम्पूर्ण बुन्दले खण्ड में स्वतत्रंता आन्दोलन के समय हुयी घटनाओं का अध्ययन किया है। इनके अध्ययन में बुन्देल शासकों के वंशजों, नवाबों का 1857 में योगदान का अध्ययन किया गया है इनके अध्ययन को मुख्यतः मध्य प्रदेश मं` हुये आन्दोलनों पर केन्द्रित किया गया है। स्नेहलता गुप्ता के द्वारा एक अन्य महत्वपूर्ण शोध प्रबन्ध 'स्वतंत्रता आन्दो लन में बुन्देलखण्ड की महिलाओं का योगदान' 2000 में किया गया है। इनके शोधकार्य में सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में 1857 से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक बुन्दले खण्ड की महिलाओं द्वारा किये गये संघर्ष का व्यापक रूप से वर्णन किया गया हैं। महिलाओ की देशी रियासतों में भूमिका का भी अध्ययन किया गया हैं।

विवेक कुमार मिश्रा ने 'महात्मा गाँधी के राजनीतिक दर्शन में स्वराज की अवधारणा' 2008 पूर्वान्चल विश्वविद्यालय जौनपुर नाम के शोध प्रबन्ध में महात्मा गाँधी के लोकतंत्र, दलीय व्यवस्था, स्वराज, स्वशासन को लेकर जो विचार थे उन विचारों का सम्यक रूप से अध्ययन किया गया हैं। आदेश गुप्ता और कृष्णपाल द्वारा अपने शोध पत्र 'बाँदा जनपद में 1930 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन' में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के समय बाँदा जनपद में हुयी कुछ प्रमुख घटनाओं का अध्ययन किया गया हैं इस शोध पत्र में आन्दोलनकारियों को हुयी सजाओं का उल्लेख है। इसके माध्यम से बाँदा जनपद में सविनय अवज्ञा आन्दोलन की पृष्ठभूमि को समझने में मदद मिलती है। उपर्युक्त महत्वपूर्ण शोधकार्यो के प्रकाश में भी बुन्देलखण्ड के गाँधीवादी आन्दोलनों का इतिहास एवं ऐतिहासिक अवदान पर उल्लेखनीय कार्य की कमी महसूस होती है क्योंकि बुन्देलखण्ड (उ0प्र0) में गाँधीवादी आन्दोलनों पर अभी तक कोई महत्वपूर्ण कार्य नही हुआ है। प्रस्तुत अध्ययन में प्राथमिक स्त्रोत के रूप में राष्ट्रीय अभिलखागार नई दिल्ली, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय जोशी अभिलखोगार नई दिल्ली, नेहरू मेमोरियल संग्रहालय एवं पुस्तकालय, राष्ट्रीय गाँधी संग्रहालय नई दिल्ली, राजकीय अभिलेखागार लखनऊ, क्षेत्रीय अभिलेखागार वाराणसी और प्रयागराज, संग्रहालय एवं पुस्तकालय झांसी, सूचना विभाग का पुस्तकालय से प्राप्त समकालीन पत्र पत्रिकाएं एवं दस्तावेज जैसे उत्तर प्रदेश में रेन्ट एवं रवेन्यू पालिसी, प्रोसीडिंग होम डिपार्टमेन्ट, फॉरने डिपार्टमेन्ट पॉलिटिकल कन्सल्टेशन, स्वतंत्रता पूर्व गठित इन्क्वारी कमटी की रिपोर्ट आदि प्रमुख स्त्रोत है। जिला, प्रखण्ड एवं ग्राम स्तरीय प्रकाशित एवं अप्रकाशित सामग्री का उपयोग किया गया हैं। इसके अतिरिक्त उस समय के प्रकाशित समाचार पत्र पत्रिकाओं जैसे प्रताप, हरिजन (साप्ताहिक), आज दैनिक बनारस, द लीटर इलाहाबाद, नवभारत टाइम्स, यंग इण्डिया आदि का उपयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त प्रकाशित सामग्री के रूप में करबन्दी आन्दोलन से सम्बन्धित सरकारी वक्तत्य, यू0पी0 में रेन्ट एवं रेवेन्यू पॉलिसी 1931 का उपयोग किया गया हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न जिलों के गजेटियर जैसे झांसी गजेटियर 1909, डिस्ट्रिक्ट गजेटियर झांसी 1965, डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ललितपुर, डिस्ट्रिक्ट गजेटियर बांदा, डिस्ट्रिक्ट गजेटियर हमीरपुर, डिस्ट्रिक्ट गजेटियर महोबा, डिस्ट्रिक्ट गजेटियर जालौन, डिस्ट्रिक्ट गजेटियर चित्रकूट, तत्कालीन समय के पुलिस रिकार्ड का उपयोग किया गया है द्वितीयक स्त्रोत के रूप में सरकारी एवं निजी प्रकाशकों की पुस्तके एवं सम्बन्धित विषय पर पूर्व प्रकाशित शोध प्रबन्ध, शोध पत्र आदि शामिल है। इसमें रंजना मोदी का 'बुन्दले खण्ड में स्वातन्त्रय आन्दोलन' बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी 1993, राजकुमार 'स्वाधीनता संघर्ष में

बुन्दले खण्ड (उ0प्र0) के क्रान्तिकारियों का योगदान', स्नेहलता गुप्ता का स्वतंत्रता आन्दोलन में बुन्देलखण्ड की महिलाओं का योगदान उल्लिखित है। सैम्पलिंग प्रश्नावली विधि का प्रयोग गांधी जी के बारे में लोगों के विचार जानने के लिये उन सभी क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया जायेगा, जो गांधीवादी आन्दोलन के समय प्रमुखता से बुन्देलखण्ड (उ0प्र0) में आन्दोलन के केन्द्र रहे।

1857 का भारतीय विद्रोह ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन के खिलाफ 1857–58 में भारत में एक प्रमुख विद्रोह था, जो ब्रिटिश क्राउन की ओर से एक संप्रभु शक्ति के रूप में कार्य करता था। विद्रोह 10 मई 1857 को दिल्ली के उत्तर–पूर्व में 40 मील (64 किमी) बुन्देलखण्ड (उ0प्र0)के गैरीसन शहर में कंपनी की सेना के सिपाहियों के विद्रोह के रूप में शुरू हुआ। इसके बाद यह मुख्य रूप से ऊपरी गंगा के मैदान और मध्य भारत में अन्य विद्रोहों और नागरिक विद्रोहों में फूट पड़ा, हालांकि विद्रोह की घटनाएं उत्तर और पूर्व में भी हुईं। विद्रोह ने उस क्षेत्र में ब्रिटिश सत्ता के लिए एक सैन्य खतरा पैदा कर दिया, और 20 जून 1858 को ग्वालियर में विद्रोहियों की हार के साथ ही निहित था। 1 नवंबर 1858 को, अंग्रेजों ने हत्या में शामिल सभी विद्रोहियों को माफी दी, हालांकि उन्होंने ऐसा नहीं किया। शत्रुता को औपचारिक रूप से 8 जुलाई 1859 तक समाप्त करने की घोषणा करें। इसका नाम विवादित है, और इसे सिपाही विद्रोह, भारतीय विद्रोह, महान विद्रोह, 1857 का विद्रोह, भारतीय विद्रोह और स्वतंत्रता का पहला युद्ध के रूप में वर्णित किया गया है।

भारतीय विद्रोह विभिन्न धारणाओं से पैदा हुए आक्रोश से भर गया था, बुन्देलखण्ड (उ0प्र0) जिसमें आक्रामक ब्रिटिश–शैली के सामाजिक सुधार, कठोर भूमि कर, कुछ अमीर जमींदारों और राजकुमारों के साथ–साथ ब्रिटिश शासन द्वारा लाए गए सुधारों के बारे में संदेह भी शामिल था।[3]

अनेक भारतीय अंग्रेजों के विरुद्ध उठ खड़े हुएय हालाँकि, कई ने अंग्रेजों के लिए भी लड़ाई लड़ी, और बहुसंख्यक ब्रिटिश शासन के अनुरूप बने रहे। बुन्देलखण्ड (उ0प्र0) हिंसा, जो कभी–कभी असाधारण क्रूरता को धोखा देती थी, दोनों पक्षों पर, ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा, और महिलाओं और बच्चों सहित नागरिकों पर, विद्रोहियों द्वारा, और विद्रोहियों पर, और उनके समर्थकों पर, कभी–कभी पूरे गाँवों सहित, ब्रिटिश विद्रोहियों द्वारा भड़काई गई थीय लड़ाई और ब्रिटिश प्रतिशोध में दिल्ली और लखनऊ के शहरों को बर्बाद कर दिया गया था।

मेरठ में विद्रोह के फैलने के बाद, विद्रोही तेजी से दिल्ली पहुंचे, जिसके 81 वर्षीय मुगल शासक बहादुर शाह जफर को हिंदुस्तान का सम्राट घोषित किया गया था। बुन्देलखण्ड (उ0प्र0) जल्द ही, विद्रोहियों ने उत्तर–पश्चिमी प्रांतों और अवध (अवध) के बड़े इलाकों पर कब्जा कर लिया था।

ईस्ट इंडिया कंपनी की प्रतिक्रिया भी तेजी से आई। बुन्देलखण्ड (उ0प्र0) सुदृढीकरण की मदद से, कानपुर को जुलाई 1857 के मध्य तक और दिल्ली को सितंबर के अंत तक वापस ले लिया गया। हालाँकि, झाँसी, लखनऊ और विशेष रूप से अवध के ग्रामीण इलाकों में विद्रोह को दबाने के लिए 1857 के शेष और 1858 के बेहतर हिस्से को लिया गया। बुन्देलखण्ड (उ0प्र0) कंपनी–नियंत्रित भारत के अन्य क्षेत्र–बंगाल प्रांत, बॉम्बे प्रेसीडेंसी और मद्रास प्रेसीडेंसी– बड़े पैमाने पर शांत रहे। पंजाब में,

[3] गुप्ता, शर्मिष्ठा दत्ता (2013)। "क्रांति के समय में मौत और इच्छा"। आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक। 48 (37): 59–68।

सिख राजकुमारों ने सैनिकों और सहायता दोनों प्रदान करके महत्वपूर्ण रूप से अंग्रेजों की मदद की।[4] बड़ी रियासतें, हैदराबाद, मैसूर, त्रावणकोर, और कश्मीर, साथ ही राजपुताना के छोटे राज्य, विद्रोह में शामिल नहीं हुए, गवर्नर–जनरल लॉर्ड कैनिंग के शब्दों में, ''एक तूफान में ब्रेकवाटर'' के रूप में, अंग्रेजों की सेवा की। कुछ क्षेत्रों में, विशेष रूप से अवध में, विद्रोह ने ब्रिटिश उत्पीड़न के खिलाफ देशभक्तिपूर्ण विद्रोह का रूप धारण कर लिया। हालाँकि, विद्रोही नेताओं ने विश्वास के किसी भी लेख की घोषणा नहीं की, जिसने एक नई राजनीतिक व्यवस्था की शुरुआत की। फिर भी, विद्रोह भारतीय और ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण वाटरशेड साबित हुआ। बुन्देलखण्ड (उ0प्र0) इसने ईस्ट इंडिया कंपनी को भंग कर दिया, और ब्रिटिश सरकार को भारत सरकार अधिनियम 1858 के पारित होने के माध्यम से भारत में सेना, वित्तीय प्रणाली और प्रशासन को पुनर्गठित करने के लिए मजबूर किया।

इसके बाद भारत को सीधे ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रशासित किया गया नया ब्रिटिश राज। 1 नवंबर 1858 को, महारानी विक्टोरिया ने भारतीयों के लिए एक उद्घोषणा जारी की, जिसमें एक संवैधानिक प्रावधान के अधिकार की कमी होने के बावजूद, अन्य ब्रिटिश विषयों के समान अधिकारों का वादा किया।

बाद के दशकों में, जब इन अधिकारों में प्रवेश हमेशा नहीं होता था, भारतीयों को नए राष्ट्रवाद के बढ़ते स्वरों में रानी की उद्घोषणा का स्पष्ट रूप से उल्लेख करना था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का गठन वर्ष 1885 में हुआ था। इसने अंग्रेजों के सामने भारतीय लोगों की इच्छा व्यक्त की। जन आंदोलनों और नेताओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और लोगों में राष्ट्रीय चेतना के विकास में मदद की। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के माध्यम से, भारतीय अंग्रेजों को वैचारिक लड़ाई देने में सक्षम थे जिसने भारत को स्वतंत्रता दिलाई। नरमपंथी जैसे दादा भाई नौरोजी और एस.एन. बनर्जी और बाल गंगाधर तिलक, बिपिन चंद्र पाल और लाला लाजपत राय जैसे चरमपंथियों ने भारतीयों में राष्ट्रवाद की भावना लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

1.

ब्रिटिश साम्राज्यवाद सबसे महत्वपूर्ण कारक था, जिसने भारत में राष्ट्रवाद के उदय में योगदान दिया। इसने देश के भौगोलिक एकीकरण को संभव बनाया। अंग्रेजों के आने से पहले, दक्षिण के लोग कुछ थोड़े–थोड़े अंतराल को छोड़कर आमतौर पर शेष भारत से अलग रहते थे। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने लोगों को एक राष्ट्र के रूप में सोचने के लिए मजबूर किया भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना ने पश्चिमी दुनिया के साथ घनिष्ठ संबंधों को संभव बनाया। इस प्रकार, यूरोपीय देशों के साथ संपर्कों ने भारतीयों को अत्यधिक प्रभावित किया। यूरोप में उन्नीसवीं सदी राष्ट्रवाद और उदारवाद की सदी थी। भारतीय इन दोनों विचारधाराओं पर यूरोपीय लोगों से अपना सबक सीखने आए। भारतीयों ने विशेष रूप से जर्मनी, इटली, ग्रीस और बेल्जियम से पश्चिमी देशों से राष्ट्रवाद और उदारवाद के विचारों को आत्मसात किया। इसके अलावा, मैकाले, बर्क, बेंथम, मिल, स्पेंसर, रूसो और वोल्टेयर जैसे पश्चिमी विचारकों के विचारों ने भी भारतीयों के बीच स्वतंत्रता के विचारों को प्रेरित और प्रोत्साहित किया। इस प्रकार, भारतीयों में राजनीतिक चेतना और जागृति का विकास हुआ।[5]

---

[4] रेड्डी, शेषलता (सितंबर 2010)। ''द कॉस्मोपॉलिटन नेशनलिज्म ऑफ सरोजिनी नायडू, नाइटिंगेल ऑफ इंडिया''। विक्टोरियन साहित्य और संस्कृति। 38 (2): 571–589।

[5] ''लक्ष्मी बाई द्य जीवनी, छवि, और तथ्य''। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका। 2021–11–04 को पुनःप्राप्त।

भारत में विशेष रूप से 1857 के विद्रोह के बाद अंग्रेजी शिक्षा का तेजी से प्रसार हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध यूरोप, विशेष रूप से इंग्लैंड में उदारवाद का स्वर्ण युग था। मिल्टन से लेकर मिल तक के अंग्रेजी साहित्य के राजनीतिक क्लासिक्स के अध्ययन ने अंग्रेजी–शिक्षित भारतीयों के दिमाग में इसके दो पहलुओं – राष्ट्रवाद और लोकतंत्र में उदारवाद के बीज बोए। इस प्रकार, अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार के साथ, शिक्षित भारतीय धीरे–धीरे राजनीतिक रूप से जागरूक हो गए। अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ को ध्यान में रखकर भारत में अंग्रेजी भाषा की शुरुआत की। शुरुआत में, उन्हें मुख्य रूप से भारत में अपने शासन को मजबूत करने के लिए अंग्रेजी में शिक्षित भारतीय क्लर्कों की आवश्यकता थी। अंग्रेजी शिक्षा ने विभिन्न प्रांतों के लोगों को एक दूसरे के करीब आने में भी सुविधा प्रदान की। इस प्रकार, इसने भारतीयों में राष्ट्रीय भावनाओं और राजनीतिक चेतना को जगाने में मदद की।

1852 और 1853 में टेलीग्राफ और रेलवे की शुरुआत ने भारत को परिवहन और संचार के तेज साधन प्रदान किए। संचार के आधुनिक साधनों ने भारतीय गाँवों के सदियों पुराने अलगाव को तोड़ दिया और दूर–दराज के लोगों को एक–दूसरे के करीब आने का अवसर मिला। उन्होंने व्यापार और वाणिज्य को भी बढ़ावा दिया और विभिन्न क्षेत्रों के लोगों को सामाजिक और बौद्धिक संपर्क विकसित करने में मदद की। नए सामाजिक और आर्थिक लिंक ने उनके रूढ़िवादी तरीकों को हटा दिया और उन्हें अपनी सामाजिक अक्षमताओं के प्रति जागरूक किया। भारत में प्रशासन की एक समान प्रणाली की शुरूआत ने भी भारतीयों में एकता की भावना पैदा की। इस प्रकार, परिवहन और संचार के साधनों में सुधार ने भी देश में राष्ट्रवादी आंदोलन की गति को तेज कर दिया। देश में राष्ट्रवादी आन्दोलन को आगे बढ़ाने में अनेक विद्वानों एवं धर्म सुधारकों ने अपनी भूमिका निभाई। उन्होंने भारत के अतीत के गौरव और समृद्ध विरासत पर जोर दिया। बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी द्वारा प्राचीन भारतीय साहित्य का अध्ययन और प्रकाशन और मैक्स मुलर, मोनियर विलियम्स, कोलब्रूक, रानाडे, हरि प्रसाद शास्त्री, आर.जी. भंडारकर, राजेंद्र लाल मित्र आदि ने भारत के लोगों को संस्कृत भाषा के वैभव के बारे में बताया और उनमें अपने अतीत के प्रति गर्व की भावना और भविष्य के प्रति उनकी आस्था का भी संचार किया।धार्मिक और समाज सुधारकों, अर्थात्, राजा राममोहन राय, केशब चंद्र सेन, देबेंद्रनाथ टैगोर, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, स्वामी दयानंद सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, और अन्य ने लोगों पर जबरदस्त प्रभाव छोड़ा था। भारत के लोगय और वे देशवासियों को स्वतंत्रता और स्वतंत्रता के आदर्शों को संजोने के लिए प्रेरित करने के लिए भी जिम्मेदार थे।भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना ने पश्चिमी दुनिया के साथ घनिष्ठ संबंधों को संभव बनाया। इस प्रकार, यूरोपीय देशों के साथ संपर्कों ने भारतीयों को अत्यधिक प्रभावित किया। यूरोप में उन्नीसवीं सदी राष्ट्रवाद और उदारवाद की सदी थी। हालांकि बुन्देलखण्ड (उ0प्र0) ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने 1612 में ही भारत में उपस्थिति स्थापित कर ली थी, और पहले व्यापारिक उद्देश्यों के लिए स्थापित कारखाने क्षेत्रों को प्रशासित किया था, 1757 में प्लासी की लड़ाई में इसकी जीत ने पूर्वी भारत में अपनी मजबूती की शुरुआत की।

जीत 1764 में बक्सर की लड़ाई में समेकित हुई, जब ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना ने मुगल सम्राट शाह आलम द्वितीय को हराया।[6]बुन्देलखण्ड (उ0प्र0) अपनी हार के

---

[6] "कस्तूरबा गांधी द्य भारतीय राजनीतिक कार्यकर्ता द्य ब्रिटानिका"। ॄइतपजंददपबं.बवउ. 2021–12–08 को पुनःप्राप्त।

बाद, सम्राट ने कंपनी को बंगाल (आधुनिक दिन बंगाल, बिहार और ओडिशा) के प्रांतों में ''राजस्व के संग्रह'' का अधिकार दिया, जिसे कंपनी को ''दीवानी'' के रूप में जाना जाता है। कंपनी ने जल्द ही बंबई और मद्रास में अपने ठिकानों के आसपास अपने क्षेत्रों का विस्तार कियाय बाद में, एंग्लो–मैसूर युद्धों (1766–1799) और एंग्लो–मराठा युद्धों (1772–1818) ने भारत के और भी अधिक नियंत्रण का नेतृत्व किया। 1806 में, वेल्लोर विद्रोह को नए समान नियमों द्वारा चिंगारी दी गई थी, जिसने हिंदू और मुस्लिम दोनों सिपाहियों के बीच असंतोष पैदा किया था।बुन्देलखण्ड (उ0प्र0) 19वीं शताब्दी की शुरुआत के बाद, गवर्नर–जनरल वेलेस्ली ने कंपनी क्षेत्रों के त्वरित विस्तार के दो दशकों में शुरू किया। यह या तो कंपनी और स्थानीय शासकों के बीच सहायक गठजोड़ द्वारा या प्रत्यक्ष सैन्य विलय द्वारा प्राप्त किया गया था। सहायक गठबंधनों ने हिंदू महाराजाओं और मुस्लिम नवाबों की रियासतों का निर्माण किया। 1849 में द्वितीय आंग्ल–सिख युद्ध के बाद पंजाब, उत्तर–पश्चिम सीमांत प्रांत और कश्मीर पर कब्जा कर लिया गयाय हालाँकि, कश्मीर को तुरंत 1846 की अमृतसर की संधि के तहत जम्मू के डोगरा राजवंश को बेच दिया गया और इस तरह एक रियासत बन गई। बुन्देलखण्ड (उ0प्र0) नेपाल और ब्रिटिश भारत के बीच सीमा विवाद, जो 1801 के बाद तेज हो गया, ने 1814–16 के एंग्लो–नेपाली युद्ध का कारण बना और पराजित गोरखाओं को ब्रिटिश प्रभाव में ला दिया। 1854 में, बरार पर कब्जा कर लिया गया था, और अवध राज्य को दो साल बाद जोड़ा गया था। व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए, कंपनी भारत के अधिकांश हिस्से की सरकार थी।विद्रोह के शुरुआती लेखक समकालीन अंग्रेजी गवाह थे। सिविल और सैन्य अधिकारियों और गैर–आधिकारिक निवासियों, पुरुषों और महिलाओं दोनों, जो प्रकोप के समय विभिन्न स्टेशनों में मौजूद थे, ने अपने अनुभवों को भावी पीढ़ी के संरक्षण के लिए प्रिंट में रखा।

बुन्देलखण्ड (उ0प्र0) भय, तनाव और किसी भी तरह के अपमान को कम नहीं किया जा सकता है कि उन्हें, शासकों और आदेश के संरक्षकों को, इतिहास का उतना ही हिस्सा बनना पड़ा जितना कि उन्हें उत्पन्न होने वाली उथल–पुथल।

विद्रोह की ओर प्रकट किए गए इन समकालीन खातों की कड़वाहट के माध्यम से फिल्टर किया गया, इतिहास में उन महत्वपूर्ण क्षणों में सत्ता के टूटने की ओर ले जाने वाले इसके प्रकोप का एक अनूठा पुनरुत्पादन उभर कर आता है।

उनके द्वारा प्रदान की गई बहुमूल्य जानकारी को अनदेखा करते हुए 1857 का इतिहास लिखा जा सकता है। यह सच है कि इनमें से अधिकांश संस्मरण मुख्य रूप से उस जगह से संबंधित घटनाओं से संबंधित हैं जहां उनके लेखक मौजूद थे और विद्रोह के दौरान बाद की गाथा। एक अधिक संपूर्ण कथावाचक शायद अन्य स्थानों के बारे में समाचारों और अफवाहों को शामिल करेगा। हालांकि इन आख्यानों की अपरिहार्यताय प्रकोप के विस्तृत विवरण में, इसके ठीक पहले की स्थिति और उन सभी का एक घंटे का विवरण जो लेखक इसके बाद से गुजरे।बुन्देलखण्ड (उ0प्र0) लगभग हर उस थाने में जहाँ विद्रोह छिड़ गया, अंग्रेजों को इसे खाली करना पड़ा और सुरक्षित स्थानों पर भागना पड़ा। उनकी यात्राएँ उन्हें गाँवों, विभिन्न कस्बों और जिलों में ले गईं, लोगों की प्रतिक्रिया और इन असंख्य स्थानों में देश की स्थिति उनके संस्मरणों में विशद रूप से आती है – उनके परिप्रेक्ष्य के रंगीन प्रिज्म के माध्यम से स्वीकार किए जाते हैं। इनमें से, समकालीन लेखन एक बार फिर, जिला मजिस्ट्रेटों द्वारा छोड़े गए वे 4 जो अक्सर कुछ वर्षों बाद लिखे गए थे, अधिक पर्याप्त थे।उनके आख्यानों का उद्देश्य न केवल विद्रोह के विवरणों को दर्ज करना था, बल्कि असंतोष के लक्षणों का निदान करना भी

था, जिनके प्रकोप ने उन्हें इतना चकित कर दिया। बुन्देलखण्ड (उ0प्र0) इसलिए इन जिला अधिकारियों का लेखन अक्सर स्थिति को चकरा देने और उन्हें भारी पड़ने पर उनके नुकसान की भावना को प्रकट करता है। यदि केवल इस तरह के एक और टकराव की आकस्मिकता के खिलाफ प्रदान करने के लिए, वर्तमान को समझना और अधिक महत्वपूर्ण, इसके कारणों का पता लगाना था।

बुन्देलखण्ड (उ0प्र0) लेकिन, निश्चित रूप से, अनौपचारिक प्रकाशनों में, अधिकारियों के पास अटकलों के लिए अधिक जगह थी' अधिकारियों और गैर–अधिकारियों के इन अधिकांश समकालीन संस्मरणों की सबसे खास विशेषता यह थी कि उनके लेखक यह अनुमान लगाने में सक्षम थे कि असंतोष कितना गहरा और व्यापक है, अंग्रेजों के प्रति वैर भाव, गया। उन्हें इस बात का कोई भ्रम नहीं था कि यह आग केवल सिपाहियों के विद्रोह तक ही सीमित है या अकेले इसके कारण हुई है। बांदा के मजिस्ट्रेट और कलेक्टर, एफ.ओ.मायने द्वारा अपने आधिकारिक आख्यान में दिया गया एकमात्र बयान कि ''क्रांति कभी इतनी तेज नहीं थी – कभी अधिक पूर्ण नहीं''

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

वत्स महाजनपद में कौशांबी नगर के उत्खनन के साक्ष्य सिक्कों का एक अध्ययन

संजू सिंह
शोध छात्रा इतिहास विभाग
विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कॉलेज कानपुर
प्रोफेसर पुरुषोत्तम सिंह
शोध पर्यवेक्षक
पूर्व प्रोफेसर इतिहास विभाग
विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कॉलेज कानपुर
प्रोफेसर एवं प्राचार्य
महाराज बलवंत सिंह पीजी कॉलेज गंगापुर वाराणसी

वत्स महाजनपद प्राचीन भारत में एक सशक्त राजनीतिक इकाई थी जिसमें विधि निर्माण के साथ–साथ विभिन्न राजाओं द्वारा अपने नाम एवं चेहरे के साथ सिक्के जारी किए गए यह सिक्के प्रायः चांदी तथा तांबे के प्राप्त होते हैं नगर की सुरक्षा एक महत्वपूर्ण बिंदु था और इसके लिए प्राचीन काल में प्राचीर तथा दुर्ग का निर्माण विभिन्न राजाओं द्वारा किया गया जिसके साक्ष्य उत्खनन में प्राप्त होते सुरक्षा का संगठन और निर्माण एक मौलिक चरित्र के परिवर्तन को दर्शाता है जिसने रक्षा की अवधारणा में लगभग क्रांति ला दी है। उपकरण और उपकरण भी उम्र–दर–साल उनके प्रकार और लोकप्रियता में भिन्नता दिखाते हैं। परिवर्तन सबसे स्पष्ट रूप से मिट्टी के बर्तनों में प्रतिबिंबित होते हैं, जो अपनी विशाल संख्या और माध्यम की लचीलापन से, सांस्कृतिक प्रभावों की धाराओं और क्रॉस–धाराओं को दर्शाते हैं। इसलिए, इसे स्वाभाविक रूप से सांस्कृतिक विभाजन के लिए एक मानदंड के रूप में अपनाया गया है। हालाँकि, यह ध्यान दिया जा सकता है कि संस्कृति के अन्य घटकों पर आधारित सांस्कृतिक विभाजन, मिट्टी के बर्तनों के समान या उससे भी अधिक महत्वपूर्ण, हमेशा मिट्टी के बर्तनों के विश्लेषण के आधार पर निकाले गए लोगों के अनुरूप नहीं होते हैं। कुछ निश्चित अवधियाँ हैं जो एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर प्रतीत होती हैं, क्योंकि वे भौतिक संस्कृति के विभिन्न पहलुओं में परिवर्तनों के अभिसरण को दर्ज करते हैं। मिट्टी के बर्तनों के आधार पर, ये पच्चीस कालखंड स्वयं को चार व्यापक चरणों में विभाजित करते हैं। कब्जे की पहली चार अवधि कौंबी की पहली या प्रारंभिक संस्कृति का

प्रतिनिधित्व करती है, जो कि नवादाटोली, रंगपुर, सोमनाथ और अन्य पश्चिमी भारतीय स्थलों पर देर से हड़प्पा या तुरंत पिछले–हड़प्पा के संदर्भ में खोजे गए मिट्टी के बर्तनों के प्रकार की व्यापकता की विशेषता है। मिट्टी के बर्तनों के संदर्भ में दूसरे सांस्कृतिक काल में संरचनात्मक शामिल है दूसरे काल के मिट्टी के बर्तनों की विशेषता काले और लाल बर्तनों की प्रधानता और चित्रित भूरे बर्तनों की उपस्थिति है, जो कौशांबी में उपलब्ध है, जो ऊपरी हिस्से के चित्रित भूरे बर्तनों के तुलनात्मक रूप से बाद के और पतनशील चरण का प्रतिनिधित्व करता है। गंगटिक घाटी, पंजाब और राजस्थान।

मध्य गैंग्टिक घाटी के विशिष्ट बर्तन, जिन्हें उत्तरी काले पॉलिश वाले बर्तन के नाम से जाना जाता है। यह बर्तन संरचनात्मक अवधि 16 तक प्रचलन में था। इसलिए, नौवीं से सोलहवीं तक की अवधि को एसपी के रूप में चिह्नित किया गया है। तृतीय. 9 से एसपी. आईएच. 16. यह ध्यान देने योग्य बात है कि ये पहले तीन सांस्कृतिक कालखंड निर्विवाद खंडों का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं, कुछ संरचनात्मक कालखंड हैं जो सांस्कृतिक ओवरलैपिंग का प्रतिनिधित्व करते हैं। उदाहरण के लिए, अवधि के मिट्टी के बर्तनों के प्रकार पूरी ताकत से जारी हैं केवल कुछ और प्रकार, जिन्हें अवधि ᴾᴾ के जीवाश्म प्रकार के रूप में माना जा सकता है, अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हैं। इसी प्रकार, एस. पी. तृतीय. 9, जो एन, बी.पी. वेयर की पहली उपस्थिति का प्रतीक है, चित्रित ग्रे वेयर के निर्माण की भी विशेषता है। दरअसल, एन. बी.पी. का ही प्रबल प्रभाव दिखता है

चित्रकला की परंपराएँ. ब्लैक–एंड–आरसीडी वेयर पीरियड्स और आईटी में मौजूद है

विभिन्न प्रकार के मिट्टी के बर्तनों से संकेतित मुख्य सांस्कृतिक काल, सुरक्षा की प्रकृति में महत्वपूर्ण बदलावों के साथ मेल खाता है। सभी अवधियों में सिक्के लगभग समान रूप से वितरित किए गए हैं। अंत तक, और उनमें से कई पोस्ट–स्ट्रक्चरल गड्ढों में खोजे गए हैं। सबसे पुराने सिक्के वर्गाकार अलिखित ढलवाँ सिक्के हैं, जिनके अग्र भाग पर मसम अंकित है मानक से पहले बाईं ओर फैंट, कभी–कभी स्वस्तिक–शीर्ष, और विपरीत दिशा में, रेलिंग में पेड़, खोखला क्रॉस, धनुषाकार पहाड़ी और टॉरिन। ये सिक्के लगते हैं गोलाकार अलिखित डाली सिक्का वितरित किया जाता है। तृतीय. सिक्का, दुबले–पतले बैल प्रकार के रूप में वर्णित, एसपी से खोजा गया है।. एसपी से बड़ी संख्या में छोटे बिना अंकित ढलवाँ सिक्के वितरित किये जाते हैं। चतुर्थ. एसपी से चांदी और तांबे के पंच–चिह्नित सिक्के मिले हैं। कौसाम्बी के मित्र राजाओं के अंकित सिक्के! प्रतिनिधित्व करने वाले राजा बृहस्पतिनुत्र, अग्निमित्र, घोषा या ऐवाघोसा और शायद सुदेवा। माघ शासकों के सिक्को साक्ष्य से भी इसकी पूर्ण पुष्टि होती है प्राचीन शहर कौसाम्बी के खंडहर आईसीआर तट पर स्थित हैं यमुना का 'इलाहाबाद से 32 मील दक्षिण–पश्चिम में। प्राचीन बस्ती के निशान लगभग आठ वर्ग मील का एक क्षेत्र, जिसका एक भाग मकई द्वारा संरक्षित था किलेबंदी की प्लेक्स प्रणाली. प्राचीन प्राचीर के टीले, साथ में आसपास की खाई, इब्रनी एक अर्ध–सीटीआरडीसी जिसका आधार यमुना है (पीएच 5)। प्राचीर का परिधीय परिपथ 21,000 फीट से अधिक या लगभग है 4 मील. प्राचीर की औसत ऊंचाई लगभग 35 फीट है, व्यक्तिगत टावर 70 से 75 फीट तक ऊँचे होते हैं प्राचीर के तीन किनारों, पूर्वी, उत्तरी और पश्चिमी, को चिह्नित किया गया नियमित अंतराल पर सैलिएंट्स और टावरों की एक श्रृंखला द्वारा द्वारा छेद किया जाता है 11 प्रवेश द्वार, जिनमें से 5 प्रमुख थे 2 पूर्व में, 2 उत्तर में थर्न और मैं पश्चिमी विंग में। शेष 6 सहायक द्वार थे। प्रमुख प्रवेश द्वार अपने निर्माण में कुछ विशेष विशेषताएं दर्शाते हैं। यहाँ इन, एक पश्चिमी तरफ और दूसरा पूर्वी तरफ स्थित है यमुना के समानांतर चलने वाली एक रेखा पर, जो प्राचीन टीले को काटती है केंद्र के

माध्यम से आसानी से. ये दोनों जटिल और विस्तृत हैं। पश्चिमी दोनों द्वारा निर्मित त्रिभुज के शीर्ष पर स्थित है मुख्य भाग जिनमें पश्चिमी भाग विभाजित है, दक्षिणी भाग की माप 1,550 है फीट, उत्तरी, 1,950 फीट और इस त्रिकोण का आधार 2,550 फीट है। खाई इस क्षेत्र की अधिकतम चौड़ाई 1,600 फीट है, और इसे दो–दो में विभाजित किया गया है टीले त्रिभुज के आधार पर 540 फीट की दूरी पर स्थित हैं। दोनों ने पश्चिमी प्रवेश द्वार से होते हुए मार्ग को पार किया। दूसरे की तरह मुख्य प्रवेश द्वार, उत्तरी तरफ के दो प्रवेश द्वारों पर भी निगरानी प्रदान की गई है– टावर, खाई के दूसरी ओर स्थित हैं जिनकी औसत चौड़ाई है 250 फीट पर सहायक प्रवेश द्वार थे – प्रत्येक पंख पर दो मीटर। वे कम थे विस्तृत और जाहिरा तौर पर एक सरल योजना थी। पूर्वी प्रवेश द्वार में कई विशिष्ट विशेषताएं थीं, (एफ) एक मिट्टी– वत्सों की राजधानी थी जिसका उल्लेख मिलता है .एतरेय ब्राह्मण', गोपथ ब्राह्मण' और कौषितकी उपनिषद'। कौशाम्बी. शहर का उल्लेख पुराणों जैसे महाकाव्यों में भी मिलता है त्रिपिटक और अन्य संस्कृत और पाली ग्रंथों में। बौद्ध तीर्थयात्री, फाहियान और युआनवांग ने शहर का दौरा किया। इसका उल्लेख शिलालेख में है इलाहाबाद में ऐओकन स्तंभ पर, प्रधरा राजा का कड़ा शिलालेख यियापाला और कौशांबी में ही स्तंभ। ये साहित्यिक अभिलेख इसकी गवाही देते हैं शहर का अस्तित्व कम से कम उत्तर वैदिक काल से लेकर मुगल काल तक रहा वमुना पर इन खंडहरों की पहचान प्राचीन कौशाम्बी. से की गई थी। 'इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने खुदाई शुरू की 1949 में स्तंभ के पास खुदाई की गई इन उत्खननों का उद्देश्य सुरक्षा के इतिहास का अध्ययन करना था कौशाम्बी. और मूल प्राचीर की प्राचीनता और प्रकृति का पता लगाना और इसकी क्रमिक मरम्मत, यदि कोई हो, और इसमें अलग–अलग बदलाव भी किए गए हैं. पिछले वर्षों की खुदाई से यह स्पष्ट हो गया कि इमारतें शहर की योजना आम तौर पर कार्डिनल बिंदुओं के संदर्भ में बनाई गई थी। भूतल क्षेत्र के खनन से पता चला कि प्राचीर के शीर्ष पर दक्षिणी टॉवर, पर्दे के निकट प्राचीर का अंगूठा और साथ एक पंक्ति में कास्ट–वेस्ट चल रहे थे। इसलिए, उनके पार एक खाई बिछा दी गई

बाद में इसे उत्तरी, दक्षिणी और पश्चिमी किनारों पर विस्तारित किया गया उत्खनन से पता चला कि सबसे पुरानी संरचना कहाँ स्थित थी शहर में, प्राचीर के पार, मौजूदा स्तर से .54 फीट की गहराई है इसे त्याग दिए जाने के बाद से इसका काफी हनन हो गया है। कुल बस्ती पहली और आखिरी अवधि के बीच की जमा राशि अधिक रही होगी 54 फीट से अधिक और शहर के जीवन का एक ऊर्ध्वाधर रिकॉर्ड है, यह पच्चीस निर्माण अवधियों के दौरान संचित आवास जमा है, जिनमें से दो चाप पूर्व रक्षा, बाईस पांच प्राचीरों से जुड़े हुए हैं और पच्चीसवां शहर की अंतिम सुरक्षा के खंडहरों पर बनाया गया था। प्रथम प्राचीर चाप के साथ कई भवन निर्माण काल अंकित हैं

प्राचीन कौशांबी

कौशांबी, तांबा, 8.47 ग्राम, दुबला बैल प्रकार, अवलोकन बाईं ओर बैल, ऊपर नंद्यावर्त प्रतीक, बाईं ओर इंद्रध्वज, छह धनुषाकार पहाड़ी के ऊपर रेलयुक्त वृक्ष, बाईं ओर पहिया और नंदीपद, दाईं ओर स्वस्तिक (निशान) और उज्जैन का प्रतीक

कोसांबी के मित्र शासक
शासक का नाम.. राजमित्र
अवधि। 100 ई.पू
वजन.. 8.49 ग्राम

कौशांबी के मित्र राजाओं के प्राप्त सिक्के

संदर्भ –

1. सांकलिया, सुब्बा राव और देव– महेश्वर और नवदाटोली में उत्खनन, पेज 241, 247।
2. होई नेल, गौडियन भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण, पेज 187
3. आई.ए., पी. 31; संकलिया, सुब्बा राव और देव, सेशन सीट पेज 249
4. Sharma G. R., Excavatiuons at Kousambi (1957-50), University of Allahabad, 1960

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

जेजाकभुक्ति के प्रारम्भिक चन्देलों के भूमिदान पत्र तथा पुरातात्विक प्रमाण

अनिल कुमार वर्मा
शोध छात्र इतिहास विभाग
विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कॉलेज कानपुर
छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय कानपुर
प्रोफेसर पुरुषोत्तम सिंह
शोध पर्यवेक्षक
प्रोफेसर एवं प्राचार्य
महाराज बलवंत सिंह पीजी कॉलेज गंगापुर वाराणसी
एवं पूर्व प्रोफेसर इतिहास विभाग
विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कॉलेज कानपुर

चन्देलों ने क्षेत्र में राजनैतिक सामाजिक, तथा सांस्कृतिक वैविध्य एवं विशिष्टता प्रदान करते हुये क्षेत्र को एक इकाई के रूप में संगठित करने का कार्य किया। कभी प्रतिहार सत्ता के सामंत रहे चन्देलों ने न केवल बुन्देलखण्ड बल्कि आसपास के क्षेत्रों में भी एकत्र शासन स्थापित किया। डॉ. विन्सेन्ट स्मिथ, प्रो. कीलहर्न, बेगलर तथा सर एलेक्जेंडर कनिंघम ने चन्देलों के इतिहास से सम्बन्धित पुरातात्विक कार्यो तथा खोजों में उल्लेखनीय योगदान प्रस्तुत किया है, जिससे चन्देलों का स्पष्ट इतिहास प्रकाश में आ सका।[1] चन्देलों ने अध्ययन क्षेत्र में लगभग 10वीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक शासन किया। प्रतिहार साम्राज्य के टूटने के परिणाम स्वरूप मध्य एवं पश्चिमी भारत में अनेक राजवंशों का उदय हुआ था, जिनमें चन्देल भी शामिल थे।[2] 36 राजपूत वंशो के समूह में शामिल चन्देलों ने स्वयं की उत्पत्ति चन्द्रवंशी, चन्द्रादेय से मानी है।[3] नौंवी शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में नन्नुक ने राजवंश की स्थापना की थी। खजुराहो के समीप खजुराहोवाटक को चन्देल राजसत्ता के प्रारम्भिक राजाओं से जोड़ा जाता है और इसके पुरातात्विक प्रमाण उपलब्ध है।[4]

---

1 पाण्डेय, ए पी, 'चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास', प्रयाग, 1968, पृ.–7
2 मित्रा, एस के, 'द अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो', कलकत्ता, 1958, पृ.–1
3 मजूमदार, आर सी, 'एनसियेन्ट इण्डिया', दिल्ली, 1960, पृ.–289
4 त्रिपाठी, आर एस, 'एज आफ इम्पीरियल कन्नौज', बम्बई, 1955, पृ.–82

सम्भवतः नन्नुक के काल में चन्देल प्रतिहार सत्ता के सामंत थे।[5] नन्नुक (825 से 840 ई.) का उत्तराधिकारी वाक्पति था जिसने नवीं शताब्दी के द्वितीय चतुर्थाश के क्षेत्र पर शासन किया। विन्ध्य श्रृंखलाओं को वाक्पति का क्रीड़ागन कहा गया है क्योंकि उसने इन श्रृंखलाओं में अनेक विपक्षियों से युद्ध लड़े, जिनमें भोज प्रतिहार, देवपाल, कोक्कल प्रथम कलचुरि भी शामिल थे।[6] वाक्पति के उत्तराधिकारी क्रमशः उसके दो पुत्र जय शक्ति और विजय शक्ति हुये।[7] जय शक्ति जिसे जेजा या जेजाक के नाम से जाना जाता है, पहले शासक हुआ।[8] उसके नाम चन्देल साम्राज्य को जेजाक भुक्ति के नाम से पुकारा गया।[9] राय चौधरी का मत है कि भुक्ति शब्द का प्रयोग विभिन्न नामों के साथ गुप्तकाल से ही विद्यमान था।[10] जयशक्ति ने अपनी पुत्री नट्टा देवी का विवाह कलचुरि शासक कोक्कल प्रथम से करके अपनी राजनैतिक स्थिति को सुदृढ़ कर लिया।[11] अगले शासक विजय शक्ति ने साम्राज्य का विस्तार दक्षिण में किया। विजयशक्ति के उत्तराधिकारी राहिल ने राहिल्य नामक नगर महोबा के निकट बसाया।[12] खजुराहों के दो अभिलेखों में राहिल का नाम आता है। राहिल ने सर्वप्रथम तालाबों एवं झीलों के निर्माण तथा मंदिर निर्माण के जनकल्याणकारी कार्यो का सूत्रपात किया अजयगढ़ के मन्दिर में उसके नाम का प्रस्तर अभिलेख एवं महोबा में राहिल्य सागर इसके प्रमाण है।[13] राहिल के पुत्र एवं उत्तराधिकारी हर्ष (905–925 ई.) ने साम्राज्य विस्तार के क्रम में कन्नौज पर चढ़ाई की तथा विजय प्राप्त की।[14] साथ ही महेन्द्रपाल प्रतिहार की सहायतार्थ हर्ष ने अनेक युद्धों में भाग लिया।[15] धंगदेव के नन्यौरा ताम्रपत्र प्रशस्तिका में अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करते हुये हर्ष की वीरता की प्रशंसा की है।[16]:

चन्देल वंश की प्रथम प्रतिष्ठा यशोवर्मन ने स्थापित की, जिसने क्षीण प्रतिहार शक्ति तथा गृह कलह से ग्रसित राष्ट्रकूट शक्ति के कारण अनुकूल वातावरण में एकछत्र साम्राज्य का निर्माण किया।[17] यशोवर्मन ने उत्तर में यमुना नदी तक सीमा का विस्तार किया तथा कालिंजर दुर्ग को विजित करने वाला प्रथम चन्देल शासक बना।[18] यशोवर्मन की विशाल वाहिनी का खजुराहो शिलालेख में काव्यात्मक वर्णन है।[19] यशोवर्मन ने मगध तथा उत्तरी बंगाल में निर्बल हो रही गौड़ शक्ति को परास्त किया।[20]

राजतंरगिणी में प्रयुक्त 'नश्यंत काश्मीर वीरा' : चन्देल शक्ति के काश्मीर के शासक शंकरवर्मा से भिड़न्त की सूचक है, यद्यपि इसकी अभिलेखीय पुष्टि नही होती

---

5 शर्मा, आर.के., पूर्वोधृत, पृ.–63

6 त्रिपाठी, आर एस, 'एज आफ इम्पीरियल कन्नौज', पूर्वोधृत, पृ.–82

7 वही, पृ.–82

8 शर्मा, आर.के., पूर्वोधृत, पृ.–63

9 त्रिपाठी, आर एस, पूर्वोधृत, पृ.–373

10 रायचौधरी, एच.सी, पूर्वोधृत, पृ.–523,561

11 जनपद गजेटियर, टीकमगढ़, पूर्वोधृत, पृ.–35

12 तिवारी गोरेलाल, पूर्वोधृत, पृ.–58

13 मित्रा, एस.के., पूर्वोधृत, पृ.–33

14 तिवारी गोरेलाल, पृ.– 4

15 पाण्डेय, ए पी, पूर्वोधृत, पृ.–29

16 त्रिपाठी, आभा, 'चन्देलकालीन भूमिदान पत्रों का महत्व', इतिहास, अंक–1, भाग–1, नई दिल्ली, 2003, पृ.–97

17 पाण्डेय, ए पी, पूर्वोधृत, पृ.–3

18 शर्मा, आर.के., पूर्वोधृत, पृ.–64

19 एपिग्राफिया इण्डिका, भाग–1, पृ.–132, श्लोक–26

20 बनर्जी, आर डी, 'हिस्ट्री ऑफ मेडिवेल इण्डिया', ब्लेकी एण्ड संस, 1934, पृ.–267

है।[21] यशोवर्मन के शासन में चन्देलों ने कोशल, मिथिला, मालवा, कुरू, विजय के विवरण उपलब्ध होते है।[22] यशोवर्मन ने कोक्कल देव के उत्तराधिकारियों को दो बार परास्त किया। खजुराहो शिलालेख में यह विवरण लिपिबद्ध है, जिसमें चेदियों को निर्लज्ज कहा गया है। डॉ. हेमचन्द्र रे की अवधारणा है कि पराजित चेदि नरेश युवराज प्रथम अथवा लक्ष्मण राज था। विक्रम संवत् 1011 के खजुराहो शिलालेख में यशोवर्मन (925–950 ई.) की दिग्विजय के विवरण उसके एकछत्र शासन को प्रमाणित करते है।[23] खजुराहो के प्रसिद्ध चतुर्भज मन्दिर का निर्माण करवाने वाले यशोवर्मन का उत्तराधिकारी धंगदेव था।[24]:

धंगदेव (950–1008 ई.) अपने 50 वर्षो से अधिक के शासन में चन्देल शक्ति को उत्कर्ष के शिखर पर पहुँचा दिया। खजुराहो शिलालेख में निर्देश है कि काञ्ची, राढ़, आन्ध्र तथा अंग देश की रानियाँ उसके बन्दीगृह में थी तथा कोशल, क्रथ, सिंहल और कुन्तल नरेश उसके आज्ञा पालक थे।[25] परन्तु यह विवरण उपयुक्त प्रतीत नही होता है क्योंकि चोल नरेश राजराज प्रथम (885–1013 ई.) के अधिकार में काञ्ची था तथा राजराज अपने समय का महान विजेता तथा सामुद्रिक शक्ति की मदद से वृहत्तर साम्राज्य का निर्माता था।[26]

राजेन्द्र चोल प्रथम के तिरूवलंगाडु अभिलेख से भी इसकी पुष्टि नही होती। पुरातत्वविद् चारों विषयों को स्वीकार नही करते है।[27] धंग के शासनकाल की प्रमुख राजनैतिक घटना गजनी के शासक सुबुक्तगीन द्वारा उद्भाण्डपुर के शाही शासन के विरूद्ध अनेक युद्धों की थी। उब्बी, इब्नउलअथर तथा निजामुद्दीन इत्यादि मुस्लिम इतिहासकार सुबुक्तगीन के विरूद्ध एक भारतीय संघ की चर्चा करते है, जिसमें धंग की सेना भी शामिल हुयी थी।[28] परन्तु डॉ. एच.सी.रे. महोबा अभिलेख के आधार पर ऐसे किसी संघ की बात नकारते है। जयपाल शाही जैसे छोटे शासक की विशाल सेना का विवरण एच सी रे के मत का समर्थन नही करता है। उब्बी के अनुसार नीच काफिर (जयपाल) ने 8000 घुड़सवार, 30,000 पैदल, 300 हाथियों के साथ सुल्तान का मुकाबला किया परन्तु परिणाम सुल्तान के पक्ष में रहा। बिना बाहरी सहायता के जयपाल बड़ी सेना के साथ युद्ध करने में अक्षम था। परन्तु यह भी सच है कि प्रतापी धंग के भय से ही सुबुक्तगीन ने अपने अभियानों को आगे नहीं बढ़ाया।[29] मुस्लिम इतिहासकारों ने धंग के लिये 'अमीर' शब्द का प्रयोग किया है।

धंग ने धार्मिक एवं जनकल्याणकारी कार्यो का कुशलता से सम्पादन किया। उसने चन्द्रग्रहण के अवसर पर ग्रामदान वाराणसी में किया, जिसकी पुष्टि नन्यौरा ताम्रपत्र करता है।[30] विक्रम संवत् 1011 के खजुराहों शिलालेख, विक्रम संवत् 1011 के

21 राजतंरगिणी, भाग–1 स्टीन द्वारा सम्पादित एवं अनूदित, बम्बई संस्करण, 1892, अध्याय–6, पृ.–206,श्लोक–15

22 गांगुली, डी. सी., 'हिस्ट्री ऑफ परमार डायनेस्टी', ढाका, 1933, पृ.–40

23 एपिग्राफिया इण्डिका, भाग–1, पृ.–136, श्लोक–23, गौड़ी क्रीडालता

24 जनपद गजेटियर, टीकमगढ़, पूर्वोधृत, पृ.–36

25 एपिग्राफिया इण्डिका, भाग–1, पूर्वोधृत, पृ.–145, श्लोक–46

26 गोपाल, आर, 'हिस्ट्री ऑफ पल्लवाज ऑफ काञ्ची', मद्रास, 1928, पृ.–115

27 छाबड़ा, बी. सी. सरकार, डी. सी. देसाई, जेड. ए, 'एपिग्राफिकल, रिसर्च, एनसियण्ट इण्डिया', नवम्बर 1953, पुनर्मुद्रित, 1985, पृ.–221

28 पाण्डेय ए पी, पूर्वोधृत, पृ.–45

29 मजूमदार, आर सी, पूर्वोधृत, पृ.–45

30 त्रिपाठी, आभा, पूर्वोधृत, पृ.–97

खजुराहो जैन मन्दिर शिलालेख, विक्रम संवत् 1055 के नन्यौरा ताम्रपत्र, विक्रम संवत् 1058 के कोक्कल के खजुराहो शिलालेख, विक्रम संवत् 1059 के खजुराहो शिलालेख से धंग के जनकल्याणकारी कार्यो की पुष्टि होती है।[31] उसके शासनकाल में महिलाओं को सम्मान प्राप्त है। खजुराहो के अनेक मन्दिरों के निर्माता धंग ने प्रयाग में जल समाधि लेकर प्राण त्यागे।[32]:

गण्डदेव (1008–1019 ई.) धंग का उत्तराधिकारी था जो अपने पिता के दीर्घकालिक शासन के पश्चात् अधिक आयु में सिंहासनारूढ़ हुआ। इब्न उल अथर ने अपनी पुस्तक 'तारीख उल कामिल' में गंडदेव के लिये 'नन्दा' शब्द का प्रयोग किया है। कनिंघम ने सर्वप्रथम यह सुझाव प्रस्तुत किया कि मुस्लिम इतिहासकारों ने मूलवंश 'नन्दा' नाम दिया है तथा अधिकांश इतिहासकार कनिंघम से सहमत है।[33] गंडदेव के शासनकाल में गजनी के शासक महमूद के विरूद्ध दूसरी बार जयपाल के पुत्र अनंगपाल ही सहायता के निहितार्थ हिन्दू राज्य संघ का निर्माण हुआ।[34] उज्जैन, ग्वालियर, कन्नौज, योगिनीपुर तथा अजमेर के शासक इस संघ में शामिल हुये। युद्ध में अंनगपाल के हाथी के बिगड़ जाने से बाजी महमूद के हाथ रही। अंनगपाल के मैदान छोड़ देने के कारण महमूद ने भागती सेना का दो दिन और दो रात पीछा किया तथा 8,000 विपक्षी सैनिकों को कत्ल कर दिया।[35] संघ जिस उद्देश्य से निर्मित हुआ था, वह फलीभूत नही हो सका। महमूद ने दिसम्बर 1018 ई. में कन्नौज पर आक्रमण कर वहाँ के शासक राज्यपाल को हटा दिया तथा कन्नौज को लूटा। गंडदेव ने राज्यपाल की भीरुता पर उसे दण्ड देने के लिये अपने पुत्र विद्याधर के नेतृत्व में सेना भेजी, जिसने कन्नौज को विजित कर राज्यपाल को मार डाला।[36] विद्याधर जो कि गंडदेव का उत्तराधिकारी बना, के विरूद्ध राज्यपाल की हत्या की प्रतिक्रिया में महमूद ने चन्देल सत्ता पर लक्ष्य निर्धारित किया। इब्न उल अथर के अनुसार हिजरी 409 में महमूद ने बिदा (विद्याधर) के क्षेत्रों पर आक्रमण किया।[37] महमूद तथा विद्याधर के मध्य युद्ध एक नदी के किनारे हुआ। इब्न उल अथर के अनुसार बिदा रात्रि में मैदान छोड़कर भाग खड़ा हुआ तथा सुल्तान ने चन्देल शिविर लूट लिया।[38] महमूद इस अपूर्ण विजय से सन्तुष्ट नही था अतः हिजरी 414 या 1023 ई. में उसने विद्याधर को पुनः घेरा। इब्न उल अथर इस युद्ध के सम्बन्ध में मौन है यद्यपि हिजरी 413 में उसने महमूद द्वारा भारत के एक शक्ति सम्पन्न किले पर आक्रमण का उल्लेख किया। डा. रे की अवधारणा है कि यह किला कालिंजर ही है।[39]

निजामुद्दीन अहमद के अनुसार महमूद के घेरे से विवश होकर विद्याधर ने एक बड़ा कोष तथा अप्राप्त मणियाँ सुल्तान को प्रदान की, परन्तु निजामुद्दीन अहमद के समकालीन न होने के कारण युद्ध के विवरण संदिग्ध है।[40]

---

31 पाण्डेय ए पी, पूर्वोधृत, पृ.–48, 50
32 एपिग्राफिया इण्डिका, भाग–1, पूर्वोधृत, पृ.–145, श्लोक–47
33 पाण्डेय ए पी, पूर्वोधृत, पृ.–50
34 त्रिपाठी आर. एस., पूर्वोधृत, पृ.–374
35 पाण्डेय ए. पी., पूर्वोधृत, पृ.–52
36 मित्रा, एस. के. पूर्वोधृत, पृ.–73
37 रे, एच. सी. 'द डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इण्डिया', खण्ड–2, दिल्ली, 1973, पृ.–689
38 पाण्डेय, ए. पी., पूर्वोधृत, पृ.–55
39 तबकात ए अकबरी : निजामुद्दीन अहमद, रैवर्टी सम्पादन, लन्दन, 1881, पृ.–14
40 रे एच. सी., पूर्वोधृत, पृ.–690

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

NAAGS KANPUR

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

हिंद स्वराज अथवा इंडियन होमरूल पर गांधी के विचार

संजेश कुमार मौर्य
शोध छात्र इतिहास विभाग
विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कॉलेज कानपुर
छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय कानपुर
प्रोफेसर पुरुषोत्तम सिंह
शोध पर्यवेक्षक
प्रोफेसर एवं प्राचार्य
महाराज बलवंत सिंह पीजी कॉलेज
गंगापुर वाराणसी
एवं पूर्व प्रोफेसर इतिहास विभाग
विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कॉलेज कानपुर

हिंद स्वराज पर महात्मा गांधी ने अपने विचार मौलिक रूप से प्रस्तुत किए तथा यह विचार मौलिक रूप से इंडियन ओपिनियन के 11 दिसंबर से लेकर 18 दिसंबर 19 से 9रू00 के मध्य प्रकाशित हुए लेखों में शामिल हुए जो कि प्रश्न उत्तर रूप में थे इसकी भूमिका में गांधी ने बिना हिचक के हिंद स्वराज की अवधारणा को जनमानस के समक्ष प्रस्तुत किया तथा उन्होंने यूरोप की आलोचना की मूल पाठ अंग्रेजी में अभी भी मौजूद है पहले इस बात पर विचार करें कि किस स्थिति का वर्णन किया गया है शब्द सभ्यता इसकी असली परीक्षा इसी में है कि लोग जीवित रहें इसमें शारीरिक कल्याण को जीवन का उद्देश्य बनाएं।यूरोप के लोग आज बेहतर निर्मित घरों में रहते हैं
जितना उन्होंने सौ साल पहले किया था। इसका प्रतीक माना जाता है सभ्यता, और यह शारीरिक सुख को बढ़ावा देने का मामला भी है। पहले, वे खाल पहनते थे और भाले को अपने हथियार के रूप में इस्तेमाल करते थे। अब, वे लंबी पतलून पहनते हैं, और, अपने शरीर को सजाने के लिए, वे विभिन्न प्रकार के कपड़े पहनें, और, इसके बजाय। वे भाले अपने साथ रखते हैं वे रिवाल्वर जिनमें पाँच या अधिक कक्ष होते हैं। यदि लोग कुछ देश, जहां अब तक पहनने की आदत नहीं रही है बहुत से कपड़े, जूते आदि यूरोपीय परिधान अपनाते हैं, वे हैं माना जाता है कि वह बर्बरता से सभ्य बन गया है। पूर्व में, में यूरोप में लोग मुख्यतः शारीरिक श्रम द्वारा अपनी भूमि जोतते थे। अब, एक व्यक्ति भाप इंजन के माध्यम से एक विशाल भूमि को जोत सकता है इस

प्रकार अपार धन इकट्ठा करो। इसे सभ्यता की निशानी कहा जाता है. पहले, केवल कुछ ही लोग मूल्यवान पुस्तकें लिखते थे। अब, कोई भी वह जो चाहे लिखता और छापता है और लोगों के दिमाग में जहर भरता है। पहले, पुरुष वैगनों में यात्रा करते थे। अब, वे हवा में उड़ते हैं प्रति दिन चार सौ और अधिक मील की दर से ट्रेनें। यह है सभ्यता का शिखर माना जाता है। यह कहा गया है कि, पुरुषों के रूप में प्रगति, वे हवाई जहाज में यात्रा करने और किसी भी हिस्से तक पहुंचने में सक्षम होंगे चंद घंटों में दुनिया. पुरुषों को अपने हाथों के इस्तेमाल की जरूरत नहीं पड़ेगी और पैर. वे एक बटन दबाएंगे, और उनके पास उनके कपड़े होंगे उनकी तरफ से. वे दूसरा बटन दबाएंगे, और उनके पास उनका बटन होगा अखबार। एक तिहाई और एक मोटर–कार उनकी प्रतीक्षा में होगी। उनके पास विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट पकवान उपलब्ध होंगे। सब कुछ मशीनरी द्वारा किया जाएगा। पहले जब लोग लड़ना चाहते थे उन्होंने एक दूसरे से अपनी शारीरिक शक्ति मापीय अब एक आदमी द्वारा हजारों जिंदगियां छीनना संभव है एक पहाड़ी से बंदूक के पीछे काम करना। यह सभ्यता है. पूर्व में, पुरुष खुली हवा में उतना ही काम किया जितना उन्हें पसंद था। अब हजारों रखरखाव के लिए कई कर्मचारी एक साथ मिलते हैं और काम करते हैं कारखाने या खदानें. उनकी हालत जानवरों से भी बदतर है. वे वे अपनी जान जोखिम में डालकर काम करने के लिए बाध्य हैं, चाहे वह कितना भी खतरनाक क्यों न हो व्यवसाय, करोड़पतियों की खातिर। पहले तो मनुष्य बनाये जाते थे शारीरिक बाध्यता के अधीन दास। अब वे गुलाम हैं पैसे और विलासिता का प्रलोभन जो पैसे से खरीदा जा सकता है। वहाँ अब ऐसी बीमारियाँ हैं जिनके बारे में लोगों ने पहले कभी सपने में भी नहीं सोचा था, और एक सेना है डॉक्टर इसका इलाज ढूंढने में लगे हुए हैं और अस्पताल भी में वृद्धि हुई है। यह सभ्यता की परीक्षा है. पूर्व, विशेष दूतों की आवश्यकता थी और इसके लिए बहुत अधिक व्यय करना पड़ा पत्र भेजनाय आज कोई भी अपने साथी के साथ दुर्व्यवहार कर सकता है एक पैसे के लिए पत्र. सच है, एक ही कीमत पर, कोई भी अपना भेज सकता है धन्यवाद भी। पहले लोग दो या तीन बार भोजन करते थे घर पर बनी रोटी और सब्जियाँय अब, उन्हें कुछ चाहिए हर दो घंटे में खाना खाते हैं ताकि उनके पास किसी भी चीज के लिए फुरसत ही न हो अन्यथा। मुझे और क्या कहने की जरूरत हैश? यह सब आप कई से पता लगा सकते हैं आधिकारिक पुस्तकें. ये सब सभ्यता की सच्ची परीक्षाएँ हैं। और अगर जो कोई इसके विपरीत बोलता है, जान ले कि वह अज्ञानी है। यह सभ्यता न तो नैतिकता पर ध्यान देती है और न ही धर्म पर। इसके समर्थक शांति से कहें कि उनका काम धर्म की शिक्षा देना नहीं है। कुछ भी इसे अंधविश्वासी विकास मानें. दूसरों ने इसका लबादा पहन लिया धर्म, और नैतिकता के बारे में प्रशंसा। लेकिन, बीस साल बादश अनुभव से मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि अक्सर अनैतिकता होती है नैतिकता के नाम पर पढ़ाया जाता है. इसे एक बच्चा भी समझ सकता है मैं ऊपर वर्णित सभी बातों से सहमत हूं कि नैतिकता के लिए कोई प्रेरणा नहीं हो सकती। सभ्यता शारीरिक सुख–सुविधाएँ बढ़ाने का प्रयास करती है, और यह बुरी तरह विफल हो जाती है ऐसा करने में भी. यह सभ्यता अधार्मिक है और इसने इतना अधिकार जमा लिया है यूरोप में लोग कहते हैं कि जो लोग वहां हैं वे आधे पागल मालूम पड़ते हैं। उनमें वास्तविक शारीरिक शक्ति या साहस का अभाव होता है। वे अपना काम जारी रखते हैं नशे से ऊर्जा. वे एकांत में शायद ही खुश रह पाते हैं। महिलाएं, जिन्हें घरों की रानी होना चाहिए, भटकती रहती हैं सड़कों पर या वे कारखानों में गुलाम बन जाते हैं। थोड़े से पैसों की खातिर, अकेले इंग्लैण्ड में पाँच

लाख महिलाएँ प्रसव पीड़ा से गुजर रही हैं कारखानों या समान संस्थानों में परिस्थितियाँ। यह भयानक कृत्य है दैनिक बढ़ते मताधिकार आंदोलन के कारणों में से एक। यह सभ्यता ऐसी है कि इसमें केवल धैर्य रखना होता है स्वयं नष्ट हो जायेंगे. मोहम्मद की शिक्षा के अनुसार यह शैतानी सभ्यता मानी जाएगी। हिंदू धर्म इसे कहता है काला युग. मैं आपको इसकी पर्याप्त अवधारणा नहीं दे सकता। यह है
अंग्रेजी राष्ट्र के अस्तित्व को खा रहा है। इसे त्यागना होगा. संसदें वास्तव में गुलामी का प्रतीक हैं। यदि आप पर्याप्त रूप से करेंगे इस पर विचार करें, आप वही राय रखेंगे और ऐसा करना बंद कर देंगे अंग्रेजो को दोष दो वे हमारी सहानुभूति के पात्र हैं। आरंभ से ही भारत की सांस्कृतिक नगरी के रूप में उपलब्धि और विशेष ख्याति प्राप्त वाराणसी जो संयुक्त प्रांत में स्थित है, ना केवल सांस्कृतिक दृष्टि से संपूर्ण भारतीय प्रवेश को नवीन धारा प्रदान की अपितु शताब्दी के आरंभिक दशकों से संपूर्ण राजनीतिक धारा को बदल दिया एक तरफ इलाहाबाद भारतीय राजनीतिक गतिविधियों का जहां उद्गम स्थल था, वही लखनऊ गंगा जमुनी तहजीब हिंदू मुस्लिम एकता एवं भ्रातत्ववाद का अद्भुत केंद्र स्थल था प्राचीन म्रगदाव जहां तथागत भगवान गौतम बुद्ध के द्वारा पांच ब्राह्मणों को दीक्षा प्रदान की गयी उस स्थल की पहचान आज के बनारस के निकट स्थित सारनाथ से की जाती है अस्तु संयुक्त प्रांत अपनी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, एवं धार्मिक उत्कृष्टता को अंग्रेजी हुकूमत मैं भी बरकरार बनाए रखा , ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के द्वारा आगरा एवं अवध नामक दो प्रान्तों को मिलाकर एक प्रान्त का निर्माण किया, जिसे आगरा अवध संयुक्त प्रांत नाम दिया गया अंत में 1935 में इसे केवल संयुक्त प्रांत कर दिया गया भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के तत्पश्चात जनवरी 1950 में संयुक्त प्रांत का नाम में परिवर्तन कर के उत्तर प्रदेश रखा गया 1 अगस्त 2000 को उत्तराखंड राज्य के गठन से संबंधित विधेयक लोकसभा में पारित होने के पूर्व उत्तराखंड भी उत्तर प्रदेश का अभिन्न अंग था। प्राचीन काल से यह पावन भूमि देवभूमि नाम से विख्यात है।अपनी प्राकृतिक मनोरम सौंदर्य छटाओं के कारण इस भूमि को अंग्रेजी शासनकाल में महत्वपूर्ण गौरव प्राप्त था । 10 अगस्त को राज्यसभा में पृथक उत्तराखंड राज्य की स्थापना संबंधी विधेयक को मंजूरी प्रदान की गयी । फल स्वरुप एक नवंबर 2000 से उत्तराखंड क्षेत्र राज्य के रूप में अस्तित्व में आया स्वतंत्रता मानव जीवन का परम उद्देश है इसे पाने अथवा इसकी सुरक्षा मनुष्य प्रतिकार करता है । प्रतिकार तथा प्रतिरोध किसी समाज के साथ किए जा रहे शोषक व्यवहार अन्याय तथा आर्थिक सांस्कृतिक घुसपैठ से स्वभाविक असहमति की अभिव्यक्ति है।विभिन्न समाजों की सहनशीलता में अंतर होता है स्थान समय तथा स्थिति के अनुसार इसका स्वरूप व्यक्ति में समूह तक फैलता है और इसी तरह इसकी उदारता और अकर्मण्यता का मिजाज बदलता रहा है । अस्तु प्राचीन काल से ही संयुक्त प्रान्त का अपना एक विशिष्ट स्थान रहा है अनेक महापुरुषों ऋषि–मुनियों की मातृभूमि एवं तपोभूमि होने का विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान संयुक्त प्रान्त को प्राप्त है ८ समय–समय पर इस प्रदेश के महान आत्माओं एवं वीर पुरुषों ने राष्ट्र का गौरव बढ़ाया है । अंग्रेजी शासन से सामना 1764 बक्सर के युद्ध के उपरांत ही हुआ।1775 ईस्वी में बनारस का समामेलन के बाद संयुक्त प्रांत के अवध क्षेत्र में अंग्रेज अपनी शक्ति संवर्धन और क्षेत्र विस्तार की प्रक्रिया में लिप्त हुए ।1798 ई0 में लार्ड वेलेजली को भारत का गवर्नर जनरल बनाकर भेजा गया ८ इलाहाबाद की संधि के द्वारा प्रथम बार अवध और अंग्रेजी हुकूमत के मध्य संबंधों को स्थापित किया गया ८ तत्पश्चात से अंग्रेजों की शक्ति अवध में विस्तारित होती चली गई ८ अवध के नवाब सादत अली को लार्ड वेलेजली ने

भय द्वारा 10 नवंबर 1803 ई0 में सहायक संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया। इस संधि के द्वारा ब्रिटिश आर्मी का व्यय पूरा करने के लिए बिना किसी वार्षिक शुल्क के स्थान पर अवध राज्य का बहुत बड़ा भाग ब्रिटिश कंपनी को हस्तान्तर कर दिया गया 1803 ई0 में सिंधिया के साथ अंग्रेजों की संधि के पश्चात गंगा एवं यमुना के मध्य का क्षेत्र ब्रिटिश कंपनी को प्राप्त हो गया । उसी समय फर्रुखाबाद एक छोटा सा राज्य था जिसे लार्ड वेलेजली के द्वारा अंग्रेजी शासन के अधीन कर लिया गया। इस प्रकार भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का बहुत बड़े भूभाग पर शासन स्थापित हो चुका था ।1815 ई0 के आंग्ल नेपाल विवाद एवं युद्ध के उपरांत कुमाऊं (टिहरी गढ़वाल को छोड़कर) को अंग्रेजी शासन में सम्मिलित कर लिया गया उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत (आधुनिक उत्तर प्रदेश) का प्रशासन कोलकाता से संचालन होता था लॉर्ड बेंटिक ने भारतीय जनता के कष्टों का अनुमान करते हुए इलाहाबाद में 1832 ई0 में सदर दीवानी न्यायालय एवं सदर निजामत न्यायालय को स्थापित किया । अट्ठारह सौ सत्तावन ई0 का वर्ष आधुनिक भारत के इतिहास में महान विभाजक वर्ष है। भारतीय जनमानस के द्वारा ब्रिटिश सत्ता को पूरी तौर पर समाप्त करने का व्यापक रूप से प्रयास किया गयाइ। यह स्वाधीनता संघर्ष अंग्रेजी सत्ता से उत्पन्न राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक रूप से भारतीय जनमानस के शोषण के उपरांत प्राप्त परिणाम था इस कार्य में डलहौजी का व्यपगत सिद्धांत बहुत कारगर सिद्ध हुआ उसने बहुत से राज्यों को हड़प लिया इस प्रकार अंग्रेजी शोषण दुर्व्यवहार की प्रक्रिया द्वारा भारतीय शासकों में क्रोध उत्पन्न होना महत्वपूर्ण कारक था । भारत के पहले स्वाधीनता संग्राम में संयुक्त प्रांत के आम जनों के द्वारा व्यापक स्तर पर सहयोग प्रदान किया गया संयुक्त प्रांत में मेरठ से प्रज्वलित हुई चिंगारी संपूर्ण संयुक्त प्रांत में फैल गई। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना भारतीयों के अथक परिश्रम का परिणाम थी ৳ इसकी स्थापना 1885 में हुई थी 1885 से अगस्त 1947 में भारत के स्वतंत्र होने के बीच लगभग 60 वर्षों का समय देश के इतिहास में शायद सबसे महत्वपूर्ण बदलाव का समय रहा । अस्तु यह बदलाव कई अर्थों में दुखरूद रूप से अपूर्ण रहा और हमें इसी केंद्रीय अस्पष्टता से सर्वेक्षण आरंभ करना सबसे सुविधाजनक प्रतीत होता है। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की गणना आधुनिक समाज के सबसे महत्वपूर्ण आंदोलनों में की जाती है। विभिन्न विचारधारा और संप्रदाय के लोगों को इस आंदोलन में राजनीतिक रूप से सक्रिय होने के लिए प्रेरित किया और विश्व के सबसे शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य के लिए आत्मसमर्पण करने के लिए बाध्य किया इसलिए जो लोग मौजूदा सामाजिक और राजनीतिक आधार को बदलना चाहते हैं। उनके लिए ब्रिटिश, फ्रांसीसी, रूसी, चीनी, क्यूबाई और वियतनामी क्रांतियो की तरह इसकी भी प्रसंगिकता है कांग्रेस की स्थापना के पूर्व भी भारत के मध्यम वर्गीय शिक्षित, बुद्धिजीवी ,जागरूक लोगों द्वारा समस्त भारतीयों को आपस में जोड़ने के प्रयास से एक राजनैतिक मंच संगठित करने की अकुलाहट इस वर्ग को लगातार जोर दे रही थी परंतु अंग्रेजों के कट्टरवादी शासन एवं दमन चक्र को भोग चुका भारतीय जनमानस इस अकुलाहट को मन में दवाएं था । उनके इस अकुलाहट एवं बेचौनी को बाहर आने का श्रेय ए0 ओ0 हयूम की कविता की निम्नांकित पंक्तियों को जाता है ৳ जिससे सकारात्मक रूप पाकर भारतीय जनमानस की दबी हुई आशाओं एवं को अकुलताओ को पंख प्रदान कर दिए नई चेतना पाकर ए0 ओ0 हयूंम के संरक्षण में दिसम्बर 1885 में कांग्रेस की स्थापना हुई ৳ भारत का स्वाधीनता आंदोलन भारतीय जनमानस और अंग्रेजी उपनिवेशवाद के मध्य आधारभूत अंतर्विरोध हो का परिणाम था। शुरू से ही भारतीय राष्ट्रीय नेताओं ने इसको बहुत

अच्छे से आत्मसात कर लिया था नेताओं में यह समझने की बेहद ही व्यापक क्षमता थी कि भारत अल्प विकास की प्रक्रिया से गुजर रहा है समय रहते उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के वैज्ञानिक विश्लेषण पद्धति का विकास किया औपनिवेशिक प्रजा के रूप में भारतीय जनता का अनुभव लेकर और उपनिवेशवाद के विरुद्ध भारतीय जनमानस के सामान्य हितों को पहचान कर भारतीय राष्ट्रीय नेताओं ने क्रमशः एक स्पष्ट उपनिवेशवाद विरोधी आलोचना की भूमिका तैयार की। राष्ट्रीय आंदोलन को व्यापक जनाधार प्रदान करने वाले चरण में उपनिवेशवाद विरोधी इस विचारधारा और उपनिवेशवाद की कटु आलोचना को प्रचारित किया गया भारत में राष्ट्रीय भावनाओं के विकास का एक प्रमुख परंतु महत्वपूर्ण कारण अंग्रेजी शासकों की जातीय श्रेष्ठता का वह दंभ था जो भारतीय जनता के प्रति अनेक अंग्रेजी शासको में पाया जाता था इसजातीय दंभ का एक कड़वा और प्रचलित रूप तक देखने को मिलता था, जब कोई अंग्रेज किसी भारतीय से किसी विवाद में उलझा होता था और न्याय व्यवस्था अंग्रेजों का पक्ष लेती थी जैसा कि जी0 ओ0 ट्रेवेलियन ने 1864 में लिखा था

"हमारे अपने देश की एक व्यक्ति का बयान भी अदालतों में अनेकों हिंदुओं से अधिक महत्व रखता है यह एक ऐसी परिस्थिति है जिसमें शक्ति का एक भयानक साधन एक बेईमान और चालाक अंग्रेज के हाथों में पहुंच जाता है" जातीय दंभ जाति, धर्म, प्रांत या वर्ग का भेदभाव किए बिना तमाम भारतीयों को एक समान हीन करार देता था। वे यूरोपीय लोगों के क्लबों में नहीं जा सकते थे और अक्सर उन्हें किसी गाड़ी के उस डिब्बे में यात्रा की अनुमति नहीं थी। जिसमें यूरोपीय यात्री यात्रा कर रहे हो इससे भारतीय जनता में राष्ट्रीय अपमान का बोध हुआ तथा अंग्रेजों के मुकाबले में वे अपने आप को एक जन गुण के रूप में देखने लगे। आरंभ के राष्ट्रवादी नेताओं का विश्वास था कि राजनीतिक मुक्ति के लिए सीधे लड़ना अभी व्यवहारिक नहीं था। जो कुछ व्यवहारिक था, वह यह था कि भारतीय जनमानस के अंदर राष्ट्रीय भावनाओं को जगाया जाए तथा मजबूत किया जाए और राजनीतिक तथा राष्ट्रीय आंदोलन के लिए शिक्षित किया जाए इस बारे में पहला महत्वपूर्ण कार्य राजनीतिक प्रश्नों में जनता की रूचि विकसित करना तथा देश में जनमत का संगठन करना था। दूसरे राष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रिय मांगों का निरूपण किया जाना था ताकि उभरते हुए जनमत को एक अखिल भारतीय स्वरूप मिल सके। सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह था कि पहले पहल राजनीतिक चेतना प्राप्त भारतीयों तथा राजनीतिक कार्यकर्ताओं और नेताओं में राष्ट्रीय एकता की भावना को जागृत किया जाए। आरंभिक भारतीय राष्ट्रीय नेताओं को इसका ध्यान था और भी अच्छी तरह समझते थे कि भारत अभी हाल ही में एक राष्ट्र बनने की प्रक्रिया में पहुंचा है दूसरे शब्दों में भारत अभी नवोदित राष्ट्र था ᐟ भारत के राष्ट्रीय स्वरूप को बहुत सावधानी से निखारने की आवश्यकता थी भारतीयों को बहुत होशियारी से एक राष्ट्र के रूप में संगठित किया जाना था । राष्ट्रीय चेतना प्राप्त भारतीयों को क्षेत्र, जाति, धर्म के भेदों से ऊपर उठकर राष्ट्रीय एकता की भावना को विकसित और सशक्त करने के लिए लगातार बैठकर काम करना पड़ रहा था । प्रारंभ में भारतीय राष्ट्रीय नेताओं ने अपनी राजनीतिक तथा आर्थिक मांगो का निर्धारण इस तथ्य को दृ ष्टि में रखकर किया कि भारतीय जनता को एक साझे आर्थिक राजनीतिक कार्यक्रम के आधार पर संगठित करना है। भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना भी महज एक घटना नहीं थी, बल्कि यह भारतीय अर्थव्यवस्था और समाज के उपनिवेशीकरण और धीरे–धीरे उस को दबाए रहने की लंबी प्रक्रिया का परिणाम था। इस शोषण प्रक्रिया ने हर स्तर पर भारतीय समाज में असंतोष और क्षोभ को जन्म दिया, जिसके कारण

अंग्रेजों का लगातार दिन प्रतिदिन भारतीयों के प्रतिरोध का शिकार होना पड़ा जनमानस के इस विरोध को हम मुख्यता नागरिक, किसान एवं आदिवासी विरोध में बांट सकते हैं।

सन्दर्भ

1. जैन डॉ पुखराज भारत में स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास (2004) पेज 66
2. सिंह डॉ रणविजय उदारवादी युग का आन्दोलन एवं जनपद जालोंन की भूमिका पेज .24
3. चन्द्र विपिन आधुनिक भारत का इतिहास पेज 199
4. मिश्रा जया रूभारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन और आनन्द पेज 68
5. डॉ मजुमदार आर. सी. हिस्ट्री ऑफ़ फ्रीडम मूवेमेंट इन इंडिया पेज 356

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

बाँदा जनपद में भू–राजस्व का निर्धारण : ईस्ट–इण्डिया कम्पनी द्वारा किये गये मालगुजारी बन्दोबस्तों का ऐतिहासिक अध्ययन

सूर्यकान्त मिश्रा
असिस्टेंट प्रोफेसर इतिहास विभाग
पंडित जवाहर लाल नेहरू पी0जी0 कालेज, बाँदा
शोध छात्र (पार्ट टाइम) इतिहास विभाग
विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कॉलेज कानपुर
छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय कानपुर
प्रोफेसर पुरुषोत्तम सिंह
शोध पर्यवेक्षक
प्रोफेसर एवं प्राचार्य
महाराज बलवंत सिंह पीजी कॉलेज
गंगापुर वाराणसी

नवाब अली बहादुर ने जब बाँदा में नवाबी की स्थापना की तब बाँदा लौह अयस्क के उत्पादन, प्रथम श्रेणी के सूती वस्त्र निर्माण तथा परम्परागत वर्षो जल कृषि के लिए जाना जाता था।1 अली बहादुर ने स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना की यद्यपि वह पूना दरबार से जुड़ा रहा। अली बहादुर प्रथम ने बाँदा के अतिरिक्त रीवां एवं अजयगढ़ पर भी अपना अधिकार स्थापित किया। अजयगढ़ पर प्रारम्भिक अधिकार में अली बहादुर के मराठा सेनापति यशवन्तराव की मृत्यु हो गयी।2 अली बहादुर ने 19 दिसम्बर 1796 को हिम्मत बहादुर गोसाई की मध्यस्थता में रींवा दरबार से सन्धि कर ली तथा संधि के परिणामस्वरूप लूट–पाट न करने के बदले 12 लाख रु0 वार्षिक कर रींवा के राजा ने देना स्वीकार किया।3 इस प्रकार अली बहादुर को आय का एक बढ़ा स्रोत प्राप्त हुआ। अली बहादुर प्रथम का अन्तिम दो वर्ष का समय कालिंजर किले के घेरे में व्यतीत हुआ तथा उसका अन्त 28 अगस्त 1802 को कालिंजर में हो गया।4 निष्कर्ष रूप में अली बहादुर प्रथम का अधिकांश समय युद्धों में व्यतीत हुआ। अतः वह राजस्व प्रशासन की ओर अधिक ध्यान नहीं दे सका। यही स्थिति कमाबेश गनी बहादुर, शमशेर बहादुर द्वितीय की रही।

बाँदा में नवाबी शासन में भू राजस्व नीतियों का विवरण मूलतः 1803 के पश्चात दिया जा सकता है। 1803 में बेसनी की सन्धि के पश्चात ''बुन्देलखण्ड जिला' का पूर्वी भाग माना गया। इस सन्धि के पश्चात नवाब शमशेर बहादुर द्वितीय ने अपनी सम्प्रभुता खो दी तथा बाँदा में राजस्व प्रशासन ब्रिटिश नियंत्रण में आ गया। 1804 से बाँदा के राजस्व प्रशासन के लिए तीन सदस्यीय ''बोर्ड ऑफ कमिश्नर्स' का गठन किया गया जिसमें मिस्टर ब्रूक ;बनारस में अपील जजद्ध अध्यक्ष, कर्नल मर्टिनडेल ;बुन्देलखण्ड में सेना कमाण्डरद्ध, कैप्टन बैली ;पोलिटिकल एजेन्ट बुन्देलखण्डद्ध शामिल हे। 1804 में 1819 तक यह ;बोर्ड ऑफ कमिश्नर्सद्ध कार्यरत रहा। 1806 में मिस्टर अर्सकिन को बाँदा का प्रभारी बनाया गया तथा 1819 में नव निर्मित बाँदा जिले का पहला कलेक्टर भी बनाया गया। 1822 में राजस्व मामलों का प्रभार 'सेन्ट्रल बोर्ड ऑफ कमिश्नर्स'' के अधीन कर दिया गया जिसका मुख्यालय इलाहाबाद में था।5

भू राजस्व उपक्षेत्र :—

बाँदा भू—राजस्व क्षेत्र में कुल नौ तहसीले भू—राजस्व उपक्षेत्र के रूप में स्थापित की गयी जिसमें सर्वाधिक प्रमुख बाँदा तहसील थी, जिसे नवाबी शासन में 'हुजूर तहसील' के नाम से जाना जाता था। हुजूर तहसील के अतिरिक्त पैलानी, सिमौनी, औगासी, दरसैड़ा, छिबूं, तरौंहा, बदौसा, सिहुँड़ा को तहसील का दर्जा दिया गया। प्रारम्भिक रूप से हुजूर तहसील में बाँदा नगर की 20 मील सीमा में आने वाले गाँव शामिल थे। हुजूर तहसील में मटौंध परगने के कुछ गाँव शामिल थे। 1818 में 43 गाँवों का खण्डेह का इक्ता नाना गोविन्द राव द्वारा अधिकृत कर लिया गया। नाना गोविन्द राव जालौन के वली ;शासकद्ध थे, जिन्होंने कर्वी के मराठों को दबाकर खण्डेह प्राप्त किया था। 1826 में मिस्टर फेन, कलेक्टर बाँदा की सिफारिश पर खण्डेह के क्षेत्र को विभाजित करते हुए इसके गाँवों को सिमौनी तथा सिहुँडा तहसील में मिला दिया गया था। ब्रिटिश शासन के प्रारम्भिक दिनों में कालिंजर का परगना एक स्वतन्त्र इकाई की तरह था तथा पूर्व में कोल्हुआ माफी से अलग होता था।6 1819 में कालिंजर परगना को बदौसा तहसील में मिला दिया गया था। 1833 के रेगुलेशन 10 के अनुसार बाँदा के नवाब को सिहुँडा तहसील में कुछ अधिकार प्रदान किये गये। इस प्रकार तहसीलों के राजस्व क्षेत्र में कुछ न कुछ परिवर्तन किये जाते रहे। उदाहरण के लिए 1840 में ओरन तथा अन्य तीन गाँवों को औगासी से हटाकर बदौसा तहसील में शामिल कर दिया गया। इसी प्रकार चौसर तथा अन्य तीन गाँवों को सिहुँड़ा में मिला दिया गया। इस प्रकार 1833 तक कर्वी सब डिवीजन में परसौता, कोनी, लखनपुर, दरसैड़ा, छिबूँ, पूरबवार, बरगढ़, कल्पालगढ़, तरौंहा, भौरी तथा ऐंचवारा को शामिल किया जा चुका था। कमासिन का सिंहपुर गाँव पहले औगासी तहसील में था जिसे कमासिन में शामिल कर दिया गया। कर्वी को बाद में तहसील का दर्जा दिया गया तथा इसमें पठारी क्षेत्र ''ददरी का पाठा'' शामिल कर दिया गया। सिमौनी तहसील का मुख्यालय तिन्दवारी में बना। तिन्दवारी 1858 के बाँदा तहसील के अन्तर्गत आ गया।7 इस प्रकार अन्ततः आठ तहसीलें बची। ये आठ तहसीलें बाँदा, पैलानी, बबेरू (पुराना मुख्यालय औगासी), गिरवाँ (पुराना मुख्यालय सिंहुड़ा), बदौसा, कमासिन (पुराना मुख्यालय दरसैड़ा), मऊ (पुराना मुख्यालय छिबूँ), कर्वी (पुराना मुख्यालय तरौंहा) थीं।8

बाँदा जनपद का भू—राजस्व इतिहास कैप्टन जान वेली के पोलिटिकल एजेन्ट बुन्देलखण्ड बनने से प्रारम्भ होता है। लखनऊ का मिर्जा जफर बन्दोबस्त के कार्य में 1804 से ही उसका सहायक बना। बेली ने मिर्जा जफर की सहायता से बाँदा तहसील के दक्षिणी हिस्सों, परगना औगासी सिहुँड़ा के उत्तरी भाग, बदौसा, परसौता तथा कोनी

गाँवों का सर्वप्रथम बन्दोबस्त किया यह बन्दोबस्त नवाबी शासन की जामा प(ति से मिलता–जुलता था। हिम्मत बहादुर गुसाई की मृत्यु के बाद कालिंजर परगना ब्रिटिश नियंत्रण में आ गया तथा 1805–06 में कैप्टन बेली ने कालिंजर का भू–राजस्व प्रशासन नियंत्रित कर लिया अर्सकिन ने कलेक्टर की हैसियत से 1805 में अपना प्रथम क्षेत्रीय मूल्यांकन किया तथा 1806 में जायदाद परिक्षेत्र भी समपूर्ण जनपदीय भूराजस्व प्रणाली में शामिल कर लिये गये। अन्ततः अर्सकिन ने 1808–09 में सम्पूर्ण बाँदा भू–राजस्व इकाई का मूल्यांकन 1353723 रु0 निर्धारित किया। अंग्रेजों की दृष्टि में यह मूल्यांकन उदारता पूर्वक किया गया था क्योंकि भूराजस्व इकाई में परेशानियां अधिक थी।9

वाउचॉप का बन्दोबस्त :–

1808 में वाउचॉप अर्सकिन का उत्तराधिकारी बना। बाउचॉप ने बाँदा भूराजस्व इकाई का तीसरा नियमित बन्दोबस्त किया। 1805 के दसवें रेगुलेशन के सेक्शन चार के अनुसार वाउचॉप ने बन्दोबस्त किया। वाउचॉप को इस कार्य में अत्यन्त कठिनाई का सामना करना पड़ा क्योंकि पटवारियों के कागजात स्टैनडर्ड बीघा माप के अभाव में अत्यधिक भ्रामक थे। अतः वास्तविक 'जामा' ;भूराजस्वद्ध का निर्धारण कठिन था तथा भूराजस्व वसूली में होने वाले वास्तविक खर्च का निर्धारण भी कठिन था। वाउचॉप ने भूराजस्व दर को मालिकाना क्षेत्रों में लगभग 10{ निर्धारित किया 'जामा' का भुगतान लखनऊ रुपये में निर्धारित किया गया जबकि इसके पूर्व व्यवहार रूप में नवाबों के सिक्के गौहरशाही में जमा होता था तथा कहीं–कहीं श्री नगरी ;हमीरपुर जनपद की बुन्देला टकसालद्ध सिक्के में भी जमा होता था। विभिन्न उर्वरता की भूमि का आंशिक निर्धारण करने के पश्चात भूराजस्व दर में भारी वृद्धि करते हुए इसे 27% निर्धारित किया गया तथा बाँदा भू–राजस्व इकाई का कुल राजस्व 1534776 रु0 निर्धारित किया गया।10 इस निर्धारण में बाँदा के दक्षिण परगनें भी शामिल किये गये जिनमें हिम्मत बहादुर के पुराने परगने भी शामिल थे। उल्लेखनीय है कि हिम्मत बहादुर के उत्तराधिकारी बाँदा नगर में ही निवास करते थे।11 कालिंजर परगना का जामा निर्धारण मोटे तौर पर हुआ जिसे वहाँ के पोलिटिकल एजेन्ट रिचर्डसन ने निर्धारित किया।

स्कॉट वेरिंग का बन्दोबस्त :–

बाँदा जनपद का चौथा नियमित बन्दोबस्त 1815 तथा उसके बाद के वर्षो में स्कॉट वेरिंग द्वारा किया गया। स्कॉट वेरिंग के प्रशासनिक कार्यालय में वर्षा जल की अधिकता के कारण उत्पादन में वृद्धि हुयी। वेरिंग द्वारा अनुमान को चार स्रोतों पर आधारित बनाया गया। इनमें पहला तहसील आंकड़ों से सम्बन्धित था जो कि भूमि की उर्वरता के आधार पर रेन्ट रोल से अनुप्रमाणित था। यही सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत था। वेरिंग ने अपने अनुमान को 'हर नौ ए तजवीज' का नाम दिया। वेरिंग के बन्दोबस्त में पिछले बन्दोबस्त की तुलना में लगभग 26% की वृद्धि की तथा 1952955 रु0 कुल भू राजस्व निर्धारित किया। सर्वाधिक उपजाऊ वाले क्षेत्रों के परगना बाँदा, पैलानी, औगासी, कमासिन का भूराजस्व सर्वाधिक निर्धारित किया गया। वेरिंग ने सम्पत्ति हस्तान्तरण को आसान बनाया। प्रति वर्ष की दर से वेरिंग ने भू–राजस्व में कुछ न कुछ वृद्धि की। 1817 में खण्डेह परगना की कुल भूराजस्व 133490 रु0 निर्धारित किया गया। वेरिंग ने भूमि नीलामी की प्रथा भी शुरु की।

कैम्पबेल तथा रीड का बन्दोबस्त :–

1820 तक जनपद के जमीन मालिकों ने 1818 के दसवे रेग्युलेशन के नियमों का फायदा उठाकर पुरानी दरों से कर देना जारी रखा। अतः कैम्पबेल तथा रीड के अधीन पांचवा नियमित बन्दोबस्त अनुमान निकाला गया। परन्तु कैम्पबेल तथा रीड के निर्धारण ने कुल भूराजस्व में 87138 रु0 की कमी व पिछले बन्दोबस्त की तुलना में कर दी गयी। जनपद के भू–राजस्व इतिहास में यह एक नयी बात थी क्योंकि इस बन्दोबस्त के निर्धारण में यह स्वीकार किया गया कि पिछले बन्दोबस्त में कुछ जमीनों का मूल्यांकन वास्तविकता से अधिक (Over Assessment) किया गया था।12

विलकिन्सन, फेन तथा बेग्बी का बन्दोबस्त :–

1825 में छठा नियमित बन्दोबस्त तीन अधिकारियों विलकिन्सन, फेन तथा बेग्बी द्वारा किया गया। विलकिन्सन ने कर्वी सब डिवीजन का निर्धारण किया। बकि फेन ने हुजूर तहसील का भूराजस्व निर्धारित किया। बेग्बी ने पैलानी तथा औगासी पर निर्धारण कार्य किया इन तीनों ने जनपद का कुल राजस्व 1878999 रूपये निर्धारित किया तथा पुनः पिछले बन्दोबस्त की तुलना में 6% की गिरावट दर्ज हुयी बेग्बी ने 1827 से फेन के बाद बाँदा के कलेक्टर की हैसियत से कार्य किया।

बेग्बी का बन्दोबस्त :–

कलेक्टर बेग्बी ने 'बोर्ड ऑफ रेवेन्यू' से मार्च 1830 में कुछ गाँवों को सीधे नियंत्रण में लेने का अनुरोध किया गया। बोर्ड से अनुमति मिलने के पश्चात पाँच पश्चिमी परगनों बाँदा, सिहुँड़ा, सिमौनी, पैलानी, औगासी के 420 गाँवों को तथा कर्वी सब डिवीजन के दरसैड़ा क्षेत्र को सीधे नियंत्रण में ले लिया गया।13 1834 में बेग्बी ने बाँदा जनपद का कुल भू–राजस्व माँग 1552399 रुपये निर्धारित तथा पुनः पिछले निर्धारण की तुलना में कमी की। यह निर्धारण 15 वर्षो के लिए सीधे नियंत्रण पर लिये गये गाँवों पर लागू किया गया जबकि अन्य क्षेत्रों के लिए 'जमा' का निर्धारण 1842 तक के लिए किया गया।

1842 का बन्दोबस्त :–

1842 में पहलीबार वैज्ञानिकता पूर्ण तरीके से बाँदा जनपद में 'जामा' का निर्धारण किया। यह निर्धारण खसरा के आंकड़ों पर आधारित थे। बन्दोबस्त निधारण के लिए सर्वे का कार्य 1836 से प्रारम्भ किया गया तथा यह डिप्टी कलेक्टर राइट द्वारा सम्पादित किया गया। 'बोर्ड ऑफ रेवेन्यू' के आर0एम0 बर्ड के द्वारा पूरे बुन्देलखण्ड में एक समान भू राजस्व निर्धारण के लिए प्रयास किये गये तथा इस कार्य में राइट ने सहयोग प्रदान किया। 1842 में जनपद का कुल भू राजस्व 169264 रुपये निर्धारित किया गया। इस तरह 1842 के निर्धारण में भी पूर्ववर्ती निर्धारण की तुलना में कमी आई। 1842 के पश्चात रोज और एगवर्थ ने 1848 में तथा 1855–56 में बाँदा के कलेक्टर मेन द्वारा भू–राजस्व के निर्धारण किये गये। 1857 के विद्रोह के कारण अधिकांश सरकारी कागजात नष्ट हो गये तथा 1858 में दुबारा कलेक्टर बने मेन ने पुनः भू–राजस्व निर्धारण का कार्य किया तथा अन्ततः कैडेल के सेटेलमेन्ट ने 1874 में भूराजस्व को अन्तिम रूप से निर्धारित किया। 1842 के निर्धारण में खसरा बनाने का कार्य जमाबन्दी परचे के आधार पर किया गया तथा मार, काबर, पडुवा मिट्टी के लिय अलग–अलग निर्धारित किया गया। राकर मिट्टी में निर्धारण अत्यन्त सस्ती दरों पर किया गया।14

भू–राजस्व का निर्धारण भी बाँदा जनपद में 1857 के जनविद्रोह की वजह बना क्योंकि मालगुजारी बन्दोबस्तों का मुख्य उद्देश्य ईस्ट–इण्डिया कम्पनी के खजाने को भरना था। अतः अंग्रेज अधिकारियों में मालगुजारी बढ़ाने तथा अधिकाधिक वसूल करने

की होड़ लगी गयी। अधिक इतिहासकार आर0सी0 दत्त का मानना है कि ब्रिटिश पारलियामेन्ट के द्वारा 1813 एवं 1833 ई0 के चार्टर एक्ट से ईस्ट इण्डिया कम्पनी से व्यापारिक एकाधिकार छीन लिये गये थे। अतः कम्पनी के अधिकारियों में यह प्रवृत्ति पनपी। मालगुजारी में वृद्धि, रैयत एवं जमीदारों पर दबाव डालकर की गयी थी। रैयत के शोषण ने 1857 की क्रान्ति में एक महत्वपूर्ण योगदान किया। बाँदा में कृषि की बिगड़ती हुयी स्थिति तथा उजड़ते हुए उद्योग–धन्धों ने 1857 की घटनाओं को तीव्र बनाया।

सन्दर्भ

1. पॉग्सन, डब्ल्यू0आर0, ''ए हिस्ट्री ऑफ बुन्देलाज'', प्रथम प्रकाशित वैप्टस्ट मिशन प्रेस, कलकत्ता, 1828, पुर्नमुद्रित बी0आर0 पब्लिशिंग कारपोरेशन, दिल्ली, 1974, पेज–132
2. तिवारी, गोरेलाल, ''बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास'', काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1934, पेज–276
3. वही, पेज–276–77 तथा पारसनीस, दत्तात्रेय बलवन्त, ''झाँसी की रानी'', साहित्य भवन लिमिटेड प्रयाग, सम्वत् 1997, पेज–214
4. पॉग्सन, डब्ल्यू0आर0, पूर्वोधृत, पेज–122, तिवारी गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–278
   टिप्पणी –मुगल बादशाह शाह आलम ने अली बहादुर प्रथम की कब्र को दिल्ली के कुतुब क्षेत्र के शाही कब्रिस्तान में स्थान प्रदान किया।
5. ब्रोकमैन, डी0एल0 ड्रेक, ''डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स ऑफ यूनाइटेड पोविन्सेज ऑफ आगरा एण्ड अवध–बाँदा ए गजेटियर', इलाहाबाद, 1909, पेज–124
6. वही, पेज–126, 127
7. कैडेल, ए0, ''सैटलमेंट रिपोर्ट आफ बाँदा डिस्ट्रिक्ट'', नार्थ वेस्ट फ्रटियर ऐंड अवध गवर्नमेंट प्रेस इलाहाबाद, 1881, पेज–85
8. ब्रोकमैन, डी0एल0 ड्रैक, पूर्वोधृत, पेज–126
9. वही, पेज – 127
10. वही, पेज–127, 128
11. पॉग्सन, डब्ल्यू0 आर0, पूर्वोधृत, पेज–131
12. ब्रोकमैन, डी0एल0 ड्रेक, पूर्वोधृत, पेज–129
13. वही, पेज–129, 130
14. कैडल, ए0 पूर्वोधृत, पेज–87, 88

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

रामविलास शर्मा की दृष्टि में रू लोकजागरण एवं प्रेमचन्द

प्रो. मंजु मिश्रा
प्रोफेसर हिंदी विभाग
महाराज बलवंत सिंह पीजी कॉलेज
गंगापुर वाराणसी

वास्तव में साहित्य के उच्चादर्शों में एक आदर्श लोक–मूल्यों की पहचान, उसकी आस्था का संरक्षण और उसका जागरण करना है। लोक ' और 'जागरण' वस्तुतः किसी समाज के प्रमुख तत्त्व हैं। लोक हमारी आधारशिला और जागरण हमारी आत्मा का प्रतीक है। लोक जागरण हमें अपने जीवन के विविध क्रिया–कलापों को निष्पादित करने के लिए उचित – अनुचित का दीपक भी है। इसी तरह साहित्य ज्ञानात्मक, संवेदनात्मक, भावनात्मक एवं विचारात्मक जागरण है। अतः साहित्य का मूल कार्य जन–जागरण ही है। वह लोकमूल्यों का संरक्षक, सर्जक और चेता है। प्रेमचन्द युगद्रष्टा, युगनिर्माता एवं भविष्यद्रष्टा थे। वे उस लोक को जगाना चाहते थे जो रूढ़ियों, परम्पराओं, धार्मिक पाखण्डों एवं सामाजिक आडम्बरों में कैद था। डॉ. शर्मा प्रेमचन्द की जनवादी विचारों से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने लिखा है ″प्रेमचन्द हिन्दुस्तान की नयी राष्ट्रीय और जनवादी चेतना के प्रतिनिधि साहित्यकार थे। .... करोड़ों मनुष्यों का संहार करने वाले दो महायुद्धों के बीच प्रेमचन्द की वाणी अपने भविष्य में अटल विश्वास रखने वाली भारतीय जनता की वाणी है।″[1]

मुंशी प्रेमचन्द के साहित्य में लोकजागरण के विविध प्रेरक प्रसंग सहज ही परिलक्षित होते हैं जो अन्तस् को झकझोर देते हैं। प्रेमचन्द, डॉ. शर्मा के प्रिय लेखकों में से हैं। इससे डॉ. रामचन्द्र तिवारी भी सहमत हैं। उन्हें जीवन के विविध क्षेत्रों का विस्तृत ज्ञान था और वे समस्याओं को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करते थे। वे महाजनी सभ्यता के विरोधी थे। वे जनता को लूटने वाली उन सभी ताकतों को पहचानते थे जो धर्म और देश सेवा का मुखौटा लगाकर जनता को चूसती रहती हैं।[2]वस्तुतः वे युग प्रवर्तक थे। प्रेमचन्द का हृदय राष्ट्रवाद से ऊपर था। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि इंसाफ और नयी

जिन्दगी के लिए आम जनता जो लड़ाई लड़ रही है, हिन्दुस्तान का स्वाधीनता आंदोलन उसी का एक भाग है। वे उन लोगों में एक भ्रातृत्व भाव देख रहे थे।

प्रेमचन्द एक स्वस्थ समाज की संरचना करना चाहते थे। वे समस्त सामाजिक बुराइयों को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए सतत प्रयासरत रहे। तत्कालीन समाज की मुख्य समस्या नारी की पराधीनता, बाल विवाह, दहेज की कुप्रथा, वेश्यावृत्ति, धर्म के नाम पर ढोंग, शिक्षा की समस्या, जाति–पाँति, छूआ–छूत, जमींदारी प्रथा, कृषकों का शोषण आदि थीं। तयुगीन समस्याओं के निर्मूलन हेतु उन्होंने साहित्य के माध्यम से लोक जागरण का अद्भुत प्रयास किया है। प्रेमचन्द की महत्ता इस बात में है कि उन्होंने मध्य और निम्न वर्ग की यातना को मुखरित किया, इसलिए भी है कि उनकी लेखनी युग की प्रतिक्रियात्मक शक्तियों एवं प्रवृत्तियों के विरोध में गतिशील हुई। रामायण के पात्र देवोपम हैं, परन्तु प्रेमचन्द के पात्र – जालपा, जोहरा, देवीदीन, मनोरमा, सुखदा, प्रेमा, निर्मला, होरी, धनिया, झुनिया, मेहता आदि इंसानियत के अधिक नजदीक हैं, वे हर क्षेत्र में ऐसा ही आचरण करते हैं जैसे रक्त–मांस के बने मनुष्य करते हैं। प्रेमचन्द के पात्र प्रलोभनों को पैरों तले रौंदते व कठिनाइयों को धकियाते हुए निकल जाते हैं और आत्मसंयम एवं सेवा के द्वारा अपना जीवन कृतार्थ करते हैं। डॉ. शर्मा का मत है "प्रेमचन्द का जीवन–दर्शन इसी संसार में जूझने वाले मनुष्यों के सुख–दुख, आशा–निराशा, विजय–पराजय का चित्रण करने में प्रकट होता है। वह पाठक को यह नहीं सिखाते कि यह संसार झूठा है, इसमें रहने वाले मनुष्य झूठे हैं, उनका संघर्ष झूठा है। वह दिखलाते हैं कि मनुष्य जिन परिस्थितियों में पैदा हुआ है उनसे प्रभावित होते हुए भी उन्हें बदलने की कोशिश करता है।[3]

तत्कालीन सामाजिक समस्याओं में 'नारी की पराधीनता' शीर्ष पर थी। प्रेमचन्द ने किस तरह तमाम पुरानी सांस्कृतिक परम्पराओं को तोड़ते हुए वर्तमान समाज में नारी की । पराधीनता को अपने निठुर और बीभत्स रूप में चित्रित किया है. इस पर सहसा विश्वास नहीं होता।[4] बीसवीं सदी के भारतीय समाज में धीरे–धीरे एक परिवर्तन हो रहा था। साम्राज्यवादी सामती जुए के नीचे जनता कसमसाने लगी थी और समाज का सबसे दलित अंग नारी–राष्ट्रीय पराधीनता और घरेलू दासता, दोनों से पिसती हुई नारी–स्वाधीनता के लिए हाथ फैलाने लगी. थी। प्रेमचन्द ने सबसे पहले इस परिवर्तन को देखा था, उसका स्वागत किया था. उसे बढ़ावा दिया था।[5]जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत है–

सुमन का चरित्र सम्पूर्ण भारतीय नारी के मनोबल को बढ़ाता है। पति जब घर से बाहर निकालने की धमकी देता है तब 'सुमन' न पैरों पड़ती है न गिड़गिड़ाती है। उसके स्वर में भारतीय नव जागृत नारीत्व प्रतिउत्तर देता है। "हाँ यों कहो कि तुझे रखना नहीं चाहता। मेरे सिर पर पाप क्यों लगाते हो? क्या तुम्हीं मेरे अन्नदाता हो? जहाँ मजूरी करूँगी, वहीं पेट पाल लूँगी।"[6]प्रेमचन्द सुमन के माध्यम से समस्त नारी हृदय में क्रान्ति का बीज बपन किये हैं जो आज वैश्विक नारी जागरण का माध्यम बना है। "हिन्दी कथा साहित्य की वह पतली नारी है जो आत्म सम्मान की रक्षा के लिए संघर्ष की डगर पर पांव उठाती हैं| .... वह एक लड़ने मरने वाली स्वावलंबी नारी है जो अपने ही नहीं दूसरों के प्रति भी अन्याय सहन नहीं कर सकती| .... प्रेमचन्द नारी .को मनुष्य का दर्जा देने के लिए लड़ रहे थे बत्तीस करोड़ में सोलह करोड़ को जानवर के बदले इंसान समझने के लिए।"[7] धन्य हैं प्रेमचन्द और अद्भुत है डॉ. शर्मा की पैनी

दृष्टि जो दुनिया की आधी आबादी के लिए लड़ने वाले कथा–साहित्य सम्राट मुंशी प्रेमचन्द के साहित्य की नीर–क्षीर विवेकी दृष्टि से समीक्षा करते नहीं अघाते। डॉ. शर्मा एवं प्रेमचन्द दोनों भारतीय संस्कृति के पोषक हैं। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' को चित्त में रखकर वे 'नारीमुक्ति' का सदैव प्रयास करते रहे जिसका परिणाम हम सभी देख रहे हैं।

प्रेमचन्द के नारी पात्रों में जालपा एक नये ढंग की स्त्री है। वह परिस्थितियों से जूझती है लेकिन कभी धैर्य नहीं खोती। भारतीय नारी की यह अप्रतिम विशेषता भी है। इसीलिए तो डॉ. शर्मा जालपा के व्यक्तित्व में 21वीं सदी की नारी की झलक देखते हैं– "जालपा भारत का उगता हुआ नारीत्व है। वह भविष्य के तूफानों की अग्रसूचना है........ वह एक नयी आग है, जो झूठी संस्कृति के कागज़ी फूलों को भस्म कर देती है।. वह हिन्दुस्तान के नये । आने वाले इतिहास की भूमिका है– वह इतिहास, जिमसें लाखों जालपा एक साथ आगे बढ़ेंगी और ऐसे नारीत्व का चित्र आँकेंगी जिसके सामने अतीत के सभी चित्र फीके लगेंगे

प्रेमचन्द ने धर्म के नाम पर प्रचलित रूढ़ि रीतियों, रस्म–रिवाजों तथा प्रथा परम्पराओं पर अपने उपन्यासों में कटु प्रहार किये हैं, धर्म के नाम पर उस समय जो पाखण्ड फैल रहा था. उसका संक्षिप्त चित्र प्रेमचन्द ने महन्त रामदास के कृत्यों द्वारा अंकित किया है। महन्त की धर्म–भक्ति द्रष्टव्य है – "इस साल महन्त जी तीर्थयात्रा करने गये थे। वहाँ से आकर उन्होंने एक बड़ा यज्ञ किया था। एक महीने तक हवन कुण्ड जलता रहा, महीनों तक कड़ाह न उतरे, पूरे दस हजार महात्माओं का निमंत्रण था।"[9] सच तो यह है कि यह दान–पुण्य महंत जी ने अपनी जेब से नहीं, असमियों से हल पीछे पाँच रुपया चन्दा उगाहकर किया था। एक बूढ़ा दरिद्र अहीर जिसका नाम चेतू था, गरीबी की वजह से मजबूर होकर चन्दा देने से इनकार कर गया। फिर क्या था ! महन्त पोषित मुस्टण्डे साधु ने उसे लात–घूसों से इतना मारा कि उसने दम ही तोड़ दिया। उपर्युक्त पंक्तियाँ धर्म के ढोंगियों और पाखंडियों का पर्दाफाश करती हैं। कबीर के बाद धर्म के ढोंग, पाखण्ड पर इतना कटु प्रहार करने वाला प्रेमचन्द के सिवाय शायद अन्य कोई नहीं हुआ। डॉ. शर्मा ने लिखा है "प्रेमचन्द ने नकली आदर्शों की रामनामी खींचकर पण्डितों और मौलवियों, समाज के 'प्रतिष्ठित' सज्जनों और धनपतियों का वास्तविक रूप जनता के सामने प्रकट कर दिया। कबीर के बाद किसी ने इतनी सच्चाई से, ऐसे मर्मवेधी व्यंग्य से हिन्दू धर्म और इस्लाम दोनों धर्मों के ढोंगियों और पाखण्डियों का पर्दाफाश न किया था।[10] जाति–पाँति और छूआ–छूत की भावना मानवता को कुंठित कर देती है। प्रेमचन्द इस कुप्रथा को जड़मूल से नष्ट करना चाहते थे। 'कर्मभूमि' में अमरकांत कहता है "मैं जात–पांत नहीं मानता, माता जी, जो सच्चा है, वह चमार भी हो तो आदर–योग्य है, जो दगाबाज, झूठा, लम्पट हो, वह ब्राह्मण भी हो तो आदर–योग्य नहीं।[11] उत्तर आधुनिकता के बढ़ते कदम में पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुरण करने के कारण बदलते परिवेश को देखकर आज हम पेशोपेश में पड़े हुए हैं कि हमारी संस्कृति की रक्षा कैसे हो ? भविष्य द्रष्टा प्रेमचन्द ने हमें पहले ही सचेत किया था," संगीत में, साहित्य में शिल्प में, कला में, इतिहास में, तात्पर्य यह है कि हर बात में विदेशियों का अन्ध अनुकरण, जैसे हममें और हमारे पूर्व–पुरुषों में कुछ भी मौलिकता रही ही न हो। हम नहीं कहते कि यूरोप वालों से कुछ मत सीखों। नहीं, वे आज संसार के स्वामी हैं और उनमें बहुत से दिव्य गुण हैं। उनके गुणों को लेलो, दुर्गुणों को छोड़ दो।[12]

यही योग्य वृत्ति है; विवेक के साथ दूसरी जातियों के सद्‌गुणों को लेकर अपनी संस्कृति को हमें सत्त समृद्ध करते रहना है। हमारे तप–त्याग और सादगी की संस्कृति का विशिष्ट लक्षण आवश्यकताओं को मर्यादित रखना है। पाश्चात्य संस्कृति–सभ्यता की हवा आने के लिए हमें अपने द्वार चारों ओर से खुले रखने हैं, परन्तु ऐसा न हो कि हवा के झोकों से हम अपनी संस्कृति के मूल से ही हाथ धो बैठें। प्रेमचन्द ने अत्यंत स्पष्ट रूप से यह दर्शाया है कि । विलासिता पश्चिम का आदर्श है और त्याग तथा सेवा भारतीय संस्कृति का आदर्श है। भारतीय संस्कृति में सदाचार, सेवा परायणता, त्याग और सहिष्णुता का प्राधान्य है जिन्हें अपनाकर ही कोई समाज, राष्ट्र समुन्नत हो सकता है। गाय जैसे घास का दूध बनाकर देती है, वह सबके लिए पेय जो जाता है, उसी प्रकार 'प्रेमचन्द' के साहित्य में जीवन को सुंदर, सफल एवं चरितार्थ बनाने की बड़ी से बड़ी बाते हैं जो हम सभी के लिए उपयोगी एवं ग्राह्य हैं। प्रेमचन्द जी मन बहलाने के लिए ही साहित्य की रचना नहीं किये हैं अपितु अपने विस्तृत ज्ञानदृअनुभव तथा गंभीर चिंतन–मनन के आधार पर विभिन्न सामाजिक समस्याओं को उठाते हुए लोक जागरण का आधार बना देते हैं। उनके दिल में समाज–सुधार के लिए सच्चा दर्द था, बेचौनी थी। इसी दर्द एवं सहानुभूति के कारण ही उनके उपन्यासों में पाठकों के दिलों को स्पंदित करने की असीम शक्ति है। सारतः हम कह सकते हैं कि नारी मात्र की पराधीनता पर उन्होंने 'सेवा सदन' लिखा और 'वेश्यावृत्ति के सामंती आधार का भी पर्दाफाश किया। 'प्रेमाश्रम' में कृषकों पर अंग्रेजी राज्य के अत्याचार को सामने रखकर 'रंगभूमि' में यह स्पष्ट किया कि भारतीय जनता 'एकला चलोटे' का पाठ पढ़ी हुई है। वह थकने वाली नहीं वरन् संघर्ष करते हुए विजय का मुकुट धारण करेगी। 'गोदान' में शिक्षित नौनिहालों और कृषकों की एकजुटता की ओर संकेत करते हुए 'होरी' के माध्यम से कृषक की करूण कथा कहते हुए द्य महाजनी शोषण को भी खूब उछाला है। होरी जायदाद को जीवन का आधार समझता है। वह अपनी ही नहीं राय साहब की 'जैजात' के बारे में दलीलें पेश कर सकता है। फिर भी उसकी सारी जायदाद छीन ली जाती है और वह कंकड़ खोदते हुए जान दे देता है। जिस दिन वह लू लगने से मरने को होता है, उस दिन उसकी मानसिक दशा यह थी "जीवन के सारे संकट, सारी निराशाएँ मानों उसके चरणों में लोट रही थीं। कौन कहता है, जीवन–संग्राम में वह हारा है। यह उल्लास, यह गर्व, यह पुलक क्या हार के लक्षण हैं? इन्हीं हारों में उसकी विजय है । उसके टूटे–फूटे अस्त्र उसकी विजय पताकाएँ हैं।" होरी का चरित्र भारत के अजेय किसान का चरित्र है। 'गोदान' उसके भगीरथ परिश्रम की गाथा।[13] 'कर्मभूमि' में अछूत कृषकों–मजदूरों की भूमि – समस्या पर सूक्ष्म दृष्टि डाली और उसमें लगानबंदी की लड़ायी को मुख्य मुद्दा बनाया । उपन्यास सम्राट को देश के सांस्कृतिक विकास में अंग्रेजी भाषा बाधक लगती थी। इसलिए इन्होंने देश की जनता में भाषा के प्रति स्वाभिमान जागृत करने का प्रयास किया। प्रेमचन्द का साहित्य लोक जागरण एवं राष्ट्रीय उत्थान का साहित्य है; वह देश की नवजागृत मानवता और उसके आत्म–सम्मान – स्वाभिमान का साहित्य है। मूलतः वे भारतीय संस्कृति के पोषक एवं 'उपासक थे।

जिन समस्याओं को प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में स्थान दिया है, मानाकि वे समस्याएँ आज भी कुछ हद तक विद्यमान हैं, परन्तु उनके विषैले दाँत लगभग टूट चुके हैं। झूठे बन्धन वैर और कटुता उत्पन्न करते हैं। सामाजिक विषमता आर्थिक विषमता से कम जहरीली नहीं है। ये दोनों विषमताएँ भगवान की नहीं मुख्य रूप से समाज की ही उपज हैं। अतः जन–जागृति उत्पन्न करने तथा आवश्यक हो तो कानून की सहायता से

भी इन विषमताओं को यथा सम्भव द्य दूर करना समाज का परमधर्म है। उन्हें लोक–हृदय की सच्ची पहचान है। यही कारण है कि उनका साहित्य सामाजिक क्रांति के स्वर से परिपूर्ण है और काल निरपेक्ष भी उन्हें पूर्ण विश्वास – है कि लोक जागरण से ही भय आतंक और अंधविश्वासों का खात्मा हो सकता है, क्योंकि लोक की आस्था और विश्वास ही हैं जो किसी समाज को सार्थकता प्रदान करते हैं। जीवन के सभी मूल्य लोक ही हमें प्रदान करता है; किसी भी समाज में लोक का स्थान उस समाज को उच्चता प्रदान करता है, क्योंकि लोक का जीवन, मानव–सभ्यता और संस्कृति रूपी गंगा को सदा पवित्रता प्रदान करता रहा है। किसी संकटपूर्ण समय में लोक ने ही क्रांति करके हमें सदा ही उससे उबार लिया है। लोक की आस्मिता और लोक का आस्तित्व ही हमें उस समाज का निर्माण करने में सहायक होता है, जो कि आर्दश समाज है। 'परहित सरिस धरम नहि भाई' का विचार लोक का ही है, अर्थात लोक सच्चा है, उसके हृदय में छल–छद्म नहीं है, उसका जीवन प्राकृतिक है, वह प्रकृति की तरह ही सबको प्यार करता है, और सूर्य की तरह सबको अपना प्रकाश देता है अर्थात् लोक ही मानवीय संवेदना और जीवन गति का मुख्य परिचालक है लोक है तो जीवन में रस है, जीवन है। प्रेमचन्द लोक– मसीहा थे। लोक को जागृत करने की कालजयी दृष्टि उन्हें सर्वदा प्रासंगिक रखेगी। डॉ. शर्मा भी इससे सहमत हैं "प्रेमचन्द की आवाज सुनकर हमें अपने देश और जनता पर गर्व होता है, जिसे प्रेमचन्द संवार रहे थे। प्रेमचन्द जी की आवाज उस समय उठी थी जब पहले महायुद्ध में मानवध्वंसी तोपों की गड़गड़ाहट हवा में गूँज । रही थी। आज भी जब विश्व पर तीसरे महायुद्ध के बादल छाये हुए हैं, उस स्वाधीनता संग्राम के सैनिक की वाणी विश्व–शांति की रक्षा के लिए जनता का आह्वान करती है। प्रेमचन्द की आवाज भारत की अजेय जनता की आवाज है। इसलिए प्रेमचंद आज भी हमारे साथ हैं।[14]

संदर्भ –

1 प्रेमचन्द और उनका युग – डॉ. रामविलास शर्मा, पृ. 17
2. हिन्दी का गद्य – साहित्य – डॉ. रामचन्द्र तिवारी, पृ. 686
3. प्रेमचन्द : और उनका युग – पृ. 58
4. वही, पृ. 32
5. वही, पृ. 37
6 .सेवा सदन – प्रेमचन्द
7. प्रेमचन्द और उनका युग पृ. 41–42
8. वही, पृ. 70
9. सेवा सदन : प्रेमचन्द
10 प्रेमचन्द और उनका युग – पृ. 32
11. कर्मभूमि – प्रेमचन्द
12. सेवासदन – प्रेमचन्द
13. प्रेमचन्द और उनका युग पृ. 113
14. वही, पृ. 159

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

भूमंडलीय ऊष्मीकरण और जलवायु परिवर्तनः एक पर्यावरणीय समीक्षात्मक अनुशीलन

डॉ. मानस उपाध्याय
असिस्टेंट प्रोफेसर
डिपार्टमेंट आफ लाइफलांग लर्निंग एंड एक्सटेंशन
छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय कानपुर

सारांशः पृथ्वी पर हो रहे पर्यावरण विनाश ने जन–जीवन के लिए गम्भीर संकट उत्पन्न किया है। भूमंडलीय ऊष्मीकरण और जलवायु परिवर्तन दो ऐसे गम्भीर संकट हैं जिन्होंने पृथ्वी के अस्तित्व को संकट में डाल दिया है। इन दोनों परिघटनाओं के लिए जीवाश्म ईंधन के प्रयोग को सबसे प्रमुख कारक बताया गया है। प्रस्तुत लेख में भूमंडलीय ऊष्मीकरण और जलवायु परिवर्तन से होने वाले विनाश की ओर कुछ आंकड़ों की मदद से ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया गया है। साथ ही इस लेख में इन दोनों गम्भीर परिघटनाओं को नियंत्रित करने वाले प्रयासों तथा संयुक्त राष्ट्र के 'सीओपी' सम्मेलनों के निर्णयों पर चर्चा की गई है। अंत में निष्कर्ष स्वरूप तमाम प्रयासों के केंद्र में पृथ्वी के जनजीवन को अच्छा रखने की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

कीवर्डः भूमंडलीय ऊष्मीकरण, जलवायु परिवर्तन, पृथ्वी, ग्रीन हाउस गैस, तापमान, पर्यावरण, जीवाश्म ईंधन

भूमंडलीय ऊष्मीकरण(ग्लोबल वार्मिंग)और जलवायु परिवर्तन (क्लाइमेट चेंज) पृथ्वी के जनजीवन और प्रकृति के लिए गम्भीर समस्या और भयंकर चेतावनी के कारण बन रहे हैं। बर्फ की पिघलती परत, लुप्त होते हिमनद, सिकुड़ते साइबेरिया के टुंड्रा प्रदेश, बढ़ता जल–स्तर,अनियमित मौसम चक्र गम्भीर चेतावनी दे रहे हैं और यह आने वाले भीषण भविष्य के संकेत हैं। पृथ्वी पर जन–जीवन और पर्यावरण की रक्षा के लिए भूमंडलीय ऊष्मीकरण पर तत्काल नियंत्रण बेहद आवश्यक है। आम तौर पर सामान्य बोल–चाल की भाषा में भूमंडलीय ऊष्मीकरण और 'जलवायु परिवर्तन' को एक दूसरे के पूरक के रूप में ही इस्तेमाल किया जाता है। लेकिन इनकी वैज्ञानिक परिभाषा बिल्कुल भिन्न है और इसे समझ कर ही इनके प्रति जागरूकता को बढ़ाया जा सकता है। प्रस्तुत लेख का उद्देश्य इन दोनों गम्भीर समस्याओं की ओर ध्यान आकृष्ट करना, इनपर नियंत्रण के प्रयासों की चर्चा और सूचित–सचेत कदम उठाने में मदद करना है।
चित्र 1

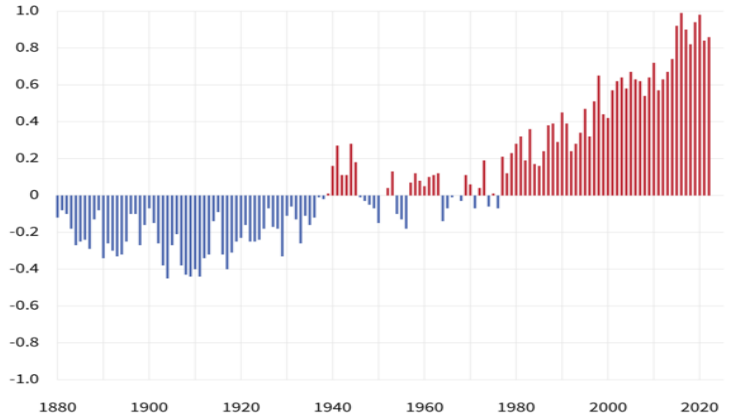

वैश्विक स्तर पर सतह का औसत तापमान

#1901 से 2000 तक का औसत अंतर (डिग्री सेलसियस)

भूमंडलीय ऊष्मीकरण का अर्थ है पृथ्वी की सतह का एक लम्बे काल खंड में गर्म होते जाना या पृथ्वी की सतह के तापमान का बढ़ता जाना। इस तापमान को औद्योगीकरण के पहले (1850 से 1900 के बीच) से मापा जा रहा है। पृथ्वी की सतह के तापमान के बढ़ने की मुख्य वजह इंसान की गतिविधियाँ हैं जिसमें जीवाश्म ईंधन का जलना, इस ईंधन के जलने से वायुमण्डल में ग्रीन हाउस गैस का बढ़ना है। प्राक–औद्योगिक काल से मानव की गतिविधियों ने औसत वैश्विक तापमान को औसतन 1 डिग्री सेलसियस (1.8 डिग्री फहरेनहेट) बढ़ा दिया है और तापमान बढ़ने की वर्तमान दर 0.2 डिग्री सेलसियस (0 .36 डिग्री फहरेनहेट) प्रति दशक है। तापमान के बढ़ने की दर के लिए निश्चित ही मानव गतिविधियाँ ही जिम्मेदार हैं और 1950 के बाद यह दर जिस गति से बढ़ रही है वह आश्चर्यजनक है और पृथ्वी के जन–जीवन और ईकोसिस्टम के लिए चिंताजनक है।

जलवायु परिवर्तनः

जलवायु परिवर्तन (क्लाइमेट चेंज) पृथ्वी के स्थानीय, क्षेत्रीय और वैश्विक जलवायु क्रम (पैटर्न) में आने वाला दीर्घकालिक परिवर्तन हैं। इन परिवर्तनों में जलवायु को प्रभावित करने वाले कई प्रभाव हैं जैसे अचानक बाढ़ का आना, हिमपात, भयंकर गर्मी, जानलेवा लू, अनियमित वर्षा आदि। अगर इसकी भी वजहों की तलाश करें तो इसमें भी मानव गतिविधियाँ हीं हैं। बीसवीं सदी के मध्य से पृथ्वी की जलवायु में जिन परिवर्तनों को देखा गया है उसकी प्रमुख वजह जीवाश्म ईंधन का इस्तेमाल, उनका जलना है, जिसकी वजह से वायुमंडल में ग्रीन हाउस गैस का स्तर बढ़ता जाता है और यह बढ़ा ग्रीन हाउस गैस पृथ्वी की सतह के तापमान को बढ़ाता जाता है। मानव गतिविधियों की वजह से ही प्रभावित हो कर कई प्राकृतिक प्रक्रियाएँ भी जलवायु क्रम को प्रभावित करती हैं जिसमें 'एल नीन्यो', 'ला नीन्या' और प्रशांत महासागर का दशकीय दोलन जैसी आंतरिक अस्थिरताएँ और बाह्य प्रभाव जैसे ज्वालामुखी विस्फोट, सूरज के ऊर्जा उत्सर्जन में परिवर्तन, पृथ्वी के ग्रहपथ में परिवर्तन आदि शामिल हैं।

सामान्य भाषा में प्रकृति को नुकसान पहुँचाने वाली गतिविधियाँ कुछ मानव द्वारा तथा कुछ व्यवस्था जनित होती हैं। उत्पादन और मुनाफे की पूरी प्रक्रिया में पूँजीवादी व्यवस्था प्रकृति का अनियंत्रित दोहन कर रही है। विकसित से लेकर विकासशील देशों में भी इस बात की समझदारी बढ़ रही है और जॉन बेलेमि फॉस्टर, पुल बुर्केट, ब्रेट क्लार्क, कोहेई साइतो जैसे जलवायु विशेषज्ञ और पर्यावरणविद सीधे तौर पर पूँजीवादी

व्यवस्था और उत्पादन पद्धति को भूमंडलीय ऊष्मीकरण और जलवायु परिवर्तन के लिए जिम्मेदार मानते हैं। इतना ही नहीं लगभग सभी संजीदा जलवायु विशेषज्ञ, मौसम विशेषज्ञ भूगोल शास्त्री और पर्यावरणविद अनियोजित उत्पादन पद्धति और संसाधनों के अराजकतावादी दोहन पर सवाल उठा रहे हैं।

ग्रीन हाउस इफेक्टः

चित्र 2

हिमनद द्रव्यमान संतुलन (वार्षिक)

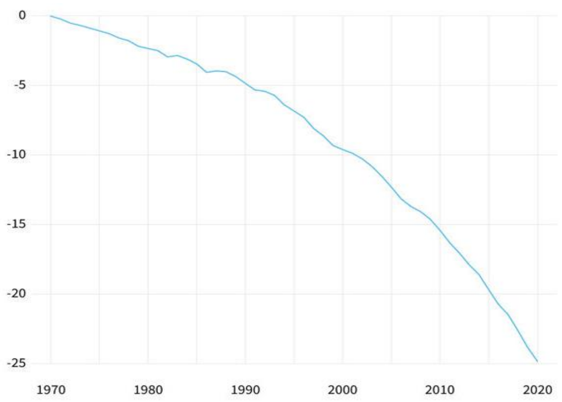

हिमनदों का संचित द्रव्यमान संतुलन (जल मीटर में)

पृथ्वी के वायुमंडल में तापमान नियंत्रण के लिए प्राकृतिक तौर से ग्रीन हाउस गैसें, कार्बन डाइआक्साइड, मिथेन, नाइट्रोजन आक्साइड और फ्लोरिनेटेड गैस मौजूद होते हैं। लेकिन जीवाश्म ईंधन के प्रयोग, जंगलों की कटाई और प्रकृति के साथ अनियोजित छेड़–छाड़ से वायुमंडल में ग्रीन हाउस गैसों का प्रतिशत बढ़ता जाता है। यह सारी गतिविधियाँ उत्पादन की प्रक्रिया के दौरान व्यापक स्तर पर की जाती ही। उत्पादन अनियोजित और अराजक होने की वजह से पूरी उत्पादन प्रक्रिया, प्रकृति और पर्यावरण के लिए गम्भीर संकट पैदा करने लगती हैं। जीवाश्म ईंधन के जलने, जंगलों के कटने और कारखानों, मशीनों और कई बिजली संयंत्रों से निकलने वाले ग्रीन हाउस गैस वायुमंडल की सतह पर एकत्र हो जाते हैं और सूर्य के ताप को अधिक मात्रा में वायुमंडल में कैद करने लगते हैं जिससे ग्रीन हाउस इफेक्ट पैदा होने लगता है। इससे पृथ्वी की सतह का तापमान बढ़ता है यानी भूमंडलीय ऊष्मीकरण होती है जिसकी चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं इसके अलावा यह समुद्र के जलस्तर को भी बढ़ाता है। पर्वतों और ध्रुवों पर जमें बर्फ की परत और हिमनदों के पिघलने से समुद्र का जलस्तर बढ़ता है। वर्ल्ड ग्लैशियर मोनिट्रिंग सर्विसेज के आरंभिक आंकड़ों के अनुसार 33 सालों में 2019/20 तक सभी जगह हिमनदों का ह्रास हुआ हैं। कहीं भी इनमें बढ़ोतरी नहीं देखी गई है। 1970 की तुलना में हिमनदों के मौसम से लिए संदर्भों से पता चलता है की पिछले 33 सालों में हिमनदों के 25 मीटर जमे बर्फ पिघल कर पानी बन गये हैं जिसका अर्थ हैं सभी हिमनदों के शीर्ष से 27.5 मीटर बर्फ को काट कर हटा देना। 1880 से अब तक औसत वैश्विक जलस्तर 8–9 इंच (21–24 सेन्टमीटर) बढ़ गया है। ग्रीन लैंड बर्फ की परत (आइस शीट) से बर्फ का पिघलना 7 गुना अधिक बढ़ गया है। 1992–2001 के बीच प्रति वर्ष 34,00 करोड़ टन आइस शीट का नुकसान हुआ वही 2012 से 2016 के बीच

24700 करोड़ टन प्रति वर्ष नुकसान हुआ। इसका अर्थ यह हुआ कि अब प्रति वर्ष नुकसान में 7 गुना की वृद्धि हो गई है। हिमनदों और बर्फ की परत (आइस शीट) का पिघलना और समुद्र के तापमान के बढ़ने की वजह से समुद्र के जल के आयाम का फैलना समुद्र के जलस्तर के बढ़ने का मुख्य कारण है। 1993 की तुलना में 2021 में औसत वैश्विक जलस्तर 97 मिलीमीटर अधिक हो गया जो अभी तक के जलस्तर में सबसे अधिक वार्षिक औसत वृद्धि है। जलस्तर के बढ़ने से प्राणघातक और विनाशकारी समुद्री तूफान जैसे ह्युरिकेन कैटरीना, सुपरस्टॉर्म सैन्डी, ह्युरिकेन माइकल की संख्या बढ़ेगी और यह पहले से कहीं अधिक अंदर तक भूभाग को प्रभावित करने जा रहे हैं और भयंकर विनाश का कारण बनेंगे।

चित्र 3

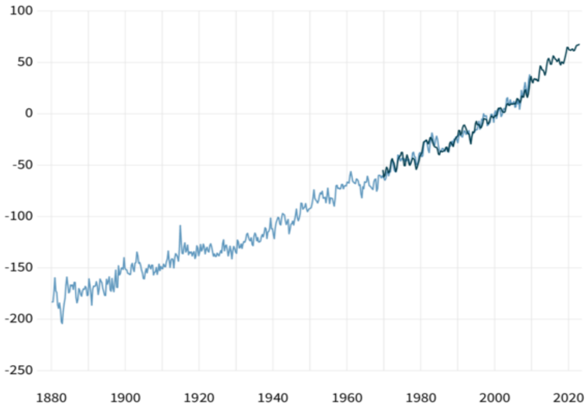

#वैश्विक समुद्र स्तर

#1993 से 2008 तक की अवधि में बदलता समुद्र स्तर

अमाजॉन वर्षावनः

ग्लोबल फॉरेस्ट वाच के अनुसार पृथ्वी पर एक तिहाई प्राकृतिक वन क्षेत्र का नुकसान हो चुका है। भूमंडलीय ऊष्मीकरण और जलवायु परिवर्तन के प्रमुख कारणों में से एक है जंगलों का तीव्र गति से कटना। संयुक्त राष्ट्र वन संसाधन मूल्यांकन (यूएन फॉरेस्ट रिसोर्सेज असससेस्मेंट) के अनुसार विश्व स्तर पर प्रति वर्ष 47 लाख हेक्टेयर प्राकृतिक वनों का विनाश हो रहा है। जंगलों के कटने की गति निश्चित ही विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों में अधिक है। स्वयं भारत में पिछले 30 सालों में 668,400 हेक्टेर वन क्षेत्र का विनाश हुआ है। ग्लोबल फॉरेस्ट वाच की रिपोर्ट के अनुसार 2010 में 313 लाख हेक्टेर प्राकृतिक वन का ह्रास हुआ जो कुल वन क्षेत्र का 11% है। वहीं 2021 में 127 हजार हेक्टेर प्राकृतिक वन क्षेत्र का विनाश हुआ जो 64.6 मेट्रिक टन कार्बन मोनॉक्साइड उत्सर्जन के बराबर है। वैसे तो किसी भी जगह जंगलों का बेतहाशा कटना नुकसानदेह है लेकिन ऐमजान के वर्षावनों का कटना सबसे विनाशकारी है। अगस्त 2019 से जुलाई 2020 तक कुल 11,088 स्क्वाइर किलोमीटर अमाजॉन वर्षावन का विनाश ब्राजील की बॉल्सोनारो सरकार ने किया। बॉल्सोनारो सरकार ने खुले हाथों से पूँजीपतियों को खनन और कृषि के लिए अमाजॉन के जंगलों का विनाश करने के अनुमति दी। बॉल्सोनारो के कार्यकाल में कहा जाता है की प्रति मिनट एक फुटबॉल पिच के जितना अमाजॉन वन साफ किया जा रहा था। इससे जंगलों के कटने की दर का अंदाजा लगाया जा सकता है। अमाजॉन अत्यंत आवश्यक कार्बन का भण्डार है जो भूमंडलीय ऊष्मीकरण को धीमा करता है। अमाजॉन के जंगल ग्रीन हाउस गैसों के प्रभाव को काम करने में महती भूमिका निभाते हैं। आज बढ़ते ग्रीन हाउस

प्रभाव और भूमंडलीय ऊष्मीकरण की बड़ी वजहों में से एक अमाजॉन वर्षा वनों का विनाश है।

#चित्र 4

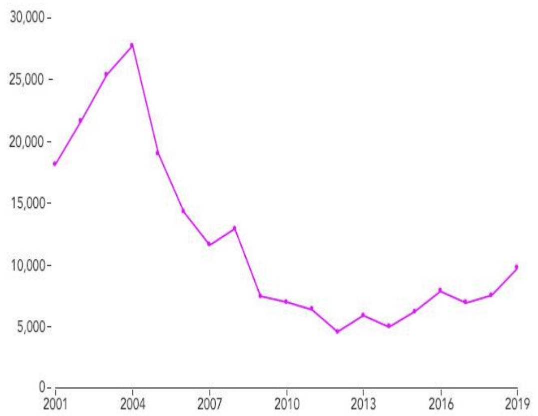

#अमाज़ॉन वर्षावनों के कटने की दर

भूमंडलीय ऊष्मीकरण और जलवायु परिवर्तन को नियंत्रित करने के प्रयासः

भूमंडलीय ऊष्मीकरण और जलवायु परिवर्तन के विषय में विश्व स्तर पर चिंतन 1980 के दशक से ही देखा गया है। इस ओर ही गम्भीर कदम उठाते हुए संयुक्त राष्ट्र ने 1995 में 'कॉन्फ्रेंस ऑफ पार्टीज' (सीओपी) का गठन किया और इसका पहला सम्मलेन मार्च 1995 में बर्लिन, जर्मनी में हुआ। उसके बाद से 27 सीओपी सम्मेलन हो चुके हैं। 2022 में मिस्र के शर्म अल–शेखशहर में 6 नवम्बर से 20 नवम्बर तक जलवायु संकट पर 'कॉन्फ्रेंस ऑफ पार्टीज' का सत्ताइसवाँ सम्मलेन (सीओपी–27) आयोजित किया गया। इस सम्मेलन के मुख्य मुद्दे थे जलवायु संकट के लिए ज्यादा जिम्मेदार देशों की पहचान इस संकट से होने वाले नुकसान की आर्थिक भरपाई की योजना। विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों के बीच लम्बी चर्चा चली क्योंकि यह आर्थिक जिम्मेदारी उठाने की बात थी। दुनियाभर के जलवायु विशेषज्ञ, वैज्ञानिक और पर्यावरणविद 'सीओपी–27' सम्मेलन से तीन मुख्य बिन्दुओं पर ठोस निर्णय की उम्मीद लगा रहे थे। ये तीन मुख्य बिन्दु हैं द ग्लोबल वॉर्मिंग (पृथ्वी का तापमान बढ़ने) को 2015 के पेरिस समझौते के तहत तय 1.5 डिग्री तक सीमित रखने के लिए एक ठोस रूपरेखा और कार्यदिशा अपनाना, ग्लोबल वॉर्मिंग को रोकने के लिए विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों को 100 अरब डॉलर की सालाना आर्थिक सहायता पर ठोस निर्णय लेना, इसकी जवाबदेही और तीसरे, जलवायु संकट की मार झेल रहे देशों के लिए एक हानि व क्षति कोष ('लॉस एण्ड डैमेज फण्ड') का गठन करना। लम्बी चर्चा के बाद इन तीन बिन्दुओं में से सिर्फ तीसरे बिन्दु पर ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सका है। निर्धारित समयसीमा के समाप्त होने के बाद यह सम्मेलन दो दिनों तक और चली जिसमें हानि व क्षति कोष के गठन पर ही सभी देशों की मंजूरी हो पायी। इस कोश के गठन पर भी अभी कई अन्य पहलुओं पर निर्णय बाकी है जिसे अगले सम्मेलन के मुद्दे की तरह पारित किया गया है। इसका सबसे जरूरी पहलू की इस कोष में कौन–सा देश कितना आर्थिक योगदान करेगा और कौन–से देश इस कोष का उपभोग कर पायेंगे इस पर

अगले सम्मेलन में निर्णय होगा। कोश का गठन निश्चित ही एक सकारात्मक कदम है लेकिन किसी भी स्पष्ट निर्णय न हो पाने की स्थिति में इस कदम से भी कुछ अधिक की उम्मीद नहीं की जा सकती है। जलवायु विशेषज्ञ, वैज्ञानिक और पर्यावरणविद की निराशा को समझा जा सकता है क्योंकि पृथ्वी के बढ़ते जलवायु संकट को बेहद निकटता से वे देख रहे हैं और उसकी गम्भीरता का एहसास उन्हें सबसे अधिक है।

इस सम्मेलन के सबसे नकारात्मक पहलू की अगर चर्चा करें तो अमेरिका (11%) के बाद दुनिया के दो प्रमुख कार्बन उत्सर्जक देश दृ चीन (27%) और भारत (6.6%) ने खुद को विकासशील देश बताते हुए इस कोष में योगदान करने से साफ मना कर दिया है। ऐसी स्थिति में इस बात की सम्भावना बहुत कम ही है कि अमेरिका, ब्रिटेन, यूरोपीय संघ और कुछ अन्य विकसित देश मिलकर एक स्थायी कोष का निर्माण करेंगे। उम्मीद की जानी चाहिए कि जल्द ही प्रभुत्वशाली देश किसी ठोस निर्णय तक पहुँचेंगे क्योंकि अगर पिछले कुछ सालों में जलवायु संकट से विश्व के अलग–अलग देशों ने जिन गम्भीर आपदा का सामना किया है यदि वह जारी रहेगा तो यह विश्व के सभी हिस्सों को प्रभावित करेगा।

हाल की रिपोर्ट के अनुसार पाकिस्तान में इस साल आयी बाढ़ से 30 अरब डॉलर की क्षति हुई है। बाढ़ में 1700 लोगों की मौत हुई। हजारों लोग बेघर हुए और हजारों–हजार विस्थापित हुए। लम्बे समये से सोमालिया की जनता भीषण सूखे और अकाल से जूझ रही है। संयुक्त राष्ट्र बाल कोष ('यूनिसेफ') के अनुसार सोमालिया के पाँच साल से कम आयु के पाँच लाख बच्चे इस सूखे और अकाल से मर सकते हैं। 'लान्सेट' वैज्ञानिक पत्रिका की नवीनतम रिपोर्ट के अनुसार 2000–2004 की तुलना में 2017–2021 की अवधि में भीषण गर्मी या सर्दी के कारण एक साल से कम आयु के बच्चों और 65 साल से अधिक आयु के वयस्कों की 68 प्रतिशत ज्यादा मौतें हुई हैं। मोनाश विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों द्वारा किये गये एक शोध के अनुसार 2000 से 2019 के बीच असामान्य गर्मी या सर्दी के कारण हर साल औसतन 50 लाख लोगों की मौत हुई है। प्राकृतिक विनाश और मौतों की सूची बेहद लम्बी है और आने वाले समये में यदि ठोस कदम नहीं उठाए गए तो परिणाम और भी भयंकर होंगे।

2015 में पेरिस में हुए 'सीओपी–21' ने एक बेहद उल्लेखनीय निर्णय लिया। इस निर्णय और समझौते के अनुसार औद्योगिक क्रान्ति के पहले ग्लोबल वॉर्मिंग के स्तर से पृथ्वी के सतह के तापमान को 1.5 डिग्री की वृद्धि पर रोकने को लक्ष्य बनाया गया। यह एक महत्वपूर्ण समझौता था जलवायु संकट के समाधान की दिशा में एक मील–का–पत्थर था। लेकिन यह समझौता भी जलवायु संकट के लिए बहुत कारगर नहीं साबित हो सका क्योंकि पेरिस समझौते के बाद छह 'सीओपी' सम्मेलन और हो चुके हैं लेकिन आज तक इस लक्ष्य को हासिल करने की ओर कोई ठोस योजना या कदम नहीं उठाया गया है। आज सभी संजीदा जलवायु विशेषज्ञ या पर्यावरणविद सीओपी के वायदों और दावों को गम्भीरता से लेना छोड़ चुके हैं। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम ('यूएनईपी') द्वारा सितम्बर 2022 में प्रकाशित रिपोर्ट में यह साफ लिखा गया है कि पृथ्वी की वर्तमान स्थिति को देखते हुए और उसकी तुलना में जंगलों के कटने, वायु व जलप्रदूषण की तेज रफ्तार, सबसे प्रमुख अमाजोन के वर्षा वनों का अंधाधुंध कटना इसके लिए जिम्मेदार हैं। इन पर प्रतिबन्ध लगाए बिना, जीवाश्म इंधनों की जगह वैकल्पिक इंधनों के इस्तेमाल, वनों को नए सिरे से रोपे बिना सदी के अन्त तक 1.5 डिग्री के लक्ष्य को हासिल करना नामुमकिन है। रिपोर्ट के अनुसार अगर सभी देश उसी ढर्रे पर चलते रहे जैसा कि आज चल रहे हैं तो सदी के अन्त तक पृथ्वी का

तापमान 2.8 डिग्री बढ़ जायेगा। जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र के इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमिट चेंज के अनुसार यह काफी हद तक सम्भव है कि अगले 18 सालों में ही हम 1.5 डिग्री सीमा को पार कर जायेंगे। आज जब ग्लोबल वॉर्मिंग 1.1 डिग्री है तब तो हमें भीषण लू, प्रलयंकारी बाढ़, सूखा, कड़ाके की सर्दी, साइक्लोन, दावानल आदि का नियमित सामना करना पड़ रहा है। दो दशक में जब यह बढ़कर 1. 5 डिग्री हो जायेगी तब स्थिति कितनी भयंकर होगी उसकी कल्पना कर पाना कठिन है।

ग्रीन तकनोलॉजीः

सीओपी–27 का दूसरा प्रमुख मुद्दा था 'ग्रीन तकनोलॉजी' के उपयोग को विकासशील देशों में बढ़ावा देना। ग्रीन तकनोलॉजी यानी जीवाश्म ईंधन से इतर ज्यादा से ज्यादा सस्टेनेबल या वैकल्पिक तकनोलॉजी का उपयोग। उदाहरण के लिए सौर ऊर्जा, ताप व टाइडल ऊर्जा आदि का उपयोग। 2009 के कोपेनहेगेन सम्मलेन में यह तय हुआ था कि प्रति वर्ष विकसित देश 'ग्रीन तकनोलॉजी' के लिए विकासशील देशों को100 अरब डॉलर की आर्थिक सहायता प्रदान करेंगे। वर्ष 2021 में विकसित देशों ने विकासशील देशों को करीब 80 अरब डॉलर की सहायता दी। लेकिन यह मदद अनुदान के रूप में नहीं बल्कि कर्ज के रूप में दिया गया है। इसे देख कर हम कह सकते हैं कि विकसित देश 'हरित तकनोलॉजी' के विकास और कार्बन उत्सर्जन को रोकने के लिए अपनी ऐतिहासिक जिम्मेदारी से दूर जा रहे हैं और यह ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन के लिए बेहद हानिकारक है। आज अनुदान की जगह कर्ज दिया जा रहा है। विकासशील देश इससे सहमत नहीं हैं। सीओपी–27 में एक बार फिर यह विषय उठाया गया जिससे इस अनुदान के न मिलने का कारण लगभग सभी विकासशील देशों की सरकारें ग्रीन तकनोलॉजी से अपनी दूरी बना रही हैं। वहीं अपने देशों में पर्यावरणीय विनाश पर नियंत्रण को लेकर उनके पास भी कोई ठोस सकारात्मक योजना नहीं दिख रही है। कह सकते हैं कि विकसित देशों और विकासशील देशों को पर्यावरण विनाश को केंद्र में रख कर और उसकी गम्भीरता को देखते हुए लिए गए निर्णय पर अमल करना चाहिए और प्रभावी कदम उठाने में सहयोग करना चाहिए।

इन सम्मेलनों का प्रभाव निश्चित ही हो रहा है लेकिन जिस गति से पर्यावरण विनाश हो रहा है उसके सामने इन सम्मेलनों के समझौते और निर्णयों का प्रभाव पर्यावरण विकास पर रोक–थाम में बेहद कम है। 1995 में 'सीओपी' का पहला सम्मेलन आयोजित हुआ था। उस समय वायुमण्डल में कार्बन डाइऑक्साइड का संकेन्द्रण 362 पीपीएम था। आज यह बढ़कर 420 पीपीएम हो गया है। प्रति वर्ष सम्मेलन आयोजित होने और गम्भीर चिंतन मनन के बाद भी पर्यावरण के विनाश में कमी आने की जगह वृद्धि ही हुई है। सभी विकसित और विकासशील देशों को मिल कर बेहद गम्भीरता से इस दिशा में कदम उठाने की आवश्यकता है क्योंकि पिछले 27 सालों में कार्बन उत्सर्जन तेजी से बढ़ता चला गया और जलवायु संकट गुणात्मक रूप से बढ़ता जा रहा है। अगर हम ग्लासगो में हुए 'सीओपी–26' की बारीकियों पर नजर डालें तो बात और भी साफ हो जाती है। उदाहरण के लिए, इस सम्मलेन में 145 देशों ने 2030 तक जंगलों की पूरी कटाई को पूरी तरह से खत्म करने के प्रस्ताव पर रजामन्दी दी थी। इस समझौते पर हस्ताक्षर करने वाले देशों में भारत और ब्राजील भी शामिल थे। लेकिन इस सम्मेलन के बाद इन दोनों देशों में वनों की कटाई की रफ्तार अभूतपूर्व रही जिसके आँकड़े हम लेख में पहले दे चुके हैं। इन वनों के विनाश से हर साल देशों में बाढ़ की समस्या बढ़ती जा रही है। जिन इलाकों ने कभी बाढ़ नहीं देखी वहाँ बाढ़ आ

रही है और जिन इलाकों में आती थी वहाँ यह पहले से कहीं ज्यादा विनाशकारी और आक्रामक होती जा रही हैं।

निष्कर्षः

भूमंडलीय ऊष्मीकरण, जलवायु परिवर्तन, पर्यावरण विनाश, ग्रीन हाउस इफेक्ट जैसी परिघटनाएँ आज पृथ्वी के अस्तित्व के लिए बेहद चुनौतीपूर्ण होती जा रही हैं। जीवन के संरक्षण के लिए हमारे ग्रह पर जो नियंत्रित तापमान, वायुमंडल, जल भण्डार, हिमनद और बर्फ की परत हैं आज उनके अस्तित्व पर खतरा मँडरा रहा है। यह खतरा हमारे अस्तित्व पर है। लेख में दिये गये आँकड़े और चित्र हमारे पर्यावरण विनाश की चिंतनीय स्थिति को उजागर करते हैं। पृथ्वी पर सिर्फ इंसानों को अधिकार नहीं है बल्कि यह समान रूप से सभी जन–जीवन की अधिकार भूमि है साथ ही हमारे भविष्य की पीढ़ियों की धरोहर भी है। इंसानों द्वारा इसका दुरुपयोग या कहें पूँजीवादी व्यवस्था के अनियमित और अराजक गतिविधियों की वजह से हो रहा विनाश आत्मघाती है। पूँजीवादी व्यवस्था को गम्भीरता से अपनी गतिविधियों के परिणामों पर सोचना होगा और त्वरित गति से पर्यावरण विनाश पर नियंत्रण करने की ओर कदम उठाने होंगे। आज सभी विकसित और विकासशील देशों और तमाम संस्थाओं को मिल कर भूमंडलीय ऊष्मीकरण और जलवायु परिवर्तन पर नियंत्रण के लिए कारगर उपाय सोचने और उन्हें अमल में लाने की जरूरत है। पर्यावरण विनाश को रोकने, भूमंडलीय ऊष्मीकरण और जलवायु परिवर्तन पर नियंत्रण के लिए जल्द से जल्द जीवाश्म इंधनों के प्रयोग को खत्म करना होगा और उसकी जगह सस्टेनेबल (टिकाऊ) ऊर्जा और ग्रीन टेकनोलॉजी की ओर तेजी से कदम बढ़ाना होगा। निष्कर्ष के तौर पर यही कहा जा सकता है कि पर्यावरण विनाश पर नियंत्रण की सभी योजना और प्रयासों में पृथ्वी और जन–जीवन को केंद्र में रखने की अवश्यकता है। पूरी उत्पादन प्रक्रिया को प्रकृति और पर्यावरण के साथ ताल–मेल कर जारी रखना आवश्यक है। इसके लिए नियोजित और आवश्यकता अनुसार उत्पादन की ओर व्यवस्था को जल्द ही कदम उठान होगा।

संदर्भ –

1. बी, आर.जे. (2007)। जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग. विदेश नीति संघ, 17–28.
2. फर्नसाइड, पी.एम. उष्णकटिबंधीय वनों की कटाई और ग्लोबल वार्मिंग। विज्ञान, नई शृंखला, खंड। 321, संख्या 5777
3. लिंडसे, आर. जलवायु परिवर्तन वैश्विक समुद्र स्तर एनओएए क्लाइमेट. जीओवी।

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

शिक्षा : बाल भिक्षावृत्ति से मुक्ति का एकमात्र मार्ग

डॉ राशिदा अतहर
एसोसिएट प्रोफेसर, मानव अधिकार विभाग,
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय,लखनऊ
योगेन्द्र नाथ त्रिपाठी
शोध छात्र, मानव अधिकार विभाग
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय,लखनऊ

शोध सार
बच्चे किसी भी देश की सर्वोच्च संपत्ति हैं। वे भविष्य के संभावित मानव संसाधन है। शिक्षा की प्रत्येक ब्यक्ति के जीवन में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका है। 86 वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2002 के द्वारा भारतीय संविधान में अनुच्छेद 21। जोड़कर बाल शिक्षा को मौलिक अधिकार बना दिया गया है। जिसके तहत 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को निरूशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रावधान है। हमारे देश में शिक्षा प्रत्येक बालक का मौलिक अधिकार होने के बावजूद, आज भी कितने बच्चे अपनी प्राथमिक शिक्षा से वंचित रह जातें हैं जिसका मूल कारण गरीबी है। गरीबी और शिक्षा का अभाव यह दो ऐसे मूल कारक हैं जो बच्चों को भीख माँगने पर विवश कर देतें हैं। इन दो मूल कारकों के अलावा देश में माफियाओं के द्वारा रैकेट्स भी चलाएं जातें हैं जो बच्चों को भीख मांगने के लिए मजबूर करते है। 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत में कुल 4,13,670 भिखारी हैं, और उनमें से कुल 45,296 बच्चे हैं । इनमें से अधिकांशतः को भीख मांगने और ड्रगपैडलर के रूपमें काम करने के लिए मजबूर किया जाता है। अर्थात् यह कार्य एक संगठित अपराध में तब्दील हो चुका हैद्य दुनिया भर के कई देश इस खतरे का सामना कर रहे हैं और भारत में शासनिक एवम प्रशासनिक लापरवाही के कारण इस समस्या पर कभी भी गंभीरता पूर्वक ध्यान नहीं दिया गया। प्रस्तुत शोध पत्र बाल भिखारियों के शिक्षा के अधिकार के संरक्षण और संवर्धन के लिए प्रारूपित राष्ट्रीय एवम् अंतरराष्ट्रीय विधि का विश्लेषण करता है।
बीज शब्द : बाल भिक्षावृत्ति, गरीबी, शिक्षा का अधिकार, ब्यापार,तस्करी, भिक्षा माफिया

परिचय

बाल भिक्षावृत्ति भारत में गंभीर मुद्दों में से एक है। यह बच्चों के अधिकारों के हनन से जुड़ा एक सामाजिक मुद्दा है। आम तौर पर, यह शब्द उन बच्चों को संदर्भित करता है

जो खेलने और शिक्षा की उम्र में भिक्षा के लिए गलियों में घूमते रहते हैं।[41] प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह बच्चा हो या वयस्क, मूलभूत मानवाधिकार प्रदान किये गये हैं जिन्हें कोई भी उनसे वंचित नही कर सकता या उनका उल्लंघन नहीं कर सकता है। हर बच्चा खुशहाल बचपन और शिक्षा का हकदार है, लेकिन बाल भिखारियों के जीवन में इन चीजों की जगह नहीं है। किसी अन्य विकल्प के अभाव में बाल भिखारियों को रोग और बुखार की परवाह किए बिना केवल एक बार भोजन के लिए दिन भर भीख मांगनी पड़ती है। बालिका भिखारियों की स्थिति और बदतर है उन्हें अपराधियों के बुरे इरादों का सामना करना पड़ता है। बाल भिक्षा के इस कृत्य से हजारों बच्चे बर्बाद हो चुके हैं, तथा गुलाम बनकर अपना प्यारा और मासूम बचपन खो दिया है[42] । भारत के 'राष्ट्रीय मानवधिकार आयोग' द्वारा तैयार की गयी रिपोर्ट के अनुसार हर साल 40,000 बच्चों का अपहरण किया जाता है, जिससे पता चलता है की भारत में हर 8 मिनट में से एक बच्चा लापता हो जाता है, जिनमें 25 प्रतिशत से अधिक का पता ही नहीं चल पाता है।[43] इनमें से कई बच्चों को भिक्षा माफियाओं के द्वारा भिक्षावृत्ति के पेशे में जबरन धकेल दिया जाता है। बाल भिक्षावृत्ति सामाजिक अपराध होने के साथ–साथ जबरन भिक्षावृत्ति रैकेट का एक हिस्सा है। यह रैकेट अपराधियों या समाज के कुख्यात लोगों द्वारा चलाया जाता है। भिक्षावृत्ति रैकेट का मुखिया इन बाल भिखारियों को इनके द्वारा कमाए गये पैसों का इतना कम हिस्सा देते हैं जो उनके एक बार के भोजन के लिए भी शायद पर्याप्त नहीं होता है।[44] राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग (एनसीपीसीआर) के अनुसार, देश में हर साल हजारों बच्चों को जबरन भिक्षावृत्ति के लिए अपहरण कर लिया जाता है, इसके बाद उनके अंगों को विभिन्न तरीके से क्षतिग्रस्त करके जबरन भीख मँगवाया जाता है।[45] बाल भिक्षावृत्ति एक गंभीर समस्या है। भले ही सरकार इसे रोकने के लिए कदम उठा रही है और इस समस्या को खत्म करने के लिए कई एनजीओ भी बनाए गए हैं लेकिन अभी तक कुछ भी ठोस कदम नहीं उठाया जा सका है।

परिभाषा

सामान्यतया भिक्षुक उस दीन हीन व्यक्ति को कहते हैं जो चलने फिरने, काम करने में अयोग्य होने के कारण अपनी जीविका कमा पाने में असमर्थ होता है और भिक्षा मांगकर अपना पेट पालता है। बॉम्बे भिक्षावृत्ति निवारण अधिनियम, 1959 भिक्षावृत्ति को इस प्रकार परिभाषित करती है।

---

41 सी.एस.रेड्डी, बेगिंग एंड इट्स मोजेक डाइमेंशन्सरू सम प्रिलिमिनरी ऑब्जर्वेशन्स इन कडप्पा डिस्ट्रिक्ट ऑफ आंध्र प्रदेश

42 आशा बाजपेयी, चाइल्ड राइट्स इन इण्डिया,आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 3तक संस्करण,2017, ,पेज नंबर 880.

43 भारत में गुमशुदा महिलाओं और बच्चों पर रिपोर्ट, 2016, राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो, गृह मंत्रालय, भारत सरकार,

44 रूमी अहमद,राइट्स ऑफ पर्सन्स विद डिसेबिलिटी इन इण्डियारू अ क्रिटिकल एनालिसिसष् व्हाइट फाल्कन प्रकाशन,2015, पेज नंबर 177.

45 गीता चोपडा, ष्चाइल्ड राइट्स इन इण्डियाय चौलेन्जेज एंड शोसल एक्शनष् स्प्रिंजर पब्लिकेशन,लन्दन,वॉल्यूम, 2015, ,पेज नंबर 35.

1. किसी सार्वजनिक स्थान पर भिक्षा मांगना या प्राप्त करना, चाहे गायन, नृत्य, भाग्य बताने, प्रदर्शन करने या बिक्री के लिए किसी भी वस्तु की पेशकश करने जैसे किसी भी ढोंग के तहत हो या नहीं

2. भिक्षा मांगने या प्राप्त करने के उद्देश्य से किसी भी निजी परिसर में प्रवेश करना

3. भिक्षा प्राप्त करने या उगाही करने की वस्तु के साथ, किसी भी पीड़ादायक, चोट, बीमारियों की विकृति को उजागर करना या प्रदर्शित करना, चाहे वह मनुष्य या जानवर का हो

4. निर्वाह का कोई दृश्य साधन नहीं होना और ऐसी स्थिति या तरीके से किसी भी सार्वजनिक स्थान पर भटकना या शेष रहना, जैसा कि यह संभावना बनाता है कि ऐसा करने वाला व्यक्ति भिक्षा मांगने या प्राप्त करने से मौजूद है।

5. भिक्षा मांगने या प्राप्त करने के उद्देश्य से खुद को एक प्रदर्शनी के रूप में उपयोग करने की अनुमति देना ।[46]

आसान भाषा में हम कह सकतें हैं की जब किसी 18 साल से कम उम्र के बच्चे के द्वारा बॉम्बे भिक्षावृत्ति निवारण अधिनियम, 1959 की धारा 2 में परिभाषित भिक्षावृत्ति से सम्बंधित कोई कार्य किया जाता है तो उसे बाल भिक्षावृति कहतें है।

भारत में बाल भिक्षावृत्ति के कारण

भारतीय समाज में भिक्षावृत्ति के पनपने के पीछे निम्न कारण उत्तरदायी हैं–

1.लोगों की बुनियादी आवश्यकताओं (रोटी, कपड़ा व मकान) का पूरा नहीं हो पाना।

2. गंभीर स्वास्थ्य समस्या व अपंगता। एक शोध के अनुसार भारत में 31 फीसदी भिक्षुक गरीबी, 16 फीसदी भिक्षुक विकलांगता, 14 प्रतिशत भिक्षुक शारीरिक अक्षमता, 13 फीसदी बेरोजगारी, 13 फीसदी पारम्परिक, तीन फीसदी भिक्षुक बीमारी की वजह से भीख मांग रहे हैं।

3. कुछ आपराधिक संगठनों द्वारा जबरदस्ती भिक्षावृत्ति करवाना।

4.संसाधनों का असमान वितरण तथा गरीबी व बेरोजगारी का उच्चतम स्तर पर होना।

5. वर्ल्ड बैंक के अर्थशास्त्री गौरव दत्त के अनुसार आर्थिक उदारीकरण के साथ भारत में 'ग्रामीण औद्योगिकीकरण' पर ध्यान नहीं दिया गया, जिससे गरीबी ने धीरे धीरे गम्भीर रूप धारण कर भिक्षावृत्ति जैसे जघन्य कृत्य को जन्म दिया है।[47]

6. इस सामाजिक कुरीति के बढ़ने का सबसे बड़ा कारण अशिक्षा भी है। एक तरफ जहाँ सरकार सर्वशिक्षा अभियान के तहत सभी को शिक्षित करना चाहती है, तो महँगी होती शिक्षा से गरीब तबका कोसों दूर होता जा रहा है।[48]

देश में बाल भिक्षावृत्ति से संबन्धित वर्तमान परिदृश्य

बाल भिखारियों के समूह में अधिकतर झुग्गी–झोपड़ियों में रहने वाले बच्चे, अप्रवासी परिवारों के बच्चे, विकलांग बच्चे और जो बच्चे बेघर हैं उनकी संख्या बहुतायत होती है द्य माफिया गिरोह ऐसे ही बच्चों को अपना मुख्य लक्ष्य बनाते हैं।2011 की जनगणना के अनुसार भारत में भिखारियों की संख्या की सूची में पश्चिम बंगाल (75,083) प्रथम

---

[46] बॉम्बे भिक्षावृत्ति निवारण अधिनियम, 1959, धारा 2.

[47]शंकर जोगन, ष्सोशल प्रॉब्लम एंड वेलफेयर इन इंडियाष्आशीष पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1992, पेज नंबर 277.

[48] रोजमेरी शीहान और हेलेन रोड्स,ष्वल्नरेबल चिल्ड्रन एंड द लॉ जेसिका किंग्सले पब्लिशर्स,लंदन और फिलाडेल्फिया,2012, पेज नंबर 78.

स्थान पर, उत्तर प्रदेश राज्य (57,038) दुसरे स्थान पर और मध्य प्रदेश (25,603) तीसरे स्थान पर आते हैं। महाराष्ट्र (22,737), राजस्थान (22,548), गुजरात (12,584), झारखंड (9,817), छत्तीसगढ़ (9,355), हरियाणा (7,971), दिल्ली (2,073) और गोवा (229) जैसे राज्यों में भी भिखारियों की संख्या निरंतर बढ रही है। दिनांक 07–12–2021 को लोक सभा में भारत सरकार के सामाजिक न्याय एवम सशक्तिकरण मंत्री माननीय वीरेन्द्र कुमार जी के द्वारा प्रस्तुत राज्य–वार जनगणना 2011 के विवरण के अनुसार, भारत में 14 वर्ष आयु तक के बाल भिखारियों की कुल संख्या 45296 है।[49] शीर्ष 10 राज्यों में बाल भिखारियों की संख्या इस प्रकार है।

तालिका –1

भारत	45296
उत्तर प्रदेश	10167
राजस्थान	7167
थ्बहार	3396
पश्चिम बंगाल	3216
आंध्र प्रदेश	3128
महाराष्ट	3026
मध्य प्रदेश	2592
गुजरात	1982
कर्नाटक	1602
झारखण्ड	1254

स्रोत : प्रेस सूचना ब्यूरो, भारत सरकार सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय[50]

बाल भिक्षावृत्ति के उन्मूलन में शिक्षा का महत्व

अन्य व्यक्तियों की तरह, बाल भिक्षुक भी समान मानवाधिकारों और मौलिक स्वतंत्रता के हकदार हैं। विकास के अधिकार में सूचना, शिक्षा, खेल, सांस्कृतिक गतिविधियां में शामिल होने और विचार, विवेक और धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार शामिल है। बाल अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन (यूएनसीआरसी) बच्चों को उचित गुणवत्ता वाले जीवन, चिकित्सकीय देखभाल, सामाजिक सुरक्षा और शिक्षा के अधिकार की गारंटी देता हैं। एक बच्चे के विकास के अधिकार में शिक्षा का अधिकार, सीखने का अधिकार, आराम करने और खेलने का अधिकार, एवम सभी प्रकार के भावनात्मक, मानसिक और शारीरिक विकास का अधिकार शामिल। प्रत्येक बच्चे को गुणवत्ता परक शिक्षा उपलब्ध कराया जाना निम्न कारणों से महत्वपूर्ण हैरू–

- शिक्षा, ब्यक्ति को एक इंसान के रूप में अपनी पूरी क्षमता का विकास करने में महत्वपूर्ण साधन है
- शिक्षा, स्वतंत्र रूप से सोचने, सवाल करने और निर्णय लेने की क्षमता विकसित करती है

---

49 भारत की जनगणना, 2011, रजिस्ट्रार जनरल और जनगणना आयुक्त का कार्यालय, भारत, गृह मंत्रालय, भारत सरकार

50 प्रेस सूचना ब्यूरो, भारत सरकार सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भिखारी जनसंख्या का सशक्तिकरण 2013

- शिक्षा, ब्यक्ति में आत्म–सम्मान, गरिमा और आत्मविश्वास की भावना विकसित करती है
- शिक्षा, ब्यक्ति में नैतिक मूल्यों और आलोचनात्मक निर्णय की भावना को विकसित करती है
- साथी मनुष्यों और प्रकृति से प्यार और सम्मान करना सीखें
- शिक्षा, ब्यक्ति में नागरिक भावना, नागरिकता और सहभागी लोकतंत्र के मूल्यों का विकास करती है और
- शिक्षा, ब्यक्ति को निर्णय लेने में सक्षम बनाती है ।

बाल शिक्षा से सम्बंधित राष्ट्रीय एवम अंतरराष्ट्रीय विधियाँ

संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के बाद से बुनियादी शिक्षा का अधिकार, मानव अधिकारों पर लगभग हर अंतरराष्ट्रीय घोषणा का एक प्रमुख तत्व रहा है। संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकारों की घोषणा, 1948, बाल अधिकारों पर सम्मलेन,1959, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय संधि,1966, यूएनसीआरसी, 1990, सभी के लिए शिक्षा पर विश्व घोषणा, बच्चों की उत्तरजीविता, सुरक्षा और विकास पर विश्व घोषणा,1990,बीजिंग घोषणा,1995, सभी एक अधिकार के रूप में शिक्षा के प्रति प्रतिबद्धता व्यक्त करते हैं। संविधान ने अनुच्छेद 45 में अनिवार्य शिक्षा को राष्ट्रीय नीति का विषय बनाया है। संविधान का अनुच्छेद 45, एक निर्देशक सिद्धांत के रूप में यह बताता है कि 14 वर्ष की आयु तक के प्रत्येक बच्चे को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्राप्त होगी। अनुच्छेद 39एफ, 46, और 47 इस संवैधानिक निर्देश को और समर्थन देता है। संविधान का अनुच्छेद 28 बच्चों को कुछ शैक्षणिक संस्थानों में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक कार्यशाला में उपस्थिति के संबंध में स्वतंत्रता प्रदान करता है। संविधान का अनुच्छेद 29 धर्म, नस्ल, जाति और भाषा के आधार पर भेदभाव किए बिना शैक्षणिक संस्थानों (राज्य सहायता प्राप्त) में प्रवेश का अधिकार प्रदान करता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने दो एतेहासिक फैसलें मोहिनी जैन बनाम भारत संघ और बाद में जे. पी. उन्नीकृष्णन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य के मामले में मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा के अधिकार को देश के सभी बच्चों के लिए भारतीय संविधान की धारा 21 के तहत जीवन के अधिकार अंग माना है। इसके बाद भारत ने यूएनसीआरसी की पुष्टि की और संविधान के अनुच्छेद 51 (सी) के एक भाग के रूप में, अंतरराष्ट्रीय कानूनों और संधियों के प्रति सम्मान को बढ़ावा देने के लिए स्वयं को बाध्य बनाया। भारत में बाल शिक्षा के विधिक विकास का क्रम निम्नवत है–

- 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनपीई), 1986 को अपनाया गया।
- 1987 में कई बड़ी केंद्र–सहायता प्राप्त योजनाएंध्कार्यक्रम जैसे ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड और शिक्षक शिक्षा के पुनर्गठन और पुनर्गठन की योजनायें शुरू की गई।
- 1988 में एनएलएम लॉन्च किया गया।
- 1992 में एनपीई, 1986 को संशोधित किया गया।
- 1994 में चयनित जिलों में प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने के लिए जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी) शुरू किया गया।

- 1995 में प्राथमिक शिक्षा के लिए पोषण संबंधी केन्द्र सहायता प्राप्त राष्ट्रीय कार्यक्रम, जिसे मध्याह्न भोजन योजना (एमडीएमएस) के नाम से जाना जाता है, लॉन्च किया गया (एमडीएमएस)।
- 1999 में भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अंतर्गत स्कूली शिक्षा और साक्षरता का एक अलग विभाग बनाया गया।
- 2001 में प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लिए प्रमुख कार्यक्रम सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) लॉन्च किया गयाय एवम महिला सशक्तिकरण पर राष्ट्रीय नीति को अपनाना।
- 2002 के संविधान (छियासीवें संशोधन) अधिनियम ने अनुच्छेद 21–ए पेश किया, जो छह से चौदह वर्ष की आयु के सभी बच्चों के लिए एक मौलिक अधिकार के रूप में मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा स्थापित करता है।
- 2003 में राष्ट्रीय युवा नीति (एनवाईपी), 2003 तैयार की गई।
- 2004 में (शैक्षणिक उपग्रह), विशेष रूप से शिक्षा के लिए समर्पित एक उपग्रह, दुर्गम समूहों सहित सभी को अच्छी गुणवत्ता की शिक्षा प्रदान करने के लिए आधुनिक तकनीक का उपयोग करने के लिए लॉन्च किया गया था।
- 2005 में स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एन सी एफ –2005) तैयार की गई।
- 2007 में ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007–12) शुरू की गई।
- 2009 में निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम (आरटीई) पारित किया गया था।
- 2011 में संशोधित केंद्र–प्रायोजित योजना उच्च माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरणश को मंजूरी दी गई।
- 2012 में बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007–12) शुरू की गई।
- 2013 में (प) राष्ट्रीय प्रारंभिक बचपन देखभाल और शिक्षा (ईसीसीई) नीति अपनाई गई एवम ईसीसीई के लिए भारत सरकार के प्रमुख कार्यक्रम, एकीकृत बाल विकास सेवाओं को पुनर्गठित और मजबूत किया गया।
- 2014 में राष्ट्रीय युवा नीति, 2014 को अपनाया गया।

आरटीई अधिनियम, 2009 की मुख्य विशेषताएं

भारत के बच्चों के लिए, आरटीई अधिनियम, 2009 को राष्ट्रपति द्वारा 26 अगस्त 2009 को सहमति प्रदान की गयी। आरटीई अधिनियम, 2009 के तहत, भारत के इतिहास में, पहली बार बच्चों को राज्य द्वारा गुणवत्तापूर्ण प्रारंभिक शिक्षा का अधिकार प्रदान किया गया है। आरटीई अधिनियम, 2009 बाल शिक्षा के सम्बन्ध में निम्न प्रावधान किये गये हैं–

1. भारत में 6 से 14 वर्ष की आयु के बीच का प्रत्येक बच्चा मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का हकदार है।
2. प्राथमिक विद्यालय समाप्त होने तक, किसी भी बच्चे को रोका नहीं जाएगा, निष्कासित नहीं किया जाएगा, या बोर्ड परीक्षा देने से वंचित नहीं किया जाएगा।
3. यदि छह वर्ष से अधिक आयु का कोई बच्चा कभी स्कूल नहीं गया है या, यदि स्वीकार किया जाता है कि वह अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी करने में असमर्थ है, तो उसे

एक ऐसी कक्षा में प्रवेश दिया जाना चाहिए जो उसकी उम्र के लिए उपयुक्त हो और उन्हें विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करने का अधिकार होगा।

4. प्रारंभिक शिक्षा में प्रवेश के लिए बच्चे की उम्र, जन्म प्रमाण पत्र के आधार पर निर्धारित की जाएगी। जन्म प्रमाण पत्र के अभाव में किसी भी बच्चे को स्कूल में प्रवेश से वंचित नहीं किया जाएगा।

5. प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने वाले बच्चे को एक प्रमाण पत्र प्रदान किया जाएगा।

6. प्राथमिक विद्यालयों में 1रू30 और उच्च प्राथमिक विद्यालयों में 1रू35 निश्चित छात्र–शिक्षक अनुपात होना चाहिये।

7. अधिनियम में कहा गया है कि देश के सभी निजी गैर सहायता प्राप्त स्कूलों को आर्थिक रूप से वंचित बच्चों को कक्षा एक में प्रवेश के लिए 25 प्रतिशत आरक्षण देना होगा।

8. पांच साल के भीतर, स्कूल के शिक्षकों के पास अपनी नौकरी खोने से बचने के लिए पर्याप्त प्रोफेशनल डिग्री होनी चाहिए।

9. स्कूल के बुनियादी ढांचे (जहां समस्याएं हैं) को तीन साल के भीतर सुधार किया जाना चाहिए अन्यथा मान्यता रद्द कर दी जाएगी।

10. राज्य और केंद्र सरकारें वित्तीय खर्चा वहन करेंगी.

2020 राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 का मसौदा तैयार किया गया। 2010 आरटीई अधिनियम 2009, 1 अप्रैल 2010 से लागू हुआ ।

देश में बाल भिक्षावृत्ति के कारण बाल शिक्षा के समक्ष उत्पन्न गंभीर चुनौतियां

राष्ट्रीय क्राइम ब्यूरो के आंकडो के अनुसार भारत में प्रति 8 मिनट में एक बच्चा गायब हो जाता है जिसमें से 50 प्रतिशत को भी पुलिस ट्रेस नहीं कर पाती। इनमें से अधिकांश बच्चों को संगठित अपराध में लिप्त संगठनों के द्वारा पोर्नोग्राफी, वेश्यावृत्ति, मानव अंगों के अवैध व्यापार समेत भिक्षावृत्ति के ब्यापार में ढकेल दिया जाता है।भिक्षावृत्ति से जुडे नाबालिगों का प्रयोग संगठित अपराध समूह के द्वारा कई अन्य अवैध गतिविधियों में किया जाता है। उदाहरण के लिए ड्रग पेडलर, अवैध हथियारों की आवाजाही, पुलिस या अन्य की निगरानी, चोरी समेत अन्य छोटे–मोटे अपराधों इत्यादि में ।इसके साथ ही हत्या लूट जैसे गंभीर मामलों में भी भिक्षावृत्ति में शामिल नाबालिगों का प्रयोग किया जाता है क्योंकि नाबालिगों के लिए कानून कठोर नहीं होते हैं और पकडे जाने के बावजूद वह आसानी से कुछ समय बाद मामूली सजा काट कर वापस लौट आते हैं। इसके साथ ही भिक्षावृत्ति से जुडे बालकों का मानसिक और शारीरिक उत्पीडन किया जाता है जो कि गंभीर चिंता का विषय है। वर्तमान समय में बाल भिक्षुक इन तमाम समस्यायों से जुझ रहे हैं जिसकारण बाल भिक्षुकों में से अधिकांशतः अपनी प्राथमिक शिक्षा को भी पूर्ण नहीं कर पाते द्य अशिक्षित होने के वजह से वयस्क होने पर भी उन्हें कोई उपयुक्त रोजगार नहीं मिल पता जिससे वे आजीवन भिक्षावृत्ति के कुचक्र में फस कर रह जाते हैं तथा इससे कभी भी बहार नहीं निकल पाते

निष्कर्ष एवम समाधान

शिक्षा प्रत्येक बच्चे का मौलिक अधिकार है, जो उनकी वृद्धि और विकास के लिए आवश्यक है। शिक्षा के महत्व को कम करके नहीं आंका जा सकता, क्योंकि यह बच्चों को ज्ञान, कौशल और मूल्य प्राप्त करने में सक्षम बनाता है जो उनके व्यक्तिगत और सामाजिक विकास के लिए आवश्यक हैं। हालाँकि, शिक्षा को बुनियादी अधिकार के रूप में मान्यता दिए जाने के बावजूद, दुनिया भर में लाखों बच्चे अभी भी शिक्षा के अधिकार से वंचित हैं। बच्चों के लिए शिक्षा का अधिकार उनके समग्र विकास और प्रगति के

लिए आवश्यक है। शिक्षा बच्चों को ज्ञान, कौशल और मूल्यों से सुसज्जित करती है जो एक उत्पादक और पूर्ण जीवन जीने के लिए आवश्यक हैं। यह उन्हें विकल्प चुनने, अपने अधिकारों का प्रयोग करने और अपने समुदायों के विकास में भाग लेने का अधिकार भी देता है। शिक्षा गरीबी कम करने, लैंगिक समानता को बढ़ावा देने और सतत विकास के अवसर पैदा करने का भी एक शक्तिशाली उपकरण है। बच्चों के लिए शिक्षा का अधिकार एक मौलिक अधिकार है जो विभिन्न अंतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय कानूनों में निहित है। यह उनके समग्र विकास और प्रगति के लिए आवश्यक है और हमारे समाज के भविष्य को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसलिए, यह सुनिश्चित करना हर सरकार की जिम्मेदारी है कि हर बच्चे को मुफ्त, अनिवार्य और समावेशी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मिले। प्रत्येक राज्य सरकार को बच्चों के कल्याण के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए इस मुद्दे से निपटने के लिए और अधिक कड़े प्रावधान बनाने चाहिए। तत्पश्चात बाल भिखारियों के लिए एक विशेष पुनर्वास कार्यक्रम तैयार किया जाना चाहिए जिसके तहत बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाय इसके बाद उनकी क्षमताओं के मुताबिक कौशल विकास करके निजी या सरकारी संस्थानों में रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना चाहिए। इसके साथ हि हमें समाज में इसके प्रति लोगों के बीच जागरूकता फैलानी होगी, जहाँ हम सबके भागीदारी से बाल भिक्षावृति को खत्म करने में आसानी होगी।

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

NAAGS KANPUR

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

वर्तमान परिपेक्ष्य में बाल सतसई की उपादेयता

डॉ. वीना छंगानी
शोध निदेशक
डीन, मानविकी एवं कला संकाय
अपेक्स विश्वविद्यालय, जयपुर
राम दयाल बैरवा
शोधार्थी
मानविकी एवं कला संकाय
अपेक्स विश्वद्यालय, जयपुर

शोध सार–
वर्तमान समय में यदि हम आशा करते हैं कि आने वाली पीढ़ी संस्कारित हो तो बाल साहित्य के सृजन पर जोर देना होगा तथा साहित्यकारों को उचित दायित्व का निर्वाह करना होगा जिससे बच्चों को सही दिशा मिले, क्योंकि आज का बालक ही कल का भविष्य है। अतः उन्हें संस्कार देना हमारा कर्तव्य है और बच्चों में संस्कार का सृजन साहित्य के माध्यम से कर सकते हैं। बच्चों के लिए परिवार अत्यंत महत्वपूर्ण होता है, परिवार ही बालकों की प्रथम पाठशाला मानी जाती है। बच्चों की प्रथम गुरु माता होती है जिससे बच्चे में संस्कारों का प्रस्पुठन होता है। बच्चों में सदाचार, संस्कार, शालीनता, रहन–सहन का ढंग और चरित्र, उपदेश देने से नहीं बल्कि परिवार में माता–पिता के आचरण, व्यवहार आदि से आते हैं। बच्चों के विकास में द्वितीय स्थान साहित्य का होता है।बच्चों पर परिवार के संस्कार के साथ ही साहित्य का भी गहरा प्रभाव पड़ता है। बालकों के विकास में बाल साहित्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बाल मनोवृति के समुचित विकास के लिए बाल साहित्यिक विधा आवश्यक है। जिससे कठिन से कठिन समस्या को भी साधारण कहानी से हल कर सके और मन में उठने वाली जिज्ञासाओं की पूर्ति कर सकें। वर्तमान समय में बाल साहित्य में नंदन, चंपक, चंदामामा आदि पत्रिकाओं के माध्यम से पशु–पक्षियों की कथाओं द्वारा बच्चों में समझ व ज्ञान विकसित करने का प्रयास किया जा रहा है। डॉ. हरिकृष्ण देवसरे लिखते हैं– "आज बाल साहित्य का अर्थ केवल बच्चों का मनोरंजन करना और उनकी ज्ञान पिपासा को शांत करना ही नहीं बल्कि उन्हें आधुनिक जीवन और समाज के मूल्यों से जोड़ना भी है। बच्चे जिस परिवेश में रहते हैं उसे सुगमता से समझे और अपने आसपास की समस्याओं के समाधान खोज सके।"1

बाल साहित्य में ऐसे विषयों का प्रतिपादन होना चाहिए जो सामाजिक मूल्यों की रक्षा कर सकें और बालकों में आध्यात्मिक, बौद्धिक और शारीरिक क्षमताओं को अभिव्यक्त और प्रोत्साहित कर सके। बाल साहित्य में अन्य विधाओं की भांति बाल सतसई का भी महत्वपूर्ण स्थान है। डॉ. परशुराम शुक्ल ने बाल सतसई के केंद्र में बच्चों को रखा। उन्होंने बच्चों के महत्व को लगभग संपूर्ण काव्य में दिखाया। अक्सर हम बच्चों को ईश्वर का रूप मानते हैं, और उन्हीं ईश्वर प्रदत्त बच्चों के साथ पशुवत व्यवहार भी करते हैं। बाल सतसई के उपयोग से माता–पिता, अभिभावक तथा शिक्षक बच्चों के महत्व को समझेंगे, साथ ही बच्चों के साथ उनके व्यवहार में परिवर्तन आएगा। साहित्यिक दृष्टि से उत्कृष्ट कृति बाल सतसई बालकों के व्यक्तित्व का संतुलित विकास, शारीरिक विकास, मानसिक विकास, बौद्धिक विकास और नैतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है।

बीज शब्द– बालक, बाल साहित्य, सतसई, व्यक्तिगत विकास, उपादेयता, परिवार, परंपरा।

शोध आलेख– "वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बाल सतसई की उपादेयता"

उपयोग में आने वाली अवस्था या भाव के उपयोगी तथा लाभप्रद होने की स्थिति को उपादेयता कहते हैं। जब कोई रचनाकार किसी रचना का सृजन करता है तब उसके मस्तिष्क में यह भाव पैदा होता है कि समाज में उस रचना की क्या उपादेयता होगी? सामान्यतः उपादेयता का अर्थ उपयोगिता से होता है। बाल साहित्य दो शब्दों बाल और साहित्य से मिलकर बना है, जिसका अर्थ होता है बालकों के मनोविज्ञान को ध्यान में रखकर रचा गया साहित्य, जो कि बच्चों के मनोरंजन के साथ रूचिपूर्ण अध्ययन करने के लिए लिखा जाता है। बाल साहित्य में पंचतंत्र जैसी रचना हुई जो मनोरंजन के साथ ज्ञान भी प्रदान करती हैं। किसी भी साहित्यिक विधा की रचनाओं में लेखकीय चिंतन और समसामयिक विचारधारा का अपना महत्व होता है। बाल साहित्य में अनेक रचनाकार बच्चों की रुचियों, उनके मनोविज्ञान और आधुनिक जीवन से जुड़ने के बाद उनकी समस्याओं से दूर हटकर रचनाएं लिखते हैं।

आज हमें ऐसे साहित्य की आवश्यकता है जिसके माध्यम से बालकों में प्रेम, सहिष्णुता और आपसी सहयोग के महत्व को विकसित किया जा सके तथा बच्चों में उदात्त भावना का विकास संभव हो सके। यदि इस दृष्टिकोण से विचार किया जाए तो डॉ. परशुराम शुक्ल कृत बाल सतसई इसका अपवाद नहीं है। बाल सतसई साहित्यिक कलात्मकता के साथ ज्ञान उपयोगी तथ्यों और संवेदनाओ को बहुत ही सुंदर और सरल रूप में प्रस्तुति करती है। बाल सतसई का एक एक दोहा बालोपयोगी है, बालक ही नहीं बल्कि बच्चे कहीं अधिक उनके अभिभावकों, शिक्षकों, माता–पिता, प्रशासन, इत्यादि के लिए भी उपयोगी है।

माता–पिता, अभिभावकों के लिए उपादेयता–

वर्तमान परिपेक्ष्य में माता पिता के सम्मुख बच्चों के उचित लालन–पालन की समस्या आ खड़ी हुई है। दुर्व्यवहार से बच्चों में असामाजिकता उत्पन्न होती है। अभिभावकों के दुर्व्यवहार से आक्रामकता एवं हिंसक प्रवृत्ति तथा नकारात्मक प्रतिक्रिया से नकारात्मकता आ जाती है। बाल सतसई के द्वारा डॉ. शुक्ल माता–पिता अभिभावकों से बच्चों के साथ किस तरह व्यवहार करना चाहिए? इसका मार्गदर्शन करते हैं। अभिभावकों का बच्चों के साथ किया गया व्यवहार बच्चों के व्यवहार को प्रभावित करता है। माता–पिता जो कुछ भी करते हैं, बच्चे उसे देखकर सहज ही खुद को उसी रूप में डालते हुए उसका अनुकरण करने लगते हैं।

"बच्चों को क्या चाहिए, उनसे पूछिए आप।
बिन इच्छा मत डालिए, उन पर अपनी छाप।"2

डॉ. परशुराम शुक्ल अभिभावकों एवं माता पिता से कहना चाहते हैं कि उन्हें बच्चों की इच्छाओं को जानने का प्रयास करना चाहिए। नकारात्मक प्रतिक्रिया बच्चों पर गलत प्रभाव डाल सकती है। अतः महत्वपूर्ण बातों का ध्यान रखना चाहिए–

"छोटे बच्चे सीखते, देख–देख व्यवहार।
यह अपने व्यवहार, पर करते नहीं विचार।।'3

बच्चे दूसरों के व्यवहार को देखकर ही सीखते हैं, वे अपने बड़ों, माता–पिता की नकल करते हैं, जैसा व्यवहार वे अपने आसपास देखते हैं, बच्चे ठीक वैसा ही करने लगते हैं। वे उचित अनुचित का भेद नहीं करते और ना सोचते। माता–पिता को बच्चों के साथ अलग से समय बिताना चाहिए। प्रेम पूर्वक व्यवहार करना चाहिए, तभी बच्चे अपने व्यवहार को परिवर्तित कर सकेंगे।

परिवार के लिए उपादेयता–

वर्तमान परिपेक्ष में संयुक्त परिवार का युग धीरे–धीरे पीछे छूटता जा रहा है। आधुनिकता की दौड़ में परिवारों का महत्व समाप्त हो रहा है। डॉ. परशुराम शुक्ल बच्चों के लिए परिवार को आवश्यक मानते हैं, तथा बाल सतसई में परिवार का महत्व स्पष्ट करते हैं–

"माता–पिता भाई–बहन, छोटा सा परिवार।
सभी सुखी रहते हैं, मिलती खुशियां अपार।।'4

वर्तमान समय में परिवार की परिभाषा बदल गई है, संयुक्त परिवार के स्थान पर सीमित परिवार को लोग पसंद करते हैं। माता–पिता के अतिरिक्त अगर कोई एक भाई या बहन हो या फिर वो भी नहीं। छोटे परिवार में सभी सदस्य सुख पूर्वक निवास करते हैं, प्रसन्नतापूर्वक और हंसी खुशी के साथ रहते हैं। परिवार में सदस्य कम होने से बच्चों के पालन पोषण, देखरेख, शिक्षा, आदि की व्यवस्था सुविधाजनक ढंग से हो जाती है।

वर्तमान में पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव के कारण आधुनिक पीढ़ी का अपने परिवार के बड़े बुजुर्गों के प्रति आदर भाव खत्म होता जा रहा है। परिवार में बड़े बुजुर्ग माता–पिता बच्चों को बोझ के समान प्रतीत होते हैं। वे अपने संस्कार और मूल्य से हटकर एकाकी जीवन व्यतीत करना पसंद करते हैं। आज संयुक्त परिवार को बचाने के लिए हमारे समाज को स्वस्थ होकर संयुक्त परिवार के महत्व को समझना होगा।

"दादा दादी का मिले, यदि बच्चों को प्यार।
ईश्वर की हो कृपा सब, सुखी रहे परिवार।।
नानी को परिवार में, बच्चे करते याद।
कहती रोज कहानियां, दिन ढलने के बाद।।'5

परिवार में बच्चों और दादा–दादी का संबंध सबसे गहरा होता है। बच्चे भी दादा दादी को सर्वाधिक प्यार करते हैं, और दादा–दादी का भरपूर प्यार भी मिलता है। इनसे ही बच्चों की सबसे ज्यादा निकटता होती है। इसी तरह नाना–नानी भी प्रिय होते हैं, बच्चे नाना नानी को भी बहुत याद करते हैं। नानी उन्हें शाम होते ही कैसे किस्से कहानी सुनाने बैठ जाती है, बच्चे भी नानी से कहानी सुनने की जिद करने लगते हैं, जिससे बच्चों का मनोरंजन और ज्ञानवर्धन होता है।

"होती है परिवार में, एक अनोखी बात।
नहीं दिख रहा दूर तक, दिन हो चाहे रात।।

दुनिया सुख में साथ है, दुख में ले मुंह मोड़।
पर अपने परिवार को, देत न कोई छोड़।।'6

डॉ. परशुराम शुक्ल बाल सतसई के माध्यम से परिवार की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि भारतीय परिवारों में दिखावे की नीति नहीं होती है। इनमें सहज और स्वभाविक प्रेम, स्नेह, अपनापन की स्थिति देखने को मिलती है। परिवार के सदस्य सुख दुख दोनों स्थितियों में साथ रहते हैं, तथा किसी भी विपत्ति या संकट का सामना करने के लिए तुरंत तैयार हो जाते हैं। परिवार में सभी को मिलजुलकर साथ रहना चाहिए। इसके लिए सबसे बड़ी औषधि आपसे प्रेम और विश्वास है।

शिक्षक के लिए उपादेयता–

डॉ. शुक्ल बाल सतसई में 'बच्चे और शिक्षक' नामक अध्याय में शिक्षकों का बच्चों के साथ कैसा व्यवहार होना चाहिए। उनकी सीमाओं, मर्यादाओं आदि पर प्रकाश डालते हुए शिक्षकों की क्या उपादेयता है, यह बताने का प्रयास किया गया–

"बच्चा पढ़ता ध्यान से, खेलकूद के साथ।
भूल करे समझाइए, बिना लगाए हाथ।।
मारपीट से टूटता, बच्चे का विश्वास।
नफरत उनमें जागती, ले बदले की आस।।'7

बच्चों को विद्यालय में पढ़ने के लिए साथ–साथ खेलकूद की आवश्यकता होती है, इससे शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक विकास होता है। बच्चों को दंड देने से स्थान पर प्रेम पूर्वक समझाने से गलतियां कम करते हैं। मारपीट से दुष्प्रभाव पड़ता है, मनोबल टूट जाता है। बच्चे के मन में हीन भावना से कुंठित हो जाते हैं। बच्चों के साथ प्यार और सहानुभूति का व्यवहार करना चाहिए, तभी वे आपको भी प्यार और सम्मान देंगे।

'एक भरा है ज्ञान से, दूजा शक्ति प्रदान।
दोनों यदि मिल जाए, तो भारत बने महान।।'8

बाल साहित्यकार डॉ. परशुराम शुक्ल शिक्षक को ज्ञान का भंडार मानते हैं। युवा विद्यार्थी शक्ति का स्वरूप है। शिक्षक और छात्र दोनों की अपनी–अपनी विशेषताएं हैं, यदि दोनों मिल जाए अर्थात ज्ञान और शक्ति आपस में मिल जाए तो किसी भी देश, किसी भी राष्ट्र को महान बनने से कोई नहीं रोक सकता है, वह अवश्य ही मान बनेगा। अतः विद्यार्थी और शिक्षक में किसी प्रकार का मतभेद नहीं होना चाहिए। दोनों के बीच परस्पर प्रेम, सद्भावना, सहभागिता की स्थिति होनी चाहिए। तभी किसी देश का उत्थान संभव है।

"सच्चे शिक्षक की सदा, यही एक पहचान।
समदर्शी वह सभी को, माने पुत्र समान।।'9

एक सच्चा शिक्षक वही है जिसमें समदर्शी की भावना हो, किसी के साथ भेदभाव की भावना नहीं रखते हो, तथा विद्यार्थियों को पुत्र पुत्रियों के समान समझता है। उनका भविष्य सुधारने में अपना सर्वस्व लगा देता है। शिक्षक विद्यार्थियों को पाठ्यक्रम के साथ ही विनम्रता, व्यवहार कुशलता, योग्यता का ज्ञान प्रदान करते हैं।

वर्तमान समय में शिक्षक की भूमिका को महत्वपूर्ण माना गया है। वह केवल किताबी ज्ञान ही नहीं बल्कि समाज में जीने का तरीका भी सिखाते हैं। अतः हमें गुरु अथवा शिक्षक के प्रति आदर की भावना रखनी चाहिए। शिक्षक को भी छात्रों का हर समय मनोबल बढ़ाना चाहिए। उनमें प्रेरणा का निर्माण करना चाहिए, जिससे वे सफलता के शिखर पर पहुंच कर गौरवान्वित हो सके।

प्रशासन व राजनेताओं के लिए उपादेयता—

डॉ. परशुराम शुक्ल ने अपनी रचना बाल सतसई में बच्चों के लिए प्रशासन एवं राजनेताओं की क्या भूमिका है? यह बताने का प्रयास किया है। इसके लिए बाल सतसई के विभिन्न अध्यायों 'बच्चों और राष्ट्र', 'बच्चे और राजधर्म', 'बच्चे और प्रजातंत्र', 'बच्चे और सरकार', आदि के माध्यम से प्रशासन एवं राजनेताओं के लिए बाल सतसई की उपादेयता बताई है। यह समाज एवं देश के लिए डॉ. परशुराम शुक्ल का एक महत्वपूर्ण प्रयास है।

प्रशासन, राजनेताओं एवं सरकार का दायित्व है कि जनता को बिना किसी भेदभाव के स्वशासन प्रदान करें। स्वास्थ्य एवं शिक्षा की व्यवस्था करना उसका प्रथम कर्तव्य है। लोक कल्याण के लिए चिकित्सालय, विद्यालयों का निर्माण करे। सरकार उनकी व्यवस्था करनी चाहिए।

"बच्चों का संभव तभी, समुचित स्वस्थ विकास।
सरकारें पैदा करें, कुछ करने की आस।।
तन चिथड़े रोगी बदन, बड़े बुरे बेहाल।
राम भरोसे पल रहे, यह गुदड़ी के लाल।।"10

देश का भविष्य बच्चों पर निर्भर करता है, अतः बालकों का समुचित और स्वस्थ विकास तभी हो सकता है जब सरकारें व राजनेता विशेष ध्यान केंद्रित करते हुए प्रयत्नशील रहे और जनमानस में अपने कार्य के द्वारा आशा का संचार कर सके। भारत का निम्न वर्ग संघर्ष कर रहा है, उसके शरीर पर फटे पुराने चिथड़े, टूटी—फूटी झोपड़ियां एवं बच्चे भी आधा पेट भोजन में ही गुजारा करते हैं। कभी—कभी उन्हें भूखे ही सो जाना पड़ता है। इन सब में प्रतिभावान बच्चे होने पर भी उनकी प्रतिभा का कोई मूल्य नहीं होता। प्रतिभा उनकी गरीबी में दबकर रह जाती है। वे कुपोषण के शिकार हैं, प्रदूषित वातावरण में रहने के लिए मजबूर है, रोगों से ग्रसित हो जाते हैं। देश की सरकार और राजनेताओं को उनके लिए उचित कदम उठाने की आवश्यकता है।

"प्रतिभा सिसकारी भरे, मूरख बनते शूर।
बच्चों के सम्मान से, राजनीति हो दूर।।
पालक के अज्ञान का, बच्चे बने शिकार।
करके विधि निर्माण कुछ, शासन करें सुधार।।'11

हमारे यहां निम्न वर्ग का बच्चा प्रतिभावान होते हुए भी उसकी प्रतिभा को कोई महत्व नहीं मिलता, दूसरी ओर जो मूर्ख होते हैं जिनमें प्रतिभा नहीं होती है, वे राजनीतिक लाभ उठाकर उच्च शिखर पर पहुंच जाते हैं। डॉ. परशुराम शुक्ल का कहना है कि बच्चे राजनीति का हिस्सा नहीं होते, अतः उनके साथ पक्षपात नहीं करना चाहिए। अशिक्षा के कारण सरकार की कल्याणकारी योजनाओं का लाभ नहीं ले पाते हैं। सरकार के द्वारा ऐसे कानून का निर्माण होना चाहिए जिससे गरीब, अशिक्षित निम्न वर्ग के बच्चों और परिवारों को उपलब्ध अवसरों का लाभ मिल सके।

"प्रजातंत्र के नायकों, दूर करो यह खेद।
बच्चे बच्चे में दिखे, कहीं न कोई भेद।।"12

प्रजातंत्र प्रणाली के कर्णधार राजनेताओं को स्वार्थ में न आकर देश के भविष्य के बारे में सोचना चाहिए। भेदभाव की धारणा को समाप्त कर एकरूपता लाने का प्रयास होना चाहिए।

गिरिराज शरण लिखते हैं कि– "अच्छा ही है कि लोग अपने देश के हालात पर नजर रखने लगे हैं, भिन्न भिन्न विचारधाराओं वाले राजनेताओं और उनकी राजनीति को समझने का प्रयास करने लगे हैं। अब स्वतंत्र राष्ट्रों में राजनीति का उबाल, एक आवेश की तरह होता है। इस आवेश को शांत होने में भी कुछ दिन और लगेंगे।"13

अतः हमारे देश की और राजनेताओं एवं प्रशासन की परिस्थिति इतनी जल्दी एवं आसानी से परिवर्तित होने वाली नहीं है इसे सही दिशा देने के लिए सभी को मिलकर प्रयास करना होगा एवं डॉ. शुक्ल ने अपना कदम बढ़ाते हुए छोटा सा प्रयास किया है। वर्तमान समय में प्रदेश सरकारें विद्यालयों में प्रवेश उत्सव का आयोजन करने लगी है, संभवतः डॉ. परशुराम शुक्ल जैसे बाल साहित्यकारों के साहित्य की प्रेरणा का ही यह फल है। विद्यालय में आने के लिए बच्चों को आकर्षित करने के लिए शिक्षकों को बच्चों के साथ नम्रता और ममतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए। डॉ. शुक्ल ने समकालीन परिवेश में छोटे बच्चों के स्कूल के शिक्षकों को प्रेरणा देते हुए लिखा है–

'रोता बच्चा देखकर, टीचर यह समझाय ।
अब हम तेरे पिता हैं, हम ही तेरी माय।।'14

उपर्युक्त प्रकार से व्यवहारिक परिस्थितियां बच्चों को विद्यालय के प्रति अनुराग की प्रेरणा प्रदान करेगी। इस प्रकार के चिंतन प्रस्तुत कर शुक्ल जी ने बाल सतसई को समकालीन परिवेश के लिए उपयोगी बना दिया।

बाल सतसई में डॉ. परशुराम शुक्ल ने बच्चों के विकास में सहायक आधुनिक विज्ञान के उपयोगी आविष्कारों के विषय में भी दोहे प्रस्तुत किए हैं। विज्ञान के द्वारा परिवर्तित नई तकनीक भौतिक प्रगति के क्षेत्र में अनिवार्य स्थान रखती है। बच्चों के व्यक्तित्व निर्माण के लिए विज्ञान की नई नई खोजों तथा वैज्ञानिक उपकरणों की जानकारी बहुत उपयोगी है। डॉ. शुक्ल ने 'बच्चे और विज्ञान' शीर्षक से समकालीन प्रगति के लिए उपयोगी दोहे दिए हैं।

सारांश– वर्तमान काल में बच्चे भी इस बात को भलीभांति जानने लगे हैं कि तन और मन के स्वस्थ विकास के लिए योग और विज्ञान दोनों ही अति आवश्यक है। डॉ. परशुराम शुक्ल ने बाल सतसई में योग की चर्चा करके इसे समकालीन जीवन के लिए उपयोगी स्वरूप प्रदान किया है। भारतीय समाज अंधविश्वासों और देवीय चमत्कारों का अनुगामी रहा है, किंतु विज्ञान ने अंधविश्वासों को दूर कर सच से अवगत कराया है। डॉ. शुक्ल ने बालकों के लिए वैज्ञानिक आविष्कारों और विभिन्न जानकारियों के माध्यम से अंधविश्वासों से मुक्त होने का मार्ग प्रशस्त किया है। शुक्ल ने इस संबंध में बाल सतसई में दोहे देकर इसे समसामयिक परिस्थितियों में उपयोगी बना दिया है। अतः निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि डॉ. परशुराम शुक्ल बाल व्यक्तित्व के विकास के लिए बाल साहित्य लिखने वाले एक समर्पित बाल साहित्यकार है।

डॉ परशुराम शुक्ल ने बाल सही में बाल विकास के लिए महत्वपूर्ण पृष्ठभूमियां दर्शाई है इन सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक पृष्ठभूमियो का वर्णन दोहों के माध्यम से किया है। कथ्य और शिल्प की दृष्टि से बाल सतसई एक बेजोड़ कृति है। कवि ने युगीन परिवेश के अनुरूप वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों की ओर संकेत किया है। बच्चों की शिक्षा में सूचनात्मक तथ्यों पर शुक्ल जी ने बल दिया है। बाल सतसई में 'बेटी बचाओ', 'बेटी पढ़ाओ' की राष्ट्रीय नीति पर भी दोहों के माध्यम से प्रकाश डाला है। बाल सतसई विषय, भाषा, काव्य उपादानों, आदि सभी दृष्टियों से श्रेष्ठ कृति हैं।

संदर्भ–

1. डॉ. हरिकृष्ण देवसरे, वर्ष–1979, बाल साहित्यः रचना और समीक्षा, शकुन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ– 6
2. डॉ. परशुराम शुक्ल, वर्ष– 2013, बाल सतसई, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ– 21
3. डॉ. परशुराम शुक्ल, वर्ष– 2013, बाल सतसई, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ– 36
4. डॉ. परशुराम शुक्ल, वर्ष– 2013, बाल सतसई, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ– 104
5. डॉ. परशुराम शुक्ल, वर्ष– 2013, बाल सतसई, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ– 105
6. डॉ. परशुराम शुक्ल, वर्ष– 2013, बाल सतसई, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ– 105
7. डॉ. परशुराम शुक्ल, वर्ष– 2013, बाल सतसई, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ– 32
8. डॉ. परशुराम शुक्ल, वर्ष– 2013, बाल सतसई, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ– 34
9. डॉ. परशुराम शुक्ल, वर्ष– 2013, बाल सतसई, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ– 34
10. डॉ. परशुराम शुक्ल, वर्ष– 2013, बाल सतसई, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ– 98
11. डॉ. परशुराम शुक्ल, वर्ष– 2013, बाल सतसई, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ– 100
12. डॉ. परशुराम शुक्ल, वर्ष– 2013, बाल सतसई, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ– 97
13. सं. गिरिराज शरण, वर्ष– 1996, राजनैतिक परिवेश पर व्यंग्य, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ– 7
14. डॉ. परशुराम शुक्ल, वर्ष– 2013, बाल सतसई, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ– 29

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

वर्तमान परिदृश्य में भारतीय मुस्लिम महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति

आँचल गुप्ता
शोध छात्रा समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,वाराणसी
डॉ0 राहुल गुप्ता
एसोसिएट प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

सारांश– शिक्षा किसी राष्ट्र के विकास हेतु सफलता की पहली सीढ़ी होती है अर्थात शिक्षा का संबंध किसी व्यक्ति विशेष से ना होकर संपूर्ण राष्ट्र से होता है। किसी भी समाज के विकास में महिला और पुरुष दोनों की समान हिस्सेदारी होती है ऐसे में समाज के आधे हिस्से के अशिक्षित रह जाने से समाज का पूर्ण विकास नहीं हो सकता । हमारे देश में विभिन्न धर्म जाति के लोग रहते हैं उनकी संस्कृति, सभ्यता और भाषाएं अलग अलग है। देश के संपूर्ण जनसंख्या में दूसरे स्थान पर मुस्लिम समुदाय की जनसंख्या है जबकि भारतीय अल्पसंख्यकों में 4.2 प्रतिशत से इस समुदाय का प्रथम स्थान रहा है परंतु शैक्षणिक स्थिति निचले स्थान पर है जिनमें मुस्लिम महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति काफी निम्न है। इस पिछड़ेपन का कारण जनसंख्या आधिक्य, आर्थिक पिछड़ापन, धार्मिक कट्टरवाद,पर्दा प्रथा व असुरक्षा की भावना आदि है। मुस्लिम महिलाओं की शैक्षणिक पिछड़ेपन को दूर करने हेतु और उन्हें समाज की मुख्यधारा से जोड़ने हेतु सरकार द्वारा कई शैक्षणिक कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं परंतु इन प्रयासों के बाद भी परिणाम संतोषजनक नहीं है बल्कि स्थिति और भी जटिल होती जा रही है जिस कारण मुस्लिम महिलाओं को विभिन्न सामाजिक,आर्थिक और व्यक्तिगत समस्याओं का सामना करना पड़ता है अतः इस प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से विभिन्न सरकारी प्रावधानों,नीतियों और योजनाओं, जो उसे महिलाओं के शैक्षणिक स्तर से संबंधित है पर प्रकाश डालते हुए भारतीय मुस्लिम महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति का समाजशास्त्रीय अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में आंकड़ों का संकलन हेतु द्वितीयक स्रोतों से उपलब्ध प्रासंगिक संकेतों, आधिकारिक दस्तावेजों, प्रतिवेदनो और पूर्व **में** किए गए अध्ययनों को शामिल किया गया है।

बीज शब्द – भारतीय मुस्लिम महिला, शैक्षणिक स्थिति, अल्पसंख्यक, पिछड़ापन, मुस्लिम शिक्षा, धार्मिक कट्टरवाद,पर्दा प्रथा

प्रस्तावना–

शिक्षा एक प्रक्रिया है जो व्यक्ति को अंदर से बाहर की ओर विकसित करती है । संस्कृत में शिक्षा विद्या की संतान है जिसका अर्थ है उठना । अरबी वाक्यांश विज्ञान में शिक्षा शब्द तालीम के बराबर है इसका अर्थ है भीतर से सीखना अर्थात शिक्षा किसी भी समाज में चलने वाली सदस्य प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य के जन्मजात शक्तियों का विकास उसके ज्ञान व कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और इस प्रकार से उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है । नेपोलियन के अनुसार, ''मुझे एक शिक्षित माता दो और मैं तुम्हें शिक्षित राष्ट्र दूंगा।'' अगर देश की महिलाएं अशिक्षित रहेगी देश की आधी आबादी अज्ञानी रह जाएगी। इस्लाम के अनुसार एक मां की गोद बच्चे की पहली पाठशाला होती है। "Education for All" भारत सरकार का मुख्य लक्ष्य है लेकिन अभी भी महिला साक्षरता दर सबसे कम है।

सच्चर कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार 6 से 14 वर्ष के आयु वर्ग के 14 प्रतिशत मुस्लिम बच्चों ने कभी स्कूल नहीं देखा है या ड्रॉपआउट है । 17 वर्ष के अधिक उम्र के बच्चों में मैट्रिक पास 17 प्रतिशत है जो राष्ट्रीय औसत से 25 प्रतिशत कम है राष्ट्रीय स्तर पर 62 प्रतिशत की तुलना में केवल 50 प्रतिशत मुस्लिम ही माध्यमिक शिक्षा पूरा कर पाते हैं। प्राचीन काल में शिक्षा का स्वरूप धार्मिक था। मकतब, मदरसा और सूफी संतों के खानकाह मुस्लिम शिक्षा के तीन प्रमुख केंद्र थे । मुगलकाल में प्राथमिक शिक्षा मस्जिदों में संलग्न मकतबों या जिनी व्यक्तियों के घर में स्थापित मकतबों में दी जाती थी। उच्च शिक्षा विशेषकर इस्लामी विधि तथा धर्मशास्त्र की शिक्षा सूफी संतों के खानकाओं में मिलती थी। मुगल सम्राटों द्वारा दिए गए अनुदान, भूमि और अमीर मुसलमानों द्वारा दी गई वित्तीय सहायता से मकतब और मदरसों की स्थापना की जाती थी। मुगल काल में मुस्लिम समाज ने कभी भी स्त्रियों की शिक्षा के प्रति पर्याप्त ध्यान नहीं दिया था केवल शाही परिवार की स्त्रियाँ ही शिक्षा ग्रहण कर सकती थी गुलबदन बेगम, सलीमा सुल्तान, नूरजहाँ, मुमताज महल, जहांआरा, जीनत उन्नीसा बेगम इत्यादि इसके उदाहरण है।

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य भारतीय मुस्लिम महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति का समाजशास्त्रीय अध्ययन करना है। मुस्लिम महिलाओं के पारिवारिक, आर्थिक और शैक्षिक स्थिति का अध्ययन करके उनके कम नामांकन और उच्च ड्रॉपआउट के संभावित कारणों का पता लगाना है साथ ही इसमें शिक्षा संबंधी सरकारी प्रावधानों व प्रयत्नों के प्रति मुस्लिम महिलाओं को जानकारी है या नहीं का पता लगाने एवं शैक्षणिक स्तर में सुधार हेतु आवश्यक रणनीतियों तथा उपयोगी सुझाव देने का प्रयत्न किया गया है । प्रस्तुत शोध पत्र में आंकड़ों का संकलन हेतु द्वितीयक स्रोतों से उपलब्ध प्रासंगिक संकेतों, आधिकारिक दस्तावेजों, प्रतिवेदनो और पूर्व में किए गए अध्ययनों को शामिल किया गया है। मुस्लिम शिक्षा का शाब्दिक अर्थ मुस्लिमों को दी जाने वाली शिक्षा से लगाया जाता है और इसका वास्तविक अर्थ यही है यद्यपि इसमें धार्मिक शिक्षा का भी समावेश है। मुस्लिम शिक्षा को सामान्यतः मदरसा एवं धार्मिक शिक्षा से जोड़कर देखा जाता है जो पूरी तरह से गलत अवधारणा है। मुस्लिम काल में शिक्षा दो आधार के माध्यम से प्रदान की जाती थी –

मकतब– जिस स्थान पर शिक्षा दी जाती थी उसको मकतब कहते हैं। मुस्लिम काल में प्रायः मस्जिद के पास ही मकतबो का निर्माण कार्य करवाया जाता था ।

मदरसा– मदरसा का अर्थ होता है भाषण देना । मुस्लिम काल में शिक्षा देने का माध्यम सदैव यही रहा है अत्यधिक भाषण के माध्यम से ही उस समय शिक्षा प्रदान की जाती थी।

भारत में मुस्लिम शिक्षा को प्रभावित करने वाले कारक –

- माता–पिता की खराब आर्थिक स्थिति के कारण वे अपने बच्चों को शिक्षा उपलब्ध नहीं करा पाते हैं।
- मुस्लिम समुदाय मे धार्मिक कट्टरवाद और पर्दाप्रथा होने वाले के कारण मुख्य रूप से मुस्लिम बालिकाओं को शिक्षा में रुकावटो का सामना करना पड़ता है ।
- रूढ़िवादी रवैया और पितृसत्तात्मक सोच के प्रभाव में आकर माता पिता शिक्षा के महत्व से अनभिज्ञ रहते हैं ।
- माता–पिता के स्वयं अशिक्षित रहने के कारण वे बालिका शिक्षा के महत्व से अनभिज्ञ रहते हैं ।
- मुस्लिम बालिकाओं का कम उम्र में विवाह हो जाने से शिक्षा में रूचि कम हो जाता है और वे वैवाहिक जिम्मेदारियों में उलझ के रह जाती हैं ।
- विद्यालय घर से निकट उपलब्ध नहीं होते और असुरक्षा की भावना के कारण माता–पिता बालिका को विद्यालय भेजने हेतु असुविधा महसूस करते हैं ।
- सरकार द्वारा चलाई जाने वाली मुस्लिम महिलाओं की शिक्षा से संबंधित कल्याणकारी योजनाओं के बारे में जागरूकता की कमी के कारण वे शैक्षणिक योजनाओं का लाभ उठाने में असमर्थ रहती हैं।

भारतीय मुस्लिम महिलाएं अन्य समुदायों की अपेक्षा शैक्षिक रूप से काफी पिछड़ी हुई है इसका प्रभाव यह है कि उन्हें विभिन्न पारिवारिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। समाजशास्त्रीयो ने मुस्लिम मुस्लिम महिलाओं की शिक्षा संबंधी कई अध्ययन किये हैं और अपने–अपने मत को प्रकट किए हैं:

खानम अजरा (2013) ने अपने अध्ययन में भारत ने मुस्लिम पिछड़े वर्गों को समाजशास्त्री परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास किया है जिसमें उन्होंने बताया कि मुस्लिम समाज तीन वर्गों क्रमशः अशरफ, गैरअशरफ और अरजल में बटा हुआ है, इन्होंने इस अध्ययन में भारतीय मुस्लिमों के मध्य वर्ग को शामिल किया है जो उत्तर प्रदेश राज्य के हरदोई जिला के पिहानी ब्लॉक के 500 परिवारों पर आधारित हैं।

बानो फिरदोस (2017) ने अपने लेख में यह स्पष्ट किया है कि मुस्लिम देश का सबसे बड़ा अल्पसंख्यक समुदाय (जनसंख्या का 40.23 प्रतिशत) है जो मानव विकास संकेतको के आधार पर गंभीर रूप से पिछड़ा हुआ है इनमें मुस्लिम लड़कियाँ और महिलाएँ अपने समकक्ष पुरुषों व अन्य समुदायों की तुलना में काफी पिछड़ी हुई है । इस्लाम में बताया गया है कि मां की गोद बच्चे की पहली पाठशाला होती है । कुरान की सभी आयतें जो शिक्षा से संबंधित है वह भी महिलाओं और पुरुषों की शिक्षा हेतु समान रूप से निर्देशित है इसके बावजूद मुस्लिम समाज में शिक्षा का महत्व कम है।

खान हसन जबीर (2013) ने अपने लेख में मुस्लिम महिलाओं की शिक्षा पद्धति और विकास क्रम का अध्ययन किया और इस बात को चिन्हित किया है कि मुसलमानों के बीच प्राथमिक स्तर पर साक्षरता दर उच्चतम तथा माध्यमिक व उच्च शिक्षा में निम्नतम है। इनके बीच साक्षरता अंतर भी सबसे अधिक है उन्होंने इस बात पर भी प्रकाश डाला है कि 66.60 प्रतिशतमुस्लिम महिलाएँ ही पढ़ लिख सकती है परंतु उनमें अधिकतर केवल उर्दू ही पढ़ या लिख सकती है।

मोहम्मद बख्तावर बातूल (2019) ने अपने अध्ययन में मुस्लिम महिलाओं के शैक्षणिक स्थिति को पंचवर्षीय योजना के आधार पर प्रदर्शित किया है। इन्होंने अपने लेख में यह चिन्हित किया है कि किस प्रकार समाज सुधार के लिए स्वास्थ्य एवं शिक्षा में महिलाओं के विकास को पाँच साल के योजना के माध्यम से डिजाइन किया गया था इन पंचवर्षीय योजनाओं का प्रमुख उद्देश्य अल्पविधि पाठ्यक्रम, सामाजिक सेवा संगठन, महिलाओं की आर्थिक आजादी, पेशेवर शिक्षण और कुशल प्रशिक्षण के लिए चेतना तथा अंशकालिक अवसरों की स्थापना करके पुरुषों और महिलाओं के बीच शैक्षणिक स्तर को कम करना था।

भारतीय मुस्लिम महिलाओं के शिक्षा संबंधी सांख्यिकीय आंकड़ों द्वारा उनके शैक्षणिक स्थिति को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है जो इस प्रकार से है–

सारणी संख्या.1: भारत का साक्षरता दर–2011

धर्म	**कुल**	**पुरुष साक्षरता दर**	**महिला साक्षरता दर**
भारत	73.00	80.90	64.60
हिंदू	73.30	81.70	64.30
मुस्लिम (इस्लाम)	68.50	74.70	62.00
जैन	94.90	96.80	92.90
सिख	70.90	76.20	65.10
ईसाइ	78.70	82.90	74.60
बौद्ध	76.70	85.30	67.80

स्रोत–जनगणना 2011(प्रतिशत में)

उपर्युक्त सारणी में 2011 के जनगणना के अनुसार भारत के विभिन्न धर्म आधारित समुदाय की साक्षरता दर को दर्शाया गया है जिसमें यह स्पष्ट है कि जहां भारतीय महिलाओं का समग्र साक्षरता अनुपात 64.60 प्रतिशत था जबकि मुस्लिम महिलाओं में सबसे कम प्रतिशत 62 पाया गया था वहीं दूसरी ओर जैन महिलाओं का साक्षरता दर सबसे अधिक 92.9 प्रतिशतपाया गया था अन्य समुदायों की तुलना में मुस्लिम महिलाओं की साक्षरता दर सबसे कम है वही मुस्लिम पुरुषों की तुलना में भी इन की साक्षरता दर कम है जो कि लिंग असमानता को भी दर्शाती है।

सारणी संख्या.2: एस0सी0, एस0टी0 ,ओ0बी0सी0 और मुस्लिम का शैक्षणिक सूचकांक

सूचकांक	एस0सी0 (अनुसूचित जाति)	एस0टी0 (अनुसूचित जनजाति)	ओ0बी0सी0 (पिछड़ा वर्ग समूह)	मुस्लिम समुदाय
पुरुष साक्षरता	80.3	78	78	80.6
महिला साक्षरता	64	61	69	68.8

स्रोत– नेशनल सैंपल सर्वे रिपोर्ट 78 वां चक्र (प्रतिशत में)

1950 से, राष्ट्रीय सर्वेक्षण संगठन पूरे देश में सर्वेक्षण आयोजित कर कई सामाजिक–आर्थिक विषयों पर आंकड़े एकत्रित करता है । इसके 78 वां चक्र का लक्ष्य

सतत विकास लक्ष्य संकेतों के अनुमान के लिए डाटा एकत्रित करना था । उपर्युक्त सारणी में जहां एस0सी0 की पुरुष साक्षरता 80.3 प्रतिशत और महिला साक्षरता 64प्रतिशतहै की, एस0टी0 की पुरुष साक्षरता 78 प्रतिशत है वही महिला साक्षरता 61 प्रतिशतरही, ओ0बी0सी0 में पुरुष साक्षरता 84 प्रतिशत था महिला साक्षरता 69 प्रतिशत है वही मुस्लिम पुरुष साक्षरता 80.6 प्रतिशतहै वहीं महिला साक्षरता केवल 68.8 प्रतिशत ही है जो अन्य समुदायों के तुलना में काफी कम है।

सारणी संख्या.3: उच्च शिक्षा में एस0सी0, एस0टी0,ओ0बी0सी0 और मुस्लिम का सकल नामांकन अनुपात

सकल नामांकन अनुपात	एस0सी0 (अनुसूचित जाति)	एस0टी0 (अनुसूचित जनजाति)	ओ0बी0सी0 (पिछड़ा वर्ग समूह)	**मुस्लिम समुदाय**
2018–2019	14.9	5.5	36.3	5.2
2019–2020	14.7	56	37	5.5
2020–2021	14.2	5.8	35.8	4.6

स्रोत– ऑल इंडिया सर्वे ऑन हायर एजुकेशन रिपोर्ट (ए0आई0एस0ई0) (प्रतिशत में)

वर्ष 2010–11 से शिक्षा मंत्रालय द्वारा वार्षिक वेब पर आधारित ऑल इंडिया सर्वे ऑन हायर एजुकेशन रिपोर्ट संचालित किया जा रहा है यह ए0आई0एस0ई0 (2020–21) रिपोर्ट इस क्रम में 11 वीं सर्वेक्षण है जिसका उद्देश्य देश में उच्च शिक्षा की स्थिति का मूल्यांकन करना है। उपर्युक्त आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि 2018–19 में उच्च शिक्षा में मुस्लिम समुदाय का जी0ई0आर0 5.2 प्रतिशत था जो 2019–20 में बढ़कर 5.5प्रतिशतहो गया था परंतु यह प्रतिशत 2020–21 में दोबारा से कम होकर 4.6 प्रतिशतहो गया जो अन्य समुदाय की अपेक्षा तुलनात्मक रूप से काफी कम रही ।

सारणी संख्या. 4: मुसलमानों के मध्य कार्य भागीदारी

जनगणना	पुरुष	महिला
2001	47.5	14.1
2011	49.5	14.8

स्रोत–जनगणना 2011 (प्रतिशत में)

उपर्युक्त आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि सच्चर कमेटी की रिपोर्ट के बाद जनगणना के इन 10 सालों के अंतराल में भी भारत में मुसलमानों की स्थिति में कोई महत्वपूर्ण बदलाव नहीं आया है मुस्लिम पुरुषों में कार्य भागीदारी 2011 के जनगणना के अनुसार 49.5 प्रतिशत हो गई जो 2001 में 47.5 प्रतिशत थी वही मुस्लिम महिलाओं के लिए यह 2001 से 14.1 प्रतिशत से बढ़कर 2011 में 14.8प्रतिशतकी वृद्धि हुई ।

सारणी संख्या. 5: आई0ए0एस0, आई0पी0एस0 और पुलिस बलों में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व

	सच्चर कमीशन रिपोर्ट , 2006	**गृह मंत्रालय आंकड़े जनवरी 1, 2016**
भारतीय प्रशासनिक सेवा (आई0ए0एस0)	142 में से 4790 (3.0 प्रतिशत)	164 में से 4926 (3.32 प्रतिशत)

भारतीय पुलिस सेवा(आई0पी0एस0)	128 में से 3209 (4.0 प्रतिशत)	120 में से 3754 (3.19 प्रतिशत)

वर्ष	चयन सूची में मुस्लिम अभ्यर्थियों की संख्या	चयन सूची में उम्मीदवारों की कुल संख्या	चयन सूची में मुस्लिम अभ्यर्थियों का प्रतिशत
2016	52	1099	4.73
2017	50	980	5.10
2018	28	759	3.68
2019	44	829	5.30
2020	31	761	4.07
2021	25	685	3.64
2022	29	933	3.10

स्रोत—यूनियन पब्लिक सर्विस कमिशन (यू0पी0एस0सी0)

सिविल सेवा परीक्षा (यू0पी0एस0सी0)के तीन चरण हैं । साक्षात्कार, मुख्य परीक्षा और प्रारंभिक परीक्षा। भारतीय प्रशासनिक सेवा (आई0ए0एस0), भारतीय पुलिस सेवा (आई0पी0एस0) और अन्य महत्वपूर्ण सरकारी पदों पर उम्मीदवारों का चयन करने के लिए इसे प्रत्येक वर्ष आयोजित किया जाता है। उपरोक्त आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि सच्चर कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार आई0ए0एस0 व आई0पी0एस0 में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व 3 प्रतिशत व 4 प्रतिशतक्रमशःहै जो गृह मंत्रालय के आंकड़ों के अनुसार 2016 में यह प्रतिशत मात्र 3.32 और 3.19 के आसपास ही रह गया है।

ब्रिटिश काल में परंपरागत देशी पद्धति को हटाकर उसके स्थान पर आधुनिक शिक्षा पद्धति का विकास किया गया। 1833 के चार्टर के अधिनियम अनुसार ईस्ट इंडिया कंपनी ने पहली बार शिक्षा के प्रति सरकारी उत्तरदायित्व उठाया । लॉर्ड विलियम बेंटिक ने 7 मार्च 1835 के प्रस्ताव द्वारा में मैकाले दृष्टिकोण के अनुसार शिक्षा में अंग्रेजी माध्यम द्वारा यूरोपीय साहित्य को उन्नत करने का प्रयास किया। (1854—1952) वुड घोषणा पत्र व हंटर शिक्षा आयोग (1882—1983) गठित किया गया। सैंडलर आयोग 1917 से 1919 ने शिक्षा के क्षेत्र में मुसलमानों के पिछड़ेपन को दूर करने हेतु सुझाव दिया इसके अनुसार 1920 में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की स्थापना हुई परंतु यह सभी प्रयास अंग्रेजों ने अपने हित और लाभ के उद्देश्य से किया था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात संविधान में अल्पसंख्यकों से हितों के संबंधित आवश्यक प्रावधान किया गया यह अनुच्छेद विशेषकर शिक्षा और महिला सशक्तिकरण से संबंधित है जो निम्नवत है—

1. अनुच्छेद 14— राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में पुरुषों और महिलाओं को समान अधिकार व अवसर प्रदान करता है ।
2. अनुच्छेद 15— धर्म ,जाति, वंश और लिंग के आधार पर किसी भी नागरिक के साथ भेदभाव को प्रतिबंधित करता है।
3. अनुच्छेद 15 (3)— महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक कदम उठाने हेतु राज्य को सक्षम करने का प्रावधान करता है।
4. अनुच्छेद 16— सार्वजनिक नियुक्ति के मामले में अवसरों की समानता का प्रावधान करता है।

5. अनुच्छेद 21 ए–(86 वां संविधान संशोधन 2002) 6 से 14 वर्ष के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा का प्रावधान करता है।
6. अनुच्छेद 23– मानव तस्करी और जबरन श्रम को प्रतिबंधित करता है।
7. अनुच्छेद 29 और 30– भाषा, लिपि, सांस्कृतिक और शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना व प्रशासन के स्वतंत्र चुनाव का प्रावधान करता है।
8. अनुच्छेद 39– समान कार्य के लिए समान वेतन का प्रावधान करता है ।
9. अनुच्छेद 42– कार्य और मातृत्व रहित न्याय संगत और मानवीय स्थिति सुनिश्चित करने हेतु राज्य को निर्देश देता है ।
10. अनुच्छेद 45– 6 वर्ष की आयु तक बच्चों की देखभाल व शिक्षा का प्रावधान करता है ।
11. अनुच्छेद 51 ए (क)– यह माता पिता का कर्तव्य बनाता है कि वह अपने 6 से 14 वर्ष की आयु के बीच के बच्चों को शिक्षा का अवसर प्रदान करें।
12. 73 व 74 संवैधानिक संशोधन के तहत पंचायती राज में 1\3 सीटों के आरक्षण का प्रावधान करता है ।

शिक्षा और महिला सशक्तिकरण से संबंधित सरकारी योजनाएँ ,नीतियाँ व अन्य प्रमुख कानून इस प्रकार निम्नवत है–

1. **विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948– 1949)**– यह राधाकृष्णन समिति के नाम से भी जाना जाता है जो स्वतंत्रता पश्चात पहला समिति था । भारत के द्वारा स्थापित यह आयोग महिला शिक्षा को बढ़ावा देते हुए कहता है कि शिक्षित महिलाओं के बिना लोग शिक्षित नहीं हो सकते क्योंकि शिक्षा निश्चित रूप से अगली पीढ़ी को स्थानांतरित किया जाएगा ।
2. **माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952–1953)**– इसकी स्थापना 23 सितंबर 1952 को डॉ लक्ष्मणस्वामी के अध्यक्षता में की गयी । इसे मुदलियर आयोग के नाम से भी जाना जाता है जिसने प्राथमिक शिक्षा और माध्यमिक शिक्षा के बीच एक कड़ी की भूमिका निभाई थी । इस आयोग में बालिका विद्यालय में गृहविज्ञान के शिक्षण में मौलिक सुधार की बात कही गई ताकि वह परिवार व समाज के अपने दोहरे कर्तव्य को पूरा करने हेतु शिक्षित हो सके ।
3. **राष्ट्रीय महिला शिक्षा समिति (1958–1959)**– इस समिति को दुर्गाबाई देशमुख समिति के नाम से भी जाना जाता है। इस समिति ने महिला शिक्षा संबंधी समस्याओं के निराकरण हेतु विशेष मिशनरी व राज्य में एक महिला को संयुक्त निदेशक के रूप में नियुक्त किए जाने का प्रस्ताव रखा था ।
4. **हंसा मेहता समिति (1962–1964)**– इस समिति ने प्रारंभिक स्तर पर सह शिक्षा पर जोर दिया था।
5. **भारतीय शिक्षा आयोग या कोठारी आयोग (1964–1966)**– यह आयोग **(10+2+3)** की प्रणाली पर आधारित था जिसके अंतर्गत प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा 10 वर्ष, उच्च माध्यमिक शिक्षा 2 वर्ष और व्यावसायिक शिक्षा 3 वर्ष निर्धारित की गयी थी । डॉक्टर डी0एस0 कोठारी की अध्यक्षता में भारतीय शिक्षा आयोग ने शिक्षा को विकास के साथ जोड़ा जिसके माध्यम से आधुनिकीकरण,कौशल विकास की बात कही गई वहीं दूसरी ओर बालिकाओं हेतु व्यवसायिक शिक्षा के विकास का सुझाव दिया गया था ।
6. **शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति (एन0ई0पी0) 1968, 1986 व संशोधित 1992**– यह नीति भारत में महिलाओं की स्थिति के विकास में एक प्रमुख मील का पत्थर है इसका

उद्देश्य लड़कियों की शिक्षा और राष्ट्रीय महिलाओं के व्यापक विकास से जुड़ा हुआ है। इस नीति में अल्पसंख्यक व पिछड़े समूहों की शिक्षा पर अधिक ध्यान देने की बात कही गई जिसमें अल्पसंख्यक शिक्षा संबंधी गहन क्षेत्रीय कार्यक्रम के साथ–साथ मदरसा का आधुनिकीकरण और वित्तीय सहायता सुविधाएं भी शामिल थे।

7. **राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020)**– यह नीति **(5+3+3+4)**के प्रणाली पर आधारित है इसके तहत पहले पांच साल में प्री–प्राइमरी के तीन साल और कक्षा एक और कक्षा दो साल शामिल होंगे । कक्षा 3–5 और कक्षा 6 से 8 तक के तीन–तीन साल होंगे। चौथा चरण कक्षा 9 से 12 वीं तक चार साल का होगा।

सरकार द्वारा चलाए जा रहे कार्यक्रम वह प्रयास इस प्रकार बिंदुवत है–

- **सर्वशिक्षा अभियान (2000–2002)**– जिसका लक्ष्य 2010 तक 6 से 14 आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिए सार्वजनिक प्रारंभिक शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करना था ।
- **मध्याह्न भोजन योजना (1995)**– इस योजना के माध्यम से दोहरे उद्देश्यों की पूर्ति की गई जिसमें बच्चों के पोषण स्तर को बढ़ावा और स्कूल में प्रवेश को बढ़ाना था , जिसमें 8 लाख से अधिक प्राथमिक विद्यालयों में 12 करोड़ बच्चों को 300 कैलोरी और 8 से 12 ग्राम प्रोटीन युक्त प्रति बच्चों को मध्यान्ह भोजन उपलब्ध कराने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था ।
- **बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना (2015)**– इस योजना का लक्ष्य एक बालिका के जन्म का जश्न मनाना है ताकि पुरानी और रूढ़िवादी सोच के परिणामस्वरूप लिंग निर्धारण परीक्षण को रोका जा सके व उनके अस्तित्व को सुनिश्चित किया जा सके
- **अल्पसंख्यक मंत्रालय का 3 ई कार्यक्रम**– जिसमें शिक्षा, रोजगार और सशक्तिकरण को प्रमुखता प्रदान की गई यह शिक्षकों के शैक्षणिक विकास हेतु महत्वपूर्ण कदम है ।
- **मैट्रिक पूर्व, मैट्रिकोत्तर और उच्च शिक्षा में छात्रवृत्ति का प्रावधान**–

1. **मौलाना आजाद राष्ट्रीय अध्येतावित्तीय योजना** में एमफिल और पीएचडी करने वाले छात्रों हेतु छात्रवृत्ति मौलाना आजाद शिक्षा संस्थान द्वारा 11वीं और 12वीं कक्षा के छात्रों हेतु छात्रवृत्ति ।
2. **पढ़ो प्रदेश योजना** विदेशों में उच्च शिक्षा में अध्ययनरत छात्रों को शैक्षिक ऋण पर ब्याज देना ।
3. **नया सवेरा कार्यक्रम** प्रशासनिक सेवाओं ,मेडिकल,इंजीनियरिंग,बैंकिंग की प्रवेश परीक्षाओं की तैयारी हेतु निःशुल्क कोचिंग की व्यवस्था ।
4. **नई उड़ान योजना** लोक सेवा आयोग ,राष्ट्रीय लोक सेवा आयोग व कर्मचारी चयन आयोग के प्रथम स्तर की परीक्षा उत्तीर्ण करने पर अल्पसंख्यक प्रतिभागियों को अगले चरण के हेतु निःशुल्क कोचिंग की व्यवस्था ।
5. **नयी मंजिल योजना** में ड्रॉपआउट हुए विद्यार्थी को रोजगार हेतु सक्षम बनाया जाता है जिसके 42 प्रतिशत पर महिलाएं आरक्षित है ।
6. **प्रधानमंत्री का 15 सूत्रीय कार्यक्रम** के तहत अल्पसंख्यक वित्त एवं विकास निगम का गठन 1984 में किया गया जिसमें अल्पसंख्यकों को व्यवसाय प्रशिक्षण, कौशल सुधार और कोचिंग व्यवस्था प्रदान की जाती है।

निष्कर्ष –

प्रस्तुत शोध पत्र वर्तमान परिदृश्य में भारतीय मुस्लिम महिलाओं की शैक्षिक स्थिति पर अधारित है । यह शोध पत्र इस बात पर प्रकाश डालने का प्रयास करता है कि सरकार

द्वारा चलाए जा रहे हैं कई शैक्षणिक कार्यक्रम के बावजूद परिणाम संतोषजनक नहीं है स्थिति और भी जटिल होती जा रही है । इस शोध पत्र के माध्यम से विभिन्न सरकारी प्रावधानों , नीतियों और योजनाओं पर प्रकाश डालने का कार्य किया गया है जो मुस्लिम महिलाओं के शैक्षिक स्तर से संबंधित है । मुस्लिम समुदाय का शिक्षा संस्थान के प्रति दृष्टि अभी भी पारंपरिक है वह आधुनिक शिक्षा को स्वीकार नहीं करना चाहते हैं जिसके कारण वे सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े है उनका मदरसा वैश्वीकरण और सूचना प्रौद्योगिकी के समय में भी पारंपरिक और पुराने पाठ्यक्रम का अनुसरण कर रहा है। मदरसा को आधुनिक संस्था में बदलना चाहिए जहां धार्मिक और व्यवसाय दोनों तरह के ही अध्ययन किए जा सके । इस प्रकार मुस्लिम महिलाओं के पारंपरिक दृष्टि को बदलने की आवश्यकता है । यदि हमें वास्तव में समाज में महिलाओं की स्थिति में सुधार करना है तो मुस्लिम महिलाओं को भी शिक्षित करना होगा इसके लिए हमें भविष्य में गंभीर कदम उठाने होंगे और प्राथमिक शिक्षा से उच्च शिक्षा पर आधारित सभी पिछली नीतियों के चूक को भी सुधारना होगा। मुस्लिम महिलाओं के शैक्षिक स्थिति को सुधारने हेतु मुख्य सुझाव दिए जा सकते है जो इस प्रकार बिंदुवत है–

1. सरकार द्वारा लाए जाने वाली योजनाओं को लागू करने हेतु निगरानी के लिए जो ढांचा तैयार किया गया है वह सही नहीं है इस कारण जमीनी स्तर पर जो फायदा नजर आना चाहिए वह नजर नहीं आता है ।
2. केंद्र सरकार द्वारा लागू की जाने वाली योजनाओं में राज्य सरकार की भी समान रूप से भागीदारी आवश्यक होती है ।
3. भ्रष्टाचार व लालफीताशाही जैसे अवरोधों को कम करने का प्रयास किया जाना चाहिए, यह जमीनी स्तर पर योजनाओं के लागू होने में बाधा का कार्य करते हैं ।
4. मदरसा को आधुनिक शिक्षा से जोड़ा जाना चाहिए और मदरसा से मिलने वाले डिग्री को मान्यता प्रदान की जानी चाहिए ।
5. मुस्लिम समुदायों के बीच पर भारतीय प्रशासन व शिक्षा प्रणाली के प्रति नकारात्मक सोच को बदलने का प्रयास कर उनको जागरूक करना चाहिए।

संदर्भ –

1. खानम, अजरा (2013), मुस्लिम पिछड़ा वर्ग, सेज प्रकाशन।
2. बानो, फिरदौस (2017), भारत में मुस्लिम महिलाओं की शैक्षिक स्थिति, आई ओ एस आर जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंस
3. हुस्न मंजूर (2018), भारत में मुस्लिम महिलाओं की शैक्षिक स्थिति, आईओएसआर जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंस
4. जाबिर, हसन (2013), एजुकेशनल एंड डेवलपमेंट ऑफ मुस्लिम इन इंडिया, आईओएसआर जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज एंड सोशल

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

अतिसा और विक्रमशिला की पहचान

डॉ.उमेश कुमार सिंह
सहायक प्रोफेसर
उन्नत अध्ययन केंद्र
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और पुरातत्व विभाग
बनारस हिंदू विश्वविद्यालय

सार

पाल काल के विक्रमशिलामहाविहार स्थल की सटीक भौगोलिक स्थिति लंबे समय से विद्वानों के बीच विवाद का विषय थी। विभिन्न विद्वानों ने इस स्थल के स्थान के संबंध में अलग–अलग सिद्धांत दिये थे। जब तक उत्खनन पिन ने बिहार के भागलपुर जिले के अंतिचक गाँव में विक्रमशिलामहाविहार के सटीक स्थान का संकेत नहीं दिया, तब तक कोई सर्वसम्मति नहीं बन पाई।

मुख्य शब्द अतिसा, धर्मपाल, अंतिचक, वज्रासन

परिचय

विक्रमशिला महाविहार के अग्रणी प्रकाशकों में सबसे प्रतिष्ठित आतिश दीपमिकरा श्रीज्ञान थे, जो व्यापक रूप से यात्रा करने वाले और विश्वकोशीय ज्ञान रखने वाले व्यक्ति थे। उन्होंने विश्वविद्यालय को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध किया। विश्वविद्यालय के शैक्षणिक जीवन में उनका बहुत प्रमुख स्थान था। विश्वविद्यालय के साथ उनके जुड़ाव ने समकालीन बौद्धिक जगत की नजरों में इसकी शैक्षणिक प्रतिष्ठा को बढ़ाया। अतिसा का जन्म 982ई. में सहोर में हुआ था [1] और उनके पिता का नाम कल्याण श्री था। उनके माता–पिता विक्रमशिलामहाविहार से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए थे। उनका मूल नाम चंद्रगर्भ था। विक्रमशिलामहाविहार से संबंधित तिब्बती वृत्तांतों की संपूर्ण श्रृंखला में, एक पाठ ऐसा है जो अधिक प्रासंगिक प्रतीत होता है। यह गुरु गुण धर्माकर नामक ग्रंथ है, जिसमें दीपम्करश्रीज्ञान का जीवनी विवरण है। इसके अनुसार विक्रमशिलामहाविहार के महायाजक श्री दीपमकरा का जन्म

[1] R.K. Chaudhary, The University of Vikramasila, p.40

सहोर देश के भागला या भंगला शहर के राजा राजा कल्याण श्री के परिवार में हुआ था। राजा ने अपनी पत्नी प्रभावती के साथ विक्रमशिला के मंदिर का दौरा किया जो राजा प्रसाद के उत्तर में स्थित था। राहुल संक्रांति साहोर को बिहार में भागलपुर के पास आधुनिक सबौर और भागला या भंगाला को भागलपुर से जोड़ते हैं। लेकिन अलका चट्टोपाध्याय[2] जिन्होंने अतिसा के संबंध में सभी प्रासंगिक तिब्बती स्रोतों का नए सिरे से अध्ययन किया था, ने बंगाल के विक्रमपुर को उनका जन्म स्थान बताया। लेकिन अलका चट्टोपाध्याय और अन्य की उपरोक्त पहचान पर नए सिरे से नजर डालने की जरूरत है। हमने अतिसा के जन्म स्थान के संबंध में उनके द्वारा दिए गए तर्कों पर ध्यानपूर्वक विचार किया है। उन्होंने स्वीकार किया है कि तिब्बती ज–होर को भारतीय सा–होर कहते हैं। जहां तक हमारी जानकारी है बंगाल में सहोर जैसी कोई जगह नहीं है। लेकिन यहां बिहार में, जैसा कि राहुल सांकृत्यायन ने सुझाया है, साहोर, भागलपुर जिले में आधुनिक सबौर है, जो विक्रमशिलामहाविहार स्थल से ज्यादा दूर नहीं है। भंगाला या भागाला, बंगला की तुलना में भागलपुर के अधिक निकट है। भागलपुर और सबौरारे वर्तमान में बिहार के भागलपुर जिले में स्थित हैं।

अतिसा के जीवन में मखान–पो–मचिम–थम्स–कैड मख्येन–पा द्वारा– एस.सी. द्वारा अनुवादित। दास ने पढ़ा, श्दीपांकर का जन्म 980 ई. में वज्रासन[3] के पूर्व में स्थित देश बंगला के विक्रमपुर में गौड़ के शाही परिवार में हुआ था। वज्रासन मठ बिहार के बोधगया में था। वज्रासन से विक्रमपुर, ढाका जो अब बांग्लादेश में है, की दूरी सात सौ किलोमीटर से अधिक है। कोई व्यक्ति इतनी दूरी वाले स्थान की भौगोलिक स्थिति का उल्लेख क्यों करेगा। अतरू यह सोचना उचित है कि उपर्युक्त लेखक ने भागलपुर के निकट विक्रमशिला महाविहार का उल्लेख किया है जो वज्रासन के उत्तर पूर्व में है।

इसके अलावा निम्नलिखित बिंदुओं पर भी विचार किया जा सकता हैरू

1. उनकी सभी गतिविधियाँ मगध के आसपास केंद्रित थीं।
2. वह मगध के सभी महत्वपूर्ण महाविहारों जैसे नालंदा, ओदंतपुरी, वज्रासन और विक्रमशिला से जुड़े थे।
3. अतिसा ने अपनी प्रारंभिक दीक्षा बिहार के राजगीर के एक प्राचीन स्थल कालसिला में एक तांत्रिक योगिन के यहां प्राप्त की थी।
4. सुवर्णदीप से लौटने के बाद अतिसा सीलोन होते हुए मगध आये।
5. तिब्बत जाने से पहले उन्होंने वज्रासन, बोधगया का दौरा किया।
6. इन अवधियों के दौरान किसी भी समय, उन्होंने बंगाल में अपने तथाकथित मूल स्थान का दौरा नहीं किया।

इसलिए, अलका चट्टोपाध्याय और अन्य द्वारा पहचाने गए अतिसा के जन्म स्थान के रूप में बंगाल (ढाका) के विक्रमपुर को गहन अध्ययन के बाद और बिना किसी क्षेत्रीय वफादारी के ही जांचा, वैकल्पिक और प्रमाणित किया जा सकता है।[4] अतिसा को शिक्षा और प्रशिक्षण के लिए जेतारी के अधीन रखा गया था। इस महान शिक्षक के अधीन उन्होंने पाँच प्रकार के विज्ञानों का अध्ययन किया और वहाँ दर्शन और धर्म के अध्ययन

[2] Alka Chattopadhyay, Atisa and Tibet, p.66
[3] S.C. Das in J.B.T.S.- I, i7
[4] J. N. samadar, Glories of Magadha,p.149

के लिए अपना मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने महायान सिद्धांत के तीन पिटकों, मध्यमिका और योगाचार्य विद्यालयों के उच्च तत्वमीमांसा और तंत्र की चार कक्षाओं में दक्षता हासिल की। उन्नीस वर्ष की आयु में, उन्होंने ओदंतपुरा मठ के महासंघिकाआचार्य, सिलरक्षिता से पवित्र प्रतिज्ञा ली, जिन्होंने उन्हें दीपांकर श्रीज्ञान का नाम दिया। लेकिन हवलदार त्रिपाठी का मानना है कि श्रीज्ञान दीपांकर की उपाधि अतिसा को नालंदा के बुद्धिभद्र ने प्रदान की थी क्योंकि वह भी नालंदा में पढ़ते हैं।[5] जब उन्होंने एक विहार में बौद्ध विज्ञान का अध्ययन शुरू किया, तो उन्हें गुह्यज्ञानवज्र का नाम दिया गया और फिर उन्हें गूढ़ बौद्ध धर्म के रहस्यों में दीक्षित किया गया। जब वे केवल पंद्रह वर्ष के थे, तब उन्होंने एक गैर–बौद्ध तर्कशास्त्री को बौद्धिक विवाद में हरा दिया था। जब उन्होंने एक विहार में बौद्ध विज्ञान का अध्ययन शुरू किया, तो उन्हें गुह्यज्ञानवज्र का नाम दिया गया और फिर उन्हें गूढ़ बौद्ध धर्म के रहस्यों में दीक्षित किया गया। जब वे केवल पंद्रह वर्ष के थे, तब उन्होंने एक गैर–बौद्ध तर्कशास्त्री को बौद्धिक विवाद में हराया था। उन्होंने पन्द्रह वर्ष की आयु में संपूर्ण न्याय–विन्दु8 समाप्त कर लिया था और इक्कीस वर्ष की आयु में सभी बौद्ध और गैर–बौद्ध विज्ञानों पर पूर्ण निपुणता प्राप्त कर ली थी और उनतीस वर्ष की आयु तक आते–आते उन्होंने इसमें पूर्ण निपुणता प्राप्त कर ली थी। सामान्य विज्ञान की सभी शाखाएँ, जैसे व्याकरण, तर्कशास्त्र और ललित कलाएँ आदि। बारह वर्षों तक उन्होंने महायान और हीनयान दोनों का अभ्यास किया। उन्होंने राहुलगुप्ता और सिलारक्षिता के चरणों में पाठ किया जिन्होंने उन्हें भिक्षु के रूप में नियुक्त किया। बौद्ध धर्म में दीक्षा के बाद उन्होंने महायान ग्रंथों का विस्तार से अध्ययन किया। वह आचरण के छोटे–छोटे विवरणों सहित दैनिक जीवन के सभी नियमों का पालन करने में बहुत सावधान थे। यहां अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद वे सुवर्णद्वीप चले गये। पूरे बारह वर्ष तक वहाँ रहने के बाद वह सीलोन के रास्ते मगध लौट आये। उन्होंने सुवर्णद्वीप में बहुत नाम कमाया। अतिसा ने धार्मिक चर्चाओं में मगध की श्रेष्ठता बनाए रखी। उन्होंने नयापाल या महिपाल के शासनकाल में विक्रमशिला विश्वविद्यालय के प्रधान आचार्य का पद स्वीकार किया। वास्तव में, सुवर्णद्वीप से लौटने के बाद विक्रमशिला महाविहार उनकी गतिविधियों का मुख्य केंद्र था। अतिसा की देखरेख में महाविहार बहुत समृद्ध हुआ। अध्ययन के नए विषय शुरू किए गए और उन्होंने शिक्षण की नई पद्धति भी शुरू की। उन्होंने अपना अधिकांश समय विश्वविद्यालय के मठवासी कॉलेज के बुजुर्ग के रूप में बिताया। विक्रमशिला में अतीसा के प्रवास के दौरान बौद्ध भिक्षुओं के पास विहारों और मंदिरों की चाबियाँ रखने की प्रथा थी। अतीसा के पास अठारह कुंजियाँ थीं। उन्होंने उत्तर–पूर्वी भारत के समकालीन राजनीतिक जीवन में सक्रिय भाग लिया और पलास और कलचुरियों के बीच ध्यान किया जो मगध में वर्चस्व के लिए संघर्ष कर रहे थे। यह अतीसा की पहल पर था कि दोनों के बीच एक संधि की व्यवस्था की गई और उस पर हस्ताक्षर किए गए। उन्हें कलचुरियों द्वारा सम्मानित किया गया था। अतिसावास किसी न किसी रूप में अपने समय के लगभग सभी विहारों से जुड़े हुए थे। उनका सोमपुर (बांग्लादेश), वज्रासन (बोधगया), ओदंतपुर, नालंदा और विक्रमशिला[6] के मठों से संपर्क था। एक बौद्ध विद्वान

[5] Havaldar Tripathi, Baudhadharma aur Bihar, p. 223

[6] Majundar,Ray Choudhary and Dutta , Advanced History of India , p.168

के रूप में उनकी प्रसिद्धि दूर–दूर तक फैल गई और उन्हें तिब्बती राजा ने बौद्ध धर्म की शुद्धि के लिए आमंत्रित किया। 1040 ई. में उन्हें तिब्बत ले जाया गया। तिब्बती राजा के दूत द्वारा दो असफल अभियानों के बाद। लेकिन तिब्बत जाने से पहले, उन्होंने बोधगया और अन्य पवित्र स्थानों की तीर्थयात्रा की। बोधगया से, अतिसा नेपाल में स्वयंभूनाथ चौत्य के लिए आगे बढ़े और बिहार में पाटलिपुत्र (पटना) और चंपारण के माध्यम से नेपाल को जोड़ने वाले पुराने मार्ग से यात्रा की। बौद्ध धर्म में पुनर्जागरण लाने के लिए उन्हें तिब्बत लाया गया था। उनके साथ तिब्बत गए सभी पैंतीस विद्वान विक्रमशिला महाविहार के थे। उन्होंने बौद्ध धर्म को उसकी मूल शुद्धता में स्थापित किया। उन्होंने महायान सिद्धांत की प्रथा को पुनर्जीवित किया। उन्होंने तिब्बत में बौद्ध धर्म को विदेशी और विधर्मी तत्वों से मुक्त कर दिया और एक आंदोलन शुरू किया जिसे लामावाद सुधार कहा जा सकता है। उन्होंने तिब्बत में कानून का पहिया चलाया और उनका आगमन तिब्बती बौद्ध धर्म के इतिहास में एक मील का पत्थर साबित हुआ। उन्हें लामावाद का सबसे महान सुधारक के रूप में वर्णित किया गया है। तिब्बत में, उन्हें मंजुश्री का अवतार माना जाता है। वस्तुतः यह उन्हीं के प्रयासों का परिणाम था कि तिब्बत में बौद्ध धर्म एक धर्म के रूप में स्थापित हुआ। तिब्बत के विभिन्न प्रांतों में वितरित तेरह वर्षों तक रहने के बाद, 1054 ई. में तिहत्तर वर्ष की आयु में अतीसा की मृत्यु हो गई। उन्हें बौद्ध धर्म, दर्शन और तंत्र पर दो सौ से अधिक पुस्तकें लिखने, संकलित करने और अनुवाद करने का श्रेय दिया जाता है। उनके संदेश को निम्नलिखित शब्दों में संक्षेपित किया जा सकता हैरू

1. शत्रु और मित्र से समान प्रेम करो।
2. दूसरे की गलती की जांच न करें. अपने आप की जांच करें.
3. दूसरों का सम्मान करें और उनकी सेवा करें।
4. सीधे और स्थिर रहें.
5. सबसे पहले खुद पर नियंत्रण रखें.

पुरातात्विक साक्ष्य

साहित्य से प्राप्त सभी प्रासंगिक तथ्यों को ठीक से तौलने और अन्वेषण और उत्खनन के माध्यम से प्राप्त सामग्रियों द्वारा दृश्य को मजबूत करने के बाद, भागलपुर जिले में कहलगांव रेलवे स्टेशन के उत्तर पूर्व में 13 किलोमीटर की दूरी पर स्थित गांव अंतिचक स्थित है। पूर्वी रेलवे को विक्रमशिलामहाविहार के नाम से प्रसिद्ध एक समय के प्रसिद्ध बौद्ध मठ प्रतिष्ठान का प्रतिनिधित्व करने वाला माना जाता है। बी.पी. सिन्हा ने 1959–60 में प्रासंगिक साहित्य की जांच करने और सुझाए गए स्थलों का दौरा करने के बाद अंततः निष्कर्ष निकाला कि अंतिचक में बड़ा टीला विक्रमशिला महाविहार16 का संभावित स्थल है।

पटना विश्वविद्यालय की टीम ने वर्ष 1960 से 1969 तक एंटीचक में मठ स्थल की खुदाई की और उसके बाद भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा 1972 से 1981 तक इस स्थल की खुदाई की गई। पटना विश्वविद्यालय द्वारा लगातार नौ सत्रों में किए गए उत्खनन कार्य से टेराकोटा पट्टिकाओं से सजा हुआ एक बड़ा ईंट निर्मित चौत्य या स्तूप सामने आया।

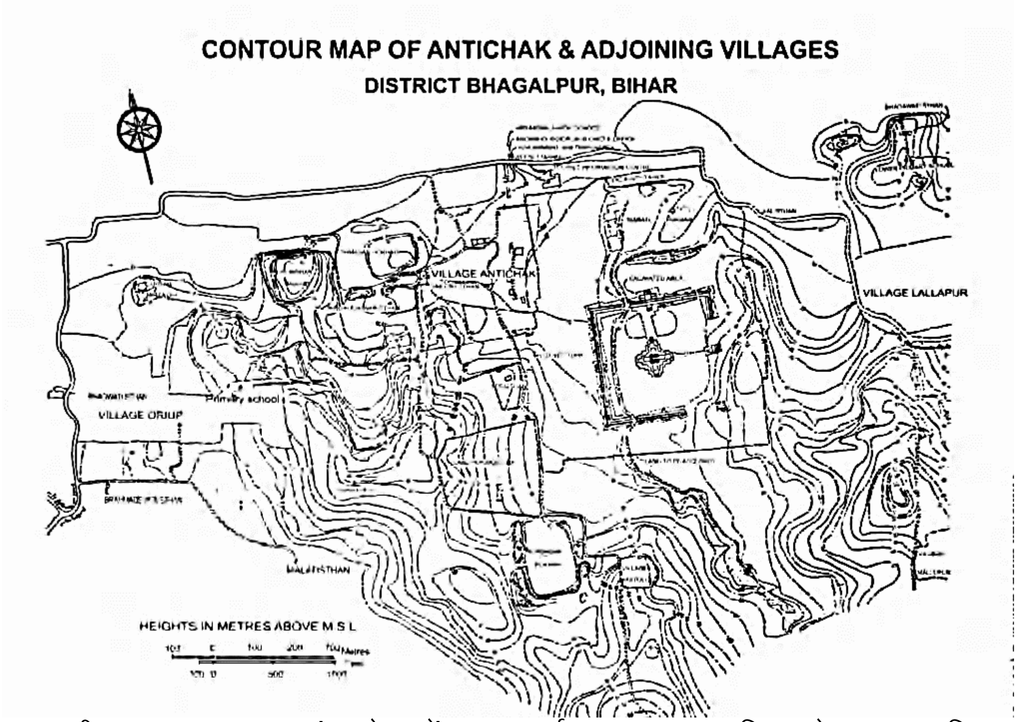

स्तूप की वास्तुकला अब बांग्लादेश में राजा धर्मपाल द्वारा स्थापित सोमपुरा महाविहार की योजना से काफी मिलती जुलती है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा की गई आगे की खुदाई ने महाविहार को पूरी तरह से उजागर कर दिया है। यह भारत में सबसे बड़े उत्खनन वाले मठ परिसर को प्रकाश में लाया है। संपूर्ण मठ परिसर 330 मीटर वर्ग का है और इसमें लगभग 208 की संख्या वाली मठ कोशिकाओं की एक श्रृंखला शामिल है। एक सामान्य बरामदा भीतरी दीवार के सहारे टिका हुआ था। इसमें बिस्तर के प्लेटफार्मों के साथ कोशिकाओं का बड़ा गोलाकार आयताकार प्रक्षेपण भी है। संभवतः उनका अभिप्राय रात में महाविहार में आने वाले आगंतुकों के लिए था जब मठ बंद था[7]। एक दिलचस्प विशेषता कुछ मठवासी कोशिकाओं के नीचे तहखाने की कोशिकाएँ हैं। वे ध्यान के लिए हो सकते हैं या अनुशासन के उल्लंघन के लिए दंड के लिए हो सकते हैं। विभिन्न तीर्थयात्रियों द्वारा दिए गए विवरणों और पुरातात्विक खोजों से ऐसा प्रतीत होता है कि विक्रमशिलामहाविहार शानदार इमारतों का एक विशाल और विस्तृत परिसर था, जो अपनी समृद्धि के शिखर पर असंख्य लोगों को जगह प्रदान करता था।

विक्रमशिला महाविहार की पहचान चूंकि अतिसा विक्रमशिलामहाविहार के महायाजक थे और यह उनकी गतिविधियों का मुख्य केंद्र था, इसलिए महाविहार का स्थान और वर्तमान स्थिति जानना आवश्यक है। कहा जाता है कि तिब्बती तारानाथ के लेखों के अनुसार विक्रमशिलामहाविक्रम की स्थापना सम्राट धर्मपाल ने की थी। इसकी पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि राजा धर्मपाल को भी विक्रमशिला देव की संज्ञा दी गई थी[8]। विक्रमशिलामहाविहार का स्थान एक लंबे समय से विवादास्पद प्रश्न रहा है। दरअसल,

[7] Susan Hantington, The Pala SenaSchools of Sculpture, p.126
[8] B.P. Sinha,Directory of Bihar Archaeology, p.1

पटना और भागलपुर जिले में ऐसे कई स्थान हैं जिन्होंने विक्रमशिलामहाविहार के वैध स्थल के रूप में मान्यता प्राप्त होने के लिए अपना दावा किया है।

बुकानन द्वारा भागलपुर जिले के अंतिचक गांव में स्थित टीले को ओल्डम द्वारा विक्रमशिलामहाविहार का स्थल माना जाता था। वह सत्य के बहुत करीब थे लेकिन उनके सुझाव को विद्वानों ने नजरअंदाज कर दिया। जिस क्षेत्र में अवशेष पाए गए हैं, वह वास्तव में एक एकल संस्कृति स्थल है और उस काल की पुरातात्विक सामग्री आम तौर पर विक्रमशिलामहाविहार से संबंधित है, लेकिन उत्खनन के परिणाम के बावजूद हमें विक्रमशिलामहाविहार शब्द वाली कोई मुहर या मुहर नहीं मिली है। साक्ष्य का एक अधिक ठोस टुकड़ा जो साबित करता है कि गांव अंतिचकस विक्रमशिला के समृद्ध बौद्ध मठ का स्थल है, अंतिचक में एक पत्थर के स्तूप के आधार के चारों तरफ बहुत लंबा शिलालेख है। शिलालेख में शविक्रमश शब्द अंकित है क्योंकि शिलालेख इस भाग से परे क्षतिग्रस्त है, यह ज्ञात नहीं है कि शिला या कोई तुलनीय अंत हुआ था20। एक अन्य साक्ष्य जो विक्रमशिलामहाविहार के प्राचीन अवशेषों के साथ इस स्थल की पहचान करने में और योगदान देता है वह एक टुकड़े की खोज है पत्थर के शिलालेख में सोधलामाथा के नाम का उल्लेख है। सोढ़ाला संभवतः पाल राजाओं के दरबार से जुड़ा हुआ था। वह दक्षिण भारत के रहने वाले थे और उन्होंने उदय सुंदरी कथा नाम से एक पुस्तक लिखी है जिसमें उन्होंने धर्मपाल का उल्लेख उत्तरापथ स्वामी के रूप में किया है। संभवतः सोढाला राजा धर्मपाल के मंत्रियों में से एक रहा होगा।[9]

पाल शासक अधिकतर बौद्ध धर्म के अनुयायी थे लेकिन उनके मंत्री आम तौर पर हिंदू थे। चूँकि राजा धर्मपाल ने विक्रमशिला मठ का निर्माण कराया था, इसलिए सोढ़ाला ने एक मठ का निर्माण कराया होगा। इस स्थल पर अब तक हुई खुदाई से एक विशाल बौद्ध मठ की भव्य स्थापना का चित्र मिलता है। उत्खनन से संकेत मिला है कि किसी हिंसक विनाश ने इस प्रतिष्ठान की भव्यता छीन ली होगी। इस प्रकार का संपूर्ण विनाश मठों के भिक्षुओं द्वारा तंत्रवाद के घृणित रूप को प्रचारित करने में अपनाई गई भ्रष्ट प्रथाओं के कारण ही हुआ। गुह्यसमाज तांत्रिक ग्रंथ इसके ज्वलंत उदाहरण हैं।

निष्कर्ष

इस प्रकार, हमारी जानकारी की वर्तमान स्थिति में, जो मठ तिब्बत में विक्रमशिला के नाम से प्रसिद्ध था, वह शायद भारत में किसी अन्य नाम से, शायद राजगृहमहाविहार के नाम से जाना जाता था। खुदाई के दौरान साइट से मिली टेराकोटा सीलिंग, हालांकि बहुत स्पष्ट नहीं है, एक महाविहार अर्थात् श्री राजगृहमहाविहार को संदर्भित करती है। हमारे पास कई स्थानों पर इस महाविहार को शाही मठ के रूप में उल्लेख करने के संदर्भ हैं क्योंकि इस तथ्य के कारण कि इस महाविहार की स्थापना नौवीं शताब्दी ईस्वी की शुरुआत में राजा धर्मपाल ने की थी। एंटीचक की खुदाई से अब तक मिले पुरातात्विक अवशेष कोई और नहीं बल्कि प्रसिद्ध विक्रमशिलामहाविहार के अवशेष हैं, जो तिब्बतियों के अनुसार, मगध में गंगा नदी के तट पर स्थित था। इस तथ्य की पुष्टि एक तिब्बती भिक्षु (श्री दीपालंकार श्रीजियाना के समकालीन) ब्रॉमटन के बयान से होती है, जिन्होंने कहा है कि नागत्सो देर रात गंगा पार करने के बाद तुरंत मठ पहुंचे और तिब्बतियों के लिए बने अतिथि कक्ष में शरण ली। .

---

[9] Vincent Smith, the Oxford History of India, from Earliest time to the end of 1911 p.185

Kapur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

दारा शिकोह की सफीनत उल–औलिया से समुद्र संगम तक की आध्यात्मिक और रहस्यमय यात्रा

डॉ सीमा गौतम
सह आचार्य
साहू राम स्वरूप महिला महाविद्यालय, बरेली
डॉ दीपक सिंह
सहायक आचार्य
स्वामी शुकदेवानंद महाविद्यालय, शाहजहांपुर

राजकुमार दारा शिकोह को एक सम्राट के पुत्र के रूप में नहीं बल्कि रहस्यवादी दार्शनिक के रूप में याद किया जाता है। प्रकृति ने उन्हें एक महान आत्मा, एक महान हृदय, एक उदार मन, एक ताजादृष्टिकोण, एक उच्च आदर्शवाद और ज्ञान के लिए एक अटूट प्रेरणा प्रदान की थी। ''उनके जीवन का महान सपना सभी धर्मों का भाईचारा और मानव जाति की एकता था। उनके बाद युद्धरत संप्रदायों और धार्मिक स्कूलों द्वारा फैलाई गई नफरत और प्रतिद्वंद्विता के माहौल में एकता की दृष्टि खो गई थी और आज भी हम धार्मिक विघटन के युग में हैं। [1] यह लेख एक अनुक्रम और दारा शिकोह के बौद्धिक विकास और सुलह–ए–कुल मंच के विचार में उनके योगदान को सफीनत–उल औलिया के संकलन से शुरू करके मजमा अल–बहरीन और समुद्र संगम तक खोजने की कोशिश करता है। यह सर्वविदित है कि इस्लाम अपने उत्थान के एक छोटे से समय के बाद बिजली की तरह हर दिशा में फैल गया, कुछ ही समय में चीन की सीमाओं तक भी पहुँच गया और उसने उम्मयाद के समय में सिंध पर विजय प्राप्त करते हुए भारत सहित अन्य राष्ट्रों के साथ व्यापारिक संबंधों की शुरुआत की।भारत विभिन्न सामाजिक, धार्मिक और बौद्धिक आंदोलनों का उद्गम स्थल रहा है और इसके इतिहास के विभिन्न चरणों में विभिन्न दर्शन और जीवन के तरीकों से युक्त एक गौरवशाली सभ्यता रही है। वेदों और

[1] 'समुद्र संगम' की एकमात्र प्रचलित संस्कृत पांडुलिपि 1891–95 भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना के संग्रह में संरक्षित है। दारा शिकुह के समुद्र संगम का एक महत्वपूर्ण अध्ययन, पीपी। प्रज्ञा–मंदिर, कलकत्ता, 1954।, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005

उपनिषदों के आलोचनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ऋषियों ने एकेश्वरवाद पर आधारित धर्म को बनाए रखा। जब हम देश के प्राचीन धर्मग्रंथों को देखते हैं, तो हमें एकेश्वरवाद और मनुष्यों की समानता को बनाए रखते हुए दुनिया में कहीं और मौजूद धर्मग्रंथों के साथ समानताएं मिलती हैं। इस्लाम की मान्यता के अनुसार ईश्वर ने हर समुदाय में पैगम्बर नियुक्त किए हैं और भारत में जो अवतार और ऋषि प्रकट हुए हैं, वे पैगम्बर हो सकते हैं। वेदों और उपनिषदों द्वारा प्रतिपादित एकता की अवधारणा और प्राचीन भारत में जैन बौद्ध तथा अन्य ऐसे ही धर्मों में सुधारवादी व्यक्तियों द्वारा प्रतिपादित समानता का संदेश, सेमेटिक या अब्राहमिक पैगम्बरों की शिक्षाओं से मिलता जुलता है।

आठवीं शताब्दी से मुसलमान अन्य राष्ट्रोंधार्मिक पुस्तकों से परिचित होना शुरू हो गए थे और इसी काल में हिंदू और बौद्ध कार्यों का अरबी में अनुवाद किया गया। बौद्धिक अंतःक्रियाओं की यह प्रक्रिया आगे आने वाली सदियों में भी जारी रही। इस संबंध में दसवीं शताब्दी अधिक महत्वपूर्ण थी क्योंकि अल–बिरूनी भारत की अपनी ऐतिहासिक यात्रा की जिसे अरबी में अल–हिंद के रूप में जाना जाता है, और अपने प्रसिद्ध तारिख अल–हिंद (भारत का इतिहास) को संकलित करता है। इसी तरह, चौदहवीं शताब्दी में सूफी गुरु अल–जिली ने तर्क दिया कि बरहिमा (हिंदू) अब्राहम के धर्म से संबंधित हैं और तौहीद (ईश्वर की सत्तामूलक एकता) को भी महसूस करना चाहते हैं। स्थानीय भारतीय संस्कृतियों और मुस्लिम दुनिया की सांस्कृतिक परंपराओं के बीच घनिष्ठ संपर्क ने भारतीय इतिहास में एक नई घटना का विकास किया – एक मिश्रित इंडो–मुस्लिम संस्कृति जिसमें विभिन्न परंपराओं के तत्व शामिल थे। आध्यात्मिकता के क्षेत्र में इस इंडो–मुस्लिम संश्लेषण की अभिव्यक्तियों में से एक कई सुधारवादी धार्मिक प्रवृत्तियों हुआ । इन धार्मिक सुधारकों ने एक–दूसरे की धार्मिक शिक्षाओं के पारस्परिक समायोजन द्वारा हिंदुओं और मुसलमानों को एक–दूसरे के करीब लाने का आह्वान किया। महान मुगल सम्राट अकबर (1556–1605) के शासन के दौरान मुस्लिम और स्थानीय हिंदू सामंती अभिजात वर्ग के बीच सहयोग की प्रवृत्ति विशेष रूप से दिखाई दिखाई दी । उन्होंने एक नया धर्म दीन–ए–इलाही भी पेश किया जिसमें उन्होंने कई धर्मोंजैसे मुस्लिम हिंदू जैन बौद्ध आदि केचयनित तत्वों को जोड़ने की कोशिश की–उनके इस कार्य का मुख्य उद्देश्य मुगल साम्राज्य की राजनीतिक स्थिरता सुनिश्चित करना तथा सभी धर्मों के बीच संघर्ष का माहौल बनाना था। दो धर्मों के बीच सांस्कृतिक आदान–प्रदान के रूप में दारा शिकोह द्वारा लिखित भज्यमजमा अल–बहरीन (दो महासागरों का संगम), तुलनात्मक धर्म पर एक पुस्तक है। उपनिषदों (सर–ए–अकबर) का फारसी में उनका अनुवाद हिंदुओं और मुसलमानों को एक–दूसरे के करीब लाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण और ठोस कदम माना जा सकता है। दारा शिकोह या सुल्तान मुहम्मद दारा शिकोह, एक सूफी, विद्वान और मुगल राजकुमार, मुगल बादशाह शाहजहाँ और उनकी पत्नी मुमताज महल के सबसे बड़े बेटे थे, जिनका जन्म अजमेर शहर में सफर 30 मार्च 1615 ई. को हुआ था।[2] राजकुमार के बचपन और शुरुआती गतिविधियों के बारे में हमारे स्रोत बहुत कम हैं। समकालीन

---

[2] फ्रांसेस्का ओरसिनी, ''कृष्ण इज द ट्रुथ ऑफ मैन'': मीर 'अब्दुल वाहिद बिलग्रामी की हक–ए हिंदी (इंडियन ट्रुथ्स) एंड द सर्कुलेशन ऑफ ध्रुपद एंड बिष्णुपद' इन थॉमस ब्रुजन एंड एलीसन बुश एड।, कल्चर एंड सर्कुलेशनः लिटरेचर इन मोशन इन प्रारंभिक आधुनिक भारत। (लीडेनः ब्रिल, 2014)।

मुगल इतिहास, वास्तव में, उनके प्रारंभिक जीवन और शिक्षा के बारे में बहुत कम जानकारी प्रदान करते हैं, मुल्ला अब्दुल लतीफ सुल्तानपुरी, मुल्ला मिराक हरवी और प्रसिद्ध सुलेखक अब्दुल रशीद दयालमी के उनके शिक्षक के रूपमें बताए जाते हैं। अठारह वर्ष की आयु में उनका विवाह नादिरा बेगम से हुआ था। अगले वर्ष दंपति ने अपना पहला बच्चा खो दिया और संभवतः इसी सदमे के कारण दारा बीमार हो गए। उनके पिता, बादशाह शाहजहाँ, उन्हें कादिरी सूफी मियाँ मीर के पास ले गए। सूफी गुरु के साथ दारा की यह पहली मुठभेड़ थी। दूसरी और आखिरी बार उन्होंने मियां मीर का दौरा किया, रज्जब दिसंबर 1634 ई में किया।

जहाँ तक दारा के राजनीतिक जीवन की बात है, शुरुआत में 1200 सैनिकों (जात) और 6000 घुड़सवारों (सवार) की कमान में पहला मनसबप्रदान किया।1645ई में, उन्हें इलाहाबाद के राज्यपाल के रूप में नियुक्त किया गया था, और अगले चार वर्षों के दौरान उन्होंने पंजाब, गुजरात को अपनी जिम्मेदारियों को निभाया, हालांकि 1652 ई उन्हेंमे इस प्रभार से मुक्त कर दिया गया था। उसी वर्ष, दारा ने 30000 सैनिकों और 20000 घुड़सवारों की कमान संभाली, जब काबुल और मुल्तान को उसके शासन में मिला लिया गया था। 1657 ई. तक, दारा की कमान के तहत सैनिकों की संख्या 60000 सैनिकों और 40000 घुड़सवारों तक पहुंच गई थी।इसके अलावा, बाद में उसी वर्ष, अपने पिता शाहजहाँ की बीमारी के कारण, उन्हें साम्राज्य के मामलों की देखभाल के लिए नियुक्त किया गया था। हालाँकि, उनके भाइयों ने उन्हें इस नई भूमिका में स्वीकार करने से इनकार कर दिया।[3] दारा एक सफल योद्धा नहीं थे। फारसी सेना के खिलाफ उनके तीन अभियानों ने बहुत कम सकारात्मक परिणाम दिखे । अपने पहले अभियान के दौरान, 1639 ई कंधार के रास्ते से उन्हें वापस बुला लिया गया जब फारसी शत्रुता का डर अचानक समाप्त हो गया। 1652 ई में, उन्हें फिर से कंधार भेजा गया था, लेकिन जब फारसी राजा शाह सफी की मृत्यु हो गई और युद्ध बंद कर दिया गया तो उन्हें वापस लौटना पड़ा। 1653 ई में, कंधार पर कब्जा करने का अपना अंतिम मौका अपने सैन्य अधिकारियों के बीच फूट के कारणऔर स्वयं के अनुशासनहीन रवैये के कारण खो दिया। दारा के जीवन की बाद की घटनाओं में उत्तराधिकार के युद्ध में उनकी दो महत्वपूर्ण हार शामिल हैं, जब औरंगजेब और मुराद ने दारा के शासन को अस्वीकार करते हुए, उनके खिलाफ सामूगढ़ में युद्ध छेड़ दिया। इसके कारण वह अहमदाबाद भाग गये, जहाँ उन्होंने अपना दरबार स्थापित किया। कुछ महीने बाद 1659 ई में देवरई में अपने भाई औरंगजेब के हाथों उन्हें अपनी अंतिम हार का सामना करना पड़ा। एक बहादुर नेता होते हुऐ कूटनीतिक और नेतृत्व कौशल की कमी ने उनका ताज खो दिया, और वे शरण लेने के लिए दादर भाग गए।[4] दादर में उनका प्रवास छोटा और दर्दनाक था पहले, उनकी पत्नी नादिरा बेगम की मृत्यु हो गई और फिर उनके मेजबान मलिक जीवान ने उन्हें धोखा दिया। दारा और उसके बेटे को मलिक जीवान ने कैद कर लिया और फिर नए बादशाह औरंगजेब को सौंप दिया। अंत में, उसे दिल्ली की सड़कों पर अपमानित कर घुमाया गया और अगस्त 1659 ई में सिर काट दिया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि दारा को बचपन से ही कादिरिया सूफी

---

[3] कानूनगो का उल्लेख है कि हिसार की जजगीर (संपत्ति) उसे यह बताने के लिए दी गई थी कि दारा उत्तराधिकारी थाय ऐसा इसलिए था क्योंकि हिसार की जागीर ''बाबर के घराने की दाउफिनी'' थी (देखें कानूनगो, दारा, पृ.15)।

[4] रुकत–ए आलमगीर में दारा का यह पत्र है, हसरत, दारा, पृष्ठ 105 देखें

सिलसिला में रुचि थी। शायद सूफियों के प्रति मुगलों के पारंपरिक लगाव ने दारा की सूफी विचारधारा को समझने और स्वीकार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हालाँकि, कादिरिया सिलसिला के प्रति उनका विशिष्ट झुकाव उनके शिक्षक मुल्ला मिराक हरवी के कारण था।इस सिलसिला के साथ उनका जुड़ाव औरमजबूत हो गया, जब वह पहली बार अपने स्वास्थ्य के परामर्श से मियां मीर से मिले। एक कादिरी सूफी के रूप में, उनकी रचनाएँ ढिकर (साहित्यिक स्मरण, आमतौर पर भगवान पर ध्यान के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला शब्द) और अपने स्वयं के सूफी गुरुओं के साथ उनके व्यक्तिगत अनुभवों के बारे में विस्तार से बात करती हैंय वास्तव में, इनमें से एक अनुभव में वह सूफीवाद के उच्चतम स्तर को प्राप्त करने का दावा करता है। ये सभी इस बात के संकेत हैं कि उन्होंने एक कादिरी सूफी और पथिक (सालिक) के रूप में अपनी भूमिका को बहुत गंभीरता से लिया। उनके अपने कार्यों के अलावा, कुछ अन्य स्रोत भी हैं जो इस बात की पुष्टि करते हैं कि वे एक मान्यता प्राप्त सूफी गुरु थे। दारा की बहन जहाँआरा ने अपने काम मुनिस अल–अरवा के परिचय में, उन्हें ''मुर्शीद अल–हाकिरा'' (इस विनम्र व्यक्ति के मार्गदर्शक या सूफी गुरु) के रूप में पेश किया। एक अन्य कादिरी जीवनी लेखक, शेख मुहम्मद शरीफ, जहाँ कहीं भी दारा का नाम लिखते हैं, रहमतुल्लाह अलैहि (भगवान का आशीर्वाद उन पर हो) वाक्यांश का उपयोग करते हैं। अपने प्रारंभिक वर्षों से, दारा ने प्राचीन भारतीय धार्मिक और दार्शनिक साहित्य में अपनी गहरी रुचि दिखाई। उनकी मांग पर कई प्राचीन हिंदू धार्मिक–दार्शनिक ग्रंथ– 'योगवसिष्ठ', भगवद–गीता और रहस्यवादी नाटक 'प्रबोध' चंद्रोदय' का फारसी में अनुवाद किया गया। हिंदू धर्म की धार्मिक पुस्तकों में दारा शिकोह की रुचि ने मुस्लिम रूढ़िवादी मुल्लाओं और औरंगजेब को 1659 में विधर्म और विचलन का आरोप लगाने का बहाना प्रदान किया।[5] दारा शिकोह ने न केवल वेदों और उपनिषदों जैसे प्राचीन भारतीय धार्मिक साहित्य का अध्ययन किया बल्कि उन्हें यहूदी और ईसाई धार्मिक साहित्य जैसे पेंटाटेच,[6] न्यू टेस्टामेंट और मुस्लिम सूफी लेखन का भी अच्छा ज्ञान था।[25] वह हिंदुओं के महाकाव्य और धार्मिक साहित्य में अपनी रुचि दिखाने वाले मुस्लिम अभिजात वर्ग में पहले नहीं थे। अकबर के प्रसिद्ध इतिहासकार अबू अल फजल और उनके बड़े भाई फैजी ने भी हिंदुओं के महाकाव्य और धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन किया और महाभारत के फारसी अनुवाद में भाग लिया।

दारा शिकोह का विश्व दृष्टिकोण सूफी शिक्षाओं के अत्यधिक प्रभाव के तहत बना था जो पूर्व में कई सदियों से बहुत लोकप्रिय थीं। सूफीवाद के सर्वेश्वरवादी विचार शास्त्रीय फारसी कविता के प्रत्यक्ष प्रभाव के तहत उभरे जिसमें दारा अच्छी तरह से वाकिफ थे। उस समय मिर्जा अब्दुल कादिर बेदिल अजीमाबादी, मुल्ला जामी बेखुद, मीर जलाल–उद–दीन सियादत लाहौरी जैसे कई प्रमुख फारसी कवि भारत में रह रहे थे। 16वीं सदी के अंत और 17वीं सदी की शुरुआत में कई अन्य फारसी कवि जैसे नाजिम हरवाई हराती, मीर मुज्जुद्दीन मुहम्मद फितरत मेशादी, सरमद कशानी, कलीम अबू तालिब हमदानी ने भी भारत का दौरा किया। शोकत बुखारी, बाबा रहीम मुशरब, मालेका समरकंडी और अन्य जैसे कई मध्य एशियाई कवि मुगल दरबार के लगातार आगंतुक थे। यह भी ज्ञात है कि दारा शिकोह न केवल अपनी समकालीन सूफी फारसी कविता के अच्छे जानकार थे बल्कि वे शास्त्रीय फारसी साहित्य के भी जानकार थे।

[5] जे. सरकार, औरंगजेब का इतिहास, मुख्य रूप से फारसी स्रोतों पर आधारित। खंड 1 कलकत्ता

[6] ए शिमेल, भारतीय उपमहाद्वीप में इस्लाम। संग–ए–मील प्रकाशन, लाहौर, 2003 पृष्ठ 85

उन्होंने जलाल–उद–दीन रूमी (1207–1273), अब्दुल मजीद मजदूद सनाई (1131 में मृत्यु), और नूर–उद–दीन अब्दुल रहमान जामी (1414–1482) और निजामी के खमसा जैसे महान फारसी कवियों का अध्ययन किया। सूफी कवियों के अलावा दारा समकालीन सूफी पुजारियों और हिंदू योगियों से भी काफी प्रभावित थे। वह न केवल मुस्लिम बल्कि हिंदू, ईसाई और यहूदी धार्मिक विद्वानों, दार्शनिकों और कवि–रहस्यवादियों के भी महान संरक्षक थे। यह भी सर्वविदित है कि दारा के सूफी फकीर सरमद काशानी के साथ संबंध थे। सरमद ईरानी शहर कशान का एक यहूदी था जिसे यहूदी धर्म की प्राचीन पुस्तकों का अच्छा ज्ञान था। बाद में, उन्हें इस्लाम में परिवर्तित कर दिया गया और उन्होंने अपना नाम मुहम्मद सईद रख लिया और भारत चले गए।सरमद के धार्मिक विचारहिंदू योगी बाबा लाल दास (दाराजिसके विचारों से बहुत प्रभावित था) से भी अधिक उदार थे। सरमद ने अपने काव्य में समधर्मी धार्मिक विचारों का प्रचार किया। दारा ने काफी मात्रा में साहित्यिक विरासत छोड़ी थी। उनके शुरुआती कार्यों में 4016 ईस्वी में 'सफीनत–अल–औलिया', 1642 ईस्वी में 'सकीनाताल–औलिया', 1652 ईस्वी में 'रिसाला–ए–हक नुमा' शामिल हैं। ये पुस्तकें सूफी संतों के जीवन और कार्यों के बारे में हैं। 1652 ईस्वी में एक अन्य कृति 'हसनत–अल–अरफीन' में, दारा ने विभिन्न वर्गों से संबंधित संतों के कथनों का संग्रह किया है। 1653 ईस्वी में लिखे गए ''मुकलमा–ए–बाबा लाल वा दारा शिकोह'' में भगती नेता बाबा लाल दास बैरागी के साथ दारा का संवाद शामिल है। इस पुस्तक ने हिंदू आध्यात्मिकता के अध्ययन में रुचि रखने वाले विभिन्न विद्वानों की जिज्ञासा को आमंत्रित किया है। इस पुस्तक में मुख्य रूप से भारतीय दर्शन और पौराणिक कथाओं के विषयों पर कई चर्चाएँ हैं। दारा के कार्यों में सबसे मूल्यवान उनकी तीन अंतिम पुस्तकें हैं; 'मजमा–अल–बहरीन' (महासागरों का मिलन) सिर्र अल–असरार (रहस्यों का रहस्य) और सिर–ए–अकबर (महान रहस्य) दारा के द्वारा हिंदू धार्मिक पुस्तक उपनिषद का अनुवाद 1657 में पूरा हुआ। अपनी कृति मजमा–अल–बहरीन' में दारा ने न केवल भारतीय दार्शनिक साहित्य के सर्वेश्वरवादी शब्दों की व्याख्या की थी बल्कि उनके मुस्लिम सूफी पर्यायवाची शब्द भी दिए थे। इस काम में दारा ने परम सत्य की वैदिक और सूफी धारणाओं के बीच समानता की खोज करने की कोशिश की। वास्तव में, इसे ''अस्तित्वहीन या खोया हुआ'' माना जाता था।[7]

दारा की कविता का उनके विचारों के आलोक में मूल्यांकन करने में, पता चलता है सूफी रचनाएं एक क्रमिक विकास दर्शाती हैं – सूफियों की सामान्य प्रशंसा के साथ शुरुआत होकर उनके और फिर उनकी विशिष्ट तरीकों की ओर बढ़ना और सूफी अवधारणाओं की उनकी समझ की ओर बढ़ना जैसे वहदत अल–वजूद, आरिफ और सुलह–ए कुल दारा की काव्य रचनाएँ उपरोक्त सभी तत्वों को समाहित करती हैं।

बिक्रमजीत हसरत ने दारा के लेखन को दो चरणों में विभाजित किया है: प्रारंभिक काल, जब उन्होंने सूफीवाद पर लिखा, और बाद की अवधि जब उन्होंने हिंदू धर्म पर लिखा।[30] इस विभाजन को ध्यान में रखते हुए हसरत ने हिंदू धर्म पर अपनी रचनाओं की सूची में मजमा अल–बहरीन को स्थान दिया है। हालाँकि, तथ्य यह है कि दारा के विद्वतापूर्ण सफर में एक मध्यवर्ती अवधि थी जब उन्होंने हिंदू धर्म और इस्लाम

[7] बीजे हसरत, द दीवान एंड क्वाट्रेन ऑफ दारा शिकुह, 'इस्लामिक कल्चर' हैदराबाद, 1944 संख्या 3 पृष्ठ 148

के तुलनात्मक पहलुओं के बारे में सीखा और लिखा, विशेष रूप से अद्वैत वेदांत और तसव्वुफ पर। इस बिंदु के बाद ही उन्होंने विशेष रूप से हिंदू धर्म पर लिखा। हालाँकि, नए निष्कर्ष बताते हैं कि उनकी दो रचनाएँ, 'सवाल वा जवाब–ए दारा शुकोह वा बाबा लाल दास और मजमा अल–बहरीन' का संकलन, मध्यवर्ती काल की श्रेणी के दौरान संकलित किया गया था। उस समय एक हिंदू और एक मुसलमान के बीच और पूरी तरह से ज्ञान के विस्तार के लिए अंतर्धार्मिक चर्चा हुई थी, यह काफी असाधारण है, लेकिन सवालों के व्यवहार से पता चलता है कि दारा हिंदू धर्म के बारे में जानने की कोशिश कर रहे थे इस श्रेणी में दारा का दूसरा काम, मजमा अल–बहारिन, हिंदू योगी बाबा लाल दास के साथ उनकी चर्चा के बाद 1655ई में लिखा गया था। यह काम एक विशिष्ट वर्ग के लिए रचा गया था और किसी भी समुदाय के आम लोगों के लिए नहीं था।[8] सवाल व जवाब से यह स्पष्ट हो जाता है कि दारा ने संवाद शुरू करने से पहले ही रामायण और भगवद गीता जैसे हिंदू कार्यों का अध्ययन कर लिया था।[34] इस प्रक्रिया में, उन्होंने हिंदू धर्म के साथ इस हद तक घनिष्ठ संबंध विकसित किया कि उन्हें हिंदू धर्म और इस्लाम के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर दिखाई नहीं दिया। परिणामस्वरूप, मजमा अल–बहरीन को समाप्त करने के बाद, उन्होंने उपनिषदों का अनुवाद करना शुरू किया और कुरान और उपनिषदों के बीच एक अंतरंग संबंध बनाया, सवाल व जवाब' कृति में लाल दास अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वह दारा के लिए एक आदर्श ज्ञानी है, जो उसके हर सवाल का जवाब देता है। आश्चर्यजनक रूप से हालांकि, दारा और दबिस्तान–ए मजाहिब के लेखक के अलावा, लाल दास का उनके समकालीनों में से किसी के कार्यों में उल्लेख नहीं किया गया है। सवाल वा जवाब के रूप में संदर्भित कार्य दारा शिकोह और लाल दास के बीच हुए कथित संवादों की एक श्रृंखला का लेखा–जोखा है। ऐसा प्रतीत होता है कि दारा स्वयं लाल दास के साथ इन बैठकों की सामग्री या स्थानों का वर्णन किए बिना उनका उल्लेख करते हैं, जब वे अपने समुद्र संगम या मजमा अल–बहरीन में लिखते हैंः ''मैंने अन्य पूरी तरह से सिद्ध वैदिक संतों के साथ शांति प्राप्त की, विशेष रूप से सच्चे गुरु के सामीप्य में ,आध्यात्मिकता और ज्ञान के रूप में ही एक छवि, बाबा लाल, जिन्होंने भगवान द्वारा, परम तपस्या, ज्ञान, सही समझ के फल को प्राप्त किया है, और उनके साथ मैं अक्सर मिला और बातचीत की। उनकी तुलनात्मक कृतियाँ समुद्र संगम और मजमा अल–बहरीन को आत्मज्ञान की खोज के फल के रूप में देखा जा सकता है जो लाल दास के साथ उनकी मुलाकात के साथ शुरू हुई थी। वे समुद्र संगम के अपने परिचय में उपरोक्त टिप्पणी को जोड़ते हुए कहते हैं।उनके साथ मैं अक्सर मिला और मुझे अपने स्वयं के स्वरूप (स्वरूप) की प्राप्ति के बारे में शब्दावली के अलावा कोई अंतर नहीं लगा।

[8] हुअर्ट और मैसिग्नन, ''लेस एंटरटेन्स,'' पृ. 299

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

मूल्य निर्धारण में गणित शिक्षण की प्रासंगिकता

डॉ0 डोरी लाल
सहायक प्राध्यापक
शिक्षक प्रशिक्षण और अनौपचारिक शिक्षा विभाग (आई0ए0एस0ई0),
शिक्षा संकाय
जामिया मिलिया इस्लामियाँ नई दिल्ली

सार

किसी व्यक्ति के व्यवहार को जानने में सीखना एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। संतुलित वातावरण में सीखना एक औपचारिक शिक्षा का अभिन्न अंग है। सीखना अगर मूल्य आधारित, गुणकारी और व्यवहारिक हो तो यह लोकतांत्रिक समाज के विकास में महती भूमिका निभा सकता है । गणित वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का अनिवार्य अंग है। एक लोकतंत्रवादी व्यक्ति में जितने गुण होने चाहिए इनमें से अधिकांश गुण गणित विषय के अध्ययन से विकसित हो सकते हैं। गणित के अध्ययन से बच्चों में स्वच्छता, यथार्थता, समय की पाबंदी, सच्चाई, ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा, आत्म निर्भरता, आत्मविश्वास, नियमों पर अडिग रहने की शक्ति, दूसरों की बात को सुनना एवं सम्मान देना, अच्छा बुरा सोचने की शक्ति जैसे गुणों का विकास स्वतः ही हो जाता है। इसी प्रकार गणित के अध्ययन से चरित्र निर्माण तथा नैतिक उत्थान में भी सहायता मिलती है। शिक्षा मानव दक्षता को प्राप्त करने, एक लोकतांत्रिक न्यायसंगत, समतामूलक, बंधुत्व प्रिय समाज और राष्ट्रीय विकास को बढावा देने के लिए एक आवश्यक साधन है। अतः गणित शिक्षण द्वारा छात्रों में मानवीय सामाजिक और लोकतांत्रिक मूल्यों का विकास संभव है।

प्रस्तावना

शिक्षा का व्यापक उद्देश्य एक ऐसे समाज एवं राज्य की रचना करना है, जिसमें मानवीय मूल्यों को सर्वोपरि रखा जाये। शिक्षा का एकमात्र मकसद व्यक्ति को शिक्षित करना ही नहीं होता, बल्कि शिक्षा के कई अन्य मकसद भी होते हैं। इस बात को गांधी जी ने बहुत ही सुंदर शब्दों में कहा है कि शिक्षा के माध्यम से ही बच्चे का शारीरिक, मानसिक, नैतिक, चारित्रिक, बौद्धिक विकास संभव है अगर शिक्षा यह सब करने में सक्षम हो जाती है तो वह बच्चे के जीविकोपार्जन में महती भूमिका निभा सकती है। वही जॉन ड्यूवी शिक्षा से व्यापकता को इस प्रकार देखते हैं– शिक्षा व्यक्ति के उन सभी भीतरी शक्तियों का विकास करती है जिससे वह अपने वातावरण पर नियंत्रण रख कर अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह कर सकें। साथ ही समाज के नागरिक के रूप में

अपनी जिम्मेदारियों का निर्वाहन करते हुए और दूसरे व्यक्तियों, धर्मो और संस्कृतियों का सम्मान करना सीखना है।

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1964–66)– "शिक्षा राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक विकास का शक्तिशाली साधन है। शिक्षा राष्ट्रीय संपन्नता एवं राष्ट्र कल्याण की कुंजी है।" राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) के अनुसार, शिक्षा के व्यापक लक्ष्य छात्रों में विचार और कर्म की स्वतंत्रता विकसित करना, दूसरों के कल्याण और उनकी भावनाओं के प्रति संवेदनशीलता पैदा करना, और साथ ही बच्चों को नई परिस्थितियों के प्रति लचीला और मौलिक ढंग से पेश आने में मदद करना। शिक्षा का मुख्य कार्य है कि छात्रों में लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं का सम्मान और उनमें सहभागिता, मौलिकता की अभिव्यक्ति, तथा सौन्दर्यबोध की समझ विकसित हो। और साथ ही आर्थिक प्रक्रियाओं व सामाजिक बदलाव की दिशा में कार्य करने व उसमें अपना योगदान देने की क्षमता भी विकसित हो सके।

भारतीय शिक्षा प्रणाली का मुख्य उद्देश्य भारत को एक ज्ञानोदय महाशक्ति बनाना है, जिससे कि मानवीय सभ्यता और संस्कृति में वांछनीय बदलाव ला सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु समय–समय पर विभिन्न आयोगों और समितियों ने बच्चों को उच्च स्तरीय गुणवत्ता पूर्वक शिक्षा उपलब्ध कराने की सिफारिश की है। इसके अलावा बच्चों को लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति समर्पित बनाना भी है। जिससे बेहतर समाज के निर्माण हेतु सुशिक्षित, कर्तव्य परायण, जिम्मेदार, राष्ट्रभक्त, और प्रगतिशील नागरिकों का निर्माण हो सके। लोकतंत्रवादी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य छात्रों को प्रबुद्ध नागरिक बनाने और लोकतान्त्रिक जड़ो को गहरा करना है। स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व, न्याय एवं राष्ट्र की अखंडता भारतीय लोकतंत्र के मुख्य सिद्धांत संविधान की प्रस्तावना में जड़े हुए हीरे हैं। इन्हें राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक के अंदर समायोजित करने हेतु शिक्षा आवश्यक उपकरण है। जिससे देश का प्रत्येक नागरिक देश के विकास में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर सके। ऐसे में शिक्षा के महत्त्व को देखते हुए शिक्षा को जन–जन तक फैलाने के लिए तीव्रगामी प्रयासों की सदैव ही आवश्यकता है। इक्कीसवीं सदी में भारत का हर नागरिक सुशिक्षित, समर्पित और संगठित हो, इसके लिए सभी जरूरी कदम अनवरत उठाने होंगे तभी हमारा देश पूर्ण रूप से सुशिक्षित राष्ट्र कहलाएगा।

मूल्य आधारित शिक्षण और गणित

गणित छात्र जीवन का एक अहम किरदार है इसके बिना पूर्ण शिक्षा की कल्पना असंभव है। छात्र गणित को विद्यारंभ से ही पढ़ना प्रारम्भ कर देते हैं। गणित एक ऐसा विषय है जो वैयक्तिक चेतना, तार्किकता, बुद्धिमत्ता और मानसिक जागरूकता की मांग करता है। गणित व्यक्ति में अमूर्त चिंतन, तार्किकता तथा परिकल्पनाएँ बनाने की योग्यता विकसित करने का सरल साधन है। गणितीय चिंतन और मनन एक दूसरे की भावनाओं को समझने, व्यक्त करने और उनका आदर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जिनका उपयोग विश्लेषणात्मक उद्देश्यों और व्यावहारिक अनुप्रयोगों दोनों के लिए किया जाता है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (2005) ने गणित शिक्षण का मुख्य उद्देश्य बच्चों में गणितीय क्षमता और गणितीयकरण का विकास के साथ आत्मअभिव्यक्ति की क्षमता विकसित करना बताया है। हालांकि कुछेक शिक्षक गणित को सक्रिय रूप से छात्रों को शक्तिहीन करने का साधन समझते हैं । जबकि गणित शिक्षा का व्यापक उद्देश्य छात्रों को सशक्त बनाना है। शिक्षा को लोकतान्त्रिक भागीदारी और सामाजिक समानता का साधन मानते हुए गणित के लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण को अपनाने से इस लक्ष्य को और बढ़ने में मदद मिल सकती है। लोकतान्त्रिक गणितीय शिक्षा में गणित

को ऐसे पढ़ाया जाना चाहिए जिससे छात्रों को लगे कि गणित मानवीय जांच के रूप में विकसित हुआ है ना कि बाहर से तैयार कर के पढ़ने के लिए दिया गया है। इसके साथ ही गणित को और अधिक लोकतान्त्रिक तरीके से प्रस्तुत करने के लिए छात्रों को गणितीय प्रक्रियाओं में संलगन होना सिखाया जाना चाहिए, जिससे वे गणित को अपनी दैनिक जीवन और आस–पास की समस्याओं को हल करने के साधन के रूप में इस्तेमाल कर सकें।

गणित बच्चों की मानसिक शक्तियों को प्रशिक्षित करने के साथ–साथ उन्हें नियंत्रित करना सिखाता है। और उनके व्यक्तित्व को गंभीर, विवेकपूर्ण एवं चिंतन जैसे गुण भी प्रदान करता है। गणित शिक्षण बच्चों में आत्म–अनुशासन, कर्तव्य बोध, ईमानदारी, समानता, ईर्ष्या आदि गुणों को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जिससे गणित पढ़ने वाला बच्चा कोई भी निर्णय लेने से पूर्व अपनी तर्क शक्ति, विवेक, धैर्य एवं आत्मविश्वास का उचित उपयोग कर लाभ–हानि के बारे में भली–भांति सोच लेता है। गणित छात्रों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी विकसित करता है। गणित ही ऐसा विषय है जिसके अध्ययन से बच्चे में कठिन परिश्रम एवं सुचारू रूप से कार्य करने की आदत का निर्माण होता है। इस संबंध में लॉक महोदय का मत है कि गणित एक ऐसा मार्ग है, जिससे तर्क की आदत स्थाई होती है। गणित विषय का ज्ञान यथार्थवाद तथा शुद्ध है, जो बच्चों के अंदर एक विशेष प्रकार का अनुशासन विकसित करता है। इससे बच्चों में अपने द्वारा प्राप्त किए गए ज्ञान को प्रयोग में लाने की योग्यता विकसित होती है। किसी सीखे हुए ज्ञान को प्रयोग में लाने की योग्यता भी एक प्रकार की का अनुशासन ही है। लोकतान्त्रिक समाज में जागरूक नागरिक के रूप में अनुशासन अत्यंत महत्वपूर्ण अंग है, जो गणित शिक्षा के द्वारा छात्रों में आसानी से रोपित किया जा सकता है साथ ही अन्य मानवीय और लोकतांत्रिक मूल्यों को गणित की सहायता से छात्रों में विकसित किया जा सकता है ।

गणित सामाजिकता के निकटस्थ विषयों में अग्रणीय है। वास्तविक रूप से गणित विषय को इतना अधिक महत्व देने, अनिवार्य विषय बनाने का प्रमुख कारण है कि इस विषय के अध्ययन से बच्चों को विभिन्न लाभ होते हैं, जिनको हम गणित शिक्षण के मूल्य कहते हैं। अर्थात बच्चों को गणित पढ़ाए जाने से होने वाले लाभ का अध्ययन गणित शिक्षण के मूल्यों में किया जाता है। गणितीय संप्रत्ययों के शिक्षण–अधिगम से छात्रों में मानवीय मूल्यों की स्थापना की जा सकती है। एक गणित शिक्षक की जिम्मेदारी है कि वह केवल गणित की संक्रियाएं ही न सिखाते हुए बल्कि गणित को दैनिक जीवन के क्रियाकलापों से जोड़कर छात्रों में मूल्यों को स्थापित किया जाए। एक अच्छे गणित शिक्षक की योग्यता इस बात से तय की जा सकती है कि उसके द्वारा पढ़ाए गए संप्रत्यय छात्र में व्यवहारिक मूल्यों को किस प्रकार स्थापित किया गया है। गणित में जब श्रम विभाजन वाले प्रश्नों पर चर्चा हो तो आसानी यहाँ से बताया जा सकता है कि गणित कभी भी किसी एक विशेष वर्ग को अधिक कम करने तथा दुसरे वर्ग को कम कामकरने की पैरवी नहीं करता बल्कि श्रम विभाजन के दौरान सबको एक ही दृष्टि से देखा जाता है। यहाँ समानता सर्वोपरी रहती है। यदि गणितीय संप्रत्ययों को सावधानी और तर्कशक्ति के साथ उपयोग में लाया जाये तो यह मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उपयोगी होगा। गणित तर्क के साथ ही मानवीय मूल्यों जैसे शिष्टता, समस्या समाधान और आत्म–अनुशासन के पुर्नद्धार के लिए आवश्यक हो सकता हैं।

एथ्नोमाथेमैटिक्स शाखा में छात्र अपने जीवन यापन के लिए महत्वपूर्ण योग्यताओ के साथ साथ रचनात्मकता तथा संस्कृति के सम्मान को सुदृढ करते है और व्यापक दृ

ष्टिकोण प्रस्तुत करते है। प्रतिदिन की घटनाओं से जोड़कर जब बच्चे गणित पढ़ते हैं तब वे मनुष्य और प्रकृति के मध्य अनुकूल व्यवहार करना सीखते हैं। गणित उपक्रम में विचारो की स्पष्टता और तर्क शक्ति का प्रयोग कर किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए पूर्वानुमान लगाए जा सकते हैं। किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए कई तरीके हो सकते है, यह केवल छात्र के विवेक पर निर्भर करता है कि वह कौन से तरीके का इस्तेमाल कर समस्या समाधान करता है। इस तरह कि योग्यता केवल गणित के द्वारा ही छात्रों में पैदा की जा सकती है। उदहारण के तौर पर देखे तो दो चारो वाले रेखीय समीकरणो को हल करने के चार तरीके सिखाये जाते हैं। जैसे– आलेखीय विधि,उन्मूलन विधि, प्रतिस्थापन तथा क्रॉस गुणन विधि इसी प्रकार द्विघात समीकरणो को हल करने के लिए आलेखीय विधि, मध्य पद को विभाजित करके, गुणनखंडों द्वारा तथा पूर्ण वर्ग बनाकर हल किया जा सकता है। अतः गणित छात्रों में किसी समस्या को हल करने की अभिव्यक्ति और उसे सुव्यवस्थित ढंग से हल करने की योग्यता विकसित करता है।

लोकतान्त्रिक मूल्यों प्राप्ति में गणित का योगदान

शिक्षक के रूप में अगर आप गणित पढ़ाते हैं तो आपके मन में एक बात जरूर आती होगी कि शिक्षा का यह जो ताना–बाना हमने इंसानियत, भाईचारा, सबके लिए न्याय, समतामूलक समाज, प्रेम और सौहार्द जैसे मूल्यों के लिए खड़ा किया गया है। इनको प्रतिस्थापित करने में गणित शिक्षक की क्या भूमिका है, विषय पढ़ाते हुए इन मूल्यों का समावेश कितना मुश्किल है और इन्हें हम कक्षा गत क्रियाकलापों के माध्यम से किस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं। यह सभी मूल्य केवल गणितीय संप्रत्ययों को समझाने तक ही सीमित नहीं है। अपितु कक्षा में शिक्षक का व्यवहार उसके द्वारा गणितीय संप्रत्ययों उसकी भाषा शैली और उसके आदर्श सभी की बराबर भागीदारी मूल्यों के प्राप्त करने और उनके अनुपालन करने में है।

स्वतंत्रता– स्वतंत्रता लोकतंत्र का मूल़ है। एक लोकतांत्रिक राष्ट्र के लिए आवश्यक है कि वहां प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता सुनिश्चित हो सके और वह कोई भी दूसरें कि स्वतंत्रता का अतिक्रमण न कर सके, और ऐसा केवल शिक्षा के माध्यम से ही सम्भव है। गणित का ज्ञान भी इस दिशा में सहभागी भूमिका निभा सकता है। यदि हम गणितीय शिक्षण–अधिगम में देखें तो पाएंगे कि गणित ऐसा विषय है जो इस सिद्धांत पर शत–प्रतिशत खरा उतरता है। यहां प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमता, योग्यता, गति और तरीके के अनुसार गणितीय समस्याओं को हल करने की पूर्ण आजादी होती है। समस्या को चाहे किसी भी विधि से हल किया गया हो अंत में सभी एक ही उत्तर पर पहुंचते हैं। कोई भी अमुक विधि दूसरी विधि के क्रियान्वयन में बाधक नहीं होती। अतः गणित में छात्र समस्याओं को अपने विवेक और क्षमता के अनुसार हल करने के लिए स्वतंत्र है।

समता एवं समानता– सामाजिक सन्दर्भों में समानता का अर्थ किसी समाज की उस स्थिति से है जिसमें उस समाज के सभी लोग समान (अलग–अलग नहीं) अधिकार या प्रतिष्ठा रखते हैं। वहीं समतावाद का दर्शन ऐसी व्यवस्था का समर्थन करता है जिसमें सम्पन्न और समर्थ व्यक्तियों के साथ–साथ निर्बल, निर्धन और वंचित व्यक्तियों को भी आत्मविकास के लिए उपयुक्त अवसर और अनुकूल परिस्थितियाँ प्राप्त हो सकें। छात्र जीवन में इन बिंदुओं पर किसी न किसी रूप में वैचारिक मतभेद होना आम बात है। परन्तु गणित इन मतभेद मिटाकर एक साथ काम करने (अपनी पहचान को स्थापित

रखते हुए) की प्रेरणा देता है। गणित की सार्वभौमिकता समानता के इस विचार को मजबूत करती है। गणित एक ऐसा विषय है जिसके नियम, सूत्र, सिद्धांत, प्रतीक कभी भी देश की सीमाओं में नहीं बांधे जा सकते हैं। मापन के विभिन्न प्रकार के उपकरणों के मान पर समय, काल और परिस्थिति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता अर्थात उनका मूल्य (धारिता) हर परिस्थिति में समान होता है। गणित में समस्याओं को हल करते समय किसी व्यक्ति विशेष का कोई प्रभाव उन पर नहीं पड़ता। क्षेत्रमिति, ज्यामितीय निर्माण, युगपत समीकरण और त्रिकोणमिति जैसे अध्याय छात्रों में समता एवं समानता की भावना विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। जैसेः Sin2 θ+ Cos 2 θ =1 और 3x +5=8 समीकरण में दो पक्ष हैं– बायां पक्ष और दायाँ पक्ष। यह दोनों ही पक्ष मिलकर सामाजिक संतुलन, समानता बनाए रखने का संदेश देते हैं। गणित बच्चे को अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखने का अभ्यास कराता है तथा उच्च प्रशिक्षण प्रदान करता है।

सामाजिक न्याय– सामाजिक न्याय का विचार लोकतंत्र का एक महत्वपूर्ण स्तंभ है। लोकतान्त्रिक समाज की जिम्मेदारी है, कि वह प्रत्येक व्यक्ति को बिना भेदभाव के न्याय मिले। सामुदायिक वातावरण में गणित पढ़ने से छात्रों में समाजिक मुद्दों को सीखने समझने में मदद मिलती है। जब छात्र सामुदायिक शिक्षण प्रशिक्षण शिविर में भाग लेते है, तब उनमें सामाजिक मुद्दों को समझने की अच्छी समझ पैदा होती है और छात्र स्वयं को सामाजिक मुद्दों से जुड़ा हुआ महसूस करते हैं और साथ ही उनके समाधान में योगदान करने की क्षमता विकसित होती है। गणित शिक्षण का एक उद्देश्य यह भी है कि छात्रों को इस बात की अनुभूति कराए कि गणित और सांख्यिकी सामाजिक बदलाव लाने के लिए महत्वपूर्ण तंत्र है। और साथ ही छात्रों में यह भावना पैदा की जाए की वे इस सामाजिक भागीदारी में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। गणित विषय का प्रयोग समस्याओं के समाधान खोजने, व्यक्ति में विश्लेषण–संश्लेषण एवं मूल्यांकन की योग्यता भी विकसित करता है, जिससे व्यक्ति में सही और गलत, उचित और अनुचित को सिद्ध करने की क्षमता विकसित होती है। इस प्रकार छात्रों में सामाजिक न्याय की इस संकल्पना को स्थापित किया जा सकता है।

बंधुत्व– सामान्यतः बंधुत्व का तात्पर्य व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह में भाईचारे की भावना, मैत्रीपूर्ण व्यवहार एवं एक दूसरे से परस्पर सहयोग की भावना से है। हालांकि यदि भारतीय संविधान की प्रस्तावना के संदर्भ में बंधुत्व का अर्थ समझा जाए तो यह राष्ट्र की एकता और अखंडता तथा व्यक्ति की गरिमा को सुनिश्चित करने से है। जिस प्रकार बंधुत्व समाज के प्रत्येक नागरिक को जोडने में सहायक है, उसी प्रकार गणित का काम एक विषय को दूसरे विषय के साथ जोड़ना है। गणित का ज्ञान विभिन्न विषयों के लिए बुनियाद का पत्थर की तरह है। विज्ञान, ड्राइंग, एग्रीकल्चर, ज्योतिष शास्त्र, वाणिज्य, सैन्य विज्ञान, कंप्यूटर, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, सांख्यिकी, खगोल शास्त्र, इंजीनियरिंग, मेडिकल, अर्थशास्त्र इत्यादि के लिए आवश्यक है कि बच्चे को गणित की बुनियादी जानकारी हो। गणित इन सभी विषयों के लिए आधार का काम करता है। गणित के संप्रत्ययों में यदि हम समानता देखें तो सभी संप्रत्यय एक दूसरे पर आश्रित है अर्थात सभी एक कड़ी में बंधे हैं गणित अध्यापक कक्षा में इस प्रकार के उदाहरण प्रस्तुत कर या छात्रों को समूह क्रियाकलाप करा कर उनमें बंधुत्व की भावना पैदा कर सकता है। जिससे समाज में आपसी तालमेल तथा भाईचारे की भावना विकसित करने में मदद मिलती है।

निष्कर्ष

आदर्श शिक्षा वही है जो कि बालक को प्रारंभ से ही समाज के लिए योग्य नागरिक बनाने में सहायता प्रदान करती है। नेपोलियन ने गणित शिक्षण के सामाजिक महत्व को स्वीकार करते हुए स्पष्ट किया कि गणित की उन्नति तथा वृद्धि देश की संपन्नता से संबंधित है। इस प्रकार समाज की उन्नति को उचित ढंग से समझने के लिए ही नहीं बल्कि समाज को आगे बढ़ाने के लिए भी गणित की प्रमुख भूमिका रही है। जिस प्रकार लोकतांत्रिक आदर्शों एवं विचारों को मानव जीवन में लाने के लिए शिक्षा की आवश्यकता है उतनी ही आवश्यकता गणित शिक्षा की भी है। गणित शिक्षण का उद्देश्य छात्रों में गणितीय कौशल के साथ–साथ लोकतान्त्रिक आदर्शो को उपजाना होना चाहिए। जिससे वे लोकतंत्र के निर्माण में सहयोग करने वाले आदर्श नागरिक बनें। वास्तविक रूप में गणित के संबंध में हमें दो बातों को समझना चाहिए। पहली यह कि सभी छात्र गणित सीख सकते हैं और दूसरी सभी को गणित सीखने की जरूरत है। अतः कक्षा गत गणित ऐसा होना चाहिए कि जो छात्रों में रचनात्मकता समालोचकता और चिंतनशीलता पैदा कर उन्हें एक बेहतर नागरिक बनाने की दिशा में प्रयास करें साथ ही उनमें बदलते परिवेश के अनुरूप विवेचनात्मक फैसले लेने की क्षमता भी। वर्तमान में हमारी सामाजिक संरचना इतनी वैज्ञानिक एवं सुव्यवस्थित नजर आती है जिसका श्रेय भी गणित को ही जाता है। गणित के ज्ञान के अभाव में हमारी सामाजिक संरचना और व्यवस्था का स्वरूप विखंडित हो सकता है। अतः गणित शिक्षक यह जिम्मेदारी है कि वह अपने ज्ञान और आचरण से गणितीय संकल्पना के साथ–साथ छात्रों में सामाजिक और लोकतांत्रिक आदर्शों को पैदा करने की दिशा में आवश्यक कदम उठाता रहे।

सन्दर्भ

1. एगुइलर, एम.एस., और जवलेटा, जे.जी.एम. (2012). **ऑन द लिंक्स बिटवीन मैथमेटिक्स एजुकेशन एंड डेमोक्रेसीः अ लिटरेचर रिव्यु**. पाइथागोरस, 33(2), 1–15.
2. स्टेमहेगन, के। (2011). **डेमोक्रेसी एंड स्कूल मैथ रू टीचर बिलीफ–प्रैक्टिस टेंशन्स एंड द प्रॉब्लम ऑफ एम्पिरिकल रिसर्च ऑन एजुकेशनल ऐम्स**. डेमोक्रेसी एंड एजुकेशन, 19 (2), अनुच्छेद 4।
3. विट्ठल, आर. (2012). **गणित शिक्षा, लोकतंत्र और विकासः संबंधों की खोज**, पाइथागोरस, 33(2), 1–14.
4. डीश्अम्ब्रोसियो, यू. (1990). **द रोल ऑफ मैथमेटिक्स एजुकेशन इन बिल्डिंग ए डेमोक्रेटिक एंड जस्ट सोसाइटी**. फॉर द लर्निंग ऑफ मैथमेटिक्स, 10(3), 20–23।
5. एम0 एच0 आर0 डी0 (2016). **राष्ट्रीय शिक्षा नीति का प्रारुप.** मानव संसाधन विकास मंत्रालय. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार।
6. एम0 एच0 आर0 डी0 (1986). **नई शिक्षा नीति.** मानव संसाधन विकास मंत्रालय. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार।
7. एन0सी0ई0आर0टी0 (2005). **राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा**. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली।
8. एन0सी0ई0आर0टी0 (2005). **राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा**. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली।
9. एन0सी0ई0आर0टी0 (2005). **राष्ट्रीय फोकस समूह का आधर पत्र–गणित शिक्षण**. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली।

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

NAAGS KANPUR

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

याज्ञवल्क्य स्मृति का प्रतिपाद्य

डॉ0 कृष्ण पाल
इतिहास विभाग
महाराज बलवंत सिंह पी0जी0 कॉलेज
गंगापुर, वाराणसी

याज्ञवल्क्थ स्मृति के रचनाकार के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। इस स्मृति के साथ याज्ञवल्क्य का नाम जुड़ा होने के कारण ऐसा अनुमान किया जाता है कि प्रस्तुत स्मृति के प्रणेता याज्ञवल्क्य ही थे। महाभारत[1], शतपथ ब्राह्मण[2] तथा भागवत पुराण[3] में उल्लेख आया है कि याज्ञवल्क्य वैशम्पायन के शिष्य थे, उन्होंने उनसे यजुर्वेद का अध्ययन किया था। परन्तु कालान्तर में गुरु शिष्य के बीच मतभेद – पत्र हो गया। इस मतभेद के कारण याज्ञवल्कय ने गुरु की विद्या को वान्त कर दिया और सूर्यदेव की आराधना कर मध्याह्नकाल में सूर्य से पुनः यजुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया। कालान्तर में यह यजुर्वेद शुक्ल यजुर्वेद तथा मध्याह्ककाल में अथिगत होने के कारण माध्यन्दिन संहिता की संज्ञा से विभूषित हुआ।

गुरु और शिष्य के इस सम्बन्ध विच्छेद की सूचना विष्णु पुराण और भागवत पुराण से भी मिलती है। किन्तु इसमें और महाभारत वाली सूचना में कुछ विभेद् है। बृहदारण्यक उपनिषद में विदे प्रान्त के राजा जनक के गुरु के रूप में भी याज्ञवल्क्य का उल्लेख मिलता है। बृहदारण्यक के तृतीय अध्याय में आया है कि विदेह (जनक) ने एक यज्ञ किया था, जिसमें प्रदेश के सभी ब्रह्मज्ञानि..... को आमन्त्रित किया था। सभी के उपस्थित होने पर अपना विज्ञापन करते हुए विदेह ने कहा कि "यो श्यो ब्राह्मिष्ठः स एताः गाः उद्‌जातम्" विदेह के इस वचन को सुनकर सभी मौन हो गये, किन्तु याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्यों को उक्त गायों के ले जाने का आदेश दिया। याज्ञवल्क्य के इस आदेश पर एकत्रित सभी ऋषिगण क्रुद्ध हो गये, जिंसके कारण उन्हें उन लोगों से ब्रह्म विषयक शास्त्रार्थ भी करना पड़ा।[4] वृहदारण्यक उपनिषद में ही याज्ञवल्क्य एक बड़े

---

[1] महा0 शान्ति0, अध्याय, 312
[2] शत0 ब्राह्म0, 14/9/4/33
[3] भागवत पुराण, 10/6/61–74
[4] वृह0 उप0, 3/1/1–2, उद्धत याज्ञ0 स्मृति, उमेश चन्द्र पाण्डेय, पृ0–13

दार्शनिक के रूप में अपनी दार्शनिक मत वाली पत्नी मैत्रेयी से ब्रह्म एवं अमरता के बारे में बातें करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।[5]

याज्ञवल्क्य स्मृति के रचनाकार वैदिक परम्परा के ऋषि याज्ञवल्क्य ही थे अथवा कोई अन्य व्यक्ति– यह प्रश्न बड़ा उलझा हुआ है। स्पष्ट रूप से कोई ऐसा ठोस प्रमाण नहीं मिलता जिसके आधार पर उनकी स्थिति का निर्धारण किया जा सके। याज्ञवल्क्य स्मृति के अध्याय तीन में उल्लेख आया है कि ये आरण्यक के प्रणेता थे, उन्हें सूर्य से प्रकाश मिला था तथा वे योग शास्त्र के प्रणेता थे।[6] किन्तु विज्ञानेश्वर ने प्रथम श्लोक के अवतरण में लिखा है कि याज्ञवल्क्य के किसी शिष्य ने धर्मशास्त्र को संक्षिप्त करके कथोपकथन के रूप में लिखा है।[7] विज्ञानेश्वर के इस मन्तव्य के आधार पर अन्य विद्वान प्रस्तुत स्मृति को याज्ञवल्क्य के द्वारा प्रणीत मानने को तैयार नहीं है। उनके अनुसार सम्भवतः इस स्मृति के महत्व को बढ़ाने के लिए ही इस स्मृति का सम्बन्ध योगी याज्ञवल्क्य से जोड़ा गया है। इसका एक यह भी कारण मान लिया जाय तो अत्युक्ति न होगी कि वैदिक ग्रन्थों की भाषा–शैली से इस स्मृति की भाषा–शैली में पर्याप्त भिन्नता है। इसमें समय की दृष्टि से भी साम्य नहीं है। आरण्यक एवं प्रस्तुत स्मृति के रचथिता भले ही एक न हों, किन्तु इतना तो निर्विवाद सत्य ही है कि शुक्ल यजुर्वेद की परम्परा से इस स्मृति का गहरा सम्बन्ध रहा है। राधा कुमुद मुखर्जी ने भी कहा है कि "ब्राह्मण एवं उपनिषदों में याज्ञवल्क्य का नाम प्रसिद्ध है। वे शुक्ल यजुर्वेद के द्रष्टा थे। उन्हें स्मृति का रचयिता नहीं माना जा सकता, क्योंकि उनकी शैली एवं विषय भिन्न है, किन्तु फिर भी शुक्ल यजुर्वेद से उनका सम्बन्ध है"।[8]

संस्कार

मिताक्षश में विज्ञानेश्वर के कथन के आधार पर पी॰वी॰ काणे ने भी याज्ञवल्क्य स्मृति को याज्ञवल्क्य द्वारा प्रणीत नहीं माना है । उनकी दृष्टि में "ज्ञेयं चारण्यकमहं"" आदि श्लोक भी रचयिता का कपट प्रबन्ध मात्र ही प्रतीत होता है। सम्भवतः इसे महत्ता प्रदान करने के लिए ही ऋषि, दार्शनिक, और योगी याज्ञवल्क्य की कृति माना गया। स्मृति की शैली एवं सिद्धान्त के आधार पर यह स्वीकार करना असम्भव सा हो जाता है कि यह स्मृति भी उसी हाथ की कृति है, जिसने संसार को गम्भीर दार्शनिक विचारों से परिपूर्ण, साधारण किन्तु प्रभावशाली भाषा में वर्णित उपनिषद का ज्ञान दिया। यहाँ त्तक कि भारतीय आस्तिक विचारक भी स्मृति एवं आरण्यक के रचयिता को एक मानने के लिए तैयार न थे।[9]

विज्ञानेश्वर के कथनानुसार यदि उनके किसी शिष्य को इस स्मृति का कर्ता मान भी लिया जाय तो समस्या यह उठती है कि उस व्यक्ति का नाम इस स्मृति से सर्वथा विलुप्त क्यों हो गया । दूसरी बात यह भी है कि ऐसा कोई ठोस आधार भी नहीं मिलता है, जिसके आधार पर यह प्रमाणित किया जा सके कि याज्ञवल्क्थ स्मृति के प्रणेता योगी याज्ञवल्क्य नहीं थे । विज्ञानेश्वर ने यद्यपि कह तो दिया कि यह उनके किसी शिष्य की रचना है, किन्तु देखा जाय तो इस विषय पर वह स्वयं भी व्यामुग्ध प्रतीत होते हैं उन्होंने आचाराध्याय के चौथे एवं पाँचवे श्लोक की व्याख्या में दो बार

---

[5] वृह0 उप0 2/4 एवं 4/5 उद्धत धर्मशास्त्र का इति0, भाग एक, पृ0–50

[6] ज्ञेयं चारण्यकमहं यदादित्यादवाप्तवान्।
योगान्शास्त्रज्ञं मत्रोक्तं ज्ञेयं योगमभीप्सता।। यज्ञ0, 3/10

[7] याज्ञवल्क्य शिष्यः कश्चित् प्रश्नोत्तररूपं याज्ञवल्क्य प्रणीतं धर्मशास्त्रं कथयामास।
याज्ञ0, 1/1 पर मिताक्षरा

[8] राधा कुमुद मुखर्जी, हिन्दू सभ्यता (अनु0–अग्रवाल) दिल्ली–1971), पृ0–186

[9] पी0वी0 काणे, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, भाग–एक, पृ–169

"याज्ञवल्क्य प्रणीतस्य" तथा "याज्ञवल्क्य प्रणीतम् कहा है । अतः केवल मिताक्षरा के आधार पर यह स्वीकार कर लेना कि प्रस्तुत स्मृति उनके किसी शिष्य की कृति है, समीचीन प्रतीत नहीं होता है । इसके अतिरिक्त आचाराध्याय के द्वितीय श्लोक (मिथिलास्थः स योगीन्द्रः) से भी प्राचीन परम्परा का ही समर्थन होता है। अपरार्क ने भी इसी मत को स्वीकार किया है।[10]

वस्तुतः जब तक कोई ठोस आधार नहीं मिलता तब तक कोई भी निर्णय करना न्याय संगत प्रतीत नहीं होता है। प्रस्तुत स्मृति के कर्ता के विषय में विद्वानों में मतैक्य न होने के कारण समस्या का समाधान संदेह में ही करना समीचीन प्रतीत होता है।

याज्ञवल्क्य के जीवनवृत्त के बारे में भी कोई ठोस आधार नहीं मिलता है। श्रीधर शर्मा शास्त्री 'वारे' ने याज्ञवल्क्य की जन्म तिथि, श्रवण शुक्ल चतुर्दशी विद्धपूर्णिमा माना है, जिसका उल्लेख उन्होंने माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण के उपोदघात (पृ०, २६) में किया है । इनकी माता का नाम सुनन्दा था।[11] किन्तु पिता के अनेक नाम मिलते हैं। वायु पुराण[12], ब्रह्माण्ड प्राण[13] तथा विष्णु पुराण[14] में इनके पिता का नाम ब्रह्मरात मिलता है, किन्तु श्रीमद्धागवत्[15] में याज्ञवल्क्य के लिए देवरात सुतः शब्द का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि याज्ञवल्क्य देवरात के पुत्र थे। स्कन्दपुराण[16] से कंसारी अथवा कंसारिका नामक बहन का भी उल्लेख मिलता है । वृहदारण्यक उपनिषद[17] में –याज्ञवल्क्थ की दो पत्नियों कात्यायनी और मैत्रीयी का भी उल्लेख मिलता है । किन्तु स्कन्दपुराण में श्कात्यायनी के स्थान पर दूसरी पत्नी का नाम कल्याणी मिलता है । कात्यायनी को ही कुछ विद्वान गार्गी मानते हैं, किन्तु उक्त तथ्य तर्कहीन प्रतीत होता है।

उपर्युक्त विवेचनों से स्पष्ट है कि प्रकृत स्मृति अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण एवं पूर्ण धर्म संहिता है, जिसमें मानव जीवन से सम्बन्धित सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक आदि अन्यान्य विषयों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन बड़े ही वैज्ञानिक ढंग से किया गया है। वर्तमान हिन्दू परम्परा में भी स्मृति साहित्य की इस जीवन्त कृति में वर्णित विषयों का अक्षरशः पालन व निर्वहन किया जा रहा है।

प्रतिपाद्य विषय :–

विषय विन्यास की दृष्टि से देखा जाय तो याज्ञवल्क्य स्मृति का अत्यधिक महत्त्व है । अल्प शब्दों में अत्यधिक अर्थों की अभिव्यंजना इसकी प्रमुख विशेषता है । अनुष्टुप छन्दों में वर्णित इस स्मृति कीं शैल सरल तथा भाषा धाराप्रवाह है । प्रकृत स्मृति में पाणिनि व्याकरण के नियमों का पालन प्रचुरमात्रा में किया गया है।

याज्ञवल्क्य स्मृति की श्लोक संख्या निर्णय सागर संस्करण त्रिवेन्द्रम संस्करण एवं आनन्दाश्रम संस्करण (विश्वरूप टीका) के अनुसार क्रमशः १०१०, १००३ तथा १००६ है, किन्तु विज्ञानेश्वर प्रणीत मिताक्षरा टीका में १००६ श्लोकों का विवेचन किया गया है।

---

10 अस्याश्च संहितायाः याज्ञवल्क्यः प्रणेतेति व्याख्यात्णां स्मृतिरेव प्रमाणम्।
अपरार्क, या0, 1/1

11 प्रमुख वैदिक यज्ञों के विधि–विधान में याज्ञवल्क्य के योगदान का समालोचनात्मक अध्ययन–डॉ0 आशाराम त्रिपाठी (प्रथम संस्करण), पृ0–4

12 वायुपुराण, 61/21

13 ब्रह्माण्ड पुराण (पू0भा0 35/24)

14 विष्णु पुराण, 3/5/3

15 श्रीमद्भागवत्, 12/6/4

16 स्क0 पु0, 6/174/6

17 वृहदा0 उप0, 2/4/1

यही कारण है कि विश्वरूप और मिताक्षरा टीका की प्रतियों में श्लोक एवं प्रकरण के गठन में अन्तर है।

इस स्मृति ग्रन्थ का आरम्भ मुनियों के प्रश्न से होता है । योगिराज याज्ञवल्क्य मिथिला को सुशोभित कर रहे थे । मुनियों ने उनकी पूजा–अर्चना के बाद वर्णों एवं आश्रमों तथा मानव जीवन न से सम्बन्धित अन्य धर्मों को जानने की जिज्ञासा प्रकट की। मुनियों की जिज्ञासा को शान्त करने के उद्देश्य से योगिराजं ने जिस देश में काले मृग स्वच्छन्दता पूर्वक विचरण करते हैं, उस देश के धर्मों का प्रतिपादन करते हुए. विवेचन आरम्भ किया।[18] वस्तुतः इसी उपक्रम के पश्चात याज्ञवल्क्य स्मृति आरम्भ होती है, जिसमें बीच–बीच में जिज्ञासु मुनिवरों की विषय परक शंका तथा योगिराज द्वारा उसका समाधान भी वर्णित है। यह सम्पूर्ण स्मृति लगभग समान विस्तार वाले "आचाराध्याय", "व्यवहाराध्याय" तथा "प्रायश्वितध्याय" नामक तीन अध्यायों में विभक्त है। प्रकृत स्मृति ग्रन्थ में विवेचित विषयों का आध्यायानुसार विवेचन इस प्रकार है–

आचाराध्यायः –

इस अध्याय का विवेचन कुल १३ प्रकरणों के अस्तर्गत किया गया है । इस अध्याय में चतुर्दश विधाएँ, संस्कार–जन्म. से विवाह पर्यन्त, उपनयन औरं उसका समय, ब्रह्मचारी के कर्त्तव्य एवं निषिद्ध कर्म, विवाह और विवाह की योग्यता, सपिण्ड सम्बन्ध का नियम, अन्तर्जातीय विवाह तथा विवाह के आठ प्रकारों का उल्लेख, क्षेत्रजपुत्र अर्थात् नियोग प्रथा और पुनर्विवाह, गृहस्थ के कर्तव्य, पंचमहायज्ञ, अतिथि सत्कार एवं मधुपर्क, चारों वर्णों के कर्तव्य, आचार के दस सिद्धान्त, गृहस्थ की जीवनवृत्ति, स्नातक के कर्त्तव्य, अनध्यायै, भक्ष्याभक्ष्य का नियम, पवित्री–करण के नियम, दान के नियम, दान के पात्र एवं वस्तुएं, श्राद्ध के नियम, श्राद्ध का समय, श्राद्ध में बुलाए जाने योग्य ब्राह्मण, श्राद्ध की विधि एवं दक्षिणा, अहशान्ति, राजधर्म और दण्ड व्यवस्था का विस्तृत विवेचन किया गया है।

व्यवहाराध्याय :–

इस द्वितीय अध्याय "व्यवहाराध्याय" का विवेचन २५ प्रकरणों के अन्तर्गत किया गया है । इसमें मूलतः सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक नियमों को व्यवहारिक रूप देने की व्यवस्था की गई है । इस अध्याय का मुख्य विषय न्याय करने वाले व्यक्ति, न्याय करने वाली परिषद के सदस्य, जमानत, ब्याज की दर, ऋण, बन्धक के प्रकार, साक्षी की पात्रता, शपथ, लेखप्रमाण, दिव्य प्रमाण, धन का दायादों में विभाजन, स्त्री का भांग, पुत्रों के प्रकार और उनमें दाय विभाजन के नियम, स्त्रीधन, स्वामी और भृत्य के विवाद, दास्य के नियम, मजदूरी, द्यूत, मानहानि और व्यभिचार आदि जैसे अपराधों का दण्ड है।

प्रायश्चित्ताध्याय

इस तृतीय अध्याय का विवेचन अशौच प्रकरण, आपर्द्धमप्रकरण, वानप्रस्थ धर्मप्रकरण, यतिधर्मप्रकरण तथा. प्रायश्चित प्रकरण नामक पाँच प्रकरणों के अन्तर्गत किया गया है। इस अध्याय में मूलरूप से अशौच के नियम, मृतक के संस्कार और तर्पण, जन्म विषयक अपवित्रता, विपत्ति में आचार एव जीविका निर्वाह, वानतस्थ, आश्रम के धर्म और नियम, यति के नियम, गर्भ में शिशु का विचार और मानव शरीर की संरचना, आत्मा का जन्म का विषयक विवेचन, योगी की अमरता का रहस्य, आत्मज्ञान के साधन, रोगव्याधियाँ, नरक, महापातक, उपपातक और इनके प्रायश्वित, दस यम और

---

[18] या0, 1/1, 2

नियम, सान्तपन महासान्तपन, तप्तकृच्छ, पराक, चन्द्रायण एवं अन्य व्रत आदि विषयों का विस्तृत विवेचन किया गया है ।

उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त पुराण, इतिहास, अंग विद्याएं, उपनिषद, इतिहासात्मक श्लोक, सूत्र, भाष्य और सभी दूसरे अन्य आयुर्वेदादि वाइमय की विवेचना भी याज्ञवेल्क्य स्मृति में वर्णित हैं ।

2. वर्णव्यवस्था

"वर्णव्यवस्था"" हमारी एक अमूल्य संस्था है, इसका भारतीय सामाजिक इतिहास में विशेष महत्व है । जन्म से मरणपर्यन्त प्रत्येक हिन्दू के विभिन्न संस्कार वर्ण भेद के ही अनुसार होते हैं । उनके राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक संगठन की रूपरेखा भी इसी वर्णव्यवस्था के आधार पर बनी थी, जिनका पूर्णतया त्याग वर्णव्यवस्था विरोधी बौद्ध एवम् जैन धर्म भी नहीं कर सके । अपने दीर्घकालीन इतिहास के सम–विषम पंथ पर संघर्ष–विघर्ष का सामना करती हुई यह प्रणाली सतत गति से चलती रही। सहस्त्रों वर्ष बीते । अनेक धार्मिक, राजनीतिक व आर्थिक परिवर्तन हुए । नये–नये राज्य बनते व बिगड़ते रहे । अनेक नवीन धर्मों की उत्पत्ति, उन्नति और अवनति होती रही, किन्तु वर्णव्यवस्था का विलोप न हो सका। देश–काल परिवर्तन के कारण इसमें आंशिक परिवर्तन हुए। एक वर्ण के ऊपर दूसरे का और दूसरे को ऊपर तीसरे का प्रभाव घटता–बढ़ता रहा, परन्तु वह आज भी विद्यमान है। भारतीय इतिहास में प्रभाव एवं प्रभुता के लिए वर्णों का यह पारस्परिक संघर्ष सामाजिक इतिहास के लिए उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना राजनीतिक इतिहास में सिंहासनों के लिए राजवंशों का पारस्परिक संघर्ष।[19]

हिन्दुओं के धर्मशास्त्रीय विधान में "वर्णव्यवस्था" एक उत्तम संस्था एवम् सामाजिक व्यवस्था है। भारतीय विज्ञान, कला, दर्शन और सभ्यता की चरमोन्नति का एक मात्र श्रेय इसी वर्णव्यवस्था को जाता है । पाश्चात्य इतिहासकार सिडनी लो ने भी स्वीकार किया कि भारतीय समाज ने युग–युगान्त के प्राकृतिक एवम् राजनीतिक व्याघातों को सहन करके भी अपनी मौलिकता एवं स्थिरता बनाए रखा क्योंकि यहाँ वर्णव्यवस्था की संस्था विद्यमान थी।[20] इस दृष्टि से भारतीय परिवेश में, जहाँ का दृष्टिकोण पूर्णतया आध्यात्मिक है, यह एक अत्याज्य संस्था है, जबकि कुछ, लोग इसे धूर्त ब्राह्मणों द्वारा रचित अविष्कार मानते हैं।[21]

उद्भव : –

"वर्ण" शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर मिलता है।[22] इसमें अनेक स्थलों पर इसका प्रयोग काले या श्वेत रंग वाले लोगों के सन्दर्भ में किया गया है।[23] पाषाण युग में समाज में कार्य विभाजन तो था, किन्तु "वर्ण के विषय में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता । सम्भवतः इसी कार्य विभाजन ने कालान्तर में वर्ण का रूप ले लिया । इन विचारों में कितना बल है, नहीं कहा जा सकता क्योंकि प्रागैतिहासिक

---

[19] भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास, डा0 विमलचन्द्र पाण्डेय, पृ0–23, अध्याय–2

[20] विजन ऑफ इण्डिया, सिडनी लो पृ0– 262–263 (द्वितीय संस्करण 1907)

[21] धर्मशास्त्र का इतिहास–पी0वी0 काणे (द्वितीय संस्करण, अ0–2, पृ0–109)

[22] ऋ0 1/73/7, 3/3/5, 9/9715, 10/24/7 आदि

[23] यो दासं वर्ण मधंर गुहाकः। ऋ0 2/12/4,
उभौ वर्णवृषिरूग्रः पुपोष।। ऋ0 1/179/6

काल के विषय में जानकारी के साधन अत्यल्प है।[24] फिर भी वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति वैदिक काल से ही साधारणतया स्वीकार .की जा सकती है।

अर्थ :–

"वर्ण" शब्द संस्कृत के 'वंग् वरणे' धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ वर्णन करने, श्रेरित करने तथा चुनाव करने या वरण करने से लिया जा सकता है । इसमें से अन्तिम अर्थात् व्यवसाय चुनाव या वरण के सन्दर्भ में लिया गया अर्थ सामाजिक पृष्ठभूमि से सम्बन्धित हैं । यहाँ हम जिस अर्थ में "वर्ण" का प्रयोग कर रहें हैं वह "चातुर्वर्ण्य" है जो समाज के समुचित संचालन की एक व्यवस्था है । यहाँ "वर्ण" उस वर्ग का सूचक शब्द प्रतीत होता है जिसका समाज में एक विशिष्ट कार्य या व्यवसाय है और अपनी इसी विशेषता के कारण वहं समाज में एक वर्ग के रूप में प्रतिष्ठित है। "वर्ण" शब्द का प्राचीनतम् प्रयोग ऋग्वेद में 'रंग' अथवा 'आलोक' अर्थ में मिलता है।[25] यथा कृष्णवर्ण, रक्तवर्ण आदि । यद्यपि पुरुष सूक्त (ऋ० १ ०/९०) में ब्राह्मण राजन्य, वैश्य तथा शूद्र शब्द का प्रयोग हुआ है, किन्तु कही भी इनके लिए वर्ण शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है।[26] व्याकरण ग्रन्थों में तो वर्ण शब्द का प्रयोग वर्ण माला के अर्थ में किया गया है । गीता में प्रयुक्त वर्ण शब्द भी "चातुवर्ण्य" अर्थ में ही किया गया है।[27]

वर्णोत्पित्ति के सिद्धान्त :–

वर्ण व्यवस्था को उत्पत्ति के विषय में हमारे धार्मिक एवं साहित्यिक अन्थों में पर्याप्त उल्लेख मिलता है । प्रत्यक्षतः ये विवरण वस्तुतः भिन्न प्रतीत होते हैं । किन्तु इनके विवेचन के द्वारा हम यह निष्कर्ष निकालने का प्रयास कर सकते हैं कि इनकी उत्पत्ति का वास्तविक आधार क्या रहा है।

ऋणग्वैदिक सिद्धान्त :–

संस्कृत वाङ्.मय में वणोत्पत्ति का सबसे पुरातन उल्लेख ऋग्वेद में ही मिलता है। इसमें पुरोहित, राजन्य, विश तथा शूद्र शब्दों का प्रयोग बार–बार किया गया है। इसी आधार वर्णव्यवस्था की प्राचीनता ऋग्वैदिक काल से ही स्वीकार की जाती है । ऋग्वेद के दशवें मण्डल की एक ऋचा में वर्णोत्पत्ति का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है । उसमें एक विराट पुरुष की कल्पना की गई है, जो सहसखों आँखों, पैरों और मुँह वाला है। उसी के विभिन्न अंगों से विभिन्न वर्णों की उत्पत्ति बताई गईं है। मुख से ब्राह्मण, बाहु से राजन्य, उरूस् से वैश्य तथा पैरों से शूद्र वर्ण के उत्पत्ति की कल्पना की गई है।[28] यहाँ पर विराट पुरुष को ही सृष्टि का मूल माना गया है, जो कुछ हुआ और जो कुछ होने वाला है,[29] उसका एकमात्र हेतु विराट पुरुष ही है। इसी सन्दर्भ में आगे यह भी कहा गया है कि उसी के अंगों से सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, अन्तरिक्ष व दिशाएं आदि भी उत्पन्न हुई हैं।[30] यहाँ विशिष्ट अंगों से विशिष्ट वर्णों की उत्पत्ति उस वर्ण में उस अंग विशेष के गुणों की स्थापना तथा उस गुण के आधार पर उसके कर्म के निर्धारण का संकेत करता है। वर्णो के गुण धर्म से सम्बन्धित अंगों के गुणों की तुलना करने पर इसकी सार्थकता स्वयं स्पष्ट हो जाती है। मुख शरीर का सबसे उन्नत अंग है। इसी से

---

[24] प्राचीन भारत में वर्णाश्रम व्यवस्था, डा0 मनोरमा जौहरी, पृ0–2
[25] ऋ0, 1/73/7, 2/3/5, 9/97/15, 9/104/4, 9/105/4 ता 10/124/7
[26] धर्म शास्त्र का इतिहास, पी0पी0 काणे, भाग–1, पृ0–110
[27] चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः। गीता, 1/13
[28] ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् बाहु राजन्यः कृतः।
उरू तदस्य यद्वैश्यः पद् भयाम् शूद्रोऽजायत।। ऋ0, 10/90/12
[29] पुरूष एवेदं सर्वै यद् भूतं यच्च भाव्यम्। ऋ0, 10/90/2
[30] ऋ0, 10/90/13–8

हम बोलते हैं तथा अपना विचार व्यक्त करते हैं। ये सभी कार्य ब्राह्मणों के कहे गए हैं। अतएव ब्राह्मणों की उंत्पत्ति मुख से बताई गई है (ऋ०, १०/१०/१२) तथा उन्हें अभिजात वर्ग का स्वीकार किया गया है एक गौरव अर्जित करने वाला है एक सम्पति संचय करने वाला है तथा एक सेवा करने वाला है।[31] यहाँ इस उक्ति के माध्यम से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की ओर संकेत किया गया है । इसी प्रकार भुजा का गुण है रक्षा करना एवं गौरव प्राप्त करना। क्षत्रियों के लिए यही धर्म निर्धारित किया गया है। अतएव उनकी उत्पत्ति भुजा से कही गई है। ऊरूओं का कार्य शरीर के लिए लाभ अर्जित करना है। इसी कारण इस स्थान से वैश्यों की उत्पत्ति बताई गई है तथा उन्हें लाभ अर्जित करने वाला कहा गया है। पैर का कार्य आज्ञा पालन एवं सेवा करना है। शूद्रों के इन्हीं गुण धर्म के कारण उनकी उत्पत्ति पैर से बताई गई है।

यजुर्वेद में भी ब्रह्मा के विभिन्न अंगों से चारों वर्णों की उत्पत्ति बताई गई है।[32] मनुस्मृति[33] तथा महाभारत[34] और रामायण[35] आदि महाकाव्यों में वर्णों की उत्पत्ति विषयक जो भी विवरण प्राप्त होता है, उसका आधार प्रायः वेद ही रहा है।

वर्ण व्यवस्था का अध्ययन करते हुए आश्रम व्यवस्था की ओर संकेत किया जा चुका है। वर्ण व्यवस्था के ही समान आश्रम व्यवस्था का भी आरम्भ वैदिक धारा से ही हुआ है। वर्ण व्यवस्था के अध्ययन में देखा गया है कि मोक्ष की प्राप्ति के. लिए जहाँ व्यक्ति का सामाजिक विकास आवश्यक है, वहीं उसके व्यक्तित्व का विकास भी अपेक्षित है। वर्ण व्यवस्था जहाँ सामाजिक संगठन की शिक्षा देती है, वहीं आश्रम व्यवस्था व्यक्ति को समय भेद से लौकि एवम् पारलौकिक उन्नति का साधन करना सिखा देती है। हम केवल लौकिक अर्थात् भौतिक उन्नति के चक्कर में पड़कर आध्यात्मिकता से विमुख न हो जाय और मानव जीवन का परम लक्ष्य ही सर्वथा न खो बैठे, इसका उपाय आश्रम व्यवस्था कर देती है।

प्राचीन काल में लोगों को विश्वास था कि मनुष्य की आयु सौ वर्ष होती है। सम्भवतः इसीलिए अधिकांश लोग एक दूसरे को सौ वर्ष जीन का आशीर्वाद भी देते थे ''जीवेम् शरदः शतम्'' व्यक्ति के व्यक्तित्व को विकसित क़रने के लिए हमारे मनीषियों ने एक सामान्य भारतीय के जीवन को चार सोपानों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास) में विभक्त करके प्रत्येक व्यक्ति के लिए कुछ न कुछ निश्चित कार्य निर्धारित किया है, जो आयु के अनुसार क्रमशः २५—२५ वर्ष का होता था। ये ही सोपान आश्रम के नाम से जाने जाते हैं। जीवन के ये चारों सोपान व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास और उसके परम लक्ष्य—मोक्ष की प्राप्ति के बीच व्यवस्था बनाये रखने के लिए अलग—अलग विभक्त किए गये हैं। अतएव इन्हें हम आश्रम व्यवस्था कह सकते हैं।

---

31 ऋ0, 1, 113, 16

32 यजुर्वेद, 31, 10—1

33 मनुस्मृति, 1/87, 1/31

34 महाभारत शान्तिपूर्व, 296/6, 47/68

35 रामायण, 3/14/34

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

NAAGS KANPUR

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

सामाजिक एवं पारिस्थितिकीय सन्तुलन पर पर्यावरण प्रदूषण का प्रभाव : एक समाजशास्त्रीय विवेचन

प्रो0 आलोक कुमार कश्यप
प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग
महाराज बलवंत सिंह पीजी कॉलेज
गंगापुर, वाराणसी, उ0प्र0
डॉ. जयप्रकाश यादव
एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

सार
वास्तव में पर्यावरणीय स्त्रोत भावी पीढ़ियों की धरोहर है, जिनके हम ट्रस्टी है, हवा, पानी और मिट्टी में दिन रात घुलते जा रहे प्रदूषण के जहर ने आज विश्व को उस मुकाम पर ला खड़ा कर दिया है, जहाँ से आगे तबाही के सिवा कुछ नही है। यह जहर किसने घोला इसका परिणाम कौन भोगेगा, कभी आप सब लोगों ने विचार किया है। हम सभी को ध्यान देना है कि पर्यावरण को क्षति पहुँचाकर हम सम्पन्न और सुखी नही हो सकते। प्रकृति एवं मानव का सम्बन्ध आदिकाल से रहा है। प्रकृति अथवा पर्यावरण के सभी घटक (जल, वायु, मृदा, खनिज, पेड़ पौधे जीव जन्तु व मानव) अपने प्राकृतिक क्रियाकलापों से वातावरण को स्वच्छ रखने का प्रयास करते है, पर्यावरण के प्रत्येक घटक के अन्दर भी उसके अलग–अलग तत्व होते है। पर्यावरण के ये घटक अथवा उनके तत्व अपना प्राकृतिक संतुलन बनाये रखने हेतु मानव के लिए स्वच्छ, स्वस्थ व सतुलित वातावरण प्रदान करते है। किन्तु जब मानव की विकासात्मक क्रियाओं के परिणाम स्वरुप प्रकृति के घटकों अथवा उनके तत्वों का संतुलन बिगड़ जाता है तो उससे सम्पूर्ण पर्यावरण में ही उथल पुथल हो जाता है तब कहा जाता है कि पर्यावरण में असंतुलन तथा प्रदूषण बढ़ रहा है। इस असंतुलन से प्रकृति की क्रियाओं में अवरोध उत्पन्न होने लगता है और प्रकृति क्रोधित हो उठती है।

मुख्य शब्द– पर्यावरण, प्रदूषण, प्रकृति एवं मानव, वातावरण, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, परिस्थिति।

पर्यावरण प्रदूषण मानवीय क्रियाओं से जल, वायु एवं मृदा की भौतिक रासायनिक एवं जैविक विशेषताओं में होने वाला वह अवांछनीय परिवर्तन है, जो मनुष्य,पौधों, अन्य जन्तुओं तथा उनके वातावरण आदि को न केवल हानि पहुंचाता है बल्कि उनके

अस्तित्व को भी संकट में डाल देता है, पर्यावरण मानव की सभी क्रियाओं पर प्रभाव डालता है। इसलिए कहा जाता है कि मनुष्य अपनी प्राकृतिक परिस्थितियों की उपज है, मनुष्य का भोजन, वस्त्र, मकान आदि सब प्राकृतिक परिस्थितियों के अनुसार ही होते है। किन्तु दूसरी ओर मनुष्य भी अपनी क्रियाओं से वातावरण को प्रभावित करता है। उदाहरण के रूप में हम कह सकते है कि मनुष्य ने नदियों पर बांध बनाकर बिजली पैदा की, सिंचाई द्वारा मरुस्थल में भी खेती की, वनों को साफ कर नगर बसाये, अपनी सूझ बूझ से सीढ़ीदार खेत बनाकर उसने पहाड़ों पर भी खेती कर दिखाई, उसनें तीव्र गर्मी को कुलर द्वारा ठण्ड और तीव्र ठण्ड को हीटर द्वारा गर्मी में बदल दिया, किन्तु जब मानव सीमा अतिक्रमण करता है और पर्यावरण के संसाधन की कमी होने के बावजूद उसकी स्थिति व संतुलन का ध्यान न रखते हुए उसका दोहन जारी रखता है तो इससे पर्यावरण के उस घटक का ह्रास होने लगता है और उसकी क्रियाशीलता घट जाती है तथा पर्यावरण असंतुलित हो जाता है, एक और उदाहरण से हम स्थिति को इस प्रकार व्यक्त कर सकते है कि यदि तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकता को पूरा करने के लिए मानव मिट्टी का असंतुलित उपयोग बढ़ाता चला जाये और उत्पादन बढ़ाने के लिए रासायनिक खादों और कीटनाशकों का अनियन्त्रित प्रयोग करता रहे तो एक दिन स्थिति यह आ सकती है कि मिट्टी की उत्पादकता एवं गुणवत्ता घट जायेगा तथा वह बांझ व उसर हो जायेगा।

मानवीय क्रियाओं का अधिक दबाव पड़ने के कारण पर्यावरण के घटकों का ह्रास होने लगता है। उसकी क्रियाशीलता घट जाती है जिससे मानव की मूल–भूत आवश्यकताओं की पूर्ति में भी बाधा पड़ जाती है। इस सम्बन्ध में **मार्क्स का कहना था कि प्रकृति के प्रति मानवता के शत्रुतापूर्ण व्यवहार से ही पर्यावरण का ह्रास होता है,** यदि पर्यावरण के साथ सहयोग एवं संयम का व्यवहार किया जाये तो छोटी मोटी छति प्रकृति स्वयं ही पूरा कर लेगी। इसी सम्बन्ध में **महात्मा गांधी जी ने कहा था कि प्रकृति हमारी आवश्यकताओं को पूरा कर सकती है किन्तु हमारे लालच को नहीं।** पर्यावरण जितना स्वच्छ और निर्मल होगा उतना ही हमारा शरीर तथा मन स्वच्छ व स्वस्थ होगा, इसलिए हमारे ऋषी मुनियों ने हजारों वर्ष पूर्व कहा था कि प्रकृति हमारी मां है जो सभी कुछ अपने बच्चों को अर्पण कर देती है। इसी सम्बन्ध में **चाणक्य ने कहा कि राज्य की स्थिरता पर्यावरण की स्वच्छता पर निर्भर करती है।** औषधी विज्ञान के आदि गुरु **चरक ने कहा था कि स्वस्थ जीवन के लिए शुद्ध वायु जल तथा मिट्टी आवश्यक कारक है।** महाकवि **कालीदास** ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् तथा मेघदूत जैसे अमर काव्यों में मन पर पर्यावरण के प्रभाव को दर्शाया है। **लेमार्क तथा डार्विन** जैसे सुविख्यात वैज्ञानिकों ने भी पर्यावरण को जीवों के विकास में महत्वपूर्ण कारक माना है।

यदि प्राकृतिक वातावरण दूषित होता है तो उसका प्रतिकूल प्रभाव जीव जगत पर अवश्य ही पड़ेगा आज की भौतिक विचारधारा के कारण अपनी सुख सुविधा के साधनों में अधिकाधिक वृद्धि के लालसा में मनुष्य मानव प्राकृतिक सम्पदाओं की लूट पर उतर आया है। इसी बेदर्द और अविवेकपूर्ण लूट का परिणाम है पर्यावरण प्रदूषण आज मनुष्य खुद अपने बुने जाल में फंस गया है। अपने एसो आराम के लिए विकास की सीढ़ियां धड़ल्ले से चढ़ता गया. कुदरत को पैरों तले रौंदते हुए नतीजा यह हुआ कि आज उसे जिन्दगी के लिए साफ हवा और पानी भी दुभर है। पर्यावरण प्रदूषण विज्ञान और प्रौद्योगिकी की देन है, महानगरीय जीवन की सौगात है, विशाल उद्योगों की समृद्धि का बोनस हैं, मानव की मृत्यु के मुंह में धकेलने की अनचाही चेष्टा है, रोगों को शरीर में प्रवेश करने का मौन निमन्त्रण है और प्राणिमात्र के अमंगल की अप्रत्यक्ष कामना है

आक्सीजन जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि श्वसन के लिए सभी जीवों द्वारा इसका उपयोग किया जाता है, किन्तु पर्यावरण प्रदुषण के कारण पिछले 100 वर्षों में लगभग 24 लाख टन आक्सीजन वायु मण्डल से समाप्त हो चुकी है उसकी जगह 36 लाख टन कार्बनडाई आक्साईड गैस ले चुकी है जिसके कारण तापमान बढ़ रहा है। पर्यावरण प्रदूषण से मौसम का बदलाव, अत्यधिक गर्मी, सुखा, पानी की कमी, बर्फीली चोटियों का पिघलना, समुद्र का जल स्तर उंचा उठना जिससे समुद्र तट के पास बसे शहरों में बाढ़ आना आदि खतरे उत्पन्न होंगे जिनका प्रभाव फसलों पर बुरा होगा तथा शारीरिक विकार व रोगों में वृद्धि होगी और यह मानव जीवन की विनाश लीला का प्रारम्भ होगा। सत्य भी है यदि सांस लेने को शुद्ध हवा न मिले, पीने को स्वच्छ जल न मिले भोजन ही प्रदूषित हो जाये तो सारा आर्थिक विकास और औद्योगिक प्रगति किस काम की।

जल जीव मात्र का जीवन है, जल में विद्यमान लवण खनिज व जैविक तत्वों के बीच जब तक उचित संतुलन बना रहता है, तब तक जल स्वच्छ बना रहता है। किन्तु खनिज, लवण, कार्बनिक व अकार्बनिक पदार्थ अम्ल, संयंत्रों से निकले अवशिष्ट मल मूत्र, कूड़ा करकट आदि बाहरी तत्व आवश्यकता से अधिक जल में मिलकर उसके वास्तविक स्वरुप को नष्ट कर उसे दूषित व गन्दा कर देते है। जिसका मानव तथा अन्य जीवों पर घातक प्रभाव पड़ता है जल का इस प्रकार दूषित या गंदा होना ही जल प्रदूषण है। कागज, चीनी, वनस्पति, घी, शराब, पेट्रोलियम, चमड़ा आदि के कारखानों से निकला व्यय पदार्थों का कचड़ा नदियों व जलाशयों में गिराया जाता है जो जल को प्रदूषित करता है। मानव शरीर में ही 100 प्रकार के वायरस होते है, पोलियों, पीलिया, दश्त व कैंसर उत्पन्न करने वाले वायरस मानव मल के साथ बहते हुए नदियों के जल में पहुंच जाते है और नदियों के जल को प्रदूषित करके बीमारियां फैलाते है। संयुक्त राज्य अमेरिका के मीसीसिपी मिसौरी नदी तथा यूरोप की राईन नदी विश्व की सर्वाधिक प्रदूषित नदिया है. इन नदियों में स्नान करना मौत को निमन्त्रण देना है। यही स्थिति हमारे देश की पवित्र गंगा की होने वाली है। पतित पावनी गंगा में गंगोत्री से लेकर ऋषिकेश तक ए श्रेणी का जल है जो पीने योग्य है, ऋषिकेश से पटना तक बी श्रेणी का जल है जो केवल नहाने लायक है। पटना से आगे गंगा का जल इतना प्रदूषित है कि न तो पीने योग्य है, न नहाने योग्य है और न ही खेती योग्य है, जिस गंगा जल में स्नान करने से चर्म रोग ठीक हो जाते थे, जिस गंगा का जल बोतल में भरने पर भी छः माह तक सड़ता नही था. जिस गंगा के जलपान को अमृत पान कहा जाता था, सम्राट अशोक से लेकर सम्राट अकबर और जहांगीर तक जिसका गुणगान करते नहीं थकते थे, हिन्दु जिस गंगा को माँ मानकर पूजा करते है, वही गंगा में आज प्रदूषण के जानलेवा रोग से पीड़ित है। करोड़ो अरबों रुपये खर्च करने के बाद भी गंगा की प्रदूषण की स्थिति में कोई सुधार नही हुआ, इधर जल को संयत्रों द्वारा शुद्ध किया जाता है उधर नदियों में उद्योगों का कचरा व शहरों का मल मूत्र गिरना जारी है, वाह रे औद्योगीकरण तेरा अभिशॉप, पहले गन्दा करो फिर सफाई करो और करोड़ो रुपये पानी की तरह बहाओं।

वायु प्रदूषण के अन्तर्गत सल्फरडाई आक्साईड गैस सबसे अधिक हानिकारक होती है। क्योंकि यह वायुमण्डल में जलवाष्प या वर्षा के जल के साथ क्रिया करके सल्फ्यूरिक अम्ल बनाती है जो तेजाबी वर्षा के रूप में फसलों तथा मानव को अत्यधिक हानि पहुंचाता है, इससे मानव को दमा, खांसी तथा फेफड़ों की बीमारियां अधिक होती है औद्योगिक संयत्रों, वाहनों, घरेलू चूल्हों तथा मानव के मुख से निकलने वाले सिगरेट

के धुएं से कार्बन मोनो अक्साईड, कार्बन डाई आक्साई वायु में मिल जाती है, जो स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक होती है। इससे मानव को क्षय रोग, फेफड़ों का कैंसर तथा दमा आदि रोग बहुतायत से होते है। घरों व ईमारतों में इस्तेमाल होने वाला प्लास्टिक रंग रोगन, रसायन, दिवारों पर पुते हुए सिन्थेटिक डिस्टेम्पर फर्नीचर के पेन्ट तथा रसायन, भोजन, घर की हवा में सूक्ष्य प्रदूषण लगातार छोड़ते रहे है। वातानुकूलित कमरे तथा फ्रीज से रेजेन नामक रेडियो सक्रिय गैस सूक्ष्म रूप से निकलती है जो धूल कड़ों में चिपककर हमारे फेफड़ों में जमा होकर कैंसर को जन्म देती है।

आज मनुष्य ही पर्यावरण के संतुलन को सर्वाधिक क्षति पहुंचा रहा है। कृषि और उद्योग के विकास की अन्धी दौड़ के कारण वनों के सफाये के साथ ही जीव जन्तुओं की अनेक जातियां भी विलुप्त होती जा रही है, खेद की बात है कि पर्यावरण के पांच अंगो (पृथ्वी, जल अग्नि, वायु एवं वनस्पति) मे से जल तथा वायु बुरी तरीके से प्रदूषित हो चुके है। वनस्पति तेजी से नष्ट होकर पर्यावरण का संतुलन बिगाड़ रही है, वनों को मित्र, वृक्षों को पूज्य और नदियों को मां मानना हमारी संस्कृति है, किन्तु हमें अफसोस है कि औद्योगिक प्रगति की दौड़ में हम इस कदर अन्धे हो गये है कि वनों का बृक्ष रुपी वस्त्र उतार उतार कर (काट–काट कर) हमने धरती को नंगा कर दिया है, जल और वायु का संतुलित उपयोग करने के बजाए उन्हें प्रदूषित करके मानो हमने प्रकृति मां के इन बेटों के साथ बलात्कार ही कर डाला। भारतीय संस्कृति में कहा गया है कि प्रकृति और मानव के बीच अटूट रिश्ता है, और दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं, तथा दोनों एक दूसरे से प्रभावित होते है। पर्यावरण के तत्वों का प्रभाव मानव के भोजन, वस्त्र, मकान, पेयजल तथा व्यवसायों आदि पर पड़ता है, मानव के शरीर की रचना प्रकृति के पांचो तत्वों (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, वनस्पति) से मिलकर हुई है। इन पांचों तत्वों के बल पर ही हम जीते है। और जब मरते है तो हमारा यह शरीर पुनः इन तत्वों में विलीन हो जाता है, क्योंकि मरने पर यह शरीर कब्र में दफन होता है तो पृथ्वी में मिल जाता है, और दाह संस्कार होने पर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं वनस्पति में मिल जाता है। इस प्रकार प्रकृति से ही हमारा जन्म होता है और मरने पर प्रकृति ही हमें सदा के लिए अपने गोद में सुला लेती है इसलिए हम कह सकते है कि प्रकृति हमारी मां है जो सभी कुछ अपने बच्चे को अर्पण कर देती है।

अनियोजित औद्योगिक विकास के कारण विभिन्न उद्योगों से निकलने वाले दुर्गन्धयुक्त पदार्थों की निकासी की कोई समुचित व्यवस्था नहीं है। ऐसे रसायनिक पदार्थ या तो कारखानों के आस पास फैलते है अथवा उन्हें समीपवर्ती किसी नदी में छोड़ दिया जाता है, जिससे जल प्रदूषण होता है। साथ ही यहाँ के पानी में क्लोरिन, कैडमियम, जिंक, मरकरी, लेड इत्यादि खनिज तत्वों की उपस्थिति से यहाँ के निवासियों में पीलिया, हैजा, अपच, डायरिया, तपेदिक, तथा रोगाणुओं से फैलने वाले बुखार आदि में वृद्धि होती है। ध्वनी प्रदूषण के कारण अनेकों लोग अनिद्रा और विभिन्न प्रकार के मानसिक रोगों के शिकार है। अधिक शोर व्यक्ति को स्थायी रूप से बहरा और पागल बना सकता है। अधिक समय तक शोर के बीच रहने से शरीर की शिराएं सिकुड़ जाती है तथा उनमें रक्त का बहाव कम हो जाता है जिससे व्यक्ति में मानसिक तनाव बढ़ रहे है। अधिक शोर रक्त वाहिकाओं को संकुचित करके अक्सर हृदय रोग को भी जन्म देता है। अधिक शोर के बीच काम करने वाली स्त्रियों के गर्भस्थ शिशु में भी विकृतियां होने का खतरा बढ़ रहा है। ध्वनी प्रदूषण से अनिद्रा, नाड़ी सम्बन्धी रोग, एलर्जी तथा दमा को प्रोत्साहन मिल रहा है। आज कारखानों में काम करने वाले तथा कारखानों के समीप रहने वाले लोगों का 20 प्रतिशत से भी

अधिक भाग ध्वनी प्रदूषण से उत्पन्न होने वाले रोगों से प्रभावित है। यहाँ रासायनिक कारखानों से निकलने वाले फार्मेल्डिहाइड, एसिटेल्डिहाइड, लिण्डेन, हेक्सामीन, एल्यूमिनियम क्लोराईड, एथिल एसिटेट, ऐसिटिक एसिड इत्यादि रसायनों की वजह से वायु, जल, फसलों और पौधों में विषैले तत्वों का समावेश हो जाता है जो मानव और जीव जन्तुओं के शरीर में प्रवेश करके उन पर प्रतिकूल प्रभाव डालते है। इससे भूमि का उपजाउपन कम हो जाता है, जिसका उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। बढ़ते हुए प्रदूषण स्तर से वनस्पतियों व वन्य जीव भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुए है।

मानव एवं पर्यावरण का आदि काल से अटूट सम्बन्ध रहा है। मानव सभ्यता के विकास में पर्यावरण द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई गई है। मानव का पर्यावरण के साथ सामन्जस्य का प्रारम्भ ही सभ्यता के विकास की जननी रही है। सभ्यता का प्रारम्भिक चरण सामन्जस्य के साथ ही उद्भूत हुआ। सभ्यता के विकास में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई जैसे–जैसे मानव प्रकृति में परिवर्तन करने का सफल प्रयास करता गया । मानव अपने पर्यावरण से प्राप्त होने वाले प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करता रहा। मानव अपनी बुद्धि विवेक एवं तकनीकि के उपयोग से पर्यावरण को सजाता संवारता है तथा उसे नष्ट भी करता है और उससे स्वयं भी प्रभावित होता है। मानव पृथ्वी तल पर जन्म लेता है, क्रियायें करता है और जीवनयापन के साथ जीवन का अन्त भी वहीं करता है। इस प्रकार पृथ्वी तल ही मानव का निवास स्थान है और पृथ्वी तल को घेरे हुये भौतिक साधन पैत्रिक सम्पत्ति के रूप में मिली विरासत है। यही कारण है कि मानव जीवन प्रत्येक क्षेत्र में, हर क्षण भौगोलिक पर्यावरण से प्रभावित होता रहता है। मानव एवं पर्यावरण का अत्यन्त गहरा सम्बन्ध है। मानव एक निश्चित पर्यावरण में जन्म लेता है, उसमें बढ़ता एवं युवा होता है। उस पर्यावरण की स्थिति, धरातल, जलवायु वनस्पति, जीवजन्तु आदि अपने व्यक्तिगत एवं सम्मिलित प्रभाव से मानव को एक निश्चित ढंग से जीवन व्यतीत करने को बाध्य करते हैं। मानव अपने प्रयास से समानुकूलन अथवा परिवर्तन अवश्य करता है परन्तु एक सीमा के अन्तर्गत ही पर्यावरण द्वारा जितनी स्वतन्त्रता मानव को प्रदान की गई है उससे बाहर उसे विवश एवं निरूपाय हो जाना पड़ता है। आज के वैज्ञानिक युग में भी मानव अपने पर्यावरण की उपज है। मानव का शरीर, शरीर की बनावट, क्रिया–कलाप, जीवन प्रणाली, रहन–सहन का स्तर, बौद्धिक, व्यवसायिक एवं व्यापारिक उन्नति, विचार, स्वभाव, उद्देश्य, प्रेम आदि पर्यावरण जनित है। पर्यावरण का प्रभाव जीवों के बीज कोष्टक में भी पाया जाता है।

किसी प्रदेश विशेष में मानव जीवन आज कैसा है? वह वहाँ के पर्यावरण का प्रतिफल होता है। यही कारण है कि धरातल पर विभिन्न प्रकार के मानव, मानव समुदाय, उनका रहन–सहन एवं विकास देखने को मिलते हैं क्योंकि सर्वत्र धरातल पर वातावरण की शक्तियाँ समान नहीं हैं। यथा टुण्ड्रा प्रदेश के निवासियों के विचार और जीवन–यापन भूमध्य रेखीय (उष्ण कटिबन्धीय) निवासियों के विचार और जीवन प्रणाली से भिन्न होते हैं। मध्येशिया के निवासी खिरगीज पशुओं के साथ घुमक्कड़ (खानाबदोश) जीवन व्यतीत करते हैं जबकि गंगा–सिन्धु मैदान के निवासी पशुओं के सहयोग से कृषि करके स्थायी जीवन व्यतीत करते हैं। घुमक्कड़ जातियाँ स्वभावतः वीर एवं योद्धा होती हैं लेकिन कृषक बहुधा दयालु एवं उनकी तुलना में कमजोर होते हैं। भारत में राजस्थान निवासी बहुधा योद्धा एंव बलवान होते हैं जबकि चावल प्रमुख प्रदेश के निवासी प्रायः मोटे, कमजोर एवं भीरू प्रकृति के होते हैं। कश्मीर के निवासी गोरे एवं तमिलनाडु के निवासी श्यामवर्ण के होते हैं। भारत में उत्तरी मैदान के पूर्वी भाग में स्थित मकान अपने बनावट, आकार–प्रकार, प्रयुक्त सामग्री और छतों के प्रकार में देश

के अन्य किसी भी भाग के मकानों से भिन्न हैं। इन विभिन्नताओं को मूर्त रूप देने में एक ऐसी शक्ति है जो प्रदेश विशेष के निवासियों को एक निश्चित प्रकार की सभ्यता विकसित करने को आदेश देती रहती है। वही आदेश देने वाली शक्ति प्राकृतिक वातावरण या भौगोलिक परिवेश है जिसके परिणामस्वरूप विभिन्नता पायी जाती है।

पर्यावरण का प्रभाव मानव के मात्र प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति पर ही नहीं अपितु विचार, धर्म, कला, साहित, दर्शन आदि विचारों पर भी पड़ा है। पर्यावरण के सम्बन्ध में लार्ड केनेट ने कहा है कि पर्यावरण में उन तत्वों या ऊर्जा की उपस्थिति को प्रदूषण कहते है जो मनुष्य द्वारा बिना चाहे उत्पादित किये गये हो, जिनके उत्पादन का उद्देश्य अब समाप्त हो गया हो जो अचानक बच निकले हो या जिनका मनुष्य के स्वास्थ पर अकथनीय हानिकारक प्रभाव पडता हो। अभिज्ञान शाकुन्तलम में महाकवि कालिदास ने लिखा है कि शकुन्तला फूलों से इतना प्रेम करती थी कि वह अपने श्रृंगार तक के लिए फूलों और पत्तियों को नही तोड़ती थी। प्रकृति एवं पर्यावरण से प्रेम और उनके प्रति मानवीय दायित्यों के निर्वहन की यह एक मिसाल हो सकती है। सुखी शांत एवं आपदा रहित जीवन की यह पहली शर्त है कि हम उस प्रकृति और पर्यावरण को संरक्षित करें जिसने अपने अनमोल खजानों को खोलकर मानव जीवन को न सिर्फ सुखमय बनाया है, बल्कि उसे खुशरंग भी बनाया है। प्रकृति ने हमे सिर्फ दिया ही है, हमसे कुछ लिया नहीं। दूसरी तरफ हम प्रकृति को कुछ देना तो दूर उसे संरक्षित तक नहीं रख सकते है। पर्यावरण को संरक्षित करने के लिए हमारे पूर्वजों ने इसे धर्म से जोड़ा है। विश्व के सभी धर्म पर्यावरण की सुरक्षा हेतु अति संवेदनशील रहे है। हिन्दू धर्म के सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद और उपनिषद है। इनमें जगह–जगह प्रकृति और प्रकृति से विरासत में मिली सभी वस्तुओं का जीवन से गहरा जुड़ाव मिलता है और इन सभी को अत्यन्त पवित्र मानकर लोग इनकी पूजा अर्चना करते हैं। इनके अनुसार आकाश, वायु, अग्नि (ऊर्जा) जल और पृथ्वी पंचतत्व है जिनसे प्राणी मात्र को जीवन मिलता है और मृत्यु के बाद जीवन इन्हीं में विलीन हो जाता है अतः ये तत्व उनके जीवन के आधार है।

जल की महत्ता को हिन्दू धर्म में इस सीमा तक स्वीकार किया गया है कि व्यक्ति किसी नदी में स्नान करने से पूर्व उसके जल को नमन करता है स्नान करते समय मंत्रोच्चारण से उसकी पूजा अर्चना करता है और श्रद्धा से आचमन कर अपना जीवन धन्य समझता है और उसकी यह भी मान्यता है कि जल के स्पर्श मात्र से दैविक शक्ति उसकी रक्षा करेगी। ऋग्वेद में लिखा है कि आकाश के पानी, नदी और कुओ के पानी जिनका श्रोत सागर है यह सब पवित्र पानी मेरी रक्षा करें। अनेक वृक्षों को भी देवताओं का रूप माना गया है जिसकी पूजा पाठ उपासना हिन्दू धर्म में महत्वपूर्ण मानी गयी है। इस सम्बन्ध में प्रमुख विद्वान हरिश्चन्द्र व्यास ने लिखा है कि जिस प्रकार भगवान विष्णु मनुष्य को संरक्षण देने हैं, उसी प्रकार पीपल के पेड़ को विष्णु का रूप इसलिए माना गया है कि वह हमें सबसे अधिक प्राण वायु देता है। नीम को ब्राहमण के रूप में माना जाता है क्योंकि ब्राहमण का कार्य स्वयं शुद्ध रहकर दूसरों को भी शुद्ध एवं स्वस्थ परम्परा प्रदान करना है। ठीक उसी तरह नीम आज स्वास्थ्य के लिए उतना ही उपयोगी है। हिन्दुओं के महान ग्रन्थ वराह पुराण में वृक्षों के महत्व को इस प्रकार दर्शाया गया है। एक व्यक्ति जो एक पीपल, एक नीम दस फूल वाले पौधो अथवा लताएँ दो अनार, दो नारंगी और पांच आम के वृक्ष लगाता है वह कभी भी नरक में नहीं जायेगा अर्थात कोई भी धर्म हो उसके द्वारा हमें यही शिक्षा मिलती है कि प्रकृति एवं प्राकृतिक सम्पदा की सुरक्षा करना हमारा दायित्व है।

पर्यावरण से हुई छेड़–छाड़ का नतीजा हमारे सामने है। न सिर्फ भारत बल्कि समूचा विश्व आज पर्यावरण असंतुलन की समस्या से जूझ रहा है। प्राकृतिक संसाधनों के अधिकाधिक दोहन तथा प्रकृति विरोधी आचरण का ही यह नतीजा है कि आहत प्रकृ ति ने हम पर पलटवार शुरू कर दिया है कुदरत के कहर विविध रूपों में सामने आ रहे है। इसके बावजूद पर्यावरण को बचाने के लिए जो चेतना व सक्रियता हमें दिखानी चाहिए वह सामने नही आ रही है। पर्यावरण के संरक्षण व संतुलन के लिए जो दायित्व हमें निभाने चाहिए हम उसे निभा पाने में असमर्थ है। पर्यावरण असंतुलन के कारण ही ओजोन परत के क्षीण होने तथा उसमें छेद होने की समस्या सामने आयी है। ओजोन आक्सीजन का ही एक रूप है। यदि यह परत नष्ट हो जाये या कमजोर पड़ जाये तो पैराबैगनी किरणे पृथ्वी की सतह तक पहुँचती है जो न सिर्फ जीव जन्तुओं के लिए बल्कि वनस्पतियों के लिए भी हानि कारक होती हैं। ओजोन परत के क्षरण के लिए भी मानवीय गतिविधिया ही जिम्मेदार है। भौतिक रूप से जीवन को सुखमय बनाने तथा विलासिता के साधन सृजित करने के चक्कर में हमने उन रसायनों का जमकर प्रयोग किया जो ओजोन परत को क्षति पहुँचाते हैं। दुष्प्रभाव सामने स्पष्ट रूप से दिख रहे हैं जिनके भविष्य में और बढ़ने की संभावना है।

शास्त्रों में कहा गया है कि प्रकृति का कोप सारे कोपों से बढ़कर होता है। हमने यदि इस पर ध्यान दिया होता तो शायद आपदाओं के रूप में हमें प्रकृति का यह क्रूर और विनाश कारी चेहरा न देखना पड़ता। यदि हमने संतुलित विकास को तरजीह दी होती तो प्रकृति इस तरह बर्ताव न करती। हमने पर्यावरण की कीमत पर आर्थिक विकास की छलांग तो लगाई मगर अब इसके दुष्परिणामों को झेलने के लिए भी तैयार रहें या समय रहते अपने आचरण में बदलाव लाकर पर्यावरण से मैत्री पूर्ण सम्बन्ध बनाकर विकास के पथ पर आगे बढ़े। इस सम्बन्ध में भारत की पूर्व प्रधान मंत्री स्व० श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने प्रथम अन्तराष्ट्रीय पर्यावरण सम्मेलन में कहा था कि–अधिक जनसंख्या गरीबी को बुलावा देती है और गरीबी प्रदूषण को जन्म देती है। विश्व में जनसंख्या विस्फोट ने प्रकृति द्वारा विरासत में मिले बहुमूल्य पदार्थ वायु, वनस्पति और जल को कम करने के साथ–साथ प्रदूषित ही नही किया बल्कि पूरी प्रकृति के चक्र को ही विविध प्रकार से नष्ट कर दिया है अर्थात् प्रकृति और पर्यावरण के प्रति अगर हम अपने दायित्यों की अनदेखी इसी तरह से करते रहे तो अभी प्रकृति के कोप के रूप में जो खंड प्रलये हमें हिला रही है वे पूर्ण प्रलय का रूप धारण कर हमें निगल लेगी। यदि अभी भी हम पर्यावरण संतुलन एवं संरक्षण की दिशा में ध्यान देना शुरू कर प्रकृति के जख्मों पर मरहम लगाना शुरू कर दे तो भावी विनाश से बच सकते हैं। भारत में तो इस बात की सख्त आवश्यकता है कि पर्यावरण को संरक्षित करे। हमारा देश कृषि प्रधान तथा विकासशील देश है मौसम ने साथ दिया तो किसानों के चेहरे खिल जाते हैं और यदि मौसम ने बेरुखी का परिचय दिया तो अन्नदाताओं के घर मायूसी छा जाती है। हमारी खाद्यान्य सुरक्षा तथा सुख समृद्धि के लिए मौसम की अनुकूलता के लिए यह जरूरी है कि हम प्रकृति को नुकसान न पहुचाएं। हमें प्रकृति की ओर लौटकर ही अपना बचाव करना होगा। कुछ छोटे–छोटे प्रयास कर हम पर्यावरण को बचा सकते है। पेट्रोल, डीजल द्वारा चलने वाली गाडियों का कम से कम प्रयोग करना चाहिए, सार्वजनिक परिवहन का प्रयोग संरक्षण में सहायक होगा। उन पदार्थों के प्रयोग को जो रीसायकिल हो सकते हैं वरीयता देकर भी हम पर्यावरण को संरक्षित करने में सहायक हो सकते हैं।

अतः स्पष्ट है कि बहुत से छोटे–छोटे उपायों को अपनाने के साथ ही हम वृक्षारोपण पर अधिकाधिक ध्यान देकर तथा इसके लिए लोगों को प्रेरित करके, पर्यावरण संरक्षण में अहम भूमिका का निर्वहन कर सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति जीवन में यदि एक पेड़ लगाने और अपने जीवन काल में उसकी देखभाल का संकल्प ले तो स्थिति कॉफी बदल सकती है। हमारे देश में वृक्षों को पूज्यनीय माना जाता है लोक पर्वों पर वृक्ष पूजन की परम्परा भी है इसके बावजूद वृक्षारोपण में कमी यह इंगित करती है कि कहीं न कहीं हम अपने दायित्वों का निर्वहन नहीं कर रहे हैं। सम्भवतः इसके लिए वह असंतुलित विकास ही जिम्मेदार है जो प्रकृति की उपेक्षा और उसका दोहन करके किया गया है। अब हमारा दायित्व बनता है कि हम आलोचनाओं तक ही सीमित न रहें, बल्कि अच्छे परिणामों के लिए व्यावहारिक पहल के धरातल पर खड़े होकर प्रकृति और पर्यावरण में ईश्वर का प्रतिरूप देखकर उसकी उपासना करें। तभी प्राकृतिक प्रकोप दूर हो सकेगा और हम उन प्राकृतिक आपदाओं से बच सकेंगे।

संदर्भ :–

1. गुर्जर, राजकुमार, डॉ. वी.सी.जाट, 2020, पर्यावरण भूगोल पंचशील प्रकाशन जनवरी
2. सक्सेना, हरि मोहन 2019,पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी भूगोल राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
3. जोशी रतन, 2011, पर्यावरण भूगोल साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा
4. अवस्थी, नरेन्द्र मोहन 2010, पर्यावरण भूगोल, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
5. सिंह, सविन्द्र 2008, पर्यावरण भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहबाद
6. पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी, मंथन प्रकाशन, इलाहबाद 2022
7. कुरुक्षेत्र, जून 2005, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली
8. विज्ञान प्रगति, जून 2021
9. योजना, जनवरी 2020

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

आर्थिक विकास में पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की भूमिका

डॉ0 आशा कुमारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग
महाराज बलवन्त सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय
गंगापुर, वाराणसी

सार

विकास का पूंजीवादी मार्ग एक ऐसा मार्ग है जिसमें अर्थव्यवस्था उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत लोगों का अधिकार मानता है। इसमें राज्य कानूनी तौर पर सम्पत्ति एवं अर्थव्यवस्था के व्यक्तिगत स्वामित्व पर विश्वास रखता है। स्वतंत्र प्रतियोगिता के रूप में सम्पूर्ण आर्थिक कार्य संचालित किये जाते है। सरकार का अर्थव्यवस्था पर अनावश्यक नियंत्रण नहीं होता है। पूंजीवादी पथ में समस्त आर्थिक क्रियाओं का एक ही उद्देश्य होता है— अधिकतम लाभ प्राप्त करना। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में समाज दो भागों में बंट जाता है— उत्पादन साधनों के स्वामी अर्थात् पूंजीपति वर्ग तथा श्रमिक वर्ग। बाजार तन्त्र का विस्तार, मशीनीकरण, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषता होती है।

मुख्य शब्द— पूंजीवादी अर्थव्यवस्था, आर्थिक क्षेत्र, उत्पादन, निजी सम्पत्ति, श्रमिक।

पूंजीवादी पथ का उदय 18 वीं शताब्दी के मध्य इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप हुआ था। पूंजीवादी देशों ने शासन की प्रजातान्त्रिक तथा उदारवादी व्यवस्थाओं को अपनाया। समाज में व्यक्तिवादी विचारधारा के अनुसार स्वतन्त्रता, समानता तथा सामाजिक न्याय पर अत्यधिक बल दिया जाने लगा। परन्तु राज्य की सत्ता पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से पूंजीपतियों का नियंत्रण स्थापित हो गया। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में व्यक्ति को आर्थिक क्षेत्र में पूर्ण स्वतंत्रता होती है। आर्थिक क्षेत्र में स्वतन्त्र प्रतियोगिता होती है। शासन द्वारा व्यापार, उद्योग तथा कृषि क्षेत्र मे कानूनों का निर्माण किया जाता है परन्तु राज्य इन पर अपना नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास नहीं करता है। पहले तो विश्व के अधिंकाश देशों ने इस पथ को अपनाया परन्तु समय बीतने के साथ—साथ पूंजीवादी अर्थ—व्यवस्था में अनेक प्रकार के उतार—चढ़ाव आए। पूंजीवाद के दोषों को देखते हुए विश्व के अनेक देशों में इस प्रणाली के विरोध में जन—आन्दोलन हुए। परिणामस्वरूप पूंजीवाद के स्थान पर अन्य आर्थिक प्रणालियों को अपनाया जाने लगा। परन्तु आज भी अमेरिका एवं पश्चिमी यूरोप के देश पूंजीवादी पथ को अपनाये हुए है। वर्तमान समय में पूंजीवादी राज्यों में आर्थिक उदारीकरण,

वैश्वीकरण तथा वैयक्तिकरण की प्रक्रिया को अधिक अपनाया गया है तथा इनसे इन राज्यों का विकास और भी अधिक तीव्र गति से हुआ है। संयुक्त राज्य अमेरिका एवं जापान इस अर्थव्यवस्था के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

पूंजीवाद की अनेक परिभाषाए विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गई है किन्तु सभी परिभाषाओं में एक ही बात पर बल दिया गया है और वह है– उत्पादन के साधनों पर कुछ लोगों का स्वामित्व जिनमें लाभ की भावना का होना।

सिडनी वेन के अनुसार, ''पूंजीवादी अर्थव्यवस्था से हमारा अभिप्राय औद्योगिक एवं वैधानिक संस्थाओं के उस विशेष अवस्था से है जिसमें श्रमिकों को उत्पत्ति के साधनों के स्वामित्व से इस प्रकार वंचित कर दिया जाता है कि वह मजदूरी कमाने वालों की स्थिति में परिणित हो जाता है कि उनकी आजीविका, सुरक्षा और उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता राष्ट्र के उन थोड़े से व्यक्तियों की इच्दा पर निर्भर हो जाती है जो भूमि यंत्रादि और समाज की श्रम शक्ति के स्वामी है और जो अपने वैधानिक स्वामित्व के कारण उनके प्रबन्ध का नियंत्रण करते है और जो ये सब कार्य अपने निजी एवं व्यक्तिगत लाभ के लिए करते है।''

जान स्ट्रेची के अनुसार, ''पूंजीवादी अर्थव्यवस्था ऐसी अर्थव्यवस्था है जिसमें कृषि, भूमि, उद्योग तथा खानों पर कुछ व्यक्तियों का स्वामित्व होता है। इन उत्पादन साधनों में कार्य करने वालों का साधनों पर स्वामित्व नहीं होता है। उत्पादन का लाभ उत्पादन साधनों के स्वामित्वों को मिलता है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था लाभ के उद्देश्य से चलती है, प्रेम के कारण नहीं।'' **लाक्स एवं हूट के शब्दों में,** ''पूँजीवाद अर्थव्यवस्था में प्राकृतिक तथा मनुष्यकृत पूंजी पर व्यक्तियों का निजी अधिकार होता है और इनका उपयोग वे अपने लाभ के लिए करते है।'' **प्रो0 पीगू ने लिखा है कि,** ''एक पूंजीवादी उद्योग वह है जिसमें उत्पत्ति के भौतिक साधन निजी व्यक्ति के अधिकार में होते है अथवा वे उनको किराये के रूप में लेते है और उनका उपयोग उनकी आज्ञानुसार इस प्रकार से होता है कि उनकी सहायता से उत्पन्न वस्तुएँ अथवा सेवाएं नाम पर बेची जाये।'' **मैकराइट के अनुसार,** ''पूंजीवाद वह व्यवस्था है जिसमें सामान्यतः आर्थिक क्रियाओं, विशेषतः नये विनियोजन का अधिकांश भाग निजी इकाइयों द्वारा लाभ की आशा से विक्रय तथा वस्तुतः स्वतंत्र प्रतियोगिता की दशाओं में किया जाता है।''

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि पूंजीवादी व्यवस्था वह व्यवस्था है जिसका उद्देश्य उधिकतम लाभ प्राप्त करना, विवेकीकरण के आधार पर गणना करना, आर्थिक तथा सामाजिक सम्बन्धों का पृथक्करण, औपचारिक रूप से स्वतंत्र श्रम, कच्चेमाल के लिए बाजार का एक नेटवर्क, श्रम उत्पन्न करना और एक वृहद् वित्तीय व्यवस्था है।

पूंजीवाद में समस्त उत्पादन व्यक्तिगत लाभ के दृष्टिकोण से किये जाते है। निजी सम्पत्ति को मान्यता, स्वतंत्र व्यापार की नीति का प्रयोग तथा प्रतिस्पर्धा के साथ प्रगति करने की होड़, इसकी मुख्य विशेषताएं अथवा लक्षण है। विकास के पूंजीवादी पद की निम्नलिखित विशेषताएं है :–

(1) निजी सम्पत्ति :– पूंजीवादी में निजी सम्पत्ति को मान्यता दी जाती है। सम्पत्ति पर निजी अधिकार होता है। जिसे छिनने का अधिकार राज्य को प्राप्त नहीं होता है। व्यक्ति को अपनी सम्पति का स्वेच्छानुसार उपयोग करने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। सम्पत्ति के आधार पर पद मिलता है और व्यक्ति की शक्ति निर्धारित होती है।

(2) प्रतिस्पर्द्धा :– प्रतिस्पर्द्धा पूंजीवाद की प्रमुख विशेषता है। श्रमिक, उपभोक्ता और उत्पादक, तीनों में प्रतिस्पर्द्धा पायी जाती है। पूंजीवादी व्यवस्था में उपभोक्ता कम से कम कीमत पर वस्तुयें क्रय करना चाहता है तो विक्रेता अधिकतम मूल्य पर उत्पादित

वस्तुएं बेचने का प्रयास करता है। इस स्थिति में उत्पादकों की आपसी प्रतिस्पर्द्धा बढ़ जाती है। अन्ततः उपभोक्ता को सस्ती वस्तुएं उपल्ध होती है।

(3) लाभ की भावना :– पूंजीवादी व्यवस्था में पूंजीपतियों का एक मात्र उद्देश्य उत्पादन के रूप में अधिकाधिक आर्थिक लाभ प्राप्त करना है। पूंजीवादी व्यवस्था में प्रत्येक कार्य लाभ की भावना से प्रेरित होकर किया जाता है। निजी सम्पत्ति, उत्तराधिकार का नियम, आर्थिक कार्य की स्वतंत्रता आदि के पीछे लाभ की भावना होती है। यह लाभ की भावना ही पूँजीपति को पूँजी लगाने के लिए प्रेरित करती है।

(4) वर्ग–संघर्ष :– पूंजीवाद अर्थव्यवस्था में समाज दो वर्गों में विभाजित हो जाता है एक, पूँजीपति वर्ग, जिनका कि आर्थिक साधनों पर पूर्ण अधिकार होता है तथा दूसरा वर्ग श्रमिकों का होता है, जिनके पास केवल बेचने के लिए श्रम होता है। इन दोनों वर्गों के बीच अपने–अपने हितों की रक्षा के लिए सघर्ष चलता है जिसे मार्क्स वर्ग–संघर्ष कहते है।

(5) बड़े पैमाने पर उत्पादन :– पूंजीवाद में उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है जिसके लिए बड़े–बड़े उद्योगों की स्थापना की जाती है जिसमें अनेक श्रमिक एक साथ कार्य करते है। श्रम–विभाजन के द्वारा अधिक उत्पादन करना पूंजीवाद का प्रमुख लक्ष्य होता है।

(6) श्रमिकों का शोषण :– पूंजीवादी व्यवस्था में श्रमिकों का शोषण होता है। श्रमिकों द्वारा अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए श्रमिक संघों का निर्माण किया जाता है। ये श्रमिक संघ श्रमिकों को सुविधाएं प्राप्त कराने के लिए प्रयत्नशील रहते है।

(7) मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था :– पूंजीवाद एक स्वतंत्र बाजार व्यवस्था है जिसमें पूंजीपति अपनी क्षमतानुसार कितना भी उत्पादन कर सकते है तथा किसी भी कीमत पर तथा कितनी भी मात्रा में उसका खुले बाजार में विक्रय कर सकते है। यद्यपि कभी–कभी सरकार उपभोक्ताओं के हित को ध्यान में रखकर मूल्य नियंत्रित कर सकती है।

(8) साहसी(उद्योगपति) का महत्व :– पूंजीवादी व्यवस्था में साहसी का महत्वपूर्ण स्थान होता है। साहसी द्वारा उत्पादन के साधनों को संगठित करके वस्तुओं एवं सेवाओं को उपलब्ध कराया जाता है। साहसी को सम्पूर्ण उत्पादन प्रणाली का ज्ञान रहता है। वह सदैव ऐसे निर्णय लेता रहता है जिससे उसके लाभ में उत्तरोत्तर वृद्धि हो सकें।

पूंजीवादी व्यवस्था के प्रमुख गुण :–

पूंजीवादी व्यवस्था के गुणों को निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है–

(1) अधिकाधिक उत्पादन :– पूंजीवादी व्यवस्था में लाभ की कामना एवं प्रतियोगिता के कारण उत्पादक अधिकाधिक उत्पादन करना चाहता है। इससे उपभोक्ताओं को अच्छी तथा सस्ती वस्तुएं पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाती है।

(2) पूंजीवाद एक न्यायपूर्ण तथा लोकतान्त्रिक विचारधारा :– पूंजीवाद न्याय तथा लोकतन्त्र के प्रति विश्वास व्यक्त करता है क्योंकि आर्थिक स्वतंत्रता, प्रतियोगिता, निजी सम्पत्ति का अधिकार, उपभोक्ता की सार्वभौतिक शक्ति आदि पूंजीवाद में पायी जाती है। इस व्यवस्था में सरकार जनता के विचारों का अनुसरण करती है।

(3) प्रतियोगिता :– पूंजीवाद स्वतंत्र प्रतियोगिता को प्रोत्साहित करता है फलस्वरूप उपभोक्ताओं को कम मूल्य पर अच्छी वस्तुएं प्राप्त होती है। चूंकि पूंजीवाद में लाभ की कामना होने से अधिकाधिक उत्पादन होने लगता है तथा पूंजीपतियों में अपनी वस्तुओं को बेचने में प्रतियोगिता प्रारम्भ हो जाती है। इससे उपभोक्ताओं को लाभ होता है।

(4) समान अवसर :– पूंजीवाद का लक्ष्य समानता है। पूंजीवाद ऐसे वातावरण के निर्माण पर जोर देता है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करने का अवसर मिल सके।

(5) यंत्रीकरण :– पूंजीवाद में उत्पादन कार्य बड़े पैमाने पर किया जाता है जिसके लिए विभिन्न प्रकार के यंत्रों की सहायता ली जाती है क्योंकि बढ़ती हुई मांग की पूर्ति तभी सम्भव है, जब आधुनिक यन्त्रों की सहायता ली जायें। इसीलिए कहा जाता है कि पूंजीवाद ने यंत्रीकरण को बढ़ावा दिया।

(6) कार्यकुशलता को प्रोत्साहन :– पूंजीवाद में जो व्यक्ति जितना अधिक कार्यकुशल होता है, उसे उतना ही अधिक पारिश्रमिक मिलता है। फलस्वरूप व्यक्ति प्रोत्साहित होता है एवं उत्साह से कार्य करता है।

(7) पूंजी निर्माण को प्रोत्साहन :– पूंजीवाद में व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकार एवं लाभ की भावना होने से प्रत्येक व्यक्ति बचत, विनियोग एवं पूंजी निर्माण करने के लिए प्रोत्साहित होता है। फलस्वरूप किसी भी देश का तीव्र आर्थिक विकास सम्भव हो सकता है।

(8) भ्रातृत्व तथा समाज सेवा की भावना :– पूंजीवादी व्यवस्था समानता पर बल देता है जिससे कि व्यक्तियों की संकीर्ण मनोवृत्तियों तथा स्वार्थ समाप्त होता है और उनमें सामूहिक हित की भावना विकसित होती है क्योंकि पूंजीवाद अनुशासन और समूह भावना को प्रोत्साहित करती है।

पूंजीवादी व्यवस्था के दोष :– पूंजीवादी व्यवस्था में अनेक गुण है फिर भी यह दोष मुक्त नहीं है क्यों कि अगर ऐसा होता है तो इस व्यवस्था के विकल्प की खोज के रूप में अन्य पथ हमारे सामने नहीं होते। इसलिए इसके दोषों को हम निम्नलिखित रूप में व्यक्ति कर सकते है–

(1) धन एवं आय का असमान वितरण :– पूंजीवाद में व्यक्तिगत सम्पत्ति, उत्तराधिकार की प्रणाली और अवसरों की असमानता के कारण कुछ व्यक्तियों के पास धन का केन्द्रीयकरण हो जाता है और कुछ व्यक्तियों के पास धन बहुत कम रह जाता है। यह असमानता व्यक्तियों के आय में भी देखने को मिलने लगता है। यह आर्थिक असमानता सरकार को भी प्रभावित करने लगती है। आय एवं सम्पत्ति की यह विषमता आर्थिक शोषण को जन्म देती है फलस्वरूप भ्रष्टाचार, अन्याय एवं अनैतिकता को प्रोत्साहन मिलता है।

(2) उत्पादन में अपव्यय :– पूंजीवाद में प्रतियोगिता का पाया जाना उपव्यय का एक प्रमुख कारण है। प्रतिद्वद्वियों को प्रतियोगिता से बाहर करने एवं बाजार पर अपना प्रभुत्व कायम करने के लिए प्रत्येक उत्पादक विज्ञापन एवं प्रचार पर बहुत अधिक व्यय किया जाता है। इस प्रकार के अपव्यय से पूंजी का विनाश होता है।

(3) वर्ग–संघर्ष :– पूंजीवादी व्यवस्था में समाज दो प्रमुख वर्गों में विभाजित हो जाता है– पूंजीपति एवं श्रमिक, दोनों वर्ग अधिकाधिक लाभ कमाना चाहते है। पूंजीपति न्यूनतम मजदूरी–दर पर श्रम खरीदना चाहता है और श्रमिक अपने श्रम का अधिकाधिक मूल्य प्राप्त करना चाहता है। यह स्थिति इन दोनों वर्गों के बीच संघर्ष उत्पन्न करती है जिसे मार्क्स 'वर्ग संघर्ष' कहते है। वर्ग–संघर्ष समाज में आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याएं उत्पन्न करती है।

(4) श्रमिकों का शोषण :– पूंजीवादी व्यवस्था में श्रमिकों को उनके श्रम के बदले केवल मजदूरी दी जाती है, वह न्यूनतम दर पर। श्रम कल्याण पर व्यय होने वाली धनराशि

को उद्योगपति स्वयं खा जाते हैं। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि पूंजीवाद श्रमिकों के शोषण को बढ़ावा देती है।

(5) समान अवसर का अभाव :– पूंजीवाद अवसर की समानता पर बल देता है। लेकिन वास्तविकता यह है कि पूंजीवादी व्यवस्था में साधनविहिन वर्ग धनाभाव के कारण उचित शिक्षा, स्वास्थ्य तथा रोजगार की व्यवस्था नहीं कर पाता है। इस व्यवस्था में केवल वही सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकता है जिसके पास आजीविका का पर्याप्त साधन हो। अर्थात् समाज में धनवान व्यक्तियों का ही आधिपत्य रहता है।

(6) व्यक्तिगत लाभ की भावना :– पूंजीवाद व्यक्तिगत लाभ को प्राथमिकता देता है जिससे समाज के हित की उपेक्षा होती है। पूंजीवादी व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें धनवान और अधिक धनवान बनता जाता है जब कि गरीब और गरीब होता जाता है क्योंकि इसमें मांग एवं पूर्ति में सामन्जस्य स्थापित नहीं होता है।

(7) राजनीति पर पूंजीपतियों का प्रभाव :– पूंजीवादी व्यवस्था लोकतान्त्रिक व्यवस्था पर आधारित होता है परन्तु वास्तव में राजनीति को पूंजीपति अपने हित में प्रभावित करते है। जैसे– पूंजीपति निर्वाचनों में राजनीतिक दलों को धन से सहायता करते है और सरकारे उनके हितों में ही कानून निर्मित करती है। इससे अन्य वर्गों के हितों को हानि पहुंचती है।

(8) विश्व शान्ति के लिए खतरा :– पूंजीवाद ने वैश्वीकरण को बढ़ावा दिया। फलस्वरूप पूंजीवादी राज्य अपने देश में निर्मित वस्तुओं के विक्रय के लिए विश्व के अनेक राष्ट्रों के बाजारों पर अपना नियंत्रण स्थापित करना चाहते है। ऐसी स्थिति में प्रतिस्पर्द्धा राज्यों में युद्ध की सम्भावना बढ़ जाती है जो विश्व शान्ति के लिए खतरा है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि पूंजीवादी पथ में गुण एवं दोष दोनों ही है। पूंजीवाद के विरूद्ध अनेक अन्य पथ विकसित हुए जैसे–समाजवाद, साम्यवाद, आदि परन्तु ये सभी कभी भी पूंजीवाद की विकल्प न बन सकी। धीरे–धीरे उन सभी राष्ट्रों ने पूंजीवादी व्यवस्था को अपना लिया जो कभी समाजवाद या साम्यवाद को अपनाये हुई थी। आज वर्तमान में आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने पूंजीवाद को और विस्तार दिया है। इसको और मजबूती प्रदान किया है।

सन्दर्भ –

1. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका, न्यू दिल्ली : इम्पल्स मार्केटिंग, 2005, पृष्ठ 87
2. मजूमदार, डी0एन0 तथा मदन, टी0 एन0, 1956, एन इण्ट्रोडक्शन टू सोशल एन्थ्रोपालॉजी, बम्बई, एशिया पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ, 188.
3. Datta, Bhabatosh, 1983, Fields must be defined, Capital Annual, P.27
4. Patnaik, Utsa, Sept. 1972, Development in Capitalist Agriculture, Social Scientist

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

NAAGS KANPUR

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

साहित्यिक विधिशास्त्र एवं विधिक निर्वचन एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

सुवेक सिंह चौहान
सहायक आचार्य विधि विभाग
एन. ए. एस. कालेज, मेरठ
डा. अनीस अहमद
सहायक आचार्य
विधि विभाग, विधि संकाय
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय लखनऊ

शोध–सार
समाज के विकास में साहित्य की भूमिका महत्वपूर्ण है। साहित्य का सर्जन कुछ मौलिक उद्देश्यों व सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर किया जाता है। साहित्य सर्जक इन उद्देश्यों व सिद्धान्तों को विधिक भाषा में साहित्यिक विधिशास्त्र की संज्ञा प्रदान की जाती है। प्रस्तुत आलेख मे हम विधि व साहित्य के सम्बन्ध का विश्लेषण विधिक व्याख्या के परिपेक्ष्य में साहित्यिक विधिशास्त्र की भूमिका के आधार पर करेंगे। भारत सहित विभिन्न देशों की न्यायपालिका द्वारा दिए गए न्यायिक निर्णयों में साहित्यिक संदर्भो व उद्धरणों के आधार पर होने वाले विधिक निर्वचन से विधि में स्पष्टता, निश्चितता और व्यापकता जैसे गुणों का सूत्रपात हुआ है। विधि व साहित्य के सम्बन्ध का आधार समाज है। जब साहित्यकार सामाजिक बुराईयों को अपने साहित्य के माध्यम से चिन्हित कर प्रस्तुत करता है। तो इससे विधि–निर्माण व विधि के निर्वचन दोनों से सहायता प्राप्त होती है। विधिक निर्वचन में साहित्यिक संदर्भो व उद्धरणों का उचित प्रयोग न्यायाधीश की साहित्य के प्रति रूचि व समझ पर निर्भर करता है। कालीदास व शेक्सपियर जैसे कालजयी साहित्यकारों द्वारा रचित साहित्य किसी भी कालखण्ड व किसी भी विधिक व्यवस्था में विधि के उपयुक्त निर्वचन में प्रभावी ढंग से न्यायपालिका का पथ–प्रदर्शन कर सकता है। विधिक निर्वचन में साहित्यिक संदर्भो व उद्धरणों के प्रयोग का औचित्य विधिक निर्वचन के स्वरूप व उन साहित्यिक पंक्तियों या उद्धधरणों की उस विधि विशेष में प्रासंगिकता पर निर्भर करता है।

बीजशब्द /Keywords:निर्वचन, साहित्य, विधिशास्त्र, न्याय निर्णयन, विधि–निर्माण, न्यायाधीश,विधायिका, साहित्यक–सन्दर्भ, साहित्यकार, संविधियां, विधि और साहित्य ।

प्रस्तावना

साहित्य समाज का दर्पण है। समाज में जो घटित होता है साहित्यकार उसे अपने सहित्य में स्थान देकर स्पष्टता प्रदान करता है। विधि का उद्देश्य समाज का उत्थान व विकास करना होता है। साहित्य की रचना विशेष रूप से समाज में व्याप्त कुरीतियों को लक्ष्य बनाकर उनके निराकरण हेतु की जाती है। साहित्य विधि के निर्माण हेतु आधार प्रदान करता है। विधि को अधिक स्पष्ट, सहज, बोधगम्य और मानवता उन्मुख बनाने हेतु साहित्य की भूमिका महत्वपूर्ण है। जब समाज में व्यक्तिगत व सामूहिक विवाद की स्थिति उत्पन्न होती है तो न्यायपालिका विवाद का समाधान कर पूर्ण न्याय को सुनिश्चित करने का प्रयास करती है। सामान्य रूप से न्यायपालिका विवादों का समाधान उपलब्ध विधियों का उपयुक्त निर्वचन के माध्यम से करती है। न्यायपालिका को संविधियों का निर्वचन 'न्याय होना ही नहीं चाहिए अपितु होते हुए भी दिखना चाहिए' की सूक्ति के आधार पर करना होता है। अतः न्यायाधीश प्रायः अपने निर्णयों में साहित्यिक पंक्तियों व वक्तव्यों का प्रयोग करते हैं। विधिक निर्वचन में साहित्य की भूमिका के सम्बन्ध में रिचर्ड पास्नर (2009) ने कहा है कि एक कुशल न्यायाधीश को कुशल जासूसी कहानीकार की तरह होना चाहिए जिससे कि उसके द्वारा दिये जाने वाले निर्णयों में रोचकता विद्यमान रहे। न्यायिक निर्णयों में साहित्यिक पंक्तियों व वक्तव्यों के प्रयोग के सन्दर्भ में विभिन्न विधिक व्यवस्थाओं में आम राय नहीं है। कुछ न्यायाधीशों और विधिशास्त्रियों ने अपने न्यायिक निर्णयों में साहित्यिक पंक्तियों व वक्तव्यों के प्रयोग का समर्थन करते हैं तो वहीं कुछ न्यायाधीश व विधिशास्त्री न्याय–निर्णयन में साहित्यिक पंक्तियों व वक्तव्यों के प्रयोग को उचित नहीं मानते हैं। उनका तर्क है कि विधि और साहित्य दोनों के स्वरूप में कोई सम्बन्ध नहीं है।

विधि व साहित्य में सम्बन्ध

विधि और साहित्य दोनों समाज से घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित हैं। साहित्य समाज में व्याप्त कुरीतियों को चिन्हित कर उन्हें दूर करने हेतु समाज को जागृत करता है। वहीं विधि समाज में रहने वाले लोगों के अधिकारों को सुनिश्चित व संरक्षित करती है। साहित्य विधि निर्माण हेतु आवश्यक वातावरण का निर्माण करता है। साहित्यकार अनुपयोगी व असंगत विधियों पर साहित्य की रचना कर उन्हें समाप्त करने हेतु विधायिका को मार्गदर्शित भी करते हैं। साहित्यकारों के साहित्य का विषय विधिक प्रावधान व विधिक व्यवस्था में व्याप्त विसंगतियाँ भी होती हैं।

विधि और साहित्य के इस सम्बन्ध के आधार पर ही किसी विधि व्यवस्था में न्यायपालिका द्वारा दिए जाने वाले न्यायिक निर्णयों में साहित्यिक पंक्तियों व वक्तव्यों का प्रयोग महत्वपूर्ण हो जाता है। इसी प्रकार साहित्यकारों द्वारा विधि से सम्बन्धित विषयों पर साहित्य की रचना करना विधिक सेवा से सम्बन्ध व्यक्तियों के लिए उपयोगी व महनीय हो जाता है।

20वीं सदी के प्रारम्भिक कुछ दशकों तक विधि और साहित्य से सम्बन्धित अध्ययनों व अन्वेषण से विधिक निर्वचन की परम्परागत पद्धति को चुनौती का आभास हुआ परन्तु बाद में उन्हीं अध्ययनों ने विधिक निर्वचन की परम्परागत पद्धति को जीवन्त बना दिया। वैश्विक स्तर पर सबसे पहले वर्ष 1930–40 के दशक में अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश बेंजामिन नाथन कार्डोजो ने विधि और साहित्य के सम्बन्ध प्रकट कर न्याय निर्णयन के क्षेत्र में साहित्यिक महत्व को स्पष्ट किया। जस्टिस कार्डोजो ने न्यायाधीशों का मार्गदर्शन करते हुए स्पष्ट किया कि साहित्य विधि को स्पष्ट व बोधगम्य बनाता है। अमेरिका में विधि विषय के प्रोफेसर जेम्स बायड व्हाइट ने 'ला एण्ड लिटरेचर मूवमेंट' हेतु पृष्ठभूमि का निर्माण कर इस दिशा में विशेष योगदान दिया।

भारतीय विधि व्यवस्था में संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रोफेसर जम्स बायड व्हाइट द्वारा अस्तित्व में आये 'विधि और साहित्य आन्दोलन' की तीसरी शाखा ने विशेष रूप से अपना प्रभाव डाला। भारत में समय–समय पर विधि सम्बन्धित विषयों पर रचित साहित्य का उपयोग विधि को लोकप्रिय बनाने व विधिक जागरूकता हेतु किया गया है। भारत में 1985 से 1995 के दौरान बार काउंसिल आफ इण्डिया व राज्यों की बार काउंसिलों ने हिन्दी व अंग्रेजी साहित्य में वर्णित विधिक मामलों से सम्बन्धित विभिन्न प्रसंगों के नाट्य रूपांतरण का प्रयोग विधिक जागरूकता हेतु किया गया है।

साहित्य विधिक निर्वचन का आधार

भारत सहित विश्व के अनेक देशों में प्रायः न्यायाधीश अपने निर्णयों को अधिक बोधगम्य और प्रभावी बनाने के उद्देश्य से उसमें साहित्यिक पंक्तियों तथा वक्तव्यों या उद्धरणों का प्रयोग करते हैं। न्यायाधीश साहित्य का प्रयोग कर अपने निर्णयों को व्यापकता प्रदान करते हैं। न्यायाधीश विधि में साहित्य के प्रयोग सम्बन्धी वाद विवाद में पड़े बिना विधि को स्पष्टता व लोप्रियता प्रदान करते हैं।

भारत में 'लिविंग लीजेंड आफ इण्डिया' के नाम से विख्यात जस्टिस कृष्णा अय्यर को न्यायिक निर्णयों में सहित्यिक संदर्भों व उद्धरणों के प्रयोग का प्रणेता माना जाता है। उनके बाद भारत में निचली अदालतों से लेकर सर्वोच्च न्यायालय तक के न्यायाधीशों ने अपने न्याय–निर्णयों में साहित्यिक विधिशास्त्र का प्रयोग तल्लीनता से किया है।

न्यायमूर्ति वी.आर.कृष्णा अय्यर द्वारा 'सीआईटी बनाम टी.एन. अरविंद रेड्डी' (1979) के वाद में दिये गये निर्णय में साहित्यिक विधिशास्त्र का कुशल प्रयोग परिलक्षित होता है। गद्यात्मक स्वरूप में लगभग दो पृष्ठ लम्बे निर्णय में सैकड़ों पृष्ठों के भाव समाहित हैं। यही साहित्यिक विधिशास्त्र की विशेषता है।

एन. रंगा राव एण्ड संस बनाम अनिल गर्ग और अन्य (02 दिसम्बर, 2005) दिल्ली उच्च न्यायालय के मामले में न्यायमूर्ति संजय किशन कौल ने निर्णय के प्रारम्भ में शेक्सपियर के नाटक 'रोमियो और जूलियट' की पंक्तियों ''व्हाट इज इन नेम? दैट वी कॉल ए रोज विद अदर नेम वुड आल्सो स्मेल ऐज स्वीट'' का प्रयोग किया था।

पेबम निंगोल मिकोई देवी बनाम मणिपुर राज्य और अन्य, (2010) के मामले में भारतीय सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश एच.एल.दत्तू और डी.के. जैन ने स्वतंत्रता के बारे में शेक्सपियर के वक्तव्य ''मनुष्य अपनी स्वतंत्रता का स्वामी होता है'', का प्रयोग किया था। इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ बेंच में राजा खान बनाम यूपी सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड और अन्य (26 नवम्बर, 2010) के मामले में जस्टिस मार्कंडेय काटजू और जस्टिस ज्ञान सुधा मिश्रा की पीठ ने विलियम शेक्सपियर द्वारा रचित 'हैमलेट' में मार्सेल्स द्वारा बोले गए शब्दों, ''समथिंग इज राटेड इन दि स्टेट आफ डेनमार्क'' उद्धरण का प्रयोग न्यायाधीशों के विरूद्ध आने वाली शिकायतों के सन्दर्भ में किया था।

बुद्धदेव कर्मस्कार बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (14 फरवरी, 2011) के मामले में, जस्टिस काटजू और ज्ञान सुधा मिश्रा ने एक सेक्स वर्कर की हत्या के लिए आरोपी की आजीवन कारावास की सजा को बरकरार रखा। इस निर्णय में महान बंगाली लेखक शरत चन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यास 'श्रीकांत' व 'देवदास' से लेकर क्योडोर दोस्तोयेव्स्की के प्रसिद्ध उपन्यास 'क्राइम एण्ड पनिशमेंट', भगवान बुद्ध के समकालीन आम्रपाली और उर्दू कवि साहिर लुधियानवी की कविता 'चकले तक' कई साहित्यिक कृ तियों का उल्लेख किया गया।

इसी मामले के एक अन्य आदेश में, न्यायाधीशों ने अत्यधिक गरीबी के कारण देह व्यापार में पकड़ी गयी युवा लड़कियों की दुर्दशा का वर्णन करने के लिए गालिब की

पंक्तियाँ ''पिन्हा था दाम–ए–सख्त करीब आशियान के, उठने न पाए थे कि गिरफ्तार हम हुए.....''का प्रयोग किया। सर्वोच्च न्यायालय में 'अरूणा शानबाग बनाम भारत संघ (7 मार्च, 2011) के मामले में न्यायमूर्ति मार्कंडेय काटजू ने इच्छामृत्यु की वैधानिकता से सम्बन्धित ऐतिहासिक निर्णय की शुरूआत प्रसिद्ध उर्दू शायर मिर्जा गालिब के शेर से की थी जिसमें उन्होंने कहा था कि ''मरते हैं आरजू में मरने की, मौत आती है पर नहीं आती'' मुत्यु के लिए तरसता मरता है लेकिन मौत आने के बावजूद मायावी है।

श्रीतपगचिया आत्म कमल लीादिसुरीश्वरजी ज्ञानमंदिर ट्रस्ट बनाम बाम्बे मटन डीलर (17 सितम्बर, 2015) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश तीरथ सिंह ठाकुर के जैन समुदाय के 'पर्यूषण पर्व' के दौरान मुंबई की दो नगरपालिकाओं यथा मुंबई नगर निगम और बाह्य मुंबई स्थित मीरा–भायंदर नगरपालिका द्वारा क्रमशः चार व आठ दिनों तक मांस की बिक्री पर रोक लगाने से सम्बन्धित मामले में कबीरदास जी के निम्न दोहे का उल्लेख सहिष्णुता व मानवता के परिपेक्ष्य में किया–

कबीरा तेरी झोपड़ी, गलकटियन के पास।
जैसी करनी–वैसी भरनी, तू क्यों भयौ उदास।।''

तृतीय लिंग के अधिकारों को संरक्षित करते हुए नवतेज सिंह जोहर बनाम भारत संघ (6 सितम्बर, 2018) के मामले में साहित्यिक विधिशास्त्र का प्रयोग प्रभावी तरीके से किया गया। निर्णय में जर्मन लेखक दार्शनिक जोहान वोल्फगैंग वॉन गोएथे की प्रसिद्ध पंक्ति ''आई एम व्हाट आई एम सो टेक मी ऐज आई एम'' और जर्मन दार्शनिक आर्थर शोपेनहावर की ''नो वन कैन एस्केप फ्राम देयर इन्डिविजुअलिटी'' का प्रयोग मुख्य न्यायमूर्ति ने अपनी तथा न्यायमूर्ति खानविलकर की ओर से किया। विलियम शेक्सपियर का प्रसिद्ध वाक्यांश ''नाम में क्या है?'' का प्रयोग निर्णय में यह बताने के लिए उद्धृत किया गया कि ''वास्तव में जो मायने रखता है वह है पदार्थ के आवश्यक गुण और एक इकाई की मूलभूत विशेषताऐं। न्यायमूर्ति नरीमन ने 19वीं सदी के जाने–माने आयरिश कवि ऑस्कर वाइल्ड के प्रेमी अल्फ्रेड उगलस की पंक्तियों ''दि लव दैट डेयर नॉट स्पीक इट्स् नेम'' का प्रयोग निर्णय में अपने दृष्टिकोण के आधार पर किया। इसके साथ ही साथ निर्णय में कनाडाई गायक कवि लियोनार्ड कोहेन का लोकतंत्र आ रहा है व जान स्टुअर्टमिल के उद्धरणों का प्रयोग किया गया।

वर्ष 2019 में मातृत्व अवकाश बढ़ाने के कारण नौकरी से निकाल देने के एक मामले में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश मोहम्मद फारूख द्वारा जारी आदेश में टाक शो होस्ट और हालीवुड कलाकार ओपेरा विनफ्रे, मेरिल स्ट्रीप एवं कैथलीन जोंस के उद्धरणों को कोड किया गया।

शरजील इमाम बनाम राज्य (2000) के मामले में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के छात्र शरजील इमाम की जमानत याचिका खारिज करने के आदेश में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश अनुज अग्रवाल ने स्वामी विवेकानंद के एक वक्तव्य को कोड करते हुए कहा कि ''हम वही हैं जो हमारे विचारों ने हमें बनाया हैय इसलिए इस बात का ध्यान रखें कि आप क्या सोंचते हैंय शब्द गौण है।य विचार रहते हैंय वे दूर तक यात्रा करते है।'' इसी मामले में न्यायाधीश ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) के अन्तर्गत प्रदत्त विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मूल अधिकार को स्पष्ट करने हेतु अंग्रेजी कवि जान मिल्टन की 'एयरोपैजिटिका' नामक रचना की पंक्तियों को कोड किया कि ''मुझे सभी स्वतंत्रताओं के ऊपर जाने, स्वतंत्र रूप से बहस करने और विवेक के अनुसार बोलने की स्वतंत्रता दें''

7 नवंबर, 2020 को दिल्ली के अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश अमिताभ रावत ने दिल्ली दंगों से सम्बन्धि तमामले में तथ्यों और तर्कों को समाहित करते हुए स्वरचित अंग्रेजी कविता के माध्यम से जमानत आदेश जारी किया। न्यायाधीश रावत द्वारा रचित कविता इस प्रकार थी–

''बाबू प्लीडिंग फार हिज बेल,
स्टेट अपोजिग टूथ एण्ड नेल.... ।''

बाम्बे उच्च न्यायालय की औरंगाबाद पीठ में कोनन कोडिया गैंस्टोन और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (2020) वाद के निर्णय में साहित्यिक सूक्ति ''अतिथि देवो भवः'' के महत्व को स्पष्ट करते हुए न्यायाधीश टीवी नालावडे ने कहा कि हमारी संस्कृति में, '' अतिथि देवो भवः'' को अंगीकृत किया गया है।

मद्रास उच्च नयायालय की मदुरै पीठ द्वारा 'जमात वाद' के नाम से चर्चित मोहम्मद कैमुअल इस्लाम और अन्य बनाम राज्य (2020) के निण्रय में श्रेष्ठ मानवी गुण दया को स्पष्ट करने हेतु तमिल संगम काव्यसाहित्य की कविता, ''नाराई.... नाराई.... सेनेगाल.... नाराई.... ।'' की पंक्तियों का प्रयोग किया गया।

5 अगस्त 2019 कोभारतीय संसदद्वारा जम्मू कश्मीर में भारतीय संविधान केअनुच्छेद 370 केप्रावधानों कोअप्रभावी करनेकेपश्चात राज्य में शांति वव्यवस्था बनाए रखने हेतु भारतसरकार द्वारा राज्य में कुछ प्रतिबंध लगाए गए थे।इनप्रतिबंधों कोचुनौती देते हुए एकयाचिका माननीय उच्चत्ततम न्यायालय केसम्मुख प्रस्तुत कीगयीउक्त याचिका केसम्बन्ध में निर्णय देते हुए तीनसदस्यीय पीठ जिसमें जस्टिस एन. वी. रमन्ना, जस्टिस बी. आर. गवईऔरजस्टिस सुभाष रेड्डी द्वारा अपने निर्णय में प्रसिद्ध अंग्रेजी साहित्यकार चार्ल्स डिकेंस केउपन्यास श्एटेलआफटूसिटीजश्कीकुछ पंक्तियोंकाप्रयोग कीगयी।पंक्तियां इस प्रकार थी–

Its the best oftimes, its the worst oftimes,
It was the age of wisdom, it was the age of fulfillment,
It was the epoch of disbelief, it was the epoch of incredulity,
It's the season of flight, it's the season of darkness,
It's the spring of hope, it's the winter of despair,
We had everything before us, we had nothing before us

दिल्ली के जनपदीय न्यायालय में न्यायाधीश अजय गोयल के सामने 6 जून, 2021 के एक मामले में इण्डियन मेडिकल एसोसिएशन यप्ड।द्व के प्रमुख आनरोज आस्टिन जयलाल के हिन्दुओं की धार्मिक आस्था पर ठेस पहुंचाने से सम्बन्धित एक बयान लाया गया। इस मामले में न्यायाधीश गोयल ने कवि मुहम्मद इकबाल की प्रसिद्ध पंक्तियों का उल्लेख किया, जिसमें उन्होंने कहा था, ''मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना... हिन्दी है हम वतन है हिन्दोस्तां हमारा... सारे जहा से अच्छा हिंदोस्तां हमारा।'' न्यायाधीश गोयल ने भारतीय धर्मनिरपेक्षता की मजबूती व ख़ूबसूरती को स्पष्ट करने हेतु किया था। सिख विरोधी दंगों से सम्बन्धित एक मामले में 207 पृष्ठ के अपने निर्णय के प्रारम्भ में दिल्ली उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश, न्यायमूर्ति एस मुरलीधर ने कवयित्री अमृता प्रीतम के 'ओड टू वारिस शाह' रचना के निम्न अनुवादित अंश का उल्लेख किया। ''जहाँ दूर–दूर तक जहरीले खरपतवार उग आए हैं और जहॉ नफरत के बीज ऊंचे हो गए हैं, हर जगह खूनखराबा है। जंगल में जहरीली हवा ने बांस की बांसुरी को सांप में बदल दिया है। उनके जहर ने उज्जवल और गुलाबी पंजाब को

नीला कर दिया है।'' मार्च, 2022 में इनायत अल्ताफ शेख बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में इलाहाबाद उच्चन्यालय के न्यायाधीश अजय भनोट ने उर्दू के महान शायर इकबाल की निम्न पंक्तियाँ ''कुछ बात है कि हसती, मिटती नहीं हमारी.....।''
का प्रयोग भारतीय संस्कृति व संवैधानिक मूल्यों की शास्वतता के परिपेक्ष्य में किया।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर न्यायिक निर्णयों में साहित्य की भूमिका

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शेक्सपियर, मोंटेस्क्यू, बाल्जाक, काफ्का या फाल्कनर जैसे साहित्यकारों के साहित्यिक उद्धरण या संदर्भ विभिन्न देशों के न्यायिक निर्णयों में न्यायाधीशों द्वारा प्रभावी तरीके से किये गये हैं। आंग्ल कवि विलियम शक्सपियर की न्यायिक मामलों में विशेष रूचि थी। यही कारण है कि उन्होंने अपने नाटकों व कविताओं में विधि एवं न्याय सम्बन्धित प्रसंगों को बहुतायत में प्रयोग किया है जैसे 'दि मार्चेण्ट ऑफ वेनिस' का ट्रायल सीन इत्यादि। शेक्सपियर के छह प्रसिद्ध नाटकों यथा द मर्चेंट आफ वेनिस, रोमिया एण्ड जूलियट, जूलियस सीजर, मैकबेथ, हेमलेट और ओथेलो के उद्धरणों का प्रयोग न्यायिक निर्णयों में बहुतायत में देखने को मिलता है। संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों में भी शेक्सपियर के साहित्य के सन्दर्भ व उद्धरणों का प्रयोग प्रभावी तरीके से किया गया है।

आयरलैण्ड बनाम यूनाइटेड किंगउम के मामले में आयरिश सरकार ने 1970 के दशक में संदिग्ध आतंकवादियों के विरूद्ध प्रयोग किए जाने वाले पूंछताछ के तरीकों की वैधता पर प्रश्न चिन्ह लगाया। यूरोपीय न्यायालय ने पूंछताछ के कुछ तरीकों को अमानवीय माना। नयायाधीश फिट्जमौरिस ने उन अमानवीय तरीकों का वर्णन फुटनोट के माध्यम से शेक्सपियर के नाटक ''रोमिया एण्ड जूलियट, नाटकके सीन 2, लाइन 43'' का प्रयोग कर किया।

विधि और साहित्य का सम्बन्ध कामन ला वाले देशों में बहुत प्राचीन नहीं है। इसीलिए विधिक निर्वचन में साहित्य का प्रयोग नवीनतम् मामलों में अधिक देखा जा सकता है। इंग्लैण्ड के कामन ला आधारित न्यायिक निर्णयों में न्यायाधीशों ने शेक्सपियर को नियमित आधार पर उद्धृत किया है। 'तेज बनाम अनोर और अन्य, (2006) के वाद में लार्ड जस्टिस मेय, और 'हडसन बनाम लेह (2009) के मामले में जस्टिस बोडे ने प्रत्यक्ष रूप से शेक्सपियर द्वारा रचित साहित्य से वक्तव्यों का प्रयोग किया है। इसी प्रकार यूरोपीय संघ के 'जैक्सन इंटरनेशनल बनाम ओएचएमआई–रायल शेक्सपियर (2012) और 'गिसायेव बनाम रूस (2011) वादों में भी साहित्यिक पंक्तियों व वक्तव्यों का प्रयोग किया गया है।

विधिक निर्वचन में साहित्यिक प्रयोग का औचित्य

पूर्व न्यायाधीश और अधिवक्ता भरत चुग ने वर्ष 2018 में एक कार्यक्रम में कहा था कि ''आप कैसे लिखते हैं यह आपका विवेक है। कानून में ऐसा कुछ भी नहीं है जो आपकों एक दोहे का आह्वान करने या एक ऐतिहासिक संदर्भ का आह्वान करने या दर्शन का आह्वाहन करने या साहित्य का आह्वान करने से रोकता है। आप वह सब तब तक कर सकते हैं जब तक आप उन बिन्दुओं को बना रहे हैं। ''न्यायाधीश चुग कहते हैं कि किसी निर्णय को जीवित रूप में बाहर आने के लिए निर्णय में रूपक या प्रतीकवाद का उपयोग किया जाना चाहिए। किन्तु सम्पूर्ण निर्णय को पद्य के माध्यम से जारी करना उचित नहीं है।न्यायालय के निर्णयों और न्यायिक प्रक्रिया को अधिक बोधगम्य व उपयोगकर्ता के अनुकूल बनाया जा सकता है। परन्तुइसके विपरीत साहित्य का अनुचित या अप्रासंगिक प्रयोग न्यायालय के निर्णय को अधिक दुरूह बना सकता है और इससे मामले के पक्षकार गुमराह भी हो सकते हैं। विधि के निर्वचन में साहित्यिक

विधिशास्त्र का प्रयोग किया जाना न्यायिक व्यवस्था में जन विश्वास को कायम रखने और विधि के प्रभावी प्रवर्तन हेतु अनवार्य एवं प्रासंगिक है।

निष्कर्ष

न्यायालय विधि के उचित निर्वचन के द्वारा विधिक विसंगतियों को दूर कर विधि को लोक कल्याण का माध्यम बनाते हैं। विधिक विसंगतियों के निराकरण हेतु न्यायाधीश प्रायः साहित्यिक सन्दर्भों व उद्धरणों अर्थात् साहित्यिक विधिशास्त्र का भी प्रयोग करते है। सामान्यतया संविधियों और न्यायालय के निर्णयों की भाषा जटिल होती है जिसे केवल विधिक क्षेत्र से जुड़े व्यक्ति ही समझ पाते हैं। न्यायालय द्वारा दिए जाने वाले निर्णय सामान्य व्यक्तियों की समझ से परे होते हैं। जबकि सामान्यतः न्यायिक निर्णय सम्पूर्ण समाज पर प्रभावी होते हैं। ऐसी स्थिति में न्यायिक निर्णय की समझ को व्यापकता प्रदान करने हेतु न्यायाधीश निर्णयों में साहित्यिक सन्दर्भों व उद्धरणों का प्रयोग करते हैं।

साहित्य के प्रयोग द्वारा विधिक व्याख्या व विधि का समर्थन या अलंकृत करने का कार्य अब सभी विधिक व्यवस्थाओं में न्यायाधीशों द्वारा किया जा रहा है। वैश्विक स्तर पर शेक्सपियर न्यायाधीशों के पसंदीदा साहित्यकारों में से एक हैं। पाश्चात्य देशों में प्रारम्भ हुये 'विधि में साहित्य आंदोलन' ने सम्पूर्ण विश्व की न्यायिक व्यवस्थाओं में विधिक निर्वचन में साहित्य की भूमिका को आधार प्रदान किया है। भारत में भी अधीनस्थ न्यायालयों से लेकर सर्वोच्च न्यायालय तक के निर्णयों में साहित्यिक संदर्भों व उद्धरणों का प्रयोग वर्ष 1980 के बाद के निर्णयों में दृष्टिगोचर होता है। हालाकि अपने निर्णयों में साहित्य का प्रयोग करना प्रायः न्यायाधीशों में साहित्य के प्रति रूचि व उनकी इच्छा शक्ति पर निर्भर करता है। किसी निर्णय के तथ्यात्मक या कानूनी अर्थ को स्पष्ट करने के लिए विधि में साहित्य एक महान न्यायिक उपकरण हो सकता है। अतः न्यायाधीशों द्वारा अपने न्यायिक निर्णयों में साहित्यिक संदर्भों व उद्धरणों के प्रयोग को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। जिससे एक सभ्य समाज का निर्माण किया जा सके।

सन्दर्भ–

1. अनिरुद्ध प्रसाद,विधि शास्त्र केमूल सिद्धांत, ईस्टर्न बुक कम्पनी, 2014
2. जैक्सन इंटरनेशनल बनाम ओएचएमआई रायल शेक्सपियर (2012) ईयूईसीजे टी 60/10A
3. गिसायेव बनाम रूस 2011 ईसीएचआर 76।
4. बूथ बनाम बूथ और अन्य (2010) ईडब्ल्यूसीए सीआईवी 27 पैराग्राफ 71।
5. रेजिना बनाम रान्डेल (2003) यूकेएचएल 69– 18ध्12ध्2003– पैराग्राफ 10।

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

NAAGS KANPUR

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

पतञ्जलि योग–सूत्र में यम की अवधारणा : दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विश्लेषण

धनंजय त्रिवेदी
शोध छात्र दर्शन विभाग
दयानंद एंग्लो–वैदिक कॉलेज कानपुर
छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय कानपुर

सार
योग के आठ अंगों में प्रथम अंग यम है। ये यम पाँच हैं– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह। इन पाँचों को यम क्यों कहा जाता है? यम का अर्थ है बाँधने वाला या नियन्त्रित करने वाला। हिंसा, मिथ्याभाषण, चोरी, वीर्यनाश तथा अनुचित वित्तसंग्रह पर ये अंकुश लगाते हैं इसलिये इन्हें यम कहना सार्थक है। सब प्रकार के सर्वकाल में समस्त प्राणियों से द्रोह न करना अहिंसा कहा गया है।1 समस्त योगांगो में अहिंसा ही प्रधान है। अहिंसा के आगे जितने भी यम और नियम हैं वे सब अहिंसामूलक ही हैं। ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा होने पर योगी को वीर्य अर्थात् सब प्रकार की शक्तियों का लाभ होता है। अस्तेय में भी विषयों का अस्वीकार कहा गया है किन्तु वहाँ शास्त्रनिषिद्ध धन के अस्वीकार को अस्तेय कहा गया है। यमों के अनुष्ठान से योगी को अद्भुत ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। यह ऐश्वर्य यमों की सिद्धि का सूचक है। अर्थात् जब यह ऐश्वर्य दिखाई देने लगे तो यह समझना चाहिये कि यम का अनुष्ठान पूर्ण हुआ।2

कूट शब्द : योग, यम, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, , नियम, समाधि, योग–सूत्र

परिचय

महर्षि पतञ्जलि के अनुसार योग के आठ अंग हैं– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इन आठ अंगों में प्रारम्भ के पाँच अंग बहिरंग कहलाते हैं और पश्चात् के तीन अंग अन्तरंग कहलाते हैं। ये धारणा ध्यान तथा समाधिरूप तीन अंग भी असम्प्रज्ञात समाधि के बहिरंग कहलाते हैं। इस प्रकार असम्प्रज्ञात समाधि अंगी है और यमनियमादि उसके अंग हैं।3

आध्यात्मिक स्तर पर अविद्यादि पंचक्लेश तथा शुक्लकृष्णादि कर्मों को अशुद्धि कहा जाता है क्योंकि ये क्लेश और कर्म ही चित्त को मलिन करते हैं। योगांगों के अनुष्ठान से अशुद्धिका क्षय होने पर ही ज्ञान की दीप्ति होती है। सूत्रकार कह रहे हैं–

योगांगानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ।योगसूत्र 2 ६ 28

योगांगों का अनुष्ठान अशुद्धि के वियोग का कारण है तथा विवेकख्याति की प्राप्ति का कारण है।4

यम का स्वरूप

योग के आठ अंगों में प्रथम अंग यम है। ये यम पाँच हैं– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह। इन पाँचों को यम क्यों कहा जाता है? यह प्रश्न विचारणीय है। 'यमु' बन्धने धातु में 'घञ्' प्रत्यय लगाने पर यम शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है बाँधने वाला या नियन्त्रित करने वाला। चूँकि अहिंसादि यम मनुष्यों को नियन्त्रित करते हैं, उनके अशुभ व्यवहारों पर रोक लगाते हैं इसलिये इन्हें यम कहा जाता है। हिंसा, मिथ्याभाषण, चोरी, वीर्यनाश तथा अनुचित वित्तसंग्रह पर ये अंकुश लगाते हैं इसलिये इन्हें यम कहना सार्थक है।5

यम और नियम में केवल 'नि' उपसर्ग का अन्तर है नि उपसर्ग निःशेष का वाचक है। क्योंकि शौचादि नियम मनुष्य को सम्पूर्ण रूप से बाँध ते हैं तथा चित्त में अन्दर तक प्रविष्ट होकर मलों का क्षालन करते हैं इसलिये शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वरप्रणिधान को नियम कहा गया है। अमरकोष ने यम और नियम में इस प्रकार भेद किया है–

शरीरसाधनापेक्षं नित्यं यत्कर्म तद्यमः । नियमस्तु स यत्कर्म नित्यमागन्तु साधनम्॥ अमरकोष 10/10

अर्थात् शरीररूप साधन की अपेक्षा रखने वाला कर्म यम है और शरीर के अतिरिक्त आगन्तुक साधनों की अपेक्षा रखने वाला कर्म नियम कहलाता है।

अमरकोष का आशय यह है कि हिंसा शरीर से की जाती है। असत्यभाषण वाणी से किया जाता है। चोरी हाथों से की जाती है। शिश्न से वीर्य का नाश किया जाता है तथा धन का संचय भी शरीर से ही किया जात है। अतः शरीर पर बन्धन लगाकर ही अहिंसादि यमों का पालन किया जा सकता है। नियमों के लिये शरीर से भिन्न बाह्य साधन भी अपेक्षित हैं। जैसे शौच के लिये जलादि अपेक्षित है। सन्तोष के लिये अल्प धनाक आवश्यता है। तप के लिये अरण्य, पर्वत, नदीतट एकान्तस्थान, अग्नि इलादि की अपेक्षा होती है। स्वाध्याय के लिये पुस्तकों की अपेक्षा है तथा ईश्वरप्रणिधान के लिये गृहत्याग, जनसम्पर्क से दूरी तथा असत्पुरूषों का अभाव अपेक्षित है। यही यम और नियम में अन्तर है।

वस्तुतः उपर्युक्त यम और नियम का जो भेद बताया गया है वह आंशिक रूप से ही सत्य है, समग्र रूप से नहीं। यम और नियम दोनों के लिये शरीर और आगन्तुम साधन दोनों ही अपेक्षित हैं।6

यमों की संख्या

महर्षि पतञ्जलि ने यमों की संख्या पाँच बतायी है– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह । अन्य ग्रन्थों में यमों की संख्या दस है तथा उनके नाम भी पृथक् हैं।7 इस पत्र में हम केवल पतञ्जलि के द्वारा निर्दिष्ट यमों पर ही हम विचार करेंगे–

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः । योगसूत्र 2/30

अहिंसा का स्वरूप

सब प्रकार के सर्वकाल में समस्त प्राणियों से द्रोह न करना अहिंसा कहा गया है। अर्थात् मन से किसी का अनिष्ट चिन्तन, वाणी से कठोर बोलना तथा शरीर से किसी को ताडनादि द्वारा पीडा पहुंचाना हिंसा कहा जाता है। इसके विपरीत मन, वचन और कर्म से किसी प्राणी को पीडा न पहुँचाना अद्रोहरूप अहिंसा है।

समस्त योगांगो में अहिंसा ही प्रधान है। अहिंसा के आगे जितने भी यम और नियम हैं वे सब अहिंसामूलक ही हैं। अर्थात् ये सब अहिंसा के भाव को पुष्ट करने के लिये ही हैं। जैसे–जैसे सत्यादि यमों का तथा शौचादि नियमों का अनुष्ठान किया जाता है वैसे–वैसे अहिसा निर्मल और पुष्ट होती जाती है। अतः अहिंसा का ज्ञान सर्वप्रथम आवश्यक है। यदि अहिंसा का ज्ञान नहीं होगा तो यम नियमादि का ज्ञान भी निष्फल है। अहिंसा का ज्ञान यमनियम के ज्ञान का कारण है तथा यमनियमादि का ज्ञान अहिंसा की पुष्टि में कारण है।8 अहिंसा की यही परिभाषा व्यास देव ने कही है–

अहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः । उत्तरे च यमनियमास्तन्मूलाः । तत्सिद्धिपरतयैव तत्प्रतिपादनाय प्रतिपाद्यन्ते। व्यासभाष्य 2‌‌\30

अहिंसा का फल

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः । योगसूत्र 2‌\35

योगी के चित्त में जब अहिंसा का भाव प्रतिष्ठित हो जाता है तब उसके सान्निध्य में आये हुए स्वाभाविक विरोधी प्राणियों का भी वैर भाव शान्त हो जाता है।

अहिंसा की प्रतिष्ठा का अर्थ है कि किसी भी विपरीत स्थिति में भी मन में हिंसा की भावना उत्पन्न न हो। चाहे शत्रु कितना भी अपकार करें, कोई कितना भी अपमान करे किन्तु मन से भी किसी का अनिष्ट चिन्तन न करें। जब ऐसी भावना चित्त में बद्धमूल हो जाये तो यह समझना चाहिये कि अब अहिंसा प्रतिष्ठित हो गयी। उक्त अहिंसाप्रतिष्ठा का पता तब चलता है जब पास में स्थित सिंह और मृग, मयूर और सर्प, मार्जार और मूषक अपना वैरभाव भूलकर एकसाथ बैठे रहें। यह वैरभाव की शान्ति ही अहिंसा की प्रतिष्ठा का फल है।

अहिंसानिष्ठ योगी के निकट आकर सिंह और मृग आदि प्राणी भी अपना वैरभाव किस प्रकार छोड़ देते हैं यह एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। योगी के चित्त से सत्त्व की तरंगें वातावरण से मिलकर वातावरण को इतना पवित्र और शान्त कर देती हैं कि मनुष्यों का ही नहीं अपितु पशु का भी चित्त शान्त और पवित्र हो जाता है। यह एक आध्यात्मिक चमत्कार है।9

सत्य का स्वरूप सत्यं यथार्थे वाङ्मनसे। व्यासभाष्य 2‌\30

अर्थात् वाणी और मन की यथार्थता को सत्य कहते हैं। जैसा प्रत्यक्ष प्रमाणरूप इन्द्रियों से प्रत्यक्ष किया हो, जैसा तर्क से अनुमान किया हो और जैसा शास्त्र से सुना हो यदि वैसी ही मन और वाणी भी हो यह वाणी सत्य कही जाती है। यही मन और वाणी की एकरूपता है जैसा मन में समझता हो यदि वैसी ही वाणी अन्य के प्रति बोली गई हो तो यह वाणी सत्य कही जाती है। मन में कुछ अन्य हो और वाणी से कुछ अन्य बोलता हो तो यह सत्य नहीं है।10 इसी बात को व्यासदेव स्पष्ट करते हैं–

परत्र स्वबोधसंक्रान्तये वागुक्ता सा यदि न वञ्चिता भ्रान्ता वा प्रतिपत्तिवन्ध्या वा भवेदिति । व्यासभाष्य 2‌\30

अर्थात् अपने चित में जैसा बोध हो वैसा ही बोध उत्पादन करने के लिये जो वाणी उच्चरित हुई हो वह वाणी यदि वञ्चना करने वाली न हो भ्रान्तिजनक न हो तथा बोध उत्पादन करने में असमर्थ न हो तो वह वाणी सत्य कही जाती है। अपने चित्त में जो इन्द्रियादिजन्य बोध है उससे अन्य प्रकार का बोध अन्य के चित्त में उत्पन्न करने के लिए वाक्य का उच्चारण किया गया हो तो यह सत्य नहीं है। जैसे आचार्य द्रोण ने युधिष्ठिर से पूछा कि हे सत्यवादिन् क्या अश्वत्थामा मारा गया? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया अश्वत्थामा हतः = अश्वत्थामा मारा गया। युधिष्ठिर का यह वाक्य सत्य नहीं था क्योंकि युधिष्ठिर के चित में इन्द्रियजन्यबोध यह था कि अश्वत्थामा हस्ती मारा गया किन्तु

उसके वाक्य ने द्रोण के हृदय में यह बोध उत्पन्न किया कि अश्वत्थामा नामक आपका पुत्र मारा गया। युधिष्ठिर का यह वाक्य वंचनात्मक था। अतः यह सत्य नहीं था।
सत्य होने के लिये वाणी का अपकार मूलक न होना भी अनिवार्य है। भले ही वाणी वंचना न करती हो, भ्रान्ति भी न हो तथा बोध जनक भी हो फिर भी यदि उस वाणी से किसी का अपकार हो रहा हो तो ऐसी वाणी यथार्थ होते हुए भी सत्य नहीं कहलाती। समस्त प्राणियों के उपकार के लिये वाणी प्रयोग होना चाहिए प्राणियों की हिंसा या हानि के लिये नहीं। यदि वचन य होकर भी प्राणियों का अपघाती है तो यह सत्य नहीं है अपितु उससे पाप ही होता है।11 उस पाप से वक्ता को नरक की ही प्राप्ति होती है। इसलिये वक्ता को अच्छी प्रकार परीक्षा करके प्राणिमात्र के लिए हितकर वाणी बोलनी चाहिये। इसलिये मनु ने अप्रिय सत्य बोलने का निषेध किया है–

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न श्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयात् एष धर्मः सनातनः । मनुस्मृति 4\138

इसी अभिप्राय से धर्मशास्त्रों में कहा गया है कि यदि मिथ्या भाषण से किसी के प्राणों की रक्षा होती हो तो उस मिथ्या भाषण से पाप नहीं होता– प्राणत्राणेऽनृतं वाच्यमात्मनो या परस्य च।।'
इस प्रकार निष्कर्ष हुआ कि सत्य वह वाणी है जो वंचना तथा भ्रान्ति को उत्पन्न न करे, स्वबोध के प्रतिपादन में समर्थ हो तथा सम्पूर्ण भूतों के उपकार के लिये उच्चारित की गयी हो।12

सत्य का फल.

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् । योगसूत्र 2\36

सत्य की प्रतिष्ठा होने पर योगी को शुभाशुभ क्रियाओं का फल वाणी से उच्चारण करते ही प्राप्त हो जाता है। यदि वह किसी को वाणी से कह दे कि तू धार्मिक हो जा तो वह अधार्मिक होते हुए भी धार्मिक हो जाता है। यदि वह कहे कि 'स्वर्ग को प्राप्त कर' तो वह तुरन्त ही स्वर्ग को प्राप्त हो जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि योगी की वाणी अमोघ होती है।
यद्यपि सत्यनिष्ठ योगी का जैसे आशीर्वाद सफल होता है वैसे ही शाप भी सफल होता है किन्तु वह जल्दी से किसी को शाप नहीं देता। यदि शाप भी देता है तो उसकी कृपा ही समझनी चाहिये। सन्मार्ग पर लाने के लिये वह किसी को शाप देता है। किन्तु ऐसा अत्यन्त विरल ही होता है क्योंकि वह सत्य के साथ अहिंसा में भी प्रतिष्ठित होता है। शाप तो एक प्रकार की हिंसा ही होती।13

अस्तेय का स्वरूप

स्वेय के अभाव को अस्तेय कहते हैं। स्तेय का अर्थ चोरी है। शास्त्रोक्त विधि के बिना किसी अन्य के द्रव्यों का स्वीकार करना स्तेय कहलाता है। मन से भी अन्य के द्रव्य के ग्रहण करने की इच्छा का अभाव अस्तेय है। अर्थात् किसी अन्य के धन को हाथ से ग्रहण करना तो दूर, मन से भी ग्रहण करने की इच्छा के अभाव को अस्तेय कहते हैं। भाष्यकार ने स्तेय का लक्षण किया है–.

स्तेयमशास्त्रपूर्वकं दव्याणां परतः स्वीकरणम् । व्यासभाष्य 2\30

यहाँ अशास्त्रपूर्वक कहने का अभिप्राय यह है कि कहीं–कहीं शास्त्रों में परद्रव्य का स्त्रीकार करना उचित भी सिद्ध किया है जैसे प्राणरक्षा के लिये भिक्षा मांगना स्तेय नहीं है। यदि ब्राह्मण पौरोहित्य कर्म के बदले में दक्षिणा स्वीकार करता है तो यह भी स्तेय नहीं है। अन्याय से धनार्जन करना, बलात् धन लूटना तथा दाता की इच्छा के बिना ही

उसकी वस्तुएँ उठा लेना अथवा गृहस्वामी की अनुपस्थिति में घर में प्रविष्ट होकर धन उठा लेना शास्त्रविरुद्ध कर्म है अतः यही स्तेय है। इसका प्रतिषेध अस्तेय है।14

अस्तेय का फल

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् । योगसूत्र 2¹37

अस्तेय की प्रतिष्ठा होने पर योगी के पास सब देश देशान्तरों से हीरा, मोती आदि अमूल्य रत्न उपस्थित हो जाते हैं। यद्यपि योगी उन रत्नों की इच्छा नहीं करता, रत्न स्वयं ही उपस्थित होते हैं। जब सब ओर से रत्नों की उपस्थिति होने लगे तो समझना चाहिये कि योगी अस्तेय में प्रतिष्ठित हो गया है।15

ब्रह्मचर्य का स्वरूप

ब्रह्मचर्य चतुर्थ यम है। भाष्यकार ने ब्रह्मचर्य की परिभाषा दी है–

गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः ।

ब्रह्म नाम वीर्य का है। उसकी रक्षा करना ब्रह्मचर्य है। यहाँ ब्रह्मचर्य का व्यापक अर्थ न लेकर केवल वीर्यरक्षा ही लेना चाहिये। यहाँ उपस्थ का अर्थ केवल शिश्न ही नहीं है अपितु उपस्थ शब्द समस्त इन्द्रियों का वाचक है। इन्द्रिय किसी अंगविशेष का नाम नहीं होता अपितु कर्म करने की शक्ति का नाम इन्द्रिय है। यह शक्ति सम्पूर्ण शरीर में रहती है, किन्तु मुख्य शक्ति किसी अंगविशेष में रहती है। इसलिये उपचार से उस अंगविशेष को इन्द्रिय कह दिया जाता है। वास्तव में अंग को इन्द्रिय नहीं कहते अपितु उस अंग में रहने वाली शक्ति का नाम इन्द्रिय है। उपस्थ आनन्देन्द्रिय है। जिस शक्ति से आनन्द का अनुभव किया जाता है उसका नाम उपस्थ है। जैसे आँख से हम देखने का आनन्द लेते है, श्रोत्र से मधुर गीत सुनने का आनन्द लेते हैं, घ्राण से सूंघने का आनन्द लेते हैं, रसना से स्वादिष्ट रस का आनन्द लेते हैं तथा त्वचा से स्पर्श का आनन्द लेते हैं। इसलिये सभी इन्द्रियों में उपस्थेन्द्रिय रहती है। इनके माध्यम से वीर्य का नाश होता है। अतः समस्त इन्द्रियों के संयम का नाम ब्रह्मचर्य है।

यदि समस्त इन्द्रियों को उपस्थेन्द्रिय न माना जाये तो एक संयंत गुप्तेन्द्रियवाला पुरुष भी जब स्त्रियों की तरफ कामना से देखता है उसके अंगों को स्पर्श करता है उससे वार्तालाप करता है तो ऐसा करने पर भी ब्रह्मचारी कहा जाना चाहिये। किन्तु ऐसे पुरुष **ब्रह्मचारी नहीं कहलाते हैं। इसलिये दक्षस्मृति में मैथुन के आठ अंग बताये गये हैं–**

स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्। संकल्पो ऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृतिरेव च ॥

एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः ।विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम्॥ दक्षस्मृति में कहा

अर्थात् स्त्रियों के सौन्दर्य का स्मरण करना, उनसे बातें करना, उनके साथ क्रीडा करना, उन्हें छुप छुप कर देखना, उनके साथ एकान्त में गोपनीय बातें करना, मन में स्त्रियों के विषय में विचार करना, उनके साथ सम्भोग करने का मन में निश्चय करना तथा सम्भोगक्रिया के द्वारा खेद की निवृत्ति करना, यह आठ प्रकार का मैथुन है। इन सबका त्याग कर देना ही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य को यम इसलिये कहा जाता है क्योंकि यह साधक को वीर्यनाश के कार्यों से रोकता है। उसके अनैतिक कार्यों पर बन्धन लगाता है।16

योगसाधना के लिये ब्रह्मचर्य का पालन अत्यन्त अनिवार्य है।

ब्रह्मचर्य का फल

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः द्य योगसूत्र 2¹38

ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा होने पर योगी को वीर्य अर्थात् सब प्रकार की शक्तियों का लाभ होता है। जो योगी पूर्णरूप से ब्रह्मचर्य का पालन पूर्ण कर लेता है उसे ऐसी शक्ति

प्राप्त होती है जिससे वह अणिमादि सिद्धियों को प्राप्त करके अपने शिष्यों को भी समाधिनिष्ठ तथा तत्त्वज्ञानी बना सकता है।17

अपरिग्रह का स्वरूप

विषयों का संग्रह न करना अपरिग्रह कहलाता है। यह पाँचवां यम है। विषयों का अस्वीकार योगी के लिये परम उपादेय है। क्योंकि विषयों के संग्रह में पाँच दोष हैं– अर्जन, रक्षण, क्षय, संग और हिंसा विषयों के अर्जन में कष्ट होता है, फिर उनकी रक्षा करने में परिश्रम करना पड़ता है। धन की रक्षा करते हुए भी उनका क्षय तो अवश्यम्भावी है ही। उस क्षय को कोई रोक नहीं सकता। विषयों में संग दोष भी है क्योंकि उनका उपभोग करते–करते उनसे आसक्ति होना स्वाभाविक ही है। किसी प्राणी को पीड़ा पहुँचाए बिना विषयभोग सम्भव नहीं। पीडा पहुँचाना ही तो हिंसा है। अतः हिंसादोष भी है। उक्त दोषों के कारण विषयों का अस्वीकाररूप अपरिग्रह योगियों के लिये उपादेय कहा गया है।

यद्यपि अस्तेय में भी विषयों का अस्वीकार कहा गया है किन्तु वहाँ शास्त्रनिषिद्ध धन के अस्वीकार को अस्तेय कहा गया है। शास्त्रोक्त विधिपूर्वक धन को स्वीकार किया जा सकता है किन्तु अपरिग्रह में तो शास्त्रोक्त धन को स्वीकार करना भी निषिद्ध है।

अपरिग्रह का फल

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः । योगसूत्र 2।39

अपरिग्रह की स्थिरता होने पर योगी को भूत, वर्त्तमान तथा भविष्यत् काल के जन्मों का ज्ञान हो जाता है। अर्थात् पूर्वजन्म में मैं कौन था, किस प्रकार का था तथा मृत्यु के पश्चात् भविष्य में किस योनि में मेरा जन्म होगा' ऐसा प्रत्यक्षात्मकज्ञान योगी को अपरिग्रह की सिद्धि होने पर हो जाता है।

इस प्रकार महर्षि पतञ्जलि ने उक्त पाँच ही यमों को योगी के लिये उपादेय बताया है। अन्य ग्रन्थों में दस यमों का भी उल्लेख मिलता है। उन पर भी विचार करना प्रासंगिक होगा।18

निष्कर्ष

योग के आठ अंगों में प्रथम अंग यम है। ये यम पाँच हैं– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह। यम का अर्थ है बाँधने वाला या नियन्त्रित करने वाला। हिंसा, मिथ्याभाषण, चोरी, वीर्यनाश तथा अनुचित वित्तसंग्रह पर ये अंकुश लगाते हैं इसलिये इन्हें यम कहना सार्थक है। समस्त योगांगो में अहिंसा ही प्रधान है। अहिंसा के आगे जितने भी यम और नियम हैं वे सब अहिंसा मूलक ही हैं। इस प्रकार महर्षि पतञ्जलि ने उक्त पाँच ही यमों को योगी के लिये उपादेय बताया है।

यमों के अनुष्ठान से योगी को अद्भुत ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। यह ऐश्वर्य यमों की सिद्धि का सूचक है। अर्थात् जब यह ऐश्वर्य दिखाई देने लगे तो यह समझना चाहिये कि यम का अनुष्ठान पूर्ण हुआ। उस समय योगी की यम में प्रतिष्ठा हो गयी। जैसे की– अहिंसा की प्रतिष्ठा का अर्थ है कि किसी भी विपरीत स्थिति में भी मन में हिंसा की भावना उत्पन्न न हो। सत्य की प्रतिष्ठा होने पर योगी को शुभाशुभ क्रियाओं का फल वाणी से उच्चारण करते ही प्राप्त हो जाता है। अस्तेय की प्रतिष्ठा होने पर योगी के पास सब देश देशान्तरों से हीरा, मोती आदि अमूल्य रत्न उपस्थित हो जाते हैं। जो योगी पूर्णरूप से ब्रह्मचर्य का पालन पूर्ण कर लेता है उसे ऐसी शक्ति प्राप्त होती है जिससे वह अणिमादि सिद्धियों को प्राप्त करके अपने शिष्यों को भी समाधिनिष्ठ तथा तत्त्वज्ञानी बना सकता है। और अपरिग्रह की स्थिरता होने पर योगी को भूत, वर्त्तमान तथा भविष्यत् काल के जन्मों का ज्ञान हो जाता है।

योगांगों का अनुष्ठान अशुद्धि के वियोग का कारण है तथा विवेकख्याति की प्राप्ति का कारण है।

संदर्भ

1. मिश्र रामदेवण् योग सूत्र और उपनिषदों का संग्रहण् मोतीलाल बनारसीदास 85
2. विवेकानन्द स्वामीण् योग सूत्र के मूल सिद्धांतण् वेदान्त प्रेस गोरखपुर २०१५ 110–130
3. सरस्वती स्वामी हरिदेवानन्दण् योग सूत्र व्याख्याण् पट्टाभिराम शास्त्री पुस्तकालय २००६ 75–98
4. योगसूत्र । 2/28 ।
5. श्रीधर स्वामीण् योग सूत्र भाष्यण् वेदान्त प्रेस गोरखपुर २०१८ 221–230
6. अमरकोष । 10/10 ।
7. योगसूत्र । 2/30 ।
8. योगसूत्र – व्यासभाष्य । 2/30 ।
9. योगसूत्र । 2/35 ।
10. योगसूत्र – व्यासभाष्य । 2/30 ।
11. वही, । 2/30 ।
12. मनुस्मृति 4/138
13. योगसूत्र । 2/36 ।
14. योगसूत्र – व्यासभाष्य । 2/30 ।
15. योगसूत्र । 2/37 ।
16. दक्षस्मृति
17. योगसूत्र । 2/38 ।
18. योगसूत्र । 2/39 ।

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

'धर्म' तत्व का विश्लेषणात्मक अनुशीलन

शशांक सिंह
शोध छात्र दर्शनशास्त्र विभाग
दयानंद एंग्लो–वैदिक कॉलेज कानपुर
छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय कानपुर
प्रोफ़ेसर रन्जय प्रताप सिंह
प्रोफ़ेसर एवं विभागाध्यक्ष
दर्शनशास्त्र विभाग
दयानंद एंग्लो–वैदिक कॉलेज कानपुर

प्रस्तावना

सभ्यता के प्रारम्भ से ही सम्पूर्ण विश्व में धर्म की चर्चा होती रही है। मात्र सभ्य ही नहीं, असभ्य समाज में भी धर्म के अर्थ और उद्देश्य को ठीक से समझे बिना ही धर्म और उसके क्रियाकलापों का किसी न किसी रूप में प्रचलन रहा है। धर्म का लोकपक्षीय रूप सदा से ही आचार और व्यवहार का सम्बल लेकर चलता रहा है। बड़े–बड़े दार्शनिकों, बुद्धिजीवियों और वैज्ञानिकों ने अपने जीवन के प्रारम्भ से ही या जीवन के उत्तरकाल में किसी अतिप्राकृतिक सत्ता या अन्य सार्वभौमिक सत्ता के प्रति जो आस्था प्रकट की है, उससे लगता है कि मानव बिना किसी अतिप्राकृतिक सत्ता जिसको विभिन्न धर्मों में अलग–अलग नाम दिए गए हैं के प्रति आस्था रखे बिना जीवन में चल नहीं सकता है। इस अतिप्राकृतिक सत्ता को पूर्ण रूप में स्वीकार किया गया है जिसे आस्तिकों या ईश्वरवादी लोगों ने धर्म के रूप में स्वीकार किया है, वहीं नास्तिक या अनीश्वरवादी लोगों ने भी धर्म को स्वीकार किया है जहां धर्म को नैतिकता का पोषक माना गया है।

वहीं दूसरी तरफ प्रायः देखा गया है कि धर्म के तात्त्विक स्वरूप से अनभिज्ञ सामान्य लोगों के द्वारा विविध कालखण्डों में धर्म के प्रति उपेक्षित भाव रखा गया है। वर्तमान वैज्ञानिक युग में धर्म के प्रति जन–साधारण की अनास्था का एक कारण यह भी है कि आम आदमी में धर्म के सम्बन्ध में कोई अत्यन्त विचारशील मनोवृत्ति नहीं पाई जाती है; और न ही वह इस तरह की कोई आवश्यकता ही अनुभव करता है। उसके लिए तो धर्म केवल रूढ़ियों, रीति–रिवाजों का परिपालन मात्र ही है। धर्म को सामान्य व्यक्ति एक अन्य रीति से भी आज तक अनुपयोगी अनुभव करता है, धर्म के साथ विश्व से पलायन की वृत्ति जुड़ी हुई है, धार्मिक पुरुष वह माना जाता है जो संसार से परे हो

जाये, संसार के कार्यों लीन न रहे, स्वयं को व्यावहारिक जगत से असम्पृक्त कर दे। यद्यपि वस्तुतः धर्म व्यक्ति को कभी भी पलायनवादी या निष्क्रिय नहीं बनाता है, उदाहरण के तौर पर भारतीय दर्शन में चार प्रकार के पुरुषार्थों का वर्णन है, यथा–धर्म, धर्म, काम और मोक्ष।

धर्म की भारतीय संदर्भ में परिभाषा

संस्कृत में 'धर्म' शब्द की व्युत्पत्ति तीन प्रकार से होती है–

1– ध्रियते लोकः अनेन इति धर्मः।

जिसके द्वारा लोक अथवा प्रजा को धारण किया जाय वह धर्म है। पुनः हलायुध कोष के अुनसार जो पुण्यात्मओं द्वारा धारण किया जाय वह धर्म है।

2– धरति धारयति वा लोकम् इति धर्मः।

जो लोक को धारण करे, वह धर्म है।

3– ध्रियते यः स धर्मः।

जो धारण किया जाए वह धर्म है।

- वहीं अमरकोष में पुण्यात्माओं द्वारा धारण किये गये वर्णाश्रम धर्म, कर्म विधि, निषेध, सदाचार आदि को धर्म कहा गया है।
- गीता के अनुसार वर्णाश्रम कर्म का पालन धर्म है।
- भागवत के अनुसार वेद द्वारा प्रतिपादित कर्म ही धर्म है– 'वेदप्रणहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः'।
- महर्षि मनु के अनुसार वेद ही धर्म के मूल हैं– 'वेदऽखिलो धर्ममूलः'।
- कुमारसम्भव में धर्म को त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, और काम) का सार माना गया है।
- महाभारत में इसे व्यष्टि और समष्टि के जीवन का आधार माना गया है। यह प्रज्ञा को धारण करता है जो धारण के साथ रहे वही धर्म है –

धारणाद्धर्म मित्याहु धर्मों धारयते प्रजा
यत् स्याद्धारण संयुक्त स धर्मं इति निश्चयः।

धर्म के वास्तविक स्वरूप को सम्यक् दृष्टि से जान लेने पर धर्म के विषय में फैली उन सभी भ्रांतियों की संभावना क्षीण हो जायेगी, जिनके कारण आज के युग में धर्म के प्रति सामाजिक चेतना पूर्व की अपेक्षा कम हुई है। धर्म तो वस्तुतः मूलरूप से एक रचनात्मक उदात्तवृत्ति है। धर्म के मूल स्वरूप की गहनता तक पहुँचने के लिए सबसे पहले उसे परिभाषित तथा व्याख्यायित करना आवश्यक है।

धर्म एक है, और वास्तव में धर्म की पहचान इसी से होती है कि वह सार्वलौकिक होता है, व्यक्ति के दृष्टिकोण को विराट बनाता है तथा प्रेम एव सौहार्द के द्वारा ही संसार के समस्त प्राणियों में एकता के भाव भरने की भावनात्मक प्रयास करता है।[1] इस धर्म को अपनी–अपनी भाषा में व्यक्त किया जा सकता है, जैसे पानी को हिन्दी में जल, अंग्रेजी में वाटर, पर्शियन में आब, तथा संस्कृत में वारि कहते हैं किन्तु नामों में भेद के उपरान्त भी अभिप्राय एक ही है। इस दृष्टि से देखने पर सभी धर्म एक ही सत्य की ओर संकेत करते प्रतीत होते हैं।

सामान्य भाषा में धर्म शब्द का प्रयोग कई अर्थों में किया जाता है–

1.स्वभाव– धर्म का अर्थ स्वभाव या प्रकृति के अर्थ में करते हैं जैसे कि पानी का धर्म है प्यास बुझाना।

2.कर्तव्य– कर्तव्य के अर्थ में भी धर्म शब्द का प्रयोग होता है, उदाहरण के लिए माता–पिता के प्रति कर्तव्य निभाना हमारा धर्म है।

3.गुण– गुण का लक्षण के अर्थ में भी धर्म का प्रयोग होता है जैसे कि आग का धर्म दाहकता है या पानी का धर्म शीतलता है।

4.सत्कर्म– दान, दया, परोपकार आदि सत्कर्म या सुकर्म के अर्थ में भी धर्म का प्रयोग किया जाता है।

5.सत्य– सत्य या उचित बात कहने के लिए भी धर्म शब्द का प्रयोग होता है, उदाहरणार्थ– अमुक बात धर्म से कहो।

6.सम्प्रदाय– सम्प्रदाय या पंथ के रूप में भी धर्म शब्द का प्रयोग होता है जैसे– हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई धर्म आदि।

7.विधि– धर्म शब्द का प्रयोग कानून एवं विधि के रूप में भी होता है।

धर्म की अवधारणा का विकास

ऋग्वेद में धर्म और धर्मन का उल्लेख मिलता है।[2] ऋग्वेद में कहीं–कहीं व्रत और यज्ञ के लिए धर्म का प्रयोग हुआ है। यज्ञ सम्बन्धी कृत्य पूर्व काल में धर्म के रूप में या धर्म यज्ञ के रूप में था। ए.बी.कीथ के अनुसार नियम का बोध धर्मन शब्द से होता है, जिसका अर्थ धारक और ध्येय दोनों हैं। पुरुष सूक्त में बताया गया है कि देवताओं ने यव के द्वारा यज्ञ किया और यही प्रथम आदेश धर्म थे। धर्मन के अनुसार यज्ञाग्नि को प्रज्वलित किया जाता है, और धार्मिक नर–नारी अपत्यों के अनुसार अपनी वृद्धि करते हैं।[3]

ऋग्वेद की भाँति यजुर्वेद में भी धर्म, धर्मन, धर्मणा और धर्माय रूप प्राप्त होते हैं। अथर्ववेद में भी धर्म का प्रयोग धारण के अर्थ में किया गया है। इसमें भी परम्परा से प्राप्त आचार को धर्म बताया गया है।

"धर्म" शब्द के उपर्युक्त अनेक अर्थ प्रचलित होने के कारण आज आम आदमी धर्म के सम्बन्ध में न तो कोई विचारशील मनोवृत्ति बना पाता है और न ही उसे इसकी आवश्यकता अनुभव होती है। व्यावहारिक धर्म में निश्चित रूप से पौराणिकता अन्तर्व्याप्त रहती है और वह केवल इस रूप में ही नहीं रहती कि सांप्रदायिक चिन्हों, रूढ़ियों और मर्यादाओं को इसमें पवित्रता से मंडित कर दिया गया है और न केवल इस रूप में ही रहती है कि मूर्ति, मंदिर, अवशेष आदि प्रतीकों का प्रतिक्रिया करने से अभेद स्थापित कर दिया जाता है। इस पौराणिकता या अंधविश्वास से बचने हेतु धर्म की व्याख्या और भी आवश्यक हो जाती है।

प्रथम हम अंग्रेजी के Religion की व्युत्पत्ति देखें – शाब्दिक अर्थ में रिलिजन एकता और सामन्जस्य का द्योतक है। रिलिजन लैटिन भाषा के शब्द Religare जिसका अर्थ होता है "पुल बाँधना" से निकला है। इस प्रकार धर्म मानव और परम सत्य की परम एकता की आस्था पर आधारित है।

धर्म शब्द का अर्थ वस्तुतः कर्तव्य, सत्कार्य या गुण होता है, व्युत्पत्ति की दृष्टि से धर्म शब्द 'धृ' धातु से बना है जिसका अर्थ है– धारण करना। अर्थात् वह जो धारण करता है या किसी वस्तु का अस्तित्व बनाये रखता है वही धर्म है। धर्म शब्द का किसी अन्य भाषा में अनुवाद करना नितान्त कठिन है। धर्म किसी व्यक्ति का नहीं सम्पूर्ण विश्व का अधिष्ठान है।

'धारणात् धर्म मित्याहुः प्रजा'।[4] अर्थात्– मानव की एक सार्वभौमिक प्रवृत्ति है, मनुष्य ही एकमात्र धार्मिक प्राणी है। पंचतंत्र नामक नीतिग्रंथ में मनुष्य को पशुओं से अलग करने के आधार पर धर्म की परिभाषा की गई है। 'धर्म वह वस्तु है जो पशुत्व से मनुष्यत्व तक और मनुष्यत्व से देवत्व तक उठा देती है'।[5] वैशेषिक सूत्र के अनुसार धर्म को इस प्रकार परिभाषित किया गया है– यतो अभ्युदय निःश्रेयस् सिद्धिः स धर्मः–

अर्थात् धर्म जीवन की वह विधा है, जिससे अभ्युदय (इहलोक में उन्नति) और निःश्रेयस् (मोक्ष) दोनों ही मिले।

भारतीय संस्कृति में धर्म को इतना अधिक महत्व इसलिए दिया गया है कि यह धर्म समाज में शान्ति , सुव्यवस्था तथा स्थायित्व बनाये रखता है। धर्म से विलगाव का अर्थ ही है कि समाज की पूरी व्यवस्था को अस्त–व्यस्त करना। धर्म की अवहेलना हम समाज को खत्म करने की संभावना के खतरे को उठाकर ही कर सकते हैं। इस तरह से धर्म मानवीय अर्थ या अन्वेषण के उस रूप को कह सकते हैं जो जीवन का लक्ष्य लोकोत्तर और परम चैतन्य की स्थिति की प्राप्ति को या परम चैतन्य के बोध की योग्यता प्रगति को स्वीकार करता है। धर्म एक मूल्य बोध है, क्योंकि उत्कर्ष के लिए मूल प्रत्यय है, और उसका अन्वेषण या उपलब्धि इसकी मूल प्रेरणा।

धर्म का वर्गीकरण

1. वर्ण धर्म

प्रत्येक वर्ण का वर्ण धर्म चातुर्वर्ण्य सिद्धान्त के द्वारा प्रतिपादित किया गया है। प्रत्येक वर्ण के लिए विभिन्न प्रकार के कर्तव्य निर्धारित किये गए हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र इन चारों वर्णों के विशिष्ट कर्तव्यों को वर्ण धर्म की संज्ञा दी गई है।

2. आश्रम धर्म

सम्पूर्ण जीवन को चार आश्रमों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक आश्रम में अनेक प्रकार के नियम हैं। उदाहरण– ब्रह्मचर्य आश्रम में वल्कल धारण करना, भिक्षावृत्ति आदि। इसके अतिरिक्त गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रम में विशिष्ट नियमों का पालन करना धर्म कहा गया है।

3. गुण धर्म

किसी वर्ण विशेष के रहने पर भी गुण प्रवर्तन के कारण किसी धर्म को धारण करना गुण धर्म है।

4. नैमित्तिक धर्म

जीवन को मर्यादित रखने के लिए दैनिक जीवन में निमित्तवश कुछ कार्यों को करना आवश्यक बताया गया है। इन्हें नैमित्तिक धर्म की संज्ञा दी गई है।

5. साधारण या सामान्य धर्म

यह सामान्य रूप से सभी के लिए आवश्यक धर्म है। इसमें वर्ण, देश, काल आदि की अपेक्षा नहीं रहती। उदाहरण के लिए सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह आदि सामाजिक व्यवस्था के उच्च तथा निम्न सभी के लिए समान रूप से अनिवार्य तथा अनुपालनीय कहे गए हैं।

6. आपद् धर्म

किन्हीं विशेष आपात्कालीन परिस्थितियों में जीवन निर्वाह के लिए अपने से निम्न वर्ण का कर्म भी स्वीकार किया गया है। धर्म का वर्गीकरण सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, साम्प्रदायिक तथा नीतिपरक कर्तव्यों पर आधारित हैं।

धर्म के स्रोत

ब्राह्मण ग्रन्थों में धर्म

ब्राह्मण ग्रन्थों में धर्म शब्द का प्रयोग धार्मिक अनुष्ठान तथा व्यवहार के लिए किया गया है, यहाँ ऋग्वैदिक विचारधारा का पालन दृष्टिगोचर होता है। बार्थ के अनुसार – ब्राह्मणकालीन धर्म भी ऋग्वैदिक यज्ञ – यज्ञादि कार्यों से सम्बन्धित था, किन्तु इन ग्रन्थों में यज्ञ को ही सभी वस्तुओं की उत्पत्ति केंद्र कहा गया है। यज्ञ प्रकृति सम्बन्धी कार्यों का उत्पत्ति क्षेत्र तथा प्रतीकों को केन्द्र बिन्दु हो गया था। यज्ञीय कृत्यों को ऋत

से सम्बन्धित कर देवताओं को संसार सम्बन्धी भौतिक कार्यों का संरक्षक एवं निरीक्षक स्वीकार किया गया है।[6]

ऐतरेय–ब्राह्मण में राजा धर्म का रक्षक और धर्माध्यक्ष के रूप में वर्णित है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार राजा धर्मज्ञाता, धारणकर्ता तथा धर्म का पालन कराने वाला है। इन ब्राह्मणों में निरूपित धर्म का तात्पर्य विधि से है। ऋत की भावना में सत्यपरक नैतिकता का समावेश हम पहले भी देख चुके हैं, इससे स्पष्ट है कि इन ग्रन्थों के समय में धर्म यज्ञादि रूप में प्रचलित था। इसके अतिरिक्त धर्म का सम्बन्ध राज्य से भी हो गया था।

आख्यक साहित्य में धर्म

तैत्तरीय आख्यक में सत्य, तपस, यज्ञ और सम्पूर्ण न्यास के द्वारा अमृत्व , प्राप्त करने का वर्णन मिलता है। इसी आख्यक में यह भी संकेत भी है कि धर्म जगत् प्रतिष्ठा एवं स्थायित्व का कारण है। सभी कुछ धर्म में स्थित रहता है। इसीलिए धर्म को सभी से श्रेष्ठ बताया गया है।[7] इन दोनों गद्यांशों पर सायण ने भाष्य करते हुए यह मत प्रकट किया है कि यहाँ धर्म का तात्पर्य सद्कार्यों तथा दानपरक कार्यों से है। पर सायण की यह व्याख्या धर्म को पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं करती।

उपनिषदों में धर्म

धर्म का वैदिक अर्थ प्रायः शीलपरक था।[8] कुछ स्थलों पर शील के शाश्वत आधार को धर्म कहा गया है, जैसे वृहदारण्यक उपनिषद के अनुसार जहाँ से सूर्य उदित होता है, और जहाँ अस्त होता है, उसे देवताओं ने धर्म बताया है। वही आज है, वही कल। उसने कल्याण रूप में धर्म को बनाया, धर्म ही राजा का राजा कहा गया है। धर्म के ऊपर कोई अन्य सत्य नहीं है, ठीक उसी प्रकार जैसे कोई व्यक्ति राजा की सहायता से किसी को पराभूत कर सकता है, वैसे ही धर्म के माध्यम से से कोई निर्बल व्यक्ति बलवान को अभिभूत करने की आशा करता है। इस सन्दर्भ में धर्म को शाश्वत नियामक माना गया है, जिस पर प्रकृति के व्यापार तथा सामाजिक कल्याण एवं न्याय आश्रित हैं। अन्य उपनिषदों में भी धर्म के नैतिक स्वरूप पर विशेष बल दिया गया है। ईश उपनिषद में सत्य धर्म को बताते हुए उसके माध्यम से ब्रह्म की प्राप्ति होना बताया गया है।[9] तैत्तिरीय उपनिषद में सत्य को धर्म को बताते हुए उसके माध्यम से ब्रह्म की प्राप्ति होना बताया गया है। श्वेताश्वतर उपनिषद में धर्म से ब्रह्म प्राप्ति सम्भव बतायी गयी है। छान्दोग्य उपनिषद में धर्म की तीन शाखाओं का उल्लेख मिलता है–यज्ञ, अध्ययन और दान की प्रथम शाखा, तपस्या द्वितीय तथा आचार को तृतीय शाखा के अन्तर्गत रखा गया है। इसमें आचार को अधिक महत्व दिया गया है।

धर्मसूत्रों में धर्म

धर्मसूत्रों में गौतम, आपस्तम्ब, बौधायन, विष्णु आदि के धर्मसूत्र प्रमुख हैं, जिनमें गौतम धर्म सूत्र सर्वाधिक प्राचीन है। वर्णाश्रम धर्म, राजधर्म, स्त्रीधर्म, जातिधर्म एवं कुल धर्म, प्रायश्चित तथा दायभाग इसके वर्ण्य विषय हैं। इन सूत्रों में यद्यपि श्रेणी, पुत्र तथा गुण धर्म का उल्लेख नहीं है तथापि दस्तकार, व्यापारी और अन्य वर्गों के कर्तव्यों का वर्णन है। इसके अतिरिक्त इनमें सत्य, अहिंसा तथा श्रद्धा आदि नैतिक सद्गुणों के पालन का भी आदेश मिलता है।

धर्मसूत्रों मे हम वर्णाश्रम का क्रमबद्ध विवेचन पाते हैं, इनमें धर्म की भावना व्यापक रू‍ से भी प्राप्त होती है, जिसका सम्बन्ध मानव के विस्तृत कर्तव्यों से है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में धर्म

अर्थशास्त्र में नीति सम्बन्धी व्यावहारिक विषयों का विवेचन किया गया है जिसका विशेष सम्बन्ध राजाओं एवं पुरोहितों से था। इसमें साधारण धर्म तथा श्रुति विहित

नियमों के द्वारा संसार के सुखी होने का आदर्श मिलता है। इसमें राजा के धर्म परायण होने का आदर्श प्रस्तुत किया गया है। क्योंकि वह धर्म का रक्षक है, धर्म की रक्षा करना राजा का परम धर्म कहा गया है।[10]

स्मृतियों में धर्म

धर्म सूत्रों में निरूपित धर्म की विशद व्याख्या स्मृतियों में की गई है, इनमें मनुस्मृति सबसे प्राचीन मानी जाती है। इसमें चारों वर्णों के धर्म और उसके आचार आश्रम धर्म, विवाह तथा अन्य संस्कार, पंच महायज्ञ, श्राद्ध, भक्ष्याभक्ष्य विचार, स्त्री धर्म , राजधर्म, आपद् धर्म, प्रायश्चित विधि एवं कर्मों के गुण दोष आदि का विवेचन मिलता है। इसके अतिरिक्त इसमें जाति, श्रेणी, कुल, गण और पाखंडियों के धर्मों का भी उल्लेख मिलता है।[11]

डॉ. पांडुरंग वामन काले के अनुसार धर्मशास्त्रों में धर्म का तात्पर्य किसी सम्प्रदाय या मत से नहीं है, जीवन की विशिष्ट आचार पद्धति से है, जिसके द्वारा मनुष्य वैयक्तिक एवं समाज के सदस्य के रूप में अपने कर्तव्यों का पालन अभीप्सित लक्ष्य को प्राप्त कर सके। स्मृतियों में भी निःश्रेयस धर्म को कहीं—कहीं प्रधानता दी गई है।

महाकाव्यों में धर्म

रामायण और महाभारत में भी धर्म का निरूपण है, जिनकी तिथि के विषय में मतभेद है। रामायण में धर्म का निरूपण संक्षेप में पात्रों के संवादों के द्वारा प्रस्तुत है। इसमें हमें धर्म का फलवादी रूप प्राप्त होता है। रामायण में वर्णाश्रम और राजधर्म का निरूपण है। रामायण के अनुसार प्रत्येक परिस्थिति में मनुष्य का स्वधर्म के पालन द्वारा मानव कल्याण करना ही उसका आदर्श बताया गया है। इसमें नैतिक गुणों के पालन पर विशेष बल दिया गया है। नियतिवाद की आलोचना करते हुए मनुष्य को स्वयं उसके भाग्य का निर्माता कहा गया है। नियतिवाद के स्थान पर कर्मवाद की स्थापना की गई है। लक्ष्मण के व्यक्तित्व में वाल्मीकि ने यथार्थवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। परम्परागत धर्म के पालन का आदर्श हमें यहाँ भी प्राप्त होता है। रामायण में स्त्री, भातृ, पुत्र और मित्र के धर्म का निरूपण है। इसमें धर्म साक्षात् देवता के रूप में वर्णित है, राम को शरीरधारी धर्म कहा गया है।[12]

महाभारत में धर्म के स्वरूप की इस विवेचना के लिए अनेक विचारक उत्तरदायी रहे है, जिनमें महर्षि व्यास, धर्मपुत्र युधिष्ठिर, कृष्ण, भीष्म पितामह एवं अनेक भृगुवंशीय ऋषियों की गणना की जा सकती है। वास्तव में इसमें इन मनीषियों द्वारा अभिव्यंजित धर्म का एक समन्वित स्वरूप उभर सकता है जो न केवल भारत वरन् मानव मात्र का आदर्श होने के लिए स्वपर्याप्त है। महाभारत का यह मूलवाक्य है— "यतोकृष्णस्ततो धर्मः यतोधर्मस्ततो जयः"। व्यास ने तो यहाँ तक कह डाला है— "ऊर्ध्वबाहुर्विरौग्येष न च कश्चिच्छुनोति मे धर्मादिभिश्च कामश्च धर्मकिं न तु सेव्यते"।

महाभारत में धर्म के विभिन्न स्वरूप वर्णित हैं, इसमें राज धर्म, प्रजा धर्म, जाति धर्म और कुल धर्म, वर्णाश्रम धर्म, दान धर्म, आपद् धर्म, मोक्ष धर्म, स्त्री धर्म आदि का वर्णन है। महाभारत में धर्म को मानवमात्र के पूर्व सर्वांगीण उत्कर्ष का साधन बताया गया है। इसलिए धर्म का एक सापेक्ष स्वरूप इनसे प्रभावित होता है। सम्यक् धर्म वही है जो युग सत्य के अनुकूल एवं उत्कर्षकारी हो इसीलिए महाभारत में धर्म का स्वरूप गत्यात्मक है।[13]

गीता में धर्म का सम्यक् निरूपण है। इसमें वर्ण, धर्म, आचार एवं नैतिक गुणों का विवेचन मिलता है। कर्म करना व्यक्ति का धर्म बताया गया है। गीता के अनुसार कर्म के अन्तर्गत वाचिक तथा मानसिक सभी कार्य समाविष्ट हैं। इसमें निष्काम कर्म का

आदर्श प्रतिपादित किया गया है, जो अनासक्त भाव से धर्माचरण पर बल देता है। गीता में एक स्थल पर उल्लेख है कि धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होने पर स्वयं भगवान साधु पुरुषों के उद्धार तथा दुष्कर्मियों के विनाश तथा धर्म की पुनर्स्थापना के लिए युग–युग में जन्म लेते हैं।[14] यहाँ धर्म के महत्व को प्रगट करते हुए ईश्वर के अवतार के द्वारा उसकी रक्षा का आशावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। इस आदर्श का प्रभाव परवर्ती ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

पुराणों में धर्म का स्वरूप

पुराणों में धर्म को सार्वजनिक नैतिक उपदेशों तथा अनुपालनीय आचार के रूप में प्रतिष्ठिति करने का प्रयास किया गया है। पुराणों में धर्म के विविध रूपों और उनकी सूक्ष्मता को स्पष्ट किया गया है। समस्त धर्म को भली प्रकार समझाने का प्रयास हमें इसमें मिलता है। पुराणों से पता चलता है कि धर्म का विनिश्चय एवं उसकी परिभाषा करना कठिन है। इसमें नैतिक गुणों पर विशेष बल देते हुए उन्हें सनातन धर्म की संज्ञा दी गई है, इनमें अद्रोह, अलोभ, जीवों पर दया, दम, शान्ति, ब्रह्मचर्य, तपस्या, शुद्धता, अक्रोध, क्षमा तथा धैर्य का विशेष उल्लेख मिलता है। इन नैतिक गुणों का और अधिक विस्तार के साथ भागवत पुराण में वर्णन है, जो कि बाद का है।

बौद्ध और जैन धर्म

बौद्ध साहित्य में 'धम्म' शब्द का उपयोग बहुत अधिक हुआ है और इसके ऊपर अधिक बल दिया गया है। यह शब्द बौद्ध धर्म के सत्य (सद्धर्म) को भी व्यक्त करता है। रीज डेविड्स के अनुसार यह शब्द सम्यक् स्वरूप और प्रतिष्ठित परम्पराओं के अनुकूल होने का भाव व्यक्त करता है।[15]

प्राचीन हिन्दू (ब्राह्मण) धर्म में समय के साथ अनेक कुरीतियों ने प्रवेश कर लिया था, और धर्म के क्षेत्र में भारत का विकास रुद्ध हो गया था। इसी समय उत्तरी भारत में दो राजकुमारों ने जन्म लिया था। इन दोनों ने वही कार्य किया जो मुहम्मद साहब ने अरब में तथा मार्टिन लूथर ने जर्मनी में किया था, इनके नाम महावीर और गौतम थे।

गौतम बुद्ध के समय में और उनके पूर्व आत्मा, जगत्, परलोक, पाप, पुण्य, मोक्ष आदि के सम्बन्ध में घोर वाद–विवाद होते थे। आध्यात्मिक क्षेत्र में अधिकांश समय व्यर्थ के वाद–विवाद में नष्ट होता था। धर्म में चमत्कार की प्रधानता हो चली थी। नीति धर्म पर आधारित थी और धर्म ईश्वर पर। अतः नीति या धर्म में मानव प्रयत्न और उत्तरदायित्व की भावना लुप्त सी हो गई थी। इन्हीं सब परिस्थितियों के कारण गौतम बुद्ध ने अपने समय की कुरीतियों का दृढ़तापूर्वक विरोध किया और एक बौद्धिक धर्म, व्यावहारिक नीति शास्त्र तथा साधारण जीवन सिद्धान्त उपस्थित किए।

बौद्ध धर्म के विपरीत जैन धर्म ब्राह्मण धर्म के बहुत कुछ निकट था। जैन धर्म में जीव, अजीव इन दो प्रकार के जड़ और चेतन द्रव्यों में विश्वास करता है। वह कर्म के सिद्धान्त पर भी विश्वास करता है। किन्तु वह ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास नहीं रखता। इन दोनों ही धार्मिक अवधारणाओं ने अपनी तत्कालीन समाज को बहुत अधिक प्रभावित किया।

उपसंहार

भारतीय संस्कृति में चिन्तन के आदिकाल से आज तक इतिहास में चार महान क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। पहली क्रान्ति जब आर्य भारतवर्ष में आये तथा भारत में नई संस्कृति बनी, फिर दूसरी क्रान्ति महावीर और गौतम बुद्ध द्वारा स्थापित धर्म के प्रति विद्रोह के बाद हुई। तीसरा क्रान्तिकारी परिवर्तन भारतीय संस्कृति और चिन्तन में तब हुआ जब इस्लाम भारत पर पूर्णतः हावी हो चुका था, मुस्लिमों में दाराशिकोह तथा कुछ

सूफियों ने और हिन्दुओं में रामानन्द, कबीर तथा दादू आदि ने इसे मूर्त रूप दिया। चौथे महत्वपूर्ण क्रान्तिकारी परिवर्तन का आगमन बंगाल में हुआ। जहाँ 19वीं शताब्दी में भारतीय मानस तत्व की जागृति हुई और धर्म का पुनरुज्जीवन हुआ।

भारतीय समाज में धर्म का विशेष महत्व है। भारतीय धर्मशास्त्रों के अनुसार धर्म की परिभाषा विस्तृत रूप से दे दी गई है, जिसमें मनुष्य के जीवन के प्रत्येक क्रिया–कलाप के लिए उचित नियमों का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार धर्म शब्द का अर्थ केवल पूजा या उपासना से सम्बन्धित नियमों का उल्लेख मात्र ही नहीं है, अपितु उसके अन्तर्गत सम्पूर्ण जीवन को धर्मानुसार व्यतीत करने के लिए नियमों का निरूपण किया गया है। 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पाश्चात्य शिक्षा–दीक्षा के प्रभाव से प्रभावित कुछ विद्वानों ने भारतीय संस्कृति की खोज आरम्भ की, जिसके फलस्वरूप इस समय में बहुत से आन्दोलन इस क्षेत्र में आरम्भ हुए जिनको धार्मिक आन्दोलन का नाम दिया जाता है। इन आन्दोलनों में ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, थियोसिफिकल सोसायटी एवं आर्य समाज आदि प्रमुख हैं।

समकालीन दार्शनिक चिन्तन की पृष्ठभूमि में राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्रान्ति के बीज उपलब्ध होते हैं। यद्यपि यह चिन्तन प्राचीन वेदान्त एवं परम्परा की आधारशिला पर ही खड़ा है तथापि प्राचीन चिन्तन से विशिष्ट इसकी अपनी कुछ युगानुकूल प्रवृत्तियाँ भी हैं जैसे–समन्वयवाद, मानवतावाद, वैज्ञानिकतावाद आदि।

समकालीन भारतीय दार्शनिक कुल मिलाकर अपने धार्मिक संज्ञान में अद्वैतवादी तत्वमीमांसा को स्वीकार करते प्रतीत होते है। किन्तु यह स्वीकृति शंकराचार्य के मत से थोड़ा भिन्न है। उन्होंने ईश्वर को ब्रह्म के समकक्ष रखकर अपनी धर्म निष्ठा को परिलक्षित किया है। धार्मिक अनुभूति के लिए यह आवश्यक है कि हमारा विश्वास एक ऐसे ईश्वर में हो जो पूर्ण व्यक्तित्व से धनी हो और जिसके पास दुःख–सुख में तथा समय–असमय दुर्बल मनुष्य प्रार्थना और निवेदन के लिए आ सकें।

जहाँ एक ओर सभी समकालीन दार्शनिकों ने ईश्वर को सर्वोच्च सत्ता प्रदान की, वहीं उन्होंने किसी न किसी रूप में यथार्थता पर भी बल दिया। जगत के प्रति परम्परागत नकारात्मक दृष्टिकोण उन्होंने स्वीकार नहीं किया। समकालीन चिन्तकों ने चूंकि व्यावहारिक जगत को किसी न किसी प्रकार से सत्यता प्रदान की है, अतः उनका उपागम जीवन और जगत के प्रति स्वीकृति का है और इस प्रकार उनके वैयक्तिक दुःख सामाजिक अन्याय, आर्थिक शोषण, राजनैतिक अत्याचार आदि सभी बातें कटु यथार्थ बन गई हैं जिसके विरुद्ध संघर्ष करना मनुष्य का कर्तव्य बनता है। रवीन्द्रनाथ से लेकर अरविन्द तक उन्हें माया या मिथ्या कह कर टालना नहीं चाहते। यही कारण है कि गाँधी और विवेकानन्द यहाँ एक ओर दरिद्र नारायण की उपासना के लिए सामान्य जन को प्रेरित करते हैं, वहीं रवीन्द्र और अरविन्द जैसे कवि और योगी भी राजनैतिक स्वाधीनता के लिए संघर्षरत है। राधाकृष्णन स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व के प्रजातन्त्रात्मक मूल्यों पर बल देते हैं और दयानन्द धार्मिक सुधार का बीड़ा उठाते हैं। गाँधी तो अन्याय के विरुद्ध संघर्ष के लिए आध्यात्मिक शस्त्र ही ढूढ़ निकालते हैं जिसे उन्होंने सत्याग्रह कहा है। इस प्रकार समस्त समकालीन दार्शनिक मनीषा हमें धर्म के उस स्वरूप का विरोध करती प्रतीत होती है जो व्यक्ति को सन्यास और वैराग्य की ओर ढकेलती है।

इसके अतिरिक्त प्रायः सभी समकालीन विचारकों में हम धर्म के प्रति एक रहस्यमय अतिबौद्धिक वृत्ति को देखते हैं। उनकी आस्था का आधार बौद्धिक है किन्तु सच पूछा जाय तो यही बौद्धिक वृत्ति उन्हें स्वयं उसके संक्रमण के लिए आमन्त्रित

करती है। धर्म की समकालीन अवधारणा एक अन्य कारण से भी उल्लेखनीय है, लगभग सभी चिन्तकों ने धर्म के नैतिक पक्ष पर विशेष बल दिया है। कहीं न कहीं सबके मन में यह भावना रही है कि सर्वोच्च धार्मिक सत्य की अनुभूति के लिए नैतिक आचरण आवश्यक है। यह बात गाँधी, राधाकृष्णन और दयानन्द में विशेषकर परिलक्षित होती है किन्तु इसके प्रति उदासीन कोई भी नहीं है। राधाकृष्णन, परमहंस, विवेकानन्द, और रवीन्द्र, अरविन्द सभी धार्मिक जीवन के लिए नैतिक आचरण के पक्षपाती हैं और सभी ने नैतिक सद्‌गुणों को मानव आचरण में चरितार्थ करने के लिए सभी व्यक्तियों को आमन्त्रित किया है।

आधुनिक भारतीय दर्शन ने न केवल धर्म के तत्वमीमांसात्मक और नैतिक पक्ष को ही नये आयाम दिये, वरन उनके साधना और अनुभूति पक्ष को भी एक नई अभिव्यंजना प्रदान की है। यह मोक्षानुभूति समकालीन चिन्तकों के लिए मात्र वैयक्तिक उपलब्धि भर नहीं है। इस सन्दर्भ में गाँधी और अरविन्द का नाम विशेष तौर पर लिया जा सकता है। गाँधी का अन्तिम साध्य अहिंसा द्वारा मुक्ति है पर वह वैयक्ति मुक्ति न हो करके सामूहिक मुक्ति की भावना है। गाँधी जी को उस दिन की प्रतीक्षा है, जब आत्माओं की एकता का सिद्धान्त केवल कुछ लोगों के ही आध्यात्मिक अनुभव का विषय नहीं रहेगा, प्रत्युत सामूहिक जीवन में भी प्रवृत्त हो सकेगा। इसकी प्रतीक्षा अरविन्द को भी है। वह मोक्ष को व्यक्तिगत मामला नहीं मानते वरन् समस्त अस्तित्व का रूपान्तरण मानते हैं।

इस प्रकार कुल मिलाकर समस्त समकालीन भारतीय विचारधारा एक विस्तृत आयाम की ओर संकेत करती है, जो अपनी उदार दृष्टि से आकृष्ट करती है। समय के साथ हर वस्तु में परिवर्तन होता है, आज के मानव का दृष्टिकोण यद्यपि धर्म के प्रति काफी भिन्न प्रकार का हो गया है तथापि धर्म की आवश्यकता और उसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता।

संदर्भः

1. रामनारायण व्यास : धर्म दर्शन, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल 1971, पृ. 53
2. वैदिक इन्डेक्स, हिन्दी संस्करण भाग–1, पृ.437
3. ए.बी.कीथ : रिलिजन्स एन्ड फिलॉसफी ऑफ दी वेद एन्ड उपनिषद्, पृ. 249
4. महाभारत : कर्ण पर्व, 59–69
5. विवेकानन्द स्वामी : सूक्तियाँ एवं सुभाषित, रामकृष्ण आश्रम, नागपुर, 1972, पृ. 21
6. बार्थ ए. : रिलिजन्स ऑफ इन्डिया, पृ. 377
7. तै. उप. 10/63/1
8. बृहदारण्यक उपनिषद 1/4/14
9. ईश. उप. 1/15/13
10. कौटिल्य अर्थशास्त्र 1/3/3
11. मनुस्मृति 1/107–118
12. रामो विग्रहवान् धर्मः रामायण उद्धृत द्वारा वासुदेव शरण अग्रवाल, कला और संस्कृति, पृ. 181
13. महाभारत शा. प. 36/11
14. गीता, 4/7–8
15. रीजडेविड्स : बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ. 292

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

NAAGS KANPUR

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

भारत में सार्वभौमिक शिक्षा का वर्गीय चरित्र तथा प्रगतिशील शिक्षा का विचार

प्रोफेसर अतुल कुमार शुक्ला
प्रोफेसर बी0एड0 विभाग
पं0 जवाहर लाल नेहरू पीजी कॉलेज बाँदा

सार

70 के दशक में थोड़ा सा व्यतिक्रम अवश्य दिखा, जोकि अल्पकालिक होने के बावजूद सशक्त तथा दूरगामी प्रभाव डालने वाला था। एक दलीय वैचारिक वर्चस्व का सबसे अनूठा पक्ष, औपनिवेशिक शासन से मुक्ति पाने के लिए स्वतन्त्रता आन्दोलन में उसके द्वारा किए गए सतत तथा सार्थक प्रयत्नों की विरासत का एकाधिकारिक दावा था, जोकि 60 के दशक के अन्त में हुए दलीय विभाजन के बाद और भी मजबूती से रखा जाने लगा। किन्तु इसका सबसे नकारात्मक पक्ष यह था कि औपनिवेशिक सरकार से मुफ्त तथा अनिवार्य शिक्षा की सशक्त माँग करने वाला यही वर्चस्वशाली समूह, आजादी के बाद स्वयं ही इस मुद्दे को भविष्य में कभी पूरा करने के लिए टालता रहा। गोखले स्वयं सामाजिक–आर्थिक पुनरुत्थान तथा सशक्त लोकतंत्र के आधार के रूप में जिस शिक्षा के दूरगामी महत्व को समझाते रहे, आजादी के बाद पंचवर्षीय योजनाओं में उसी प्रारम्भिक शिक्षा के प्रति सरकारी उदासीनता इस बात की पुष्टि करती है कि आजादी की परिघटना महज सत्ता हस्तान्तरण थी, क्योंकि इससे केवल शासक वर्ग बदला न कि शासकीय चरित्र। ऐसे में न केवल तात्कालिक स्थितियाँ अपितु राजनीतिक इच्छशक्ति भी शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक पुनर्रचना तथा संशोधन के पक्ष में नहीं थी।

कूट शब्द : औपनिवेशिक नीति, सामाजिक–आर्थिक पुनरुत्थान, अनिवार्य शिक्षा

परिचय

आजादी के बाद दो दशकों तक देश के लिए किसी शिक्षा नीति का ही न होना, न केवल औपनिवेशिक शासकीय चरित्र तथा दृष्टिकोण की निरन्तरता को सिद्ध करता है, अपितु औपनिवेशिक नीति के उस अनुसरण को भी इंगित करता है, जोकि भारतीय समाज की पुनर्रचना के वर्षों में घातक सिद्ध हुआ। बल्कि शिक्षा नीति के अभाव का विरोध उसी विचारधारा को अरुचिकर लगा, जोकि स्वयं औपनिवेशिक नीतियों की धुर विरोधी थी। CABE की 23वीं बैठक में मौलाना अबुल कलाम आजाद की प्रतिक्रिया को इसी संदर्भ में समझा जा सकता है।

यही कारण था कि आजादी के बाद भारत की शिक्षा नीति मूलतः किसी सुस्पष्ट तथा प्राप्य (यदि उसकी उदात्त तथा भव्य शब्दावली की बौद्धिकता को छोड़ दें) लक्ष्यों के अभाव में लगातार *"अधिकतम संभव विस्तार"* की थी, जिसके लिए दूरदर्शिता के स्थान पर तात्कालिकता एवं तदर्थता को प्रभावी आधार बनाया गया। यही कारण है कि 60 के दशक में जिस अखिल भारतीय प्रारम्भिक शिक्षा परिषद को समाप्त कर दिया गया था, 90 के दशक में उसे पुनः प्रारम्भिक शिक्षा मिशन के रूप में आरम्भ किया गया। सरकार की इस उदासीनता का एक सशक्त कारण यह था कि बच्चों से जुड़े, खासकर शैक्षिक मुद्दे न तो चुनावी रणनीति के मुद्दे थे और न ही वोट बैंक की राजनीति के। दरअसल शैक्षिक मुद्दे सत्तारूढ़ दलों से लेकर विपक्ष, बल्कि आम आदमी के स्तर तक एक मुद्दे के रूप में अपनी जगह बना ही नहीं सके, क्योंकि शिक्षा को लेकर समुचित जनचेतना निर्माण अपने–आप में एक समस्या थी। वयस्क मताधिकार तथा बहुदलीय प्रणाली के बावजूद नागरिक शिक्षा तथा चेतना के अभाव में भारतीय समाज में राज्य बनाम नागरिक अधिकार के द्वन्द्व विकसित होने अभी शेष थे।

इस दिशा में, 70 का दशक नागरिक अधिकारों के समर्थन में लामबंदी का दशक सिद्ध हुआ। इधर शिक्षा, खासकर विद्यालयीय के पक्ष में किसी किस्म की लामबंदी का श्रेय 1986 की शिक्षा नीति और उसके विकास की प्रक्रिया को जाता है। इसने विशेष रूप से बौद्धिक हलकों में मौलिक अधिकारों तथा नीति निर्देशक सिद्धातों के मध्य चौड़ायी कम करने के न्यायिक प्रयत्नों में शिक्षा को अधिकार बनाने की आशा का सूत्रपात किया। यह सही है कि 90 का दशक खत्म होते–होते विभिन्न वंचित समूहों जैसे महिलाओं, अनुसूचित जातियों, जनजातियों, विकलागों, पिछड़ों तथा अल्पसंख्यकों में राजनीतिक प्रतिनिधित्व, आरक्षण तथा समतामूलक नीतियों के चलते चेतना का उभार विकसित हुआ, जिससे उनके और उनके समूह के बच्चों से संबंधित मुद्दों को संबोधित करना राजनीति दलों तथा सरकारी नीतियों का अनिवार्य अंग बन गया है। मतदान में बेहतर भागीदारी तथा वैधानिक संस्थाओं में प्राप्त बेहतर जनप्रतिनिधित्व के चलते वंचित वर्गों से संबंधित मुद्दों का राजनीतिक महत्व बढ़ गया। ऐसे में, शिक्षा व्यवस्था से बाहर तथा सरकारी उदासीनता के शिकार वंचित वर्गों और उनके बच्चों के संदर्भ में शिक्षा के मौलिक अधिकार का सामाजिक महत्व सहज समझा जा सकता है।

वस्तुतः आजादी के बाद यह पहला मौका था, जबकि निरीहता क्रम में सबसे निचले पायदान पर खड़े बच्चे की ओर नीति निर्धारकों तथा समाज का ध्यान गया। स्थिति की गंभीरता इस बात से कई गुना बढ़ जाती है, कि बच्चे न तो वयस्क हैं और न ही वे अपने अधिकारों के पक्ष में कोई दावा प्रस्तुत करने की कोई राजनीतिक सामर्थ्य रखते हैं। उनका विधायी अस्तित्व मानवाधिकारों की घोषणा की तरह, मौलिक अधिकारों में वयस्कों के लिए किए गए प्रावधानों के भीतर प्रच्छन्न रूप में मान लिया जाता है। वे मुख्यधारा की राजनीति के निर्णायक मुद्दों का अंग नहीं हैं, इसलिए वे विधायन के स्तर से लेकर अधिनियमन के स्तर तक कोई भूमिका नहीं रखते। वे कथित रूप से बाल नागरिक होने के बावजूद अपने विशिष्ट अधिकारों से वंचित रहते हैं और तथाकथित रूप से वयस्क नागरिक अधिकारों का उपभोग करते हैं। इस प्रकार बाल अधिकारों का संघर्ष वर्चस्वशाली बनाम वंचितों से भी एक कदम आगे, वयस्क बनाम बच्चों का द्वन्द्व है, जिसमें वयस्कों के विरूद्ध बच्चों का पक्ष रखने की पहल भी, अपेक्षाकृत संवेदनशील वयस्कों को करनी होगी।

बाल हितों के प्रति वयस्कों तथा वयस्क व्यवस्था को चेतनाशील बनाने का सबसे सशक्त तथा प्रभावी कदम राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986 ने उठाया और उसके बाद इसकी रफ्तार को रोकना या धीमा करना संभव नहीं रह गया। फिर भी वयस्कवादी समझ तथा वर्चस्वशाली मानसिकता ने बाल हितों से संबंधित मुद्दों को टालने तथा क्रियान्वयन के स्तर पर ढिलाई देने में कोई कमी नहीं की है। विगत वर्षों में संसदीय संवेदनहीनता के चलते राज्य के विरूद्ध बाल अधिकारों में पक्ष में न्यायिक सक्रियता का दायरा तेजी से बढ़ा है। 90 के दशक के राजनीतिक असमंजस तथा अस्थायी वैकल्पिक विचारधारा ने न्यायिक तत्परता को वाजिब समर्थन देते हुए, शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाकर एक प्रमुख जीत तो हासिल की, किन्तु उसका वास्तविक क्रियान्वयन होना अभी भी लम्बित पड़ा मुददा है। यद्यपि प्रस्तुत शोधकार्य को 86वें संविधान संशोधन अधिनियम–2002 के अध्ययन तक परिसीमित किया गया है, परन्तु विषयवस्तु की महत्ता तथा घटनाक्रम की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए, इस बिन्दु पर एक संक्षिप्त अवलोकन जोड़ना आवश्यक हो गया है।

86वें संविधान संशोधन अधिनियम–2002 के अनुसार राज्य को 6 से 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों के लिए निशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की विधिसम्मत व्यवस्था करने का दायित्व दिया गया था। बाजपेई की राजग सरकार ने अपने कार्यकाल के दौरान अविलम्ब शिक्षा के अधिकार के अनुपूरक विधेयक पर कार्य प्रारम्भ कर दिया। साथ ही साथ सर्वशिक्षा अभियान के माध्यम से नामांकन तथा ठहराव को सुनिश्चित करने के प्रयास भी तीव्र कर दिये। यद्यपि अनुपूरक विधेयक पर पहले ही विधि आयोग ने कार्य आरम्भ कर दिया था तथा सरकार को प्रस्तुत अपनी 165वीं रिपोर्ट में इसका प्रारूप[367] भी संलग्न कर दिया था। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जहाँ सरकार की मंशा 86वें संविधान संशोधन अधिनियम–2002 के पारित हो जाने के बाद अनुपूरक अधिनियम को पारित करने की थी, वहीं विधि आयोग की राय इसके विपरीत पहले अनुपूरक अधिनियम को लागू करने की थी, जबकि मौलिक अधिकार बनाये जाने के प्रश्न को बाद में भी सुलझाया जा सकता था। हालाँकि ऐसी स्थिति में अनुपूरक कानून का महत्व 60 के दशक के आदर्श अनिवार्य शिक्षा अधिनियम जैसा ही रह जाने संभावनाऐं ज्यादा थीं।

विधि आयोग के प्रयत्न के तारतम्य में बाजपेई सरकार ने सितम्बर 2003 में मुफ्त तथा अनिवार्य शिक्षा का एक विधेयक तैयार किया, जिसे पुनः 2004 में संशोधित किया गया। तथापि सरकार बदल जाने से यह मामला अगले करीब 6 वर्षों के लिए लटक गया। जुलाई 2005 में डा0 मनमोहन सिंह की संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (UPA) सरकार ने CABE के नेतृत्व में NIEPA के सहयोग से एक सर्वथा नया अनुपूरक विधेयक तैयार किया तथा इस बिल को पुनः 2006 में संशोधित किया गया। किन्तु CABE के इस बिल को आम सहमति नहीं मिल पाने के कारण लागू नहीं किया जा सका। मई 2009 में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (UPA) ने दूसरी बार डा0 मनमोहन सिंह के नेतृत्व में सरकार बनायी और अंततः 01 अप्रैल 2010 को मुफ्त तथा अनिवार्य शिक्षा अधिनियम–2008 को लागू कर दिया गया।

संप्रति सरकारी मशीनरी अनुपूरक अधिनियम से तालमेल बैठाने का प्रयास कर रही है, जबकि 86वें संविधान संशोधन अधिनियम–2002 के प्रवर्तन की घोषणा अभी भी लम्बित चल रहा मुद्दा है। इस बीच भारत सरकार ने 9 फरवरी 2004 की राजपत्रित अधिसूचना के माध्यम से बच्चों के लिए राष्ट्रीय चार्टर–2003 की आधिकारिक घोषणा अवश्य की है। सरकार ऐसी अनुकूल परिस्थितियों की प्रतीक्षा कर रही है, जबकि 86वें

संविधान संशोधन अधिनियम–2002 को अधिसूचित कर प्रवर्त्तित किया जा सके। इस संदर्भ में निम्न पत्रांश सरकारी असमंजस का सुंदर उदाहरण है–

" संविधान (छियासीवां संशोधन) अधिनियम 2002 का खण्ड 1(2) कहता है कि यह उस तारीख से लागू होगा, जिसकी अधिसूचना केद्रीय सरकार सरकारी गजट में जारी करेगी। 86वें संविधान संशोधन को बाध्यकारी बनाने में काफी देरी हो चुकी है। जब तक 86वाँ संविधान संशोधन बाध्यकारी नहीं बनाया जाता तब तक 0–14 आयु समूह के बच्चों को अपने दायरे में लाने वाला सुप्रीम कोर्ट का उन्नीकृष्णन प्रकरण में दिया गया फैसला देश में कानून के रूप में लागू है। अतः 86वें संविधान संशोधन, जिसके दायरे में 6–14 आयु समूह के बच्चे आते हैं, को सरकारी गजट में अधिसूचना जारी करने बाध्यकारी बनाना एक तात्कालिक जरूरत बन गई है।"

उपरोक्त पत्र में व्यक्त सरकारी ऊहापोह स्पष्ट रुप से 86वें संविधान संशोधन अधिनियम–2002 को प्रवर्तित करने के बाद उत्पन्न होने वाली स्थितियों के आकलन की जटिलताओं को इंगित कर रही हैं।

शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाने की शुरूआत भले ही शिक्षा की कृत्रिम माँग तथा राज्य प्रायोजित दायित्व के रूप में हुई हो, परन्तु इसकी परिणति मौलिक अधिकार के रूप में हुई। शिक्षा के अन्तर्निहित महत्व के कारण इसके आरम्भिक लाभान्वित समूहों ने अपनी सशक्त आर्थिक–सामाजिक प्रस्थिति के बल पर इसकी माँग की, ताकि राजनीतिक वर्चस्व भी स्थापित किया जा सके। यही कारण है कि 1850 से 1950 तक करीब एक सदी के दौरान शिक्षा से लाभान्वित समूहों में आर्थिक–सामाजिक तथा शैक्षिक रूप से समर्थ वर्गों का वर्चस्व बना रहा। राजनीतिक सत्ता पर वर्चस्व स्थापित करने के लिए ऐसे लाभान्वित समूहों ने स्वतन्त्रता आन्दोलन को नेतृत्वकारी भूमिका प्रदान की तथा व्यापक जनाधार बनाने के लिए अनेक लोकप्रिय माँगों तथा कार्यक्रमों को अपने राजनीतिक ऐजेंडे में स्थान दिया। आमतौर पर यह समझा गया कि ये समूह सत्ता पाकर वंचित वर्गों के कल्याण के लिए कार्य करेंगे। 1920–1945 के दौरान विशेष रूप से अनिवार्य शिक्षा अधिनियमों के रूप में ऐसे पर्याप्त प्रयत्न किए भी गए।

आजादी के बाद सत्ता हस्तगत करते ही वर्चस्वशाली समूहों के पुनर्निर्माण के ऐजेंडे से निरक्षरता तथा प्रारम्भिक शिक्षा के मुद्‌दे छिटकने लगे। ब्रिटिश शासन के दौरान अनिवार्य शिक्षा अधिनियमों को जोर–शोर से लागू करने वाले लोकप्रिय ऐजेंडे के समर्थकों ने इसे राज्य का अनिवार्य दायित्व बनाने का प्रयत्न तो किया, किन्तु स्वतन्त्र भारत की संविधान सभा में इसे चुपके से अधिकारों की श्रेणी से हटाकर राज्य नीति के ऐसे गैर–वाद योग्य निर्देशक सिद्धान्तों में स्थापित कर दिया गया, जिसे लागू करने के लिये राज्य को बाध्य नहीं किया जा सकता था। वार्षिक बजटों में शिक्षा विषयक प्रावधान अपर्याप्त थे, और उनका भी दिशा प्रवाह माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा की ओर था। आजादी के बाद शिक्षा की किसी सुस्पष्ट और आधिकारिक नीति के अभाव में प्राथमिक शिक्षा के अधिकतम संभव विस्तार की 1911 की ब्रिटिश नीति तथा मानसिकता ही शैक्षिक पुनर्निर्माण के महत्वपूर्ण वर्षों में छायी रही।

शिक्षा से लाभान्वित वर्चस्वशाली समूहों को अपने निर्विवाद लोकतांत्रिक आधार तथा प्रस्थिति को सुनिश्चित करने की दिशा में निरक्षरता तथा प्रारम्भिक शिक्षा के संकुचित आधार का राजनीतिक महत्व अच्छी तरह समझा आ गया था। वर्चस्वशाली वर्गों के करिश्मायी नेतृत्व, विपक्ष की कमजोर और विभाजित उपस्थिति तथा केंद्र व राज्यों में एक दलीय वर्चस्व के चलते सत्तारूढ़ वर्गों के पुनर्निर्माणकारी ऐजेंडे को कोई सफल चुनौती, पर्याप्त देरी से 70 के दशक में दी जा सकी। वर्चस्वशाली वर्गों की

लोकतांत्रिक किस्म की तानाशाही के विरूद्ध न्यायालय की प्रतिष्ठा तथा संविधान की सर्वोच्चता स्थापित होने के साथ ही जनचेतना का अभूतपूर्व विकास हुआ। जिसके चलते अंततः अपने सत्ताधार को बनाये रखने की जुगत में वर्चस्वशालियों के लिये वंचित वर्गों के हित में कार्य करना मजबूरी बन गया। इसलिए 80 के दशक में व्यापक शैक्षिक अभियान सहित तमाम कल्याणकारी कार्यों के बावजूद 90 के दशक के बहुध्रुवीय राजनीतिक परिदृश्य के पदार्पण को रोका नहीं जा सका। राष्ट्रीय दलों के बरक्स क्षेत्रीय दलों की रातों–रात अभिवृद्धि ने स्थानीय स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक चलने वाली विकास की योजनाओं में वंचित वर्गों की माँगों तथा उनके ऐजेंडों का समायोजन किया जाना अपरिहार्य बना दिया।

वर्चस्वशाली वर्गों के प्रतिरोध के बावजूद न्यायिक सक्रियता तथा सशक्त क्षेत्रीय जनाधार रखने वाले राजनीतिक दलों की केंद्र में बनने वाली गठबंधन सरकारों की प्रयत्नशीलता से शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाने में सफलता मिली, जिसके लिये वंचित वर्गों की राजनीतिक चेतना तथा संगठन ने आवश्यक दबाव निर्मित किया। यह उल्लेखनीय तथ्य है कि जहाँ न्यायिक निर्णय 43 वर्ष पुरानी पवित्र इच्छा को यथारूप लागू करने के पक्ष में था, वहीं सरकारी दृष्टिकोण की संकीर्णता के चलते 0–6 वर्ष के बच्चों को वैधानिक रूप से शिक्षा के अधिकार से वंचित कर दिया गया। वैज्ञानिक–तकनीकी प्रगति के वर्तमान स्तर को देखते हुए आज कक्षा 8 तक की शिक्षा का महत्व काम चलाऊ साक्षरता से ज्यादा नहीं रह गया है। शिक्षा के मौलिक अधिकार को कानून बनाने के बावजूद पिछले 8 वर्षों से उसे लागू करने का निर्णय लम्बित रखना इस बात का संकेत है कि कहीं न कहीं यह मुददा वर्चस्वशाली बनाम वंचित वर्गों के साथ–साथ वयस्क बनाम बच्चों का मुददा भी है, जिसमें नागरिक होने के बावजूद बच्चों की पहचान एक सशक्त राजनीतिक समूह के रूप में न होने के कारण, बाल अधिकारों की सुनिश्चित प्राप्ति वयस्कों के रहमो–करम पर निर्भर है।

निष्कर्ष – परंपरागत भारतीय समाज में जनता की शिक्षा कभी भी शासक वर्ग या राज्य का दायित्व नहीं रही, इसलिए इसका उद्‌विकास विशुद्ध सामाजिक जरुरतों को पूरा करने के लिए समाज के भीतर से हुआ। 1813 के चार्टर के माध्यम से शिक्षा के सरकारीकरण के प्रयास ने भारतीय शिक्षा के सदियों से चले आ रहे सार्वभौमिक चरित्र को वर्गीय चरित्र में परिवर्तित कर दिया। जबकि तत्कालीन यूरोप और अमेरिका में यह विचार करीब 2 दशक बाद लाया जा सका। भारत में पश्चिमी किस्म की शिक्षा की माँग कोई स्वाभाविक माँग न होकर इवैंग्लिसिस्टों के प्रभाव में विकसित कृत्रिम माँग थी, जिसे प्रदान करने का दायित्व भी सरकार ने कृत्रिम रूप से अपने ऊपर ले लिया। शिक्षा की इसी कृत्रिम माँग के मूल में शिक्षा के अधिकार की स्वाभाविक माँग के बीज छिपे थे। असम्बद्ध लोगों ने, जिन्हें शैक्षिक कार्यों का कोई पूर्व अनुभव नहीं था, उन लोगों के लिए जिन्होंने इसकी कोई माँग नहीं की थी, उन्हीं की ओर से, बिना किसी प्रतिनिधित्व के, इस प्रावधान को निर्मित किया तथा इसके क्रियान्वयन का दायित्व उस ऐजेंसी को सौंप दिया, जो कल्याणकारी कार्यों के विरुद्ध सदा अराजक तथा सभ्य समाज में घृणित समझे जाने वाले और कानून के शासन के विपरीत कार्यों में करीब 200 वर्षों का अनुभव प्राप्त कर चुकी थी।अपने समय के सर्वाधिक प्रगतिशील ब्रिटिश बुद्धिजीवी भारत की पिछड़ी हुई सार्वभौमिक शिक्षा के मुकाबले संर्कीण तथा वर्गीय चरित्र की प्रगतिशील शिक्षा का विचार लाये तथा संसाधनों की सीमितता का हवाला देकर अपने संप्रभु दायित्वों की पवित्र पूर्ति की।1833 के चार्टर ने भारत के लिए प्रतिनिध्यात्मक सरकार के विचार को खारिज कर दिया था तथा बिना किसी माँग के

भारतीयों को कृत्रिम रूप से समानता के अधिकार को उसके प्राक् रूप में प्रदान किया। परन्तु जब भारतीयों के शैक्षिक भविष्य को तय किया जा रहा था, तब भारतीय दृष्टिकोण को न तो सामने रखा गया और न ही इसकी जरुरत महसूस की गई। क्योंकि न माँग थी, न राजनीतिक दल, न किसी किस्म का लोकतन्त्र तथा इसलिए न ही भारतीयों का कोई प्रतिनिधित्व। बाल अधिकारों खासकर प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में गोपाल कृष्ण गोखले द्वारा 1910 में मुफ्त तथा अनिवार्य शिक्षा की मांग के बाद, आचार्य राममूर्ति समिति की शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाने की अनुशंसा, मील का दूसरा बड़ा पत्थर थी।जब न्यायालय नीति निर्देशक सिद्धान्तों के परे शिक्षा को मौलिक अधिकार घोषित कर रहे थे, विभिन्न राज्य क्रियान्वयन का कोई प्रभावी तरीका विकसित किए बिना ही अप्रचलित हो चले अनिवार्य शिक्षा अधिनियम पारित कर रहे थे और शोध बता रहे थे कि सर्वेक्षित 95 प्रतिशत शैक्षिक प्रशासक इनके अस्तित्व से भी अवगत नहीं थे।सत्तारूढ़ वर्चस्वशाली वर्गों ने अपने घोषित राजनीतिक एजेंडे के बरक्स जब भी नीति निर्देशक तत्वों को बाधक पाकर उदासीनता का रुख अपनाना चाहा, उन्होंने निर्देशक तत्वों के गैर न्याय योग्य होने, आर्थिक और संसाधनीय सीमाओं तथा अनुच्छेद–37 के तहत इन्हें लागू न करवा पाने की न्यायिक सीमाओं का हवाला दिया।

न्यायिक निर्णयों से उत्पन्न धर्मसंकट के समय सत्तारूढ़ वर्चस्वशाली समूहों के वैधानिक प्रयत्न न्यायिक निर्णयों से अधिक तथा बेहतर प्रावधान करने की बजाय न्यायिक निर्णयों में प्रभावी कतर–ब्यौंत के अधिक रहे, ताकि वोट बैंक भी सुरक्षित रहे और न्यायिक अवहेलना भी न हो। संविधान लागू होने के बाद नागरिकों को मिलने वाला शिक्षा का एकमात्र मौलिक अधिकार संसद की बजाय न्यायिक प्रयत्नों का परिणाम था। भारत की सर्वाधिक अस्थिर तथा अस्थायी सरकारों के प्रयत्नों से शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाया जा सका। जबकि संविधान संशोधन का श्रेय उस वैकल्पिक विचारधारा को जाता है, जिसने भारत को पहली सफल, स्थिर तथा गठबंधन सरकार दी। बच्चों से सम्बन्धित मुद्दों की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि वे न तो वयस्क हैं और न ही अधिकारों का दावा प्रस्तुत करने में सक्षम नागरिक। ऐसे में संघर्ष का मूल मुद्दा राज्य बनाम परिवार, समाज या बच्चे न होकर वयस्क बनाम बच्चे हैं।

संदर्भ

1. Law Commission of India (1998): One Hundred Sixty Fifth Report on Free and Compulsory Education for Children, Delhi, India, Annexure-A.
2. Law Commission of India (1998): One Hundred Sixty Fifth Report on Free and Compulsory Education for Children, Delhi, India, Page 84.
3. As reproduced in NUEPA (2008): Workshop on Management of Child Right To and In Education, 14-18 January, 2008, Reading Material, NUEPA, Delhi..
4. पत्र सं0 एफ0एन0 1–1/2008 ईई0 4, फरवरी 2008 (गोपनीय), मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा अनुपूरक विधेयक 2008 के प्रारुप के साथ संलग्न पत्र, जोकि मंत्रीमंडलीय सचिवालय, भारत सरकार को फरवरी 2008 में प्रेषित किया गया। उद्धरण के लिए देखें सद्गोपाल, अनिल (2009) : संसद में शिक्षा का अधिकार छीनने वाला बिल, किशोर भारती, भोपाल, भारत, आवरण पृष्ठ।

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

NAAGS KANPUR

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

फर्रूखाबाद के नवाबों के रहन–सहन और रीति–रिवाजों का अध्ययन

प्रोफेसर आदेश गुप्ता
प्रोफेसर इतिहास विभाग
दयानंद एंगलो वेदिक कॉलेज कानपुर

फर्रूखाबाद के नवाबों की सामाजिक गतिविधियों के अन्तर्गत हम उस समय के रीजि–रिवाजों, वैवाहिक सम्बन्ध, नवाबों और नागरिकों का रहन–सहन नवाबों की रूचियाँ, वस्त्र और आभूषण उस समय के धार्मिक आस्था, रूढ़ियाँ और इन सामाजिक गतिविधियों से समाज पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करते हैं। नवाब और समाज के अन्तर्गत होने वाली दैनिक क्रियायें, नित्य प्रतिदिन पाँच बार नमाज पढ़ना, कुरान की आयतें लिखना, विद्वानों का आदर प्रदान करना व उनको संरक्षण प्रदान करना इत्यादि नवाबों की धार्मिक आस्थायें थीं अपने राज्य में प्रतियोगिताओं का आयोजन, नृत्य कला, संगीत इत्यादि नवाबों के रहन–सहन, नवाबों की विवाह प्रणाली और नवाबों के वस्त्र तथा आभूषण इत्यादि के ब्यौरों से हम फर्रूखाबाद के नवाबों की सामाजिक गतिविधियों का अध्ययन करते हैं। फर्रूखाबाद के नवाबों में भी एक से अधिक विवाह करना, कुप्रथाओं का चलन, वाह्य आडम्बर, धर्म के प्रति आस्थायें इत्यादि कार्यकलाप रीतिरिवाज से सम्बन्धित हैं। फर्रूखाबाद के नवाब जातिगत और कालगत पूर्वजों का मिश्रण दिखाई देता है। नवाब की शिक्षा दीक्षा इसी प्रकार के उत्पाती और उपद्रवी लोगों के बीच में घोड़े की पीठ पर हुई। जीवन का अनुभव ही उसकी शिक्षा थी और आगामी समय में वे ही उसके जीवन का आधार बने।

युद्ध बन्दियों को दास बनाने की प्रथा अत्यन्त प्राचीनकाल से चली आ रही है और मुसलमान भी इसके अपवाद नहीं थे। चेला या शार्गिद वे हिन्दू थे जो बलात् मुसलमान बना लिये गये थे। युद्ध के विजित लोगों के छोटे बच्चों को मुस्लिम धर्म में दीक्षित कर लिया जाता था अथवा किसी गाँव की उगाही वसूल नहीं होती थी तो बाकीदारों के 7–6 वर्ष के लड़के–लड़कियाँ छीन ली जाती थीं। तत्पश्चात् इनको नवाब के समक्ष उपस्थिति किया जाता था और इसको इस्लाम धर्म में दीक्षित किया जाता था। मौलवी कालेमियाँ इस काम के लिये नियुक्त थे। इनके अनेक कार्यों में एक महत्वपूर्ण कार्य मालगुजी वसूल करना था। नवाब के विशेष आगन्तुओं में यह लोग रहते थे। यद्यपि इस नवाबजादे इस बराबरी को नापसन्द करते थे। अपने जीवनकाल में नवाब ने लगभग 4000 चेले बनाये और इनमें से 500 की विशेष पलटन तैयार की नवाब अपने सभी साथियों के साथ मामूली

चटाइयों पर बैठा करता था। इतना अन्तर अवश्य होता था कि कभी–कभी नवाब चटाइयों पर गद्दा बिछवाया करता था नवाब अफगान के समान अतिथि सत्कार प्रिय था। अफगानों के अतिथि सत्कार परम्परा के अनुसार नवाब अपने अतिथियों का बड़े आदर व स्नेह से सत्कार करता था। नवाब विलासी भी होते थे।

मुस्लिम सैनिकों के समान क्रूरता और बदला लेने की भावना थी। नवाब अपने आश्रितों को अधिक से अधिक संरक्षण प्रदान करता था और उनकी सुख सुविधा का ध्यान रखता था। धर्म के प्रति एक सामान्य मुसलमान की तरह निष्ठा रखता था। इस देश के हिन्दू मुसलमानों के साथ मिलकर रहने में ही मुगल साम्राज्य का कल्याण है। नवाबों द्वारा अनेक रीति–रिवाजों के अपनाने से समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ता है।

उस समय फर्रूखाबाद के नवाबों की संस्कृति में एक से अधिक विवाह करने का प्रचलन था। उदाहरण तौर पर मोहम्मद खाँ बंगश ने कासिम खाँ बंगश की पुत्री रजिया खातून से विवाह किया था। इससे नवाब को दो पुत्र हुए। नवाब ने और भी अनेक स्त्रियों से विवाह किया था जिनसे उनके 22 पुत्र और 18 पुत्रियाँ हुई।

नवाब ने पठान स्त्रियों के अतिरिक्त कुछ अन्य जातियों की स्त्रियों से भी विवाह किया था किन्तु उनकी प्रधान बेगम रजिया खातून ही थी। नवाब की मृत्यु हो जाने पर उन्होंने अपनी समस्त सौतों को हरम से निकाल दिया तथा दासी वृत्ति पर जीवन निर्वाह करने पर विवश किया। उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि नवाबों में कई विवाहों का चलन प्रचलित था। नवाब रखैलों के अतिरिक्त कई विधिवत विवाहिता पत्नियाँ थीं। सबसे पहली पत्नी को प्रधान बेगम के नाम से जाना जाता था। नवाबों की पत्नियाँ किले में रहती थीं। जब कभी शाह बेगम अपनी सास से मिलने के लिए फर्रूखाबाद आती थीं तो सारा बाजार बन्द रहता था। दुकानदार इसे हड़ताल के नाम से जानते थे। शाह बेगम की सवारी बैलों से जुड़े हुए रथों पर आया करती थी और यह रथ ऊपर से नीचे तक सोने के कपड़े की छोल से ढके रहते थे। बेगम रथ के बीच में बैठती थी और उसके चारो तरफ गुलाम लड़कियाँ रहती थीं। नवाबों के कई विवाह सम्बन्ध स्थापित करने का और अनेक विवाहों से समाज पर भी इसका प्रभाव पड़ा। नवाबों के अनेक विवाहों के प्रचलन के कारण समाज के अन्य लोगों ने भी कई विवाहों की नीति को अपनाया।

वर्तमान कायमगंज से लगभग दो मील दूर मऊ रशीदाबाद में बंगश पठान कब आकर बस गये थे इसको निश्चित करना कठिन है किन्तु ये बंगश इस क्षेत्र के मूल निवासी नहीं थे वह निश्चित है कि बंगश या 'बंगिशा' फारसी भाषा का शब्द है और पठानों की एक जाति विशेष बहुत कुछ से जोड़ा जा सकता है। फो हाट क्षेत्र में इन लोगों की बस्तियाँ आज भी हैं। मध्यकालीन भारत में अफगान विजेताओं के स्थिर हो जाने पर बंगश की अनेक बस्तियाँ उत्तर भार में गाँव बसाकर रहने लगी थीं।

इस समय पठानों के बच्चों को शिक्षा दीक्षा उचित नहीं समझी जाती थी। पठान कहा करते थे कि अगर लड़का पढ़ लिख जायेगा तो लड़ाई के मैदान में काम का नहीं रहेगा। वह कहने लगेगा कि अगरचे दौड़ में चलोगे मगरचे गिर पड़ोगे। इसलिए नवाबों का बाल्यकाल घुड़सवारी और तलवारबाजी को सीखने में ही समाप्त होता था। ये नवाब कठोर सुन्नी मुसलमान थे और नित्य पाँच बार नवाब पढ़ते थे और सभी प्रकार के खेलों का भी शौक रखते थे। इनका रहन–सहन पूरी तरह से फारसी पद्धति का था इनके किले अफगान शैली के बने होते थे बाग–बगीचे लगाने का शौक कायम खाँ को अधिक था।

नवाबों के यहाँ जब कोई उत्सव होता था तब किले भली–भाँति सजाये जाते थे इनके किलों में बारादरी और बुलन्द महल में सोने के काम की छोर दारियाँ सोने व चाँदी के खम्बों पर लगायी जाती थी। यह सोने व चाँदी के खम्बे छोलदारियों को लगाने के लिये विशेष अवसरों पर निकाले जाते थे कमानीदार दरवाजे पर सोने क काम के कपड़े का एक पर्दा लगाया जाता था किसी भी व्यक्ति की चाहे वह कितना भी उच्च पदस्थ क्यों न हो सवारी घोड़ा, हाथी या पालकी किले के अन्दर प्रवेश नहीं पा सकती थी। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सवारी किले के दरवाजे पर ही छोड़ देनी पड़ती थी और वहाँ से वह पैदल ही किले में प्रवेश करता था।

जब कभी कोई सरदार दिल्ली से आता था तो नवाब उसको भी चटाई पर ही बैठाता था और वहीं भोजन देता था। ऐसे किसी मेहमान के आने पर नवाब अपने किसी चेले को उसके आदर सत्कार के लिये नियुक्त करता था। कहा जाता है कि एक बार नवाब उम्दादुमुल्क अमीर खाँ पूर्व से गुजरते हुए फर्रूखाबाद आया। उसके साथी इतने स्त्रैण थे कि वे आँखों में कानल व दाँतों पर मिस्सी लगाते थे और हाथों पर मेंहदी रचाये हुए थे। इतना ही नहीं उनके कानों में झुमके और कलाइयों में सोने की चूड़ियाँ और उँगलियों में अंगूठियाँ भी थीं। इन लोगों ने अपना शिविर लखूला बाग में लगाया।

मुहम्मद खाँ बंगश अफगानों के समान अतिथि सत्कार प्रिय था। अफगानों के अतिथि सत्कार परम्परा के अनुसार वह अने अतिथियों और अपने से बड़े लोगों को वह बड़े आदर और सम्मान की दृष्टि से सत्कार करता था और उसके आवभगत में किसी प्रकार की कोई कसर नहीं छोड़ता था। अफगान सैनिकों के अनुसार ही उसके जीवन में सादगी और सरलता थी। बंगश नवाब विलासी भी था और हम देख आये हैं कि उसके हरम में अनेक स्त्रियाँ थी जिनमें काछी, चमार, कोरी, राजपूत, बनिया, ब्राह्मण, सैयद, मुगल, पठान आदि सभी जातियों की स्त्रियाँ थीं। इनमें से अनेक स्त्रियों में अपने जीवनकाल में केवल एक बार ही अपने स्वामी के दर्शन किये थे किन्तु हरम में प्रवेश करने के बाद उनको उनका मासिक भत्ता जो एक बार तय कर दिया जाता था वह सम्पूर्ण जीवन उनको मिलता रहता था। इन 1700 स्त्रियों में नौ सौ तो नवाब के जीवनकाल में ही मर गई थीं और इन सबको बुलन्द बाग में समाधि दी गयी थी। बुलन्द बाग में किसी पुरूष की समाधि नहीं थी। कायम खाँ के मरने के बाद मुहम्मद खाँ की विधवा बीबी साहिबा ने बड़े महल के दरवाजे खुलवा दिये थे और मुहम्मद खाँ की सभी विवाहित या अविवाहित स्त्रियों को संदेश भिजवा दिया था कि वह तीन दिन के अन्दर जहाँ चाहें चली जायें। यदि इस अवधि के उपरान्त वे बड़े महल में रहेगी तो उनको जौ की रोटी और गजी के वस्त्र पहनने के लिये मिलेंगे। लगभग 400 स्त्रियाँ अपनी धन सम्पत्ति लेकर चली गयीं और शेष इतनी ही बीबी साहिबा के साधारण अनुग्रह को स्वीकार करने के लिए वहीं रह गईं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मुहम्मद खाँ बंगश में वे सभी गुण व अवगुण थे जो एक अफगान सैनिक में उस समय में होने चाहिए थे।

कायम खाँ अपने पिता का सुयोग्य पुत्र था अनेक बार कठिनाइयों में उसने अपने पिता की तत्परता सेवा की। कायम खाँ कठोर सुन्नी था और नित्य प्रतिदिन पाँच बार नमाज पढ़ता था। शुक्रवार के दिन उपवास रखता था और नित्य प्रति कुरान की एक आयत लिखता था। वह विद्वानों का आदर व संरक्षण प्रदान करता था। उसके साथ ही उसको सभी प्रकार के खेलों का शौक था और जब भी वह दिल्ली में था तो बादशाह के संरक्षित वन में उसे शिकार की आज्ञा प्रदान की गयी थी।

भाला फेंकने में वह दक्ष था कि अपने समय में वह सानी नहीं रखता था। उसके घोड़े का नाम 'परी' था और उसकी ख्याति दक्षिण में भी थी। परी पर बैठकर वह सारसों का शिकार किया करता था। कायम खाँ में अनेक सैनिकों के गुण और भी थे। वह अपने हाथों से तोपों को ढाल सकता था। इसके अतिरिक्त उसके विषय में एक रोचक तथ्य यह भी था कि उसे जूते स्वयं बनाने का शौक था और कायमगंज में विशेष रूप से वे जूते कायम खानी के नाम से प्रसिद्ध थे। कहा जाता है कि वह 84 मोहालों का शासक था किन्तु इनके नाम नहीं दिये गये हैं।

मराठा सैनिक कायम खाँ से भाला फेंकने की प्रतियोगिता करना चाहता था। नवाब ने अमेठी में उसको रहने के लिए एक घर दिया और छः महीने तक उसका अतिथि सत्कार किया। प्रतियोगिता के लिए एक दिन निश्चित किया गया। मुहम्मद खाँ बंगश ने नवाब को प्रतियोगिता में भाग लेने से रोका। सभी पठानों को सूर्योदय से पूर्व भीषमपुर में एकत्र होने की आज्ञा दी। यह स्थान नगर के उत्तर–पश्चिम तीन–चार मील दूर है। गंगा के खादर में एक खुला हुआ मैदान था जहाँ नवाब की सेनायें अभ्यास किया करती थीं। नवाब परी घोड़े पर सवार होकर और मराठे को अपने साथ लेकर मैदान में गया। दोनों ने गयी रात तक प्रतियोगिता में भाग लिया लेकिन वे दोनों एक दूसरे को स्पर्श न कर सके। मराठा ने अपनी बाँह में रूमाल बाँध रखा था। नवाब ने निश्चय किया कि वह अपने भाले की नोंक से इस रूमाल की गाँठ खोल देगा। नवाब ने भाले की नोंक से रूमाल की गाँठ खोलने का प्रयास किया किन्तु पसीन से भीगकर रूमाल की गाँठ बहुत सख्त हो गयी थीं कई घंटे प्रयत्न करने के बाद अन्त में नवाब ने गाँठ खोल ही दी और अपने भाले की नोंक पर रूमाल को ले गया।

अपने पिता के जीवनकाल में ही कायम खाँ अपने रहने के लिये किले का निर्माण कर लिया था। कायम खाँ की रखैलों के अतिरिक्त चार विधिवत् पत्नियाँ थीं। उसकी प्रधान पत्नी शाह बेगम काले खाँ बंगश की पुत्री और कासिम खाँ की भतीजी थी। जवाहिर बीबी पठानी थी। खास महल डोमिनी थी और चौथी पत्नी मताहर महल दिल्ली की रखने वाली थी। कायम खाँ निःसन्तान मरा।

मुसलमानों के अतिरिक्त किसी अन्य जाति वाले को उनकी स्त्रियों के आभूषणों को स्पर्श करने की आज्ञा नहीं थी। किसी पुरूष को उसके हरम की किसी स्त्री के कपड़े सीने की इजाजत नहीं दी जाती थी। यहाँ तक कि कोई हकीम या वैद्य बीमारी की अवस्था में उसकी नाड़ी नहीं देख सकता था। उसकी चारों पत्नियाँ अमेठी किले में रहती थीं और उनके पास उनके नाम से बड़ी– बड़ी जागीरें थीं। जब कभी शाह बेगम अमेठी से अपनी सास से मिलने के लिए फर्रूखाबाद आती थी तो सारा बाजार बन्द रहता था। ऊपर से नीचे तक सोने के कपड़े की छोल से ढके रहते थे। बेगम रथ के बीच में रहती थीं और उसके चारों तरफ गुलाम लड़कियाँ रहती थीं। सड़क पर कोई बातचीत नहीं होती थी।

अनेक कहानियों से हमें उसकी सरलता या मूर्खता का परिचय भी मिलता है। उदाहरण के तौर पर कहा जाता है कि नवाब को नये रूपये का बहुत शौक था। वह रूपयों को धूप में डलवा देता था कि वे काले न पड़ जायें। वह स्वयं एक छोटे से स्टूल पर बैठकर उनकी देखभाल करता था और जब कभी यह पानी, पान या तम्बाकू मंगवाता था तो चेले जूतों के तलों में मोम लगाकर चलते थे और इस प्रकार पाँच–छः घंटों में वे सैकड़ों रूपये ले जाते थे अन्त में जब रूपये गिनकर थैलों में रखे जाते थे तो कुछ थैले खाली रह जाते थे। तब नवाब चकित होकर कहता था कि मैं तो इन रूपयों को

खुद देखभाल की है और फिर भी यह रूपये कम पड़ गये। लगता है यह बहुत देर धूप में पड़े रहे व सूख गये। अब इन थैलों को खजाने में डाल दिया जाता था।

दिन में दो बार बाहर जाना नवाब की आदत थी। कभी तो वह पालकी पर और कभी हाथी पर सवार होकर बाहर जाया करता था। कभी–कभी शहर के बाहर जाकर हाथियों की लड़ाईयाँ देखने का भी उसे शौक था। जब वह गलियों से गुजरता था तो उसके सेवक रूपयों की थैलियाँ साथ लेकर चलते थे। उसके नौकरों को हुक्म था कि गरीबों, कमजोरों और अंधों को नजदीक आने दिया जाये तथा उनको यह धन की सहायता देता था किले से लेकर मऊ दरवाजे तक और किले के नीचे कदम शरीफ के तालाब तक कुछ सौ परिवार रहते थे जिनको खोपीवाला कहा जाता था। इनमें सभी जाति के लोग थे जो दिल्ली से दुष्काल में वे नवाब के साथ चले आये थे। दिल्ली में उसने अपने कायम के दौरान पाँच हजार रूपया प्रतिदिन उसके भोजन के लिए बाँटा था। नवाब इन परिवारों को धन व अन्न की निरन्तर सहायता देता था। वह कहता था कि वे अपना घर छोड़कर उसके पीछे चले आये हैं इसलिए उनको नहीं मरना चाहिए।

नवाब की सेवा में सलाह वरदार नचैये, गवैये चारण व भाट रहते थे। जब जुलूस चलता था तो नवाब की उपाधियों की घोषणा की जाती थी इसके कुछ आगे लाख में रंगी हुई तरह–तरह की लाठियाँ लेकर कुछ लोग चला करते थे। वह बाँस की लाठियाँ ऊपर से चिरीं होती थीं और कोई भी व्यक्ति चाहे वह अमीर हो या गरीब उनके रास्ते में आ जाता था तो पीटा जाता था। नवाब के रूष्ट हो जाने पर भी उसके कोपभाजन व्यक्ति को इन्हीं लाठियों से पीटा जाता था। इन फटे हुए बाँसों की आवाज चार–पाँच फलाँग पर सुनाई देती थी। हालांकि चोट बहुत कम लगती थी और पिटने वाला अपनी तकदीर के सितारे के बुलन्द मानने लगता था क्योंकि नवाब उसे बुलाता जरूर था और तब वह उससे पूछता था कि तुम्हारे चोट तो नहीं लगी। इस पर उसे जवाब दिया जाता था कि हुजूर नवाब साहब। मेरे जिस्म की हड्डी ऐसे दर्द कर रही है जैसे टूट गयी हो।

नवाब संगीत का शौकीन था और उसे विहागराग का बहुत शौक था। उसके जन्म दिन पर गाने वाली स्त्रियों और नाचने वाले उसके राज्य दूरस्थ भागों में आया करते थे।

सन्दर्भ

1. गौरी शंकर हरिश्चन्द्र ओशा राजपूताने का इतिहास भाग–2स्वयं प्रकाशित, अजमेर–1926
2. कवि वीरभाण राजरूस्पकः नागरी प्रचारिणी सभा काशी, 1941
3. उदय रामचन्द्र लाइफ एण्ड टाइम्स आफ बहादुर शाह फस्टइलाहाबाद विश्वविद्यालय, 1965
4. बचनेश अभिनन्दन ग्रन्थःसम्पादक ब्रह्मदत्त दीक्षित आदि, पांचाल साहित्य परिषद फर्रूखाबाद, 1955 :
5. परिपूर्ण नन्द वर्मा वाजिद अली शाहःअवध राज्य का पतन प्रकाशन शाखा सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, 1959

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

लोक प्रशासन में उत्तरदायित्व एवं भारतीय नौकरशाही संरचना

डॉ. अर्चना सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर राजनीति शास्त्र
महाराज बलवंत सिंह पी0जी0 कॉलेज,गंगापुर वाराणसी

सार

भ्रष्टाचार के उदय का यह सांस्कृतिक पक्ष भारत सहित विकासशील देशों में व्यापक रूप से विश्लेषित किया गया है। ऐसे एक विश्लेषण में यह पाया जाता है कि भ्रष्टाचार को परिभाषित करना व इसका वास्तविक अर्थ कई देशों में समझना दुष्कर हैं। भारत में उपहार को दिया जाना गई बार भ्रष्ट अभ्यास में सम्मिलित नहीं किया जाता है जो इसके अध्ययन को अत्यधिक जटिल बना देता है। ''ये प्रश्न कि एक राष्ट्र विशेष में क्या भ्रष्टाचार को निर्मित करता है अतएव असुलझा बना रहता है व परिभाषा अपूर्ण रहती है। यहाँ तक कि समाजों में जहाँ भ्रष्टाचार की सामाजिक व विधिक संकल्पना सापेक्ष रूप से स्थापित और एक बिन्दु पर समान है, इस शब्द की कई परिभाषाए कई कार्यों के क्षेत्र को हटा देती है जिसे कई लोक भ्रष्टता के रूप में देखते है, यहाँ तक कि बहुत अधिक बार प्रयुक्त परिभाषा, किसी निजी लाभ के लिए सार्वजनिक पद का दुरूपयोग को अति सरलीकरण संदर्भ के कारण गलत कहा जा सकता है।राजनीतिक कार्यपालिका का भ्रष्टाचार मुद्दों में जुड़ा होना, प्रशासनिक व्यवस्था के भ्रष्टाचार के लिए एक प्रकार से उत्प्रेरक था। देश की नौकरशाही व्यवस्था में एक विशिष्ट प्रकार की राजनैतिक संस्कृति, सांस्कृतिक दृष्टिकोण, सामाजिक नियम, उपभोक्तावाली जीवनशैली सभी ने आपस में जुड़कर भ्रष्टाचार की वर्तमान स्थिति को जन्म दिया। इसकी जड़ों में प्रशासन के नैतिक मूल्यों का अपरदन सम्मिलित है। भारतीय नौकरशाही संरचना की वास्तविक स्थिति कुछ बेहतर समझ पैदा कर सकती है। इसकी चयन प्रक्रिया बहुत अधिक सही सिद्ध हो चुकी है फिरभी मूल्य व्यवस्था में पतन आश्चर्यजनक है। देश में नौकरशाही बहुत अधिक मात्रा में नहीं है परन्तु इसकी शक्ति सीमा बहुत अधिक विस्तारित है।

कूट शब्द : भारतीय नौकरशाही, नागरिक सुधार, प्रशासन

परिचय

इस पृष्ठभूमि में यह बहुत अधिक आवश्यक है कि भारतीय नौकरशाही में सुधार शुरू किया जाए। सिद्धान्त रूप में, यह अब अच्छी तरह से स्वीकृत है कि भारतीय

नौकरशाह कई भ्रष्ट क्रियाओं में सम्मिलित है जिसमें भ्रष्टाचार जो कि धन के भ्रष्टाचार के संदर्भ में प्रमुख है।

यह अब स्वीकृत है कि ''व्यवसायिक सीढ़ी में ऊपर बढ़ते हुए भ्रष्ट नौकरशाह धन अच्छी तरह से बनाते है। यहाँ तक कि सेवा निवृत्ति के बाद भी प्रक्रिया जारी रहती है। इनमें से अधिकांश का चयन प्रतियोगिता आधार पर भारत में उपलब्ध, तथाकथित बौद्धिक लोगों से होता है, लिखित परीक्षा माध्यम से। वह एक जादूगर मनुष्य माने जाते है। नौकरशाही में राजनीतिक क्षेत्र की तरह भ्रष्टाचार अधिक है। अभी तक राजनीतिक भ्रष्टाचार पर ध्यान केन्द्रित रहा है।''

नौकरशाह भ्रष्ट धन अर्जित करने हेतु कई उपाय ग्रहण करता है। वह अपने मूल्य ढाँचे, जिम्मेदारी, जवाबदेही को छोड़ सकते है ''नौकरशाही अकार्य, भ्रष्टाचार व दक्षता के सन्दर्भ में आपस में सम्बन्धित है। गलत व भ्रष्ट तरीको से धन बनाने हेतु अवरोध का डर दिखाना और अधिकारिक कार्यों में देर करना सामान्य रूप से सम्मिलित है।'' प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार शुरू किए जाए। वास्तविकता यह है कि ''नागरिक सेवाओ और प्राशासनिक सुधार के बिना सुशासन की संकल्पना लागू नहीं की जा सकती। एक अच्छी तरह से कार्य करने वाली नौकरशाही, प्रभावी सेवा उपलब्धता, अच्छा नीति निर्माण और जन संसाधनो के उपयोग में जवाबदेही और जिम्मेदारी को प्रोत्साहित करती है जोकि सुशासन के लक्षण है। 'सुशासन' को न केवल प्रशासनिक एवं नागरिक सुधार हेतु बल्कि नागरिक सेवा सुधार और नीति–निर्माण प्रक्रिया को प्रभावी बनाने हेतु जवाबदेही व नागरिक सहभागिता की सक्रिय व्यवस्था के अन्तर्गत व्यापक ढाँचे के साथ सम्पर्क सूत्र के रूप में एक समेकित ढाँचे प्रारूप में प्रयोग किया जा रहा है। प्रशासनिक सुधार सरकार की संरचना को तार्किक बनाने की तरफ केन्द्रित है। शासन सुधार विधिक और नीति ढाँचे को बेहतर करने जिससे उचित निर्णय परक वातावरण, सभ्य समाज के तत्वों हेतु साझा व्यवस्था जो नीति, कार्यक्रम निर्माण और इसके लागू होने से सक्रिय रूप से जुड़ सके और एक प्रभावी और पारदर्शी व्यवस्था और सरकारी क्रियाओं में नियंत्रण और जवाबदेही से सम्बन्धित है। नागरिक सेवा सुधार को अलग नहीं देखा जा सकता इन्हें प्रभावी परिणामों हेतु प्रशासनिक सुधार के साथ ही किया जाना है।''

नौकरशाही की संख्या में भी सुधार आवश्यक है जो कि उच्च स्तर पर छोटे आकार की है लेकिन निम्न स्तर पर क्षेत्र बढ़ा रही है। नौकरशाही विस्तार में कई कारक सम्मलित हैं जिसमें राजनीतिक कार्यपालिका को कम आकलित नहीं किया जा सकता है। यह सत्य है कि नौकरशाही आकार में सुधार भ्रष्टाचार के कुछ मौकों को कम कर सकते है ''हिस्से में यह वृद्धि राजनीतिक विचारों के कारण उत्प्रेरित हुई है, इसने दल के अन्दर समूहों को अधिक समायोजित किया है। इसने उच्च नागरिक अधिकारियों के पदों को स्थापित किया हैं, नौकरीयों को अन्य स्तरों पर जिन्होंने कई राजनीतिक व नौकरशाही नेतृत्व की अभिभावकी क्षमताओं को विस्तारित किया है।

इसके साथ यद्यपि यह विस्तार, निष्क्रीयता को हटाने के लिए निम्न प्राथमिकता उत्तरदायित्व को कम करने या अनुपयोगिता को समाप्त करने के साथ घटित होते प्रयासों द्वारा समाप्त नहीं की गई है। बजट पक्ष के अलावा इस तरह के विस्तार ने लागू करने की क्षमता को और अधिक विस्तारित किया है और समन्वय समस्या को और अधिक जटिल किया है। लोक सेवक अधिक से अधिक समय अपने कार्याधिकार व क्षेत्राधिकार को बनाए रखने में और कार्य क्षेत्र के अधिकार और सीमाओं को स्पष्ट करने में तथा अपने निर्णयों को अधिक जटिल, आन्तरिक प्रक्रियाओं द्वारा और बढ़ती एजेंसी

संख्या द्वारा अपनी क्रियाओं के समन्वय को बनाए रखने में अधिक समय व्यतीत कर रहे है। इसके अतिरिक्त, इसने प्रत्येक स्तर पर निहित समूह स्थापित किए हैं जिन्होने सुधार व तार्किककरण प्रयासो में अवरोध डाला है। एक बार एक मंत्रालय, विभाग, भाग व इकाई की स्थापना हो गई, तो इसे हटाया जाना दुष्कर है, यद्यपि इसके कार्य परिवर्तित हो चुके है या अब उनका अस्तित्व नहीं है। इसी तरह से एक सरकारी कर्मी को जिसके पास कार्यकाल समय गारण्टी है उसे बर्खास्त करना दुष्कर है।''

उच्च स्तर पर सुधार यदि प्रारंभ किए जाते है चाहे वह इसका आकार कम करने से सम्बन्धित हो, कुछ परिणाम देगा। नौकरशाही में भ्रष्टाचार और इसमें सुधार यह आवश्यक करते हैं कि भारतीय नौकरशाही के वास्तविक आकार को समझा जाना चाहिए। वास्तव में भारतीय नौकरशाही का आकार बहुत बड़ा नहीं है। सर्वोच्च स्तर पर संख्या पर्याप्त कम है परन्तु इनके पास शक्ति क्षमता और रणनीतिक पदों पर नियुक्ति उन्हें अधिक शक्तिवान बनाती है।

इस संदर्भ में एक अन्य बिन्दु के उल्लेख की आवश्यकता है जहाँ तक सरकारी प्रयास व्यापक रूप में प्रशासन की सेवा उपलब्धता व्यवस्था तक सीमित किए गए हैं। भ्रष्टाचार को सीमित करने के उपाय एवं तरीके सरकारी क्रियाओं का हल्का पक्ष है। ''1997 संवेदनशील सरकार के आधार के लिए कई नागरिक केन्द्रित प्रयास, जन असंतोष विभाग द्वारा किए गए है। इनमें नागरिक संहिता, सूचना सहज काउंटर और जन सेवा उपलब्धता विशेष रूप से गरीब उन्मुख सेवा उपलब्धता प्रगतिगामी सुधार हेतु इनमें सुधार उपाय किए गए है। इस हेतु सर्वोत्तम ढाँचा, सेवा उपलब्धता में सतत् सुधार द्वारा उच्चता ढाँचे को सर्वोत्तम रूप में विकसित किया गया है और केन्द्र राज्य, संघशासित प्रदेशों दोनों में इसे लागू किया जा रहा है।''

यह सत्य है कि सेवा उपलब्धता नकारात्मक रूप से प्रभावित हो सकती है, यदि प्रशासन में भ्रष्टाचार फैला हुआ है। इसलिए प्रशासन में भ्रष्टाचार नियंत्रण करना गंभीर रूप से आवश्यक है, यह प्रथम प्राथमिकता होनी चाहिए। इस सन्दर्भ में द्वितीय प्रशासनिक सुधार रिपोर्ट कुछ प्रमुख सुधारों की व्यवस्था हेतु सुझाव प्रदान करती है। यह सुधार उच्च नौकरशाही व निम्न नौकरशाही दोनों में आवश्यक है।

प्राशासनिक ढाँचे में मुख्य सुधार द्वितीय प्राशासनिक सुधार आयोग द्वारा बताए किए गए है। इनमें से कई रिपोर्टों में, सरकार ने निर्णय लिए है। इस सन्दर्भ में नैतिकता पर चौथी रिपोर्ट अत्यन्त महत्वपूर्ण है। महत्वपूर्ण संस्कृतियों में भ्रष्टाचार का लगभग हर पक्ष और प्रशासन में नैतिक व्यवस्था के अपरदन को सम्मलित किया था।

11 (2.7.12) लोक सेवकों हेतु आचार संहिता

(क) 'लोक सेवक मूल्य' जिसे हर लोक सेवक को इच्छा करनी चाहिए, परिभाषित करना चाहिए, सरकार और संगठनों के सभी स्तर पर लागू होना चाहिए। इन मूल्यों के उल्लंघन को दुर्व्यवहार समझना चाहिए, दण्ड दिया जाना चाहिए।

  (क) स्वीकृत।

(ख) हित संघर्ष को पूर्ण रूप से नैतिक संहिता व अधिकारियों की आचार संहिता में सम्मिलित किया जाना चाहिए। सेवारत अधिकारी को सार्वजनिक उपक्रमों के बोर्ड में प्रभावी नहीं होने देना चाहिए। यद्यपि, यह गैर लाभ सार्वजनिक संस्थाओं और सलाहकार संस्थाओं पर लागू नहीं है।

  (ख) आंशिक रूप से स्वीकृत क्योंकि सेवारत अधिकारी सरकार और सार्वजनिक उपक्रमों के मध्य महत्वपूर्ण कड़ी है। ये उचित नहीं कि सार्वजनिक उपक्रमों के बोर्ड में सेवारत अधिकारी को नियुक्त न करने

की संस्कृति को स्वीकारा जाए। यद्यपि हित संघर्ष, आचरण नियमों को और मजबूत कर प्रभावी तरह से निपटा जा सकता है। कुछ समय पहले जारी सार्वजनिक उपक्रमो में कारपोरेट शासन सम्बन्धी दिशा–निर्देशों ने भी इस पर ध्यान दिया।''[37]

इस संस्तुति को तकनीकी कारणों से आंशिक रूप से स्वीकारा गया लेकिन मूल्य समस्या को सही तरह से निपटना आवश्यक है। यह आवश्यक है कि सरकार की इस संकल्पना को पूर्ण तरह परिभाषित और लागू करना चाहिए।

''15(3.2.2.7) साँठगाँठ से की गई घूसखोरी–

(क) भ्रष्टाचार निरोधक कानून की धारा–7 को संशोधित करने की आवश्यकता है जिसमें साँठगाँठ से घूस, लेने को विशेष अपराध बनाया जा सके। एक अपराध को साँठगाँठ घूस में वर्गीकृत कर सकते थे यदि परिणाम, अंर्तक्रिया के इरादे से परिणाम से राज्य, जनता और लोक हित का नुकसान घटित होता है।(29)

(ख) इन सभी उदाहरणों में यदि यह स्थापित हो जाता है कि किसी लोक सेवक के कार्य के कारण राज्य या जनता के हित को नुकसान हुआ है तो न्यायालय यह मानेगी कि लोक सेवक और इस निर्णय से लाभान्वित ने साँठगाँठ घूस का अपराध किया है।(30)

(ग) साँठगाँठ घूस के ऐसे सभी मुद्दों में दण्ड, भ्रष्टाचार मुद्दों की तुलना में दुगना होना चाहिए। इस संदर्भ में कानून में उचित संशोधन किए जा सकते है।

'क' से 'ग' को स्वीकारा नहीं गया है। यह सम्भव नहीं है कि निर्णय क्रियाओं को करते समय उपायों को जिसके उपरान्त राज्य, जनता व जनहित का नुकसान हुआ है उससे इसे सम्बन्धित किया जाए। विशेष रूप से व्यापारिक निर्णय के नुकसान की सम्भावना विगत समय के निर्णय, क्रियाओं से हमेशा सम्बन्धित करना व्यापारिक वातावरण में परिवर्तन के कारण सम्भव नहीं है।''

इस विशेष पक्ष को सरकार द्वारा न स्वीकार किया जाना यह बताता है कि सरकार प्रशासन में भ्रष्टाचार के दूसरे दृष्टिकोण से निपटना चाहती है। यह सत्य है कि महत्वपूर्ण मौद्रिक हानि, मुद्रा के संदर्भ क्षेत्र में घटित हो चुकी है जहाँ पर घूस अब एक सामान्य प्रशासनिक क्रिया है।

''18(3.2.5.6) भ्रष्टाचार निरोधक कानून के अन्तर्गत मुकदमें को त्वरित करनाः

(क) एक विधिक उपबन्ध को जोड़ने की आवश्यकता जो मुकदमें के विभिन्न चरणों में समय सीमा निश्चित करें यह सीआरपीसी में संशोधन कर किया जा सकता है

(ख) यह सुनिश्चित करने के लिए उन कदमो को लिया जाना कि जो न्यायधीश भ्रष्टाचार निराधक कानून के प्रावधानों के अन्तर्गत विशेष न्यायाधीश घोषित किए गए है, वह इन कानून के अन्तर्गत आए मुकदमों के निस्तारण पर प्राथमिक ध्यान दे। यदि केवल जब इस कानून के अन्तर्गत अपर्याप्त कार्य है तब विशेष न्यायधीशो को अन्य उत्तरदायित्व सौपें जाने चाहिए

(ग) यह सुनिश्चित किया जाना है कि न्यायालय की कार्यवाही जो भ्रष्टाचार निरोधक कानून के अन्तर्गत की जा रही है वह दिन–प्रतिदिन आधार पर आयोजित हो, जिसमें किसी विचलन की अनुमति नहीं हैं

(घ) उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय अनावश्यक स्थगन व बचाए जा सकने वाली देरी को हटाने हेतु दिशा निर्देश दे सकती है।''

यद्यपि सरकार ने आयोग की दो प्रमुख संस्तुतियों को स्वीकार किया जो कि

बेनामी सम्पत्ति और अवैध और भ्रष्ट तरह से अर्जित सम्पत्ति से सम्बन्धित थी।

''(3.4.10) भ्रष्ट उपायो का प्रयोग करते हुए अवैध तरह से प्राप्त सम्पत्ति का जब्तीकरण

(क) भ्रष्ट लोक सेवक (सम्पत्ति ह्रास) विधेयक जैसा विधि आयोग ने सलाह दी उसे बिना आगे किसी देरी के पारित किया जाना

21.(3.5.4) 'बेनामी' लेन–देन का निषेध।

बेनामी लेन–देन (निषेध) कानून 1988 को तुरन्त लागू करने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए।''[40]

यद्यपि इसके स्वीकार करने में गम्भीर कमी यह थी कि इसमें गम्भीर आर्थिक अपराधों के सन्दर्भ में कोई स्वीकृति नहीं थी। सरकार ने इसे स्वीकार नहीं किया। इसमें संदेह नहीं है कि वर्तमान में प्रशासन में यहाँ तक कि निचले स्तर पर गम्भीर आर्थिक अपराध घटित हो रहे है।

''23.(3.7.19) गम्भीर आर्थिक अपराध

(क) ''गम्भीर आर्थिक अपराधों'' पर एक नया कानून पारित होना चाहिए(47)

(ख) एक गम्भीर आर्थिक अपराध इस तरह से परिभाषित कर सकते :

(प) जिनमें 10 करोड़ से ज्यादा का धन सम्मिलित है; अथवा

(पप) इससे वृहद स्तर पर जन चिंता उत्पन्न होने की सम्भावना है; अथवा

(पपप) इसकी जाँच या दंड हेतु वित्तीय बाजार या बैंक का व्यवहार या अन्य वित्तीय संस्थानों के उच्च विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता रखते है; या

(पअ) महत्वपूर्ण अर्न्तराष्ट्रीय विषय सम्मिलित है।''[41]

यदि उपर्युक्त संस्तुति को स्वीकार कर लिया गया होता तो इसकी सम्भावना है कि प्रशासनिक व्यवस्था बेहतर तरह से कार्य कर सकती थी। यह तथ्य इस कारण हैं कि अधिकतर उदाहरणों में गंभीर आर्थिक अपराध घटित हो रहे हैं विशेष रूप से उच्च प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा जो भ्रष्ट हो चुके है कि वह संविधान की मूल्य व्यवस्था से अपने को पूरी तरह से अलग कर चुके है और प्राथमिक प्रशासनिक मूल्यों को ध्यान नहीं देते है। ''द्वितीय प्रशासनिक आयोग (एआरसी) जिसकी अध्यक्षता कांग्रेस नेता व पूर्व कर्नाटक के मुख्यमंत्री वीरप्पामोइली ने की, उसके सुझाव व्यापक और पूर्ण परिवर्तन प्रकृति के हैं। *शासन में नैतिकता* शीर्षक से यह रिपोर्ट कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका के कार्यों को आलोचनात्मक दृष्टि से देखती है और उग्र तरीको से उन्हें पारदर्शी व जवाबदेह के रूप में बनाने हेतु सूचीबद्ध करती है। शासन को कोई भी क्षेत्र नहीं है जिसको एआरसी रिपोर्ट ने हुआ नहीं है।'' लेकिन समस्या राजनीतिक इच्छा क्षेत्र में हैं जो कि राजनीतिक कार्यपालिका में कम है ''कई संस्तुतियों में, सबसे प्रमुख है : लोक सेवको का संविधानिक संरक्षण और यदि वो अपने पद के दुरूपयोग में रंगे हाथो पकड़े जाते है या आय से अधिक सम्पत्ति का मुद्दा है इस हेतु उन्हें दण्डित करने के लिए पूर्व अनुमति लिया जाना को हटा देना, उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया था कि भ्रष्ट राजनीतिज्ञ व नौकरशाहों को सरकार से पहले आवश्यक अनुमति लिए बिना दंडित किया जा सकता था इसका अर्थ था कि भ्रष्टाचार निरोधक कानून की धारा 19(1) और अपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 197 उन्हें और अधिक उपलब्ध नहीं है। अब एआरसी ने सुझाव दिया है कि संविधान के अनुच्छेद 310 व 311 जोकि लोक सेवको की संरक्षण की गारण्टी देता है व अपराधिक रूप से दंडित करने के लिए सरकार की अनुमति को आवश्यक बनाता है, उन्हें संशोधित किया जाना चाहिए।''

दूसरी प्रशासनिक सुधार आयोग ने स्पष्टः संस्तुति दी थी कि ''संविधान के

अनुच्छेद 311 को बदल देना चाहिए। (ख) साथ ही संविधान का अनुच्छेद 310 भी बदल देना चाहिए। (ग) उचित विधायन द्वारा अनुच्छेद 309 के अन्तर्गत सेवा की सभी आवश्यक शर्ते और परिस्थितियों को उपलब्ध कराना, लोक सेवको के प्रामाणिक कार्यों को सुरक्षित करना।'' लेकिन सरकार ने द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की इस विशिष्ट संस्तुति को नहीं माना।

पर्यावरणीय व्यवस्था और भ्रष्टाचार के व्यक्तीकरण के बाद तीसरा पक्ष जो कि प्रशासनिक व्यवहार से गहनता से जुड़े है; राजनीतिक दबाव है। यह प्रशासक पर दबाव डालता है कि वह विशिष्ट ढाँचे में कार्य करें। यह मूल्य पतन व भ्रष्टाचार के जन्म के महत्वपूर्ण कारको में से एक है; जोकि नौकरशाही में दक्षता की कमी करता है, राजनीतिक दबाव महत्वपूर्ण कारकों में से एक है जो कि नौकरशाही की दक्षता को न्यून करता है यह देखा जाता है कि राजनीतिक–दबाव राजनीति– नौकरशाही सम्बन्ध में असंतुलन को बनाए रखने में एक महत्वपूर्ण योगदान कारक है।

नौकरशाही को एक राजनीतिक वातावरण में कार्य करना होता है। नौकरशाही के लिए यह कठिन कार्य है वह इस वातावरण के बिना कार्य कर सके यद्यपि वुडरो विल्सन ने शुरू में राजनीतिक–लोक प्रशासन द्वैधवाद की संकल्पना की थी, यद्यपि यह महसूस किया गया कि स्वतंत्र अस्तित्व सम्भव हो सकता है लेकिन राजनीतिक व्यवस्था व वातावरण से इसे अलग करना सम्भव नहीं हैं।

इस समझ के साथ इस पर जोर देना चाहिए कि प्रत्येक प्रशासनिक व्यवस्था में नौकरशाही को राजनीतिक नेतृत्व के दिशा–निर्देश में कार्य करना होता है। आधुनिक लोकतंत्रों का यह मूल आधार है कि चयनित प्रतिनिधि सामान्य जनता की सम्प्रभु इच्छा को व्यक्त करते है, इसलिए नौकरशाह को अपने राजनीतिक आका जो कि कार्यपालिकीय क्षमता के साथ मंत्री के रूप में कार्य कर रहे हैं, उन्हीं के निर्देशानुसार कार्य करना हैं। राजनीतिक दबाव यदि नौकरशाह को सही क्रियाओं और राजनीतिक कार्यपालिका की नीतियों को लागू करने के लिए आता है। यह लोकतांत्रिक व्यवस्था में स्वीकृत है। इसका अस्तित्व उन स्थानों पर है जहाँ पर प्रशासनिक प्रक्रियाओं के अनुरूप राजनीतिक कार्यपालिका की भूमिका है। कई बार यह भी सम्भव है कि ''राजनीतिक कार्यपालिका कार्य शैली, नीति लागू करने का प्रारूप या सम्बन्धित मुद्दों को पंसद नहीं करती है। व्यवहारिक रूप में, नौकरशाह उस समय राजनीतिक दबाव के सामने खुल जाता है जब वह नीतियों को प्रस्तुत करता है, विशेष रूप से अलोकप्रिय को।'' विकास प्रशासन उन्मुख देश, जिनमें भारत भी है, ऐसा होना सम्भव है।

दूसरी तरफ यदि राजनीतिक कार्यपालिका नौकरशाही को ऐसे कार्यों को करने के लिए प्रभावित करती है जो कि सही नही है या प्रशासनिक नैतिकता के विरूद्ध है, तो ऐसा दबाव उक्त दबाव रूप को ग्रहण करता है जैसा कि कई संसदीय लोकतंत्रों की राजनीतिक संस्कृति में पाया जाता है। यह तथ्य भारत के उदाहरण में बहुत देखा जाता है जहाँ स्थायी राजनीतिक कार्यपालिका ने अपना प्रभाव इस तरह से लागू किया है कि नौकरशाही या तो राजनीतिक कार्यपालिका के पीछे चलती है या कई मुद्दों पर उन्हें चुनौती देती है, जिसका परिणाम स्थानान्तरण या अमहत्वपूर्ण, पद न रहने योग्य या दूर स्थान पर उनकी नियुक्ति रूप में सामने आता है। ऐसे उदाहरणों में नौकरशाही को और अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है यदि इसे नैतिक अभ्यास के साथ जीवित रहना है। ''नौकरशाह विधायको से पर्याप्त कारणों के कारण डरते है। विधायक अधैर्यशील, गाली देने वाले, बार–बार जोर देने वाले और बदला लेने वाले हो सकते है। परिणामतः विधायिकी शक्ति नौकरशाहो को असमान्य रूप से ध्यान रखने वाला बना

देती है अथवा उन्हें राजनीतिक दबाव के सामने झुकना होता है और राजनीतिक कार्यपालिका से जुड़कर कार्य करना शुरू कर देते है।''

निष्कर्ष – कई उदाहरणों में नौकरशाह, कुछ निश्चित सामाजिक संरचनात्मक नियम जिससे वह जुड़े हुए है, के कारण राजनीतिक कार्यपालिका से सम्बन्धित हो जाते है। इसके अन्तर्गत जाति, धर्म, क्षेत्र या अन्य कारक तत्व सम्मिलित होते है। भारत में यह देशा गया है कि नौकरशाही इन कारको के द्वारा कुछ सीमा तक प्रशासित की जाती है। उदाहरणस्वरूप श्री एन0डी0 तिवारी सरकार के दौरान, 1980 के दशक में ब्राह्मणों की कई नियुक्तियाँ हुई। श्री मुलायम सिंह यादव सरकार में नौकरशाही के पदों को इन्हीं विचारों के साथ वितरित किया गया था। श्री तिवारी की सरकार के समय उच्च जाति मुख्यतः ब्राह्मणों ने जिला स्तर पर पद साझा किए थे जबकि श्री यादव की सरकार के दौरान कई सारी नियुक्तियाँ अन्य पिछड़ा वर्ग के झुकाव के साथ की गयी थी, मुख्यतः यादवो की। ऐसी स्थितियों में नौकरशाह राजनीतिक दबावों के समक्ष सहजता से झुक सकती है क्योंकि एक विशिष्ट पद पर उनकी नियुक्ति प्रशासनिक योग्यता के बजाए अन्य कारको पर आधारित है। राजनीतिक दबाव की संकल्पना गत समय की नहीं है। विश्व में इसका अस्तित्व प्रचीन प्रशासनिक व्यवस्था में था। भारतीय प्रशासन अपवाद नहीं था, क्योंकि प्राचीन समय से प्रशासन को राजा की इच्छाओं के अनुरूप कार्य करना पड़ता था। मध्य काल में प्रशासनिक व्यवस्था, जब मुगलो का आगमन भारत में हुआ तब भी राजतंत्रिक व्यवस्था द्वारा नियंत्रित था। प्रशासनिक तटस्थता की कोई संकल्पना नहीं थी। ब्रिटिश काल के दौरान प्रशासन राजमुकुट की सेवा में था। यह अलोकतांत्रिक और दमनकारी थी। यह साम्राज्य के साथ पूर्णतः मिलकर कार्य कर रहा था, परिणामस्वरूप पूर्ण प्रतिबद्धता ब्रिटिश नौकरशाही का पहचान लक्षण था। स्वतंत्रता के बाद यद्यपि भारतीय नौकरशाही प्रमुखतः उच्च स्तरीय को अनुच्छेद 311 और 312 द्वारा संविधानिक स्थिति प्रदान की गई।

उसी समय से तटस्थ नौकरशाही की संकल्पना का जन्म माना जा सकता है। भारतीय नौकरशाही तब से चयनित राजनीतिक व्यवस्था में कार्य कर चुकी है जहाँ नौकरशाही को राजनीतिक कार्यपालिका के निर्देशों अनुसार कार्य करना है, फिरभी इसको अन्तिम रूप से संविधान के आदर्शों और मूल्यों ढाँचे को ही अन्तिम सम्मान देना है। इस परिप्रेक्ष्य में अनावश्यक राजनीतिक दबाव नौकरशाही नैतिकता और व्यवहार की वास्तविक भावना के विपरीत है।

संदर्भ

1. पैट्रिक जे. शीरन, लोक प्रशासन में नैतिकता। एक दार्शनिक दृष्टिकोण, ग्रीनवुड प्रकाशन समूह, 1993।
2. आर.के. अरोड़ा, रजनी गोयल, भारतीय लोक प्रशासनरू संस्थान और मुद्दे, न्यू एज इंटरनेशनल, 1995।
3. आर.के. प्रुथी, लोक प्रशासन का सिद्धांत, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2005।
4. एस.द्विवेदी और जी.एस.भार्गव, पॉलिटिकल करप्शन इन इंडिया, पॉपुलर, दिल्ली, 1967।
5. एस.के. चोपड़ा (सं.), टुवर्ड्स गुड गवर्नेंस, कोणार्क, दिल्ली, 1997।
6. टी.एन. चतुवेर्दी (एड.), सेक्रेसी इन गवर्नमेंट, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली, 1980

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

पाणिनि की अष्टाध्यायी में वर्णित शाकल्य सूत्र

प्रोफेसर ओमप्रकाश मिश्र
प्रोफेसर संस्कृत विभाग
विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कॉलेज कानपुर

पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में शाकल्य का नामोल्लेख करते हुए चार सूत्रों की रचना की है। इसके साथ ही वैदिक सम्प्रदाय में सर्वप्रथम ऋग्वेद के पदपाठ के उद्भावक शाकल्य ही प्रसिद्ध हो चुके थे। वैदिक सम्प्रदाय में पदपाठ के अनन्तर क्रमपाठ का प्रचलन हुआ है पाणिनि द्वारा विरचित ''क्रमादिभयोवुन्'' (4.2.61) सूत्र में ''क्रमादिगण'' में ''क्रम'' के अनन्तर ''पद'' पढ़ा गया है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अष्ट विकृतियों में क्रम संचार का प्रचलन ''शाकल्य'' के पद के पाठ समानान्तर रूप में व्यवह्य होने लगा हो, अतः वैदिक संहिताओं की अष्टविकृतियों के संचालन में भी शाकल्यतन्त्र नितंरा उपयोगी रहा।

शाकल्य नाम के अनेक आचार्य हो चुके है। प्रसंगवश उनके भी उल्लेख करने का कारण वैयाकरण शाकल्य से पार्थक्य विदित कराना है। इन में तो एक ''स्थविर–शाकल्य'' है। किन्तु ''ऋक्प्राति शाख्य'' (पटल–2 सूत्र 81.82) की उलट व्याख्या भिन्न–भिन्न व्यक्ति प्रतीत होते हैं। तासां शाकल्यस्य स्थविरस्य मतेन किचिदुच्यते (ऋक्प्राति, टीका 2.81) जिन विदग्ध शाकल्य के साथ याज्ञवल्क्य का जनक सभा में शास्त्रार्थ हुआ था वह भी भिन्न व्यक्ति हैं। इन दोनों के अतिरिक्त वेदमित्रशाकल्य नाम से भी कोई विद्वान् प्रसिद्ध हो चुके है। इनका उल्लेख वायु पुं0 (अ 61/32) में मिलता है। इन्हें प्राचीन नहीं माना जा सकता है। पाणिनि सूत्रों में उद्धृत शाकल्य के नाम से सूत्र अष्टाध्यायी में विद्यमान हैं–

1. ''सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षो'' (1.1.16)
2. ''इकोऽसवर्णे शाकत्यस्य ह्रस्वश्च'' (6.1.126)
3. लोपः शाकल्यस्य (8.3.19)
4 ''सर्वत्र शाकल्यस्य'' (8.4.51)

इन सूत्रों में से प्रथम सूत्र में निविष्ट ''अनार्षे'' पद के कारण लौकिक संस्कृत में सम्बोधन निमित्तक ओकार के परवर्ती इति शब्द के साथ ओकार को प्रगृह्य संज्ञा शाकल्य आचार्य के मत में होने के पाक्षिक ''अव्'' आदेश होने के पश्चात् – ''वायो इति'' तथा ''वायविति'' ये दो रुप बनेंगे वेद में प्रंगृहय संज्ञा न होने से प्रकृति भावन

होने से सन्धिकार्य ''अव्'' आदेश हो जाता है– ''ब्रह्मणन्धवित्य ब्रवीत्'' इस प्रकार भावागत वैशिष्ट्य सूचित होने से ऐसे स्थलो में संदेह नहीं रह जाता अन्यथा लोक और वेद दोनों में समानता होने से लौकिक और वैदिक शब्दों में ओकारान्त सम्बोधन के पश्चात् ''इति'' शब्द के रहते प्रयोगों की भिन्नता विदित नहीं होती। द्वितीय सूत्र (6.1.126) के अनुसार भी पद के अन्त में विद्यमान इगन्त वर्णो से पर असवर्ण अच् रहने पर आचार्य शाकल्य के मत में प्रगृहय संज्ञा होती है। पाणिनि के मत में नहीं। इस प्रकार 'दीघअत्र'' ''दध्यत्र'' आदि स्थलों में उभय–विध रूपों में शाकल्य से अपनी भिन्नता दिखाने के लिए तथा शाब्दिक साधुता के प्रदर्शनार्थ पाणिनि ने शाकल्य को भी मान्यता दी है। ''लोपः शाकल्यस्य'' (8.3.19) सूत्र में शाकल्य का मत उद्धृत कर विशेषता दिखाई गयी है। यह प्रसंग ''य्'' के लोप होने के सम्बन्ध में है। प्रकृत सूत्र के पूर्व सूत्र से अनुवर्तमान प्रसङ्स के वैकल्पिक होने के कारण यहाँ भी केवल ''लोप'' ''लघुप्रयत्नतर'' उच्चार्यमाण ''य्'' तथा ''व्'' के विषय में ही सम्भव होता। पाणिनि को उलघुप्रयत्नतर में भी लोभ अभीष्ट रहा, उसका भी निवेश करने के लिये ''शाकल्य'' पद की सार्थकता मानी गयी है। इसके फलस्वरूप अलघुप्रयत्नतर का एक पक्ष में लोप, एवं एक पक्ष में श्रवण होकर अनिवार्य रूप में तीन रूप बनेगें– एक पक्ष लघुप्रयत्नतर आदेश का एवं द्वितीय अलघुप्रयत्नतर के लोप तथा तृतीय अलघुप्रयत्नतर के श्रवण का। इसी आशय को लेकर नागेशभट्ट ने ''लघुशब्देन्दुशेखर'' में प्रकृत सूत्र की व्याख्या भी की है– ''इदं सूत्रं'' लधुप्रयत्ने न ''शाकटायनमते तयोर्विधानेन शाकल्यमते तदभावत्'' इस रहस्य का उद्घाटन ''महामहोपाध्याय पण्डित नित्यानन्द पन्त जी की लघुशब्देन्दुशेखर'' की ''दीपक'' व्याख्या में अवलोकनीय है।

सेनक

संस्कृत–वाङ्मय का बृहद् इतिहास, पञ्चदश खण्ड व्याकरण, सम्पादक पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय प्रो0 गोपाल दत्त पाण्डेय, उत्तर प्रदेश संस्कृत लखनऊ, संस्कृत वि0सं0 2058 (2009 ई0) पृ0सं0 26

पाणिनि ने अष्टाध्यायी में जिन पूर्वाचार्यों का उल्लेख किया है, उनमें से एक ''सेनक'' भी है। अन्य उल्लिखित आचार्यों के प्रसंग में पाणिनि ने अष्टाध्यायी के दो, तीन या चार सूत्रों तक स्मरण किया है। आश्चर्य है कि आचार्य सेनक का स्मरण केवल एक सूत्र में ही किया है। वह सूत्र है ''गिरेश्च सेनकस्य'' (5.4.112) अब तक इनके सम्बन्ध में कहीं भी किसी प्रकार का विवरण अप्राप्य है। पाणिनि में ''तद्विता'' (4.1.68) अधिकार के अन्तर्गत आने वाले अव्ययीभाव समास से सम्बद्ध टच् प्रत्ययान्त गिरि शब्द को सम्मानित किया है। केवल अन्तर्गिरि, उपगिरि, अनुगिरि आदि सीमित अव्ययीभाव समासान्त शब्दो से वैकल्पिक अभीष्ट ''टच्'' प्रत्यय से निष्पन्न अन्तर्गिरि उपर्गिरि, अनुर्गिरि आदि शब्दों की साधुता भी स्वतः सिद्ध रही, उसके लिए आचार्य सेनक ही मुहर लगानी कोई आवश्यक नहीं थी। फिर भी इस सम्बन्ध में काशिका न्यास, पदमञ्जरी तथा लघुशब्देन्दुशेखर में थोड़ा बहुत विचार किया गया है, कोशिकाकार ने इस सम्बन्ध में केवल इतना ही कहा है कि प्रकृत सूत्र में (5.4.112) ''नपुसकादन्यतरस्याम'' 5.4.109 सूत्र से अन्यतरस्याम् पद की अनुवृत्ति किये जाने से विकल्प–लाभ हो सकता है। अतः सेनक पद का समावेश करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। आगे चलकर इस सम्बन्ध में व्याख्याकारों में सर्वप्रथम जिनेन्द्रबुद्धि ने न्यास में कुछ विस्तार के साथ विचार किया है। उन्होंने दो वैकल्पिक विधियों के मध्यगत विधान के नित्य होने के फलस्वरूप तदनन्तर विकल्पसिद्धि के लिये सेनक गृहण की आवश्यकता का भी निराकरण किया है। जिसके द्वारा यह बतलाया गया है कि

''शरत्–प्रभृति'' शब्दों में ''झय्'' प्रत्याहारान्तर्गत वर्णों के शब्दों की निष्पति स्वतः सिद्ध रही। अतः जिनेन्द्र बुद्धि के मत में भी सेनक गृहण पूजार्थ ही है। पद्मञ्जरीकार हरदत्त इतने से संतुष्ट नहीं हुए उन्होंने कुछ झयन्त शब्दों को शरत् प्रभृति श्ब्दो में सार्थक सिद्ध किया है तदनुसार प्रकृत सूत्र में केवल टच् प्रत्यय के वैकल्पिक विधान हेतु सेनक गृहण के सम्बन्ध में अरूचि ही दिखाई है। तथा हरदन्त भी सम्मानार्थक ही माना है। सूत्र में ''वा'' पद का सन्निवेश करने पर भी विकल्पार्थक विधि सम्भव अवश्य थी, किन्तु दो विकल्पों के मध्य विधान की नित्यता स्वीकार करने के फलस्वरूप ''झय'' (5.4.111) सूत्र से विहित टच् प्रत्यय के नित्य होने की सम्भावना को हटाने के लिये सेनक गृहण की चरितार्थक अधिक उपयुक्त विदित होती है। इसके फलस्वरूप इससे आगे आने वाले सूत्र ''बहुव्री हौ सक्थ्यक्षेणोः स्वाड्गाल्पच्'' (5.4.113) में विकल्प विधान की अनुवृत्ति नहीं होती। इस बात को नागेश ने लघुशब्देन्दुशेखर में बताया है।

स्फोटायन

पाणिनि ने केवल एक बार स्फोटायन का ''स्मरण'' किया है– वह भी ''गवाग्र'' आदि शब्द की सिद्धि के सम्बन्ध में। यद्यपि अच्परक ओकारान्त 'गो'' शब्द को अवङ् आदेश के प्रति पाणिनि उदासीन दिखाई पड़ते हैं, फिर भी उनसे स्फोटायन प्रभावित होने के कारण उन्हें वैकल्पिक विधान करने के लिए ''अवङ् स्फोटायनस्य'' (6.1.123) सूत्र की रचना करनी पड़ी, उन्हें स्वयं (गोडग्रम्) आदि रूप अभीष्ट रहे हो, केवल अच्परक गो शब्द के उदाहरण मात्र देने से उन शब्दो को प्रायोगिकता को प्रमाणित करना ही पाणिनि का उद्देश्य रहा हो। लोक व्यवहाकर में ''गवाग्र'' आदि शब्दो की साधुता दिखाना ही पाणिनि को स्फोटायन के मत पर सम्मान देकर अपनी मुहर लगानी पड़ी हो। पाणिनि द्वारा स्फोटायन का नाम निर्देश किये जाने पर उनके अस्तित्व में कोई सन्देह नहीं रह जाता। फिर भी उनके नाम की भिन्नता अन्यत्र निर्दिष्ट होने से अधिकतर विद्वानों ने स्फोटायन के नाम से उन्हें ''स्फोट'' सिद्धांत का निर्वचनकर्ता भी माना है, इसी उधेड़बुन में आलोचक भी पड़े रहे।

पाणिनि द्वारा उल्लिखित होने से स्फोटयन नाम से ही वह अवश्य प्रसिद्ध रहे होंगे। पाणिनि से कितने वर्ष पूर्व रहे हो यह कहना कठिन है। काशिकाकार ने ''अवङ् स्फोटायनस्य'' (6.1.123) सूत्र में गो शब्द से अच् पर रहते सम्भावित उदाहरण दिये हैं। वामन–जयादित्य ने इस सूत्र से सम्बद्ध कतिपय उदाहरणों में वैदिक स्वरों की सूक्ष्मता भी बतलाई है। इसके साथ ही प्रकृत सूत्र में ''स्फोटयानग्रहण'' पूजार्थ कहकर स्फोटायन के प्रति सम्मान प्रदर्शित किया है।

वर्तमान में स्फोट की निष्पत्ति भर्तृहरि ने पूर्वा–पर समन्वय के साथ ही की है। उन्होंने उद्धैत वेदान्त के सदृश् शब्द ब्रह्मवाद की स्थापना कर स्फोट सिद्धान्त को नया स्वरूप दिया है। वेदान्त के सदृश शब्द–सृष्टि की कल्पना विर्वतवाद को अभिलक्षित कर समग्र वैदिक और लौकिक वाङ्मय को उसके अन्तर्गत समाविष्ट कर दिया। भर्तृहरि ने भी स्फोट की व्याख्या ध्वनि के प्रसंग में ही है। उसका आदि और अन्त ध्वनि से सम्बद्ध हैं इसके अनन्तर कैयट, पुण्यराज, हेलाराज आदि मूर्धन्य विद्वानों ने स्फोटवाद के स्वरूप को बताने वाले भर्तृहारि को माना है। अतः स्फोट का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में व्याकरण दर्शन से है और अपेक्षाकृत अर्वाचीन व्याकरण दर्शन में स्फोटवाद का पर्याप्त विवेचन किया गया है। यदि पतञ्जलि से लेकर नागेश तक के स्फोटसाहित्य को सामने रखकर स्फोट पर विचार किया जाय तो निम्नलिखित रूप में सामने आते है–

1. स्फोट ध्वनि के रूप में।

2. स्फोट शब्द के रूप में।
3. स्फोट नित्य शब्द रूप में।
4. स्फोट जाति रूप में।
5. स्फोट वाक् रूप में।
6. स्फोट शब्द ब्रह्म रूप में।

यह भेद विकास की दृष्टि से परिज्ञात है।

स्फोटवाद की लम्बी यात्रा में स्फोटयान का नाम औदम्बरायण के रूप में भी व्यवहृत है। औदुम्बरायण के नाम से इस सम्बन्ध में यास्क, गार्ग्य, गालव, शाकाटयन आदि के सामानान्तर विचारों की संङ्गति की है। औदुम्बरायण इस नाम को स्वीकार करने में भरत मिश्र और हरदन्त ने अपने ग्रन्थों में उल्लेख किया है। इस दृष्टि से स्फोटवाद के प्रवर्तको में औदुम्बरायण का नाम भी लिया गया है। निरुक्त में औदुम्बरायण के मतानुसार ध्वनि को आनित्य माना गया है। इसी को आधार मानकर यास्क ने भी सहमति प्रकट की है। भर्तृहरि ने वाक्य पदीय के वाक्यकाण्ड में औदुम्बरायण का उल्लेख किया है।

वाक्यस्य बुद्धौ नित्यत्वमर्थयोगं च शाश्वतम्
दृष्ट्वा चतुष्ट्वं नास्तीति वार्ताक्षौदुम्बरायणे।।व 2.343

इन तथ्यों के आधार पर औदुम्बरायण प्रतिभज्ञान के आधार माने गये हैं।

"इन्द्रियनित्यं वचनं, तत्र चतु ट्वं नोपद्यते" की धारणा औदुम्बरायण ने ही सर्वप्रथम दी थी। उनका यह कथन वाली "ध्वनि–पक्ष" के लिए था। वे वाणी के नामाख्यातादि बाह्य विभाग की अपेक्षा उनके अखण्ड और अविभाज्य स्वरूप को नित्य मानते थे। वाणी की इस अखण्डता का आधार है 'वाक्य'। और यह वाक्य शब्दों या ध्वनियों का परिणाम न होकर बुद्धिरूप किन्हीं भावनाओं का परिणाम है। भावनाएं शब्दों की ध्वन्यात्मक अनित्यता की तुलना से अधिक नित्य और असीम होती है। भावनाएं बुद्धिरूप होते हुए अर्थ को अपने में संश्लिष्ट रखती है। अतः शब्द और बुद्धिरूप है इसलिए बुद्धि भी संसृष्टार्थप्रत्य यावमर्शिनी है।

संसृष्ट शब्द और अर्थ के परिज्ञान का साधन वैयाकरण दार्शनिक विद्वानों ने "आपोद्वार" माना है। इस मान्यता के आधार पर वाक्य के पदों में विभक्त किया जाता है। ये अवास्तविक होते हुए लोक व्यवहार की दृष्टि से सत्य प्रतीत होते हुए असत्य है इस दृष्टि से "अपोद्वार" उपसर्ग और निपात के रूप में पद का विभाजन उत्पन्न होता है।[36]

इन्द्र का व्यक्तित्व और ऐन्द्र व्याकरण का स्वरूप

महाभाष्य में वर्णित इन्द्र का आधिकारिक स्वरूप ऊपर बतलाया जा चुका है। वहाँ पर वर्णित बृहस्पति को उस उपदेश के "अविभाग व्याकरण" का आदिम रूप माना जाता है। संभवतः अविभाग व्याकरण के इन्द ही पाणिनि के समान प्रमुख प्रवक्ता रहे हो। किन्तु स्वयं इन्द्र को इस पद्धति से संतोष न हुआ हो और उन्होंने ही सविभाग व्याकरण पद्धति का श्रीगणेश किया हो। इस बात का संकेत हमें तैत्तिरीय संहिता से मिलता है–

"वाग्वै पराव्यत्याकृताऽवदत्। ते देव इन्द्रम ब्रुवन, इमां नो वाचं व्याकुर्विति। तामिन्द्रो महयतोऽवक्रम्य व्याकरतोत्" (6/4/7)

---

[36] संस्कृत वाङ्मय का वृहद् इतिहास, पञ्चदश–खण्ड व्याकरण। पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय, सम्पादक प्रो0 गोपाल दत्त पाण्डेय पृष्ठ संख्या–26.30।

सायणाचार्य ने इस सन्दर्भ की व्याख्या करते हुए यह स्पष्ट कर दिया है कि अखण्ड वाणी को इन्द्र ने सर्वप्रथम प्रकृति प्रत्यय विभाग द्वारा विश्लिष्ट कर बोधगरम्य बनाया। तैत्तिरीय संहिता के उक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सविभाग व्याकरण का मूलाधार ऐन्द्र व्याकरण रहा हो।

ऐन्द्र व्याकरण के सम्बन्ध में चरक संहिता की व्याख्या का एकमात्र उद्धरण उसकी अस्तिमता का बोधक है। चारक के व्याख्याकार हरिश्चन्द्र भट्टारक ने प्रसङ्गवश ''अथ वर्णसमाम्नायः'' वाक्य द्वारा ऐन्द्र व्याकरण के आदिम सूत्र की ओर संकेत किया है। इसी आधार पर ऐन्द्र व्याकरण को ''सविभाग'' का आदिम स्वरूप माना गया है। वर्ण–संघात की सार्थक ध्वनि को समूद्र भूतकर ''अखण्ड शब्द'' (स्फोट) की अभिव्यञ्जना कर स्फोट सिद्धान्त की स्थापना करने में समर्थ हुआ है। पाणिनि ने ''वर्ण समूह'' को माहेश्वर सूत्रो द्वारा विपरिणनित कर अष्टाध्यायी की रचना की हो। यह बात केवल कल्पित ही नहीं है, अपितु इसके प्रमाण ''ऋक्तन्त्र'' तथा ''ऋक्प्रतिशाख्य'' आदि ग्रन्थ है। इन दोनो ग्रन्थो में ''अक्षरसाम्नाय'' का उल्लेख है'' इससे यह सिद्ध होता है कि लाघव के लिए व्याकरणग्रन्थों के प्रारम्भ में अक्षर समानरूप के उपदेश की शैली अत्यन्त प्राचीन है। इस हेतु आधुनिक वैयाकरणों का अष्टाध्यायी के प्रारम्भिक अक्षर समाम्नय के सूत्रों को अपाणिनीय मानना युक्तिसंगत नहीं है। फिर भी यह विचारणीय है कि ऐन्द्रतन्त्र का समूह शिक्षा–सूत्रों में निर्दिष्ट तथा लोकप्रसिद्ध क्रम में था अथवा स्वशास्त्र की दृष्टि से पाणिनीय अक्षरसाम्नाय के सदृश विशिष्टक्रम से निर्दिष्ट था। ''वर्ण समूह'' के सम्बन्ध में पं0 युधिष्ठिर मीमांसक ने एक युक्ति यह दी है कि ''ऐन्द्रतन्त्र का वर्णसमूह'' लोकप्रसिद्ध क्रमानुसार रहा हो, क्योंकि कातन्त्र व्याकरण में प्रतिपादित ''सिद्धो वर्ण समाम्नाय'' सूत्र द्वारा लोकप्रसद्धि वर्णसंघात का ही बोध होता है। आगे चलकर दुर्गाचार्य (निरुक्त के टीकाकार) ने भी ''नैकपदजातम्'' यथा ''अर्थः पदम्'' इत्यैन्द्रणाम'' अर्थात् ऐन्द्र व्याकरणों की अपेक्षा कुछ भिन्नता है। उनके आगे नैरुक्तों तथा अन्य वैयाकरणों के सदृश नाम, आख्यात, उपसर्ग तथा निपात ये चार विभाग नहीं है।

''अर्थः पदम्'' आहुरैन्द्राः ''विभक्त्यन्तं पदं'' आहुरापिश लीयाः, सुलिडन्तं पदं पाणिनीयः''

इन उद्धरणों के अतिरिक्त कुछ अन्य ग्रन्थो में भी ऐन्द्र व्याकरण की ओर संकेत मिलता है। तदनुसार बोपदेव ने कवकल्पद्रुम में आठ वैयाकरणों में सर्वप्रथम इन्द्र का स्मरण किया है।

परिणामः ऐन्द्र व्याकरण के परिणाम के सम्बन्ध में प्रायः सब एकमत है। ऐन्द्र व्याकरण परिमाण में अत्यधिक विस्तृत रहा। महाभारत के टीकाकार देवबोध (12 वीं शताब्दी से पूर्वभावी) ने लिखा कि इन्द्रकृत व्याकरण सविभाग होते हुए भी पदगणना को बिल्कुल छोड़ नहीं पाये। इसीलिए सम्भवतः गणना की दृष्टि से और स्वरूप की स्थिति की दृष्टि से उनमें अधिक पदों का समावेश रहा हो।

वाणी को व्याकृत करने में इन्द्र के सहायक के रूप में वायुदेव का भी उल्लेख मिलता है। शब्दोच्चारण वायु के बिना असम्भव है। वायु पुराण के अनुसार वायु शब्द शास्त्र विशारद थे। यामलाष्टक तन्त्र में भी अष्ट व्याकरणें के अन्तर्गत 'वयव्य व्याकरण' का नामोल्लेख है।

वायुदेव की पत्नी अञ्जनी के पुत्र हनुमान् के भी वैयाकरणो होने में वाल्मीकि रामायण में उल्लेख मिलता है।

इनके शिल्य दैत्यगुरु शुक्राचार्य रहे। मनुस्मृति (9/42) तथा महाभारत (शान्तिपर्व 62) में भी वायु के वैयाकरण होने के सम्बन्ध में गाथाये प्राप्त होती है।

भागुरि

पाणिनि द्वारा अनुउल्लिखित आचार्यो में भागुरि का स्थान महत्वपूर्ण है, आश्चर्य तो इस बात पर है, कि व्याकरण शास्त्र के अतिरिक्त अन्य शास्त्र के ग्रन्थों में भागुरि का नाम निर्देश उनके मत को विदित कराता है, उनके नाम को भी तदित इञ्–प्रत्ययान्त होने से दक्षिणाग्रात्य होने की अधिकतर विद्वानों द्वारा कल्पना की जाती है, यह बात अन्य आचार्यो की तरह अब तक अनिर्णीत ही है अतः भागुरि का परिचय ब्राह्मण प्रमाणों पर ही आधारित है इन प्रमाणों के आधार पर यह भी विदित होता है कि भागुरी इनकी 'स्वसा' रही हो। यह विषय केवल आनुमानिक ही है, महाभाष्य में उद्धत ''म मासयोः (6.3.45) सूत्र के अन्तर्गत ''वर्णिका भागुरी'' को टीका ग्रन्थ माना है और उसकी व्याख्या भी वर्णिका बतलाई है। (वर्णिकेति व्याख्यात्री बर्थः भागुरी टीका विशेषः) इसके अतिरिक्त भागुरी किसी लोकायत विरचित ग्रन्थ की टीका का रूप में भी विदित है, इसका उल्लेख वात्स्यायन के अर्थश्च राज्ञः, तन्मूलत्वाल्लोक यात्रायाः (9.2.15) तथा ''वरं सांशविकिन्नि कादसांशयिकः कार्षापण इति लोकायतिकाः (1.2.28) इन दोनों कारिकाओं में ही दिया है, यह निश्चित नहीं है कि कारिकायें मौलिक रूप में है, अथवा परिवर्तित। अधिकतर विद्वानों की सम्मति में भागुरिकृत ही इन्हें माना गया है और भागुरि का ग्रन्थ स्वरूप भी कारिकाबह रहा हो। उन कारिकाओं को ''शब्दशक्ति प्रकाशिका'' में यथा–प्रसङ्ग देते हुए इस प्रकार उद्धत किया है–

1. मुण्डादेस्त् करोत्यर्थे गृहणात्यर्थे कृतादितः।
   वक्तत्यिर्थे च सत्यादेर्, अंगादेस्तन्निरस्यति।
2. तूस्ताद्विघाते, संघादेवस्त्रात्–पुच्छादितस्तथा।
   उत्प्रेक्षादौ, कर्मणो हि णिस्तदव्ययपूर्वतः।।
3. वीणात उपमाने स्याद् हस्तिनोऽतिक्रमे तथा।
   सेनातश्चाभियाने णिः श्लोकादेरघुपरस्तुतौ।।
   गुष्–धूप विच्छि–पणि पनेरायः कमेस्तु णिङ्।
   ऋतेरीयङ् चतुर्लेषु नित्यं स्वार्थे परत्र वा।।
   गुपो वधेरचनिन्दायां, क्षमायां तथातिजः।
   प्रतीकाराधर्थकाच्चं कितः स्वार्थे सनोविधिः।।

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

NAAGS KANPUR

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद

महेंद्र सिंह बिष्ट
शोध छात्र इतिहास
छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय कानपुर

भारत में अंग्रेजों के आगमन से पूर्व ही पुर्तगाली, डच एवं फ्रांसीसी कम्पनियाँ व्यापार के उद्देश्य से भारत में मौजूद थीं। अतः अंग्रेज भी पूर्वी देशों से व्यापार करने को इच्छुक हुए। इंग्लैण्ड ही वह प्रथम यूरोपीय शक्ति थी जिसने 1582 ई0 में अन्तरीप (केप) की परिक्रमा करते हुए सागर में पुर्तगालियों के एकाधिकार को भंग करने का साहस किया था। जब 1588 ई0 में अंग्रेजी सेना ने स्पेन के एक जहाजी बेड़े को पराजित कर दिया तो इंग्लैण्ड की सरकार ने भी कुछ व्यापारियों को अन्तरीप के रास्ते समुद्री व्यापार करने की इजाजत दे दी।

सरकार की ओर से अनुमति मिल जाने पर अनेक नाविकों ने सामुद्रिक यात्रायें की। इंग्लैण्ड के व्यापारियों ने व्यापारिक दृष्टि को ध्यान में रखकर सबसे महत्वपूर्ण कदम 31 दिसम्बर, 1600 ई0 में उठाया। इस में **"ईस्ट इण्डिया कम्पनी"** की स्थापना की। उन्होंने इस कम्पनी का नाम **"द गवर्नर एण्ड कम्पनी ऑफ मर्चेण्ट्स ऑफ लन्दन ट्रेडिंग इन टू द ईस्ट इण्डिया कम्पनी"** इंग्लैण्ड की महारानी एलिजाबेथ प्रथम ने इन व्यापारियों को अपना व सहयोग प्रदान किया तथा कम्पनी को 15 वर्षों के लिए पूर्वी देशों से व्यापार करने की अनुमति प्रदान की। 18वीं शताबदी में मुगल साम्राज्य के छिन्न–भिन्न हो जाने से देश की आर्थिक व्यवस्था भी डांवाडोल हो गई। अनेकों देशों राजाओं के परस्पर युद्धों की वजह से देश का आर्थिक क्रियाकलाप भंग हो चला था। देश अनेकों छोटे–छोटे भागों में विभाजित हो चुका था। लूट–खसोट करने वाले विभिन्न दल उभरकर सामने आ गये। भारतीय माल पर चुंगी तथा कर की अधिकता के कारण व्यापार व खजने में भारी कमी आ गयी थी। इन सभी परिस्थितियों का फायद विदेशी कम्पनियों ने पूरी तरह से उठाया और उन्होंने देश की राजनीति में भी हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने मुगल सम्राट जहाँगीर के शासन काल में सूरत में स्थायी रूप से एक कारखाना स्थापित कर लिया था। सर टॉमस रो, जिन्हें इंग्लैण्ड के शासक जेम्स प्रथम ने 1613 ई0 में मुगल सम्राट जहाँगीर के दरबार में भेजा था, उसने धीरे–धीरे आगरा, अहमदाबाद, बम्बई, पटना, कासिम बाजार, कलकत्ता आदि में अपने व्यापारिक केन्द्र स्थापित कर लिये। सन् 1757 ई0 में प्लासी की विजय व 1764 ई0 में

बक्सर के युद्ध की विजय के पश्चात् कम्पनी को बंगाल पर पूर्ण रूप से एकाधिकार प्राप्त लिया था, किन्तु भारत का शासन कम्पनी के हाथ से निकलकर ब्रिटिश ताज के हाथों में चला गया और सन् 1947 ई0 तक भारत में ब्रिटिश ताज की सत्ता बनी रही। कम्पनी ने अपने शासनकाल में जिन आर्थिक नीतियों का प्रयोग किया गया था, निश्चित रूप से उसने भारत को दरिद्रता के दरवाजे पर ला खड़ा किया। ठीक उसी प्रकार ब्रिटिश शासन का मूलभूत लक्ष्य भारत के आर्थिक हितों का शोषण करना था। किसी हद तक यह ठीक है कि ब्रिटिश शासन काल में उस समय की स्थिति को ध्यान में रखकर थोड़ी बहुत उदारता का परिचय अवश्य दिया गया था किन्तु फिर भी कुल मिलाकर भारत का आर्थिक शोषण ही हुआ था ब्रिटिश शासन के दौरान अंग्रेजों के द्वारा हुए ''भारत के औपनिवेषक षोषण को तीन चरणों में विभक्त किया गया है'' –

प्रथम – 1757 ई0 मसे 1813 ई0 तक की अवधि **''वाणिज्यिक प्रभाव''** की थी, जिसके अन्तर्गत ईस्ट इण्डिया कम्पनी को खुली लूट और व्यापार पर एकाधिकार प्राप्त था।[37]

द्वितीय – 1813 ई0 से 1853 ई0 तक की अवधि ''स्वतन्त्र व्यापार'' के औद्योगिक एवं पूंजीवादी शोषण का काल रही।

तृतीय – 1858 ई0 से 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक अवधि **''वित्तीय पूंजीवाद''** का काल थी।

औपनिवेशिक शोषण के इन तीनों चरणों के सम्बन्ध्य मे ंयह कथन काफी हद तक उचित हे – **''भारत का यह आर्थिक शोषण** तीन चरणों में विभक्त अवश्य है, लेकिन फिर भी ये एक–दूसरे के काफी नजदीक है क्योंकि शोषण का युग तो कभी समाप्त ही नहीं हुआ बल्कि वह दूसरे किसी नये रूप में होता ही रहता था।''

कम्पनी द्वारा भारत की विजय –

भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद का काल 1757 से ही प्रारम्भ हो जाता है। ''प्लासी की लड़ाई के बाद ही इंग्लैण्ड की ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने बंगाल पर अपना प्रभुत्व जमा लिया था। 17वीं और 18वीं शताब्दी में यूरोप देशों के कई व्यापारी भारत के व्यापार पर कब्जा करने की जी–तोड़ कोशिश कर रहे थे। प्रारम्भ में कम्पनी का उद्देश्य ठीक वही था जोकि व्यापारिक पूजी की एकाधिकारी कम्पनियों का होता है। समुद्र पार के किसे देश के माल और विभिन्न उत्पादनों पर एकाधिकार करके माल कमाना था। ''ईस्ट इण्डिया कम्पनी का उद्देश्य इंग्लैण्ड में निर्मित माल के लिए बाजारों की खोज करना नहीं था बल्कि भारत के ऐसे सामान जोकि इंग्लैण्ड व यूरोप के देशों में बहुत अधिक प्रसिद्ध थे, पर नियन्त्रण रखना था।''[38]

अतः कम्पनी का मुख्य लक्ष्य भारत के व्यापार पर एकाधिकार प्राप्त करना था। दूसरे शब्दों में, कम्पनी अपनी वस्तुओं को अधिक से अधिक बेचना और भारत में कम से कम कीमत पर खरीदना चाहती थीं ताकि अधिक से अधिक लाभ कमा सकें। कम्पनी ने अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिए निम्न तरीके अपनाये –

1. कम्पनी ने व्यापार पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने के लिए सभी सम्भव प्रतिद्वन्दियों को समाप्त कर दियां
2. कम्पनी ने लगातार यह प्रयास किया कि वस्तुयें कम से कम मूल्य पर क्रय की जायें और अधिक से अधिक मूल्य पर विक्रय की जायें।

[38]. दत्त, आर0पी0 : आज का भारत, पृष्ठ सं0– 124–25

3. कम्पनी ने अपने लक्ष्य को सफल बनाने हेतु इंग्लैण्ड के व्यापारियों को रिश्वत देकर भारत से दूर रखा।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने यूरोप के कई राष्ट्र जैसे फ्रांस तथा हॉलैण्ड को भारत से दूर रखने के लिए भीषण युद्ध लड़े। कम्पनी ने भारत में राजनीतिक शक्ति व व्यापारिक अधिग्रहण को प्राप्त करने के लिए भारतीय राजाओं से भी युद्ध लड़े। कम्पनी तथा भारतीय राजाओं के मध्य लड़े गये युद्ध बंगाल की विजय, आंग्ल – मैसूर युद्ध, आंग्ल – मराठा युद्ध आदि प्रमुख थे। ''कम्पनी ने अपने आरम्भिक समय में भारत को बहुत अधिक मात्रा में लूटा। 18वीं शताब्दी में भारत से जितना भी धन इंग्लैण्ड भेजा गया। वह सब भारत के शोषण तथा बेतहाशा लूट– खसोट करके हासिल किया गया था।''[39] कम्पनी ने समुद्र के तटीय क्षेत्रों में नौसैनिक शक्ति की सहायता से जबरदस्ती भारतीय व्यापारियों को विदेश व्यापार से वंचित करना आरम्भ कर दिया। ''भारतीय व्यापारियों के माल के निर्यात पर अधिक मात्रा में चुंगी लगाकर इंग्लैण्ड और यूरोप के अन्य देशों में पहुँचने से रोक दिया।''[40]

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने सामान्य जनता पर स्थानीय टैक्स लगाकर खजाने को बढ़ाने की भी कोशिश की, किन्तु जब कम्पनी के पास बंगाल, बिहार व उड़ीसा के कुछ हिस्से अधिकार में आ गये तो कम्पनी ने नवाबों और जमींदारों की स्थानीय पूँजी को हड़पना प्रारम्भ कर दिया। ''कम्पनी ने विनिमय में पलड़ा भारी रखने के उद्‌देश्य से बल प्रयोग के कई तरीके अपनाये जिससे कि व्यापार और लूट के मध्य की रेखा धुंधली पड़ने लगी थी।''[41]

भारत में ''लूट'' की प्रक्रिया की शुरूआत 1757 ई0 के पश्चात् ही आरम्भ हो गयी थी। ''भारत में प्लासी के युद्ध के पश्चात् कम्पनी ने किसी भी कीमती धातु का आयात नहीं किया, बल्कि भरत से निर्यात किए गए माल का जरा सा अंश भी नहीं लौटाया।[42] इस तरह निरन्तर भारत से सम्पत्ति का हनन होता गया और इंग्लैण्ड धनी। अतः ''भारत में औपनिवेशिक चरण की अस अवधि में ''व्यापार'' के नाम पर व्यापार कम और लूट अधिक थी।[43]

औद्योगिक क्रान्ति व पूँजीवादी शोषण का युग –

ईस्ट इण्डिया कम्पनी जेसे ही भारत में एक प्रादेशिक शक्ति के रूप में उभर कर सामने आयी तो यह सवाल उठा कि भारतीय उपनिवेश किसके हितों की पूर्ति करेगा। इसी समय ''इंग्लैण्ड में जनमें नये औद्योगिक वर्ग ने 1813 ई0 में कम्पनी के एकाधिकार को समाप्त करके ''स्वतन्त्र व्यापार'' के मार्ग को प्रशस्त किया।''[44] जिससे कि भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के दूसरे चरण का प्रारम्भ हुआ।

भारत में ब्रिटिश शासन की नीति 1813ई0 से 1858 ई0 तक ''स्वतन्त्र भारत'' के औद्योगिक एवं पूँजीवादी शोषण की थी। ''1813 ई0 के पश्चात् इंग्लैण्ड की आधुनिक मशीनों से निर्मित माल ने भारतीय मण्डियों व बाजारों पर कब्जा कर लिया।।''[45] इस युग में अंग्रेज व्यापारियों तथा उद्योगपतियों ने बड़ी तेजी से भारतीय

---

39. दत्त, आर0पी0 : आज का भारत, पृष्ठ सं0–112
40. दत्त, आर0पी0 : आज का भारत, पृष्ठ सं0–113
41. दत्त, आर0पी0 : आज का भारत, पृष्ठ सं0 – 126
42. चोपड़ा, पुरी, दास : भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, पृष्ठ सं0–167
43. दत्त, आर0पी0 : आज का भारत, पृष्ठ सं0–127
44. चोपड़ा, पुरी, दास : भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक इतिहास, पृष्ठ सं0 – 188
45. दत्त, आर0पी0 : आज का भारत, पृष्ठ सं0–114

व्यापार का मूल रूप ही परिवर्तित कर दिया था। ''भारत अभी तक निर्यात करने वाला देश था लेकिन आने वाले समय में यह आयात करने वाला देश बन गया।''[46] इंग्लैण्ड के उद्योगपतियों ने भारत के बाजारों में अंग्रेजी सूती कपड़ों की बाढ़ ला दी। मार्क्स ने इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था – ''यह वह समय था जब सूती वस्त्रों के घर में सूती वस्त्रों की अधिकता कर दी गयी थी।''[47] इसी युग में भारतीय पारम्परिक हस्तकालाओं का भी विनाश कर दिया गया। सन् 1934 ने लार्ड विलियम बैटिंक ने हस्तकालाओं के विनाश के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा था कि ''भारत के इतिहास में इस दुर्दशा का व्यापार के इतिहास में कोई जोड़ नहीं है। भारत के मैदानों को भारतीय बुनकरों की हड्डियाँ सफेद कर रही थी।।[48]

उपनिवेशवाद के इस चरण में कम्पनी तथा ब्रिटिश उद्योगपतियों ने मिलकर भारत के व्यापार तथा उद्योग धन्धों को पूरी तरह से नष्ट कर दिया था और भारतीय कपड़ों को यूरोप की मंण्डियों से निष्कासित कर दिया। ''अंग्रेजों ने भारतीय अर्थव्यवस्था के प्राचीन आधार हथकरघा और चरखे को तोड़ डाला।''[49] भारत जो कपड़े के घर के नाम से प्रसिद्ध था उसे विदेशी सूती कपड़ों से भर दिया तथा भारत की उत्पादन व्यवस्था को तहस–नहस कर दिया।

वित्तीय पूँजीवाद

''19वीं शताब्दी में इंग्लैण्ड में बहुत अधिक मात्रा में भारत की लूट से जो पूँजी एकत्रित हुई उससे इंग्लैण्ड में नवीन औद्योगिक क्रान्ति का शुभारम्भ हो गया।[50] ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने बम्बई के उद्योगों के प्रति ही नहीं चुंगी की भेदभाव की नीति अपनायी बल्कि धन एकत्रित करने के लिए अनेक प्रतिबन्धों की मदद से देशों पूँजीवाद के विकास को क्षीण कर दिया था। ''भारत में जब इस विदेशी पूजी का आगमन हुआ तो इसका ध्येय देश व देश की आवाम का आर्थिक स्तर ऊँचा करने का कदापि नहीं था, बल्कि उनका प्रमुख उद्देश्य भारतीय साधनों का अधिक से अधिक शोषण करके लाभ कमाना था।''[51] अंग्रेज व्यापारियों एवं अधिकारियों का उद्देश्य यूरोपीय उद्योगों को अधिक से अधिक प्रात्साहित करना था।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद का यह चरण भारत की आन्तरिक एवं बाह्य घटनाओं का परिणाम था। आन्तरिक दृष्टिकोण से भारत के सम्पूर्ण ढाँचे पर ब्रिटिश उपनिवेशवाद के दो भयंकर परिणाम सामने आये। इससे पहले कि देश में कोई और घटना घटित हो, सन् 1857 का विद्रोह हो गया जोकि ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विस्तार तथा भारत के अधिकाधिक क्षेत्रों को हथियाने, कम्पनी की अधिक लगान व्यवस्था का प्रत्यक्ष परिणाम था। कुछ विद्वानों ने इस विद्रोह को पहला स्वतन्त्रता संग्राम कहा है किन्तु पं0 जवाहर लाल नेहरू ने इस सम्बन्ध में कहा, ''यह पुराने ढंग से स्वतन्त्रता की कोशिश थी जिसमें सामान्य जनता के लिये कोई जगह नहीं थी जबकि सामान्य जनता ने भी इस विद्रोह में अधिक संख्या में भाग लिया था। इस विद्रोह का स्वरूप प्रतिक्रियावादी होने के कारण इससे सफल न होने के आसार शुरू से ही दिखाई पड़ रहे थे।''[52] अंग्रेजों ने

---

[46]. दत्त, आर0पी : आज का भारत, पृष्ठ सं0–136
[47]. सरकार, सुमित : आधुनिक भारत, पृष्ठ सं0 – 44
[48]. चोपड़ा, पुरी, दास : भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, पृष्ठ सं0–176
[49]. दत्त, आर0पी0 : आज का भारत, पृष्ठ सं0–114
[50]. दत्त, आर0पी0 : आज का भारत, पृष्ठ सं0–132
[51]. दत्त, आर0पी0 : आज का भारत, पृष्ठ सं0–140
[52]. नेहरू, जे0एल0 : भारत की खोज, पृष्ठ सं0–324

इसे नाराजगी एवं असंतोष की भावना समझकर उपनिवेशवादी नीतियों में परिवर्तित कर दिया।

''भारत ने सन् 1857 के पश्चात् ही विदेशी वित्त पूँजी का प्रयोग देश के विभिन्न क्षेत्रों में किया गया और 20वीं शताब्दी के आरम्भ तक इसने अपनी स्थिति काफी मजबूत कर ली थी।''[53] देश में नये–नये उद्योगों व कारखानों का विकास हुआ तथा बैंक, डाक व्यवस्था, यातायात व संचार के साधनों को भी विकसित किया गया। विदेशी पूँजी का उपयोग 1914 के पूर्व केवल कुछ ही साध्धनों में किया गया जैसे – रेलवे, सड़क, जहाजरानी तथा खनिज उत्पादनों में कोयला, सोना व वित्ती शाखाओं की बैंकों, निगम इत्यादि। अनुमानों के अनुसार 1913 ई0 में विदेशी बैंकों के पास भारत की कुल राशि का 3/4 भाग था जबकि भारत की बैंकों के पास मात्र 1/4 भाग था। अंग्रेजों के पास अत्यधिक धन होने का दूसरा कारण यह भी था, ''19 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही शुरू किया गया ''स्वतन्त्र व्यापार'' के फलस्वरूप भारत की ''लूट'' की पुरानी पद्धति अभी भी बरकरार थी।''[54] बल्कि यह तीसरे चरण और भी तेजी से हो रही थी। इस समय इसे ''नजराना'' का नाम दे दिया गया था और इस राशि को ''गृह शुल्क'' के अन्तर्गत इंग्लैण्ड भेज दिया जाता था। ''1851 से 1901 के मध्य ब्रिटिश अधिकारियों ने ''गृह शुल्क'' के नाम पर 7 गुना धन अर्जित किया और यह पहले की अपेक्षा 25 लाख पौण्ड से बढ़कर 1 करोड़ 73 लाख पौण्ड हो गयी।''[55]

भारत के धन का प्रवाह

ब्रिटिश शासन के दौरान भारत से ''धन का प्रवाह'' निरन्तर होता रहा। अंग्रेजों ने भारत का दिल खोलकर शोषण किया और भारतीय सम्पत्ति को बहुत अधिक मात्रा में लगातार इंग्लैण्ड भेजते रहे। ''1857 तक अंग्रेज भारत से माल खरीदने के लिए बहुमूल्य धातुयें लाते थे क्योंकि उनके पास भारत से व्यापार करने के लिए कोई और सामान था ही नहीं, जिसकी भारत को आवश्यकता हो।''[56] इसलिए कम्पनी को अपने प्रारम्भिक दिनों में भारत से व्यापार करने के लिए सोना, चांदी और विदेशी सिक्कों का प्रयोग करना पड़ा। ''किन्तु प्लासी के युद्ध के पश्चात् कम्पनी को बंगाल, बिहार व उड़ीसा की दीवानी प्राप्त हो गई और तभी से कम्पनी इन्हें अपनी निजी सम्पत्ति कहने लगी, जिससे अब भारत में खुलेआम सम्पत्ति के दोहन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई।''[57] कम्पनी बंगाल में सैनिक बल से जो भी धन प्राप्त करती, उसी से बंगाल से माल खरीद कर इंग्लैण्ड को भेज देती थी।

1765 ई0 में क्लाइव ने भारत में स्थित कम्पनी के डायरेक्टरों के नाम एक पत्र भेजा जिसमें यह कहा गया था – ''कम्पनी को भारत का प्रशासन अपने तक सीमित रखने के लिए यह चाहिए कि वह मुनाफे के रूप में एक निश्चित राशि इंग्लैण्ड भेज दे।''[58] सन् 1773 ई0 में पार्लियामेन्ट में इस सन्दर्भ में एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी जिससे पता चलता है, ''कम्पनी ने अपने प्रारम्भिक छः वर्षों में बंगाल से प्राप्त कुल राजस्व 13,066,761 पौण्ड तथा कुल व्यय 9,027,609 पौण्ड दिखाया था, इसमें

---

[53]. दत्त, आर0पी0 : आज का भारत, पृष्ठ सं0–154
[54]. दत्त, आर0पी0 : आज का भारत, पृष्ठ सं0–152
[55]. दत्त, आर0पी0 : आज का भारत, पृष्ठ सं0–153
[56]. सरकार, सुमति : आधुनिक भारत, पृष्ठ सं0–44
[57]. दत्त, आर0पी0 : आज का भारत, पृष्ठ सं0–127
[58]. दत्त, आर0पी0 : आज का भारत, पृष्ठ सं0–128

4,037,152 पौण्ड की राशि विशुद्ध लाभ थी।''[59] इस प्रकार कम्पनी ने बंगाल से प्राप्त कुल आय का लगभग 1/3 भाग शुद्ध लाभ के रूप में इंग्लैण्ड भेज दिया।

भारत में कम्पनी की ''लूट'' के साथ ही साथ अंग्रेज अधिकारियों व कर्मचारियों ने भी व्यक्तिगत तौर पर बहुत अधिक धन कमाया। ''भारत में कार्य कर रहे अनेकों अंग्रेज कर्मचारी भी राजनीतिक शक्ति का लाभ उठाकर धन एकत्रित के इंग्लैण्ड में अपने परिवार जनों व सगे – सम्बन्धियों को मुद्रा व अन्य कीमती चीजों के रूप में भेज देते थे।''[60] यह सारा धन ब्रिटिश नागरिकों द्वारा भारत से ही प्राप्त किया जाता था जिसे वे स्वदेश भेजते रहते थे। ''इतना ही नहीं जब स्वयं क्लाइव भारत आया था तो उसके पास कुछ भी नहीं था लेकिन जब वह यहाँ से गया तो उसके पास लगभग ढाई लाख पौण्ड था और वह भारत में एक जागीर भी स्थापित कर गया था जिससे उसे 27,000 पौण्ड प्रतिवर्ष प्राप्त होता था।''[61] क्लाइव ने यह सम्पूर्ण राशि स्वयं ही अपने साधनों के बल पर प्राप्त की थी इसमें कम्पनी का एक अंश भी शामिल नहीं था। ''गवर्नर वेरेल्स्ट की रिपोर्ट के आधार पर 1766 से 1768 के मध्य भारत से 6,311,250 पौण्ड का निर्यात किया गया जबकि आयात सिर्फ 624,375 पौण्ड ही किया गया।''[62] इस प्रकार जब ब्रिटिश नागरिकों स्वयं इतनी बड़ी मात्रा में धन कमाया था तो कम्पनी द्वारा प्राप्त किया इस राशि से कई गुना अधिक मात्रा में होगा।

भारत से धन लूटने का एक और तरीका भी था। कम्पनी ने सम्पूर्ण भारत में जो राज्य – विस्तार की नीति अपनायी थी, इस कारण उनके खर्चे की मात्रा इतनी अधिक थी कि प्रायः इंग्लैण्ड की सरकार से उन्हें कर्जा भी लेना पड़ता था, बाद में कम्पनी को ब्याज के साथ उस कर्ज को इंग्लैण्ड की सरकार को देना पड़ता था। ''भारत इंग्लैण्ड को प्रतिवर्ष 2 करोड़ स्लाटिंग ''गुह–शुल्क'' रूप में देता था।''[63] जिसमें कर्ज का ब्याज, सिविल शासन का खर्च, सेना, स्टोर, रेलवे आदि का खर्च सम्मिलित होता था। ''सन् 1890–1900 के मध्य भारत ने इंग्लैण्ड को लगभग 1 करोड़ 70 लाख रूपये की सम्पत्ति भेजी।''[64] इस तरह भारतीय सम्पत्ति का लगातार विदेश जाना और बदले में कुछ भी वापस न मिलने के कारण भारत की आर्थिक स्थिति निम्नस्तार होती गयी। परिणाम स्वरूप भारत लगातार शनैः–शनैः आर्थिक दृष्टि से गरीब होता चला गया।

भारत में निरन्तर हो रहे इस आर्थिक शोषण के सम्बन्ध में सर्वप्रथम दादाभाई नौरोजी ने रोशनी डाली। दादाभाई नौरोजी भारत से धन–प्रवाह के प्रबल विरोधी थे। उन्होंने कहा था – ''भारत का धन भारत से विदेश को जाता था और वहीं उन्हें कर्ज के रूप में दे दिया जाता था। इस कारण भारतीयों को और अधिक धन उस कर्ज तथा कर्ज पर लगने वाले ब्याज को चुकाने के लिए इकट्ठा करना पड़ता था। यह एक ऐसा चक्रव्यूह था जिससे निकल पाना बहुत ही मुश्किल था।''[65] दादाभाई नौरोजी का मानना था कि भारत से धन प्रवाह का प्रत्यक्ष सम्बन्ध भारत में लगातार जमा हो रही विदेशी पूँजी थी और इस आर्थिक प्रवाह की सारी बुराई की जड़ भारतीय शासन में अंग्रेजों को

---

59. दत्त, आर0पी0 : आज का भारत, पृष्ठ सं0–129
60. चोपड़ा, पुरी, दास : भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, पृष्ठ सं0–168
61. दत्त, आर0पी0 : आज का भारत, पृष्ठ सं0–129
62. दत्त, आर0पी0 : आज का भारत, पृष्ठ सं0–129
63. चोपड़ा, पुरी, दास : भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, पृष्ठ सं0–193
64. चोपड़ा, पुरी, दास : भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, पृष्ठ सं0–193
65. नौरोजी, दादाभाई : पावर्टी एण्ड अन ब्रिटिश रूल इन इण्डिया।

अधिकाधिक संख्या में नौकर रखना था। ''भारतीय जनता की भयंकर गरीबी और निम्न स्थिति का प्रमुख कारण विदेशी लोगों को भारतीय शासन में अधिक संख्या में नौकरी देना तथा देश में के भौतिक साधनों की निष्क्रियता और धन का निर्गम था।''[66] उन्होंने फिर कहा, यह जीवन और मरण का प्रश्न है। अतः इस बुराई को समाप्त कर देना चाहिए जिससे कि भारत प्रत्येक दशा में फिर सम्पन्न हो जायेगा।

आर्थिक प्रवाह का अनुमान –

भारत से धन का बाह्य प्रवाह कितना हुआ इस सम्बन्ध में अनेकों इतिहासकारों व अर्थशास्त्रियों में काफी मतभेद है। सन् 1859 में जार्ज विन्गेट का अनुमान था कि 1835 से 1851 के समय तक धन का प्रवाह 42, 21,611 प्रतिवर्ष था। सन् 1901 ई0 में **विलियम डिग्वी** ने यह अनुमान लगाया था कि 1757 से 1815 के मध्य कुल धन के प्रवाह की मात्रा 50 करोड़ और 100 करोड़ के बीच थी। सन् 1948 में एक अमेरिकन विद्वान प्रो0 होल्डन फरबर ने लिखा था कि 1783–1793 के मध्य यह मात्रा 19 लाख पौण्ड प्रतिवर्ष निश्चित की गयी थी। जबकि कम्पनी इस समय तक एक छोटे से पैमाने पर ही कार्यरत थी। **विलियम डिगबाई**[67] ने 19वीं शताब्दी के अन्त तक इस धन का बाह्य प्रवाह 60,080 लाख बताया था। श्री मेकलीन ने बताया था कि ''भारत इंग्लैण्ड को प्रतिवर्ष 300,000,000 की राशि का निर्यात करता था जिसके बदले में उसे कुछ भी नहीं दिया जाता था। विदेशी विद्वानों की तरह भारत के कुछ राष्ट्रवादी नेताओं ने भी अपनी–अपनी गणना प्रस्तुत की थी। 1897 ई0 में दादाभाई नौरोजी[68] ने 1893 –93 के मध्य के दस वर्षों में भारतीय धन के प्रवाह की मात्रा 35 करोड़ 90 लाख पौण्ड निश्चित की थी। सन् 1901 ई0 में आर0सी0 दत्त[69] ने 1860–1900 के बीच 2 करोड़ 20 लाख पौण्ड प्रतिवर्ष का अनुमान लगाया था। इस प्रकार ''अंग्रेजी साम्राज्यवादियों ने सन् 1930 के पश्चात् भारत से 13 करोड़ का 14 करोड़ पौण्ड के बीच सिर्फ ''शुल्क'' के रूप में धन प्राप्त किया था। जबकि भारत इतने ही धन से भिलाई के आकार के तीन इस्पात के कारखानों का निर्माण कर सकता था जोकि भारत के इस साम्राज्यवादी युग की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण साबित होते।''[70] भारत से हो रहे इस धन –प्रवाह के सम्बन्ध में सर जॉन स्टेची ने बड़ी ही चालाकी एवं धूर्धता से उत्तर दिया, ''भारत सचिव भारत में सरकारी कोष के नाम बिल देता है, जिसका भुगतान भारत में सार्वजनिक राजस्व की राशि के में किया जाता है, बाद में इन्हीं बिलों के भुगतान के फलस्वरूप भारत में व्यापारी और इंग्लैण्ड में भारत – सचिव को धन प्राप्त होता है।[71]

धन के प्रवाह का आर्थिक प्रभाव

भारती में इतनी बड़ी मात्रा में प्रतिवर्ष धन के प्रवाह के कारण बहुत ही विरोध किया गया। ''अंग्रेज टिड्डियों के दल के रूप में भारत आये और देश की धन–सम्पत्ति लूटकर चले गये और जिसे उन्होंने अपने देश में खर्च किया। जबकि दूसरी ओर मुसलमान शासक जिन्होंने भारत को अपना घर मान लिया था तथा उन्होंने यहा के लोगों से लिया, वह वापिस उन्हीं लोगों के पास चला गया, उनके बेकार खर्चों से भी

---

66. नौरोजी, दादाभाई : पावर्टी एण्ड अन ब्रिटिश रूल इन इण्डिया।
67. डिगबाई, विलियम : प्रॉसपरस् ब्रिटिश इंडिया, लंदन
68. नौरोजी दादाभाई : पावर्टी एण्ड अन ब्रिटिश रूल इन इंडिया
69. दत्त, आर0सी0 : भारत का आर्थिक विकास
70. पैवलोव, वी0आई0 : इकोनॉमिक फ्रीडम वर्सेस इम्पेरीलिजम (न्यू देहली), पृष्ठ सं0 – 7
71. स्ट्रेची, सर जॉन : भारत (1888, लंदन) पृष्ठ सं0 – 115

लोगों को लाभ पहुँचा था।''[72] अतः ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत धन का प्रवाह अंग्रेजी सरकार की शासन प्रणाली का एक हिस्सा था जोकि निरन्तर प्रतिवर्ष बढ़ता ही जाता था। दादाभाई नौरोजी ने इस धन के प्रवाह को ''अनिष्ठों का अनिष्ठ'' के नाम से पुकारा। सन् 1905 ई0 में सुन्डरलैण्ड को लिखे गये एक पत्र में उन्होंने ककहा – ''भारत की अर्थव्यवस्था बहुत अधिक खराब है। भारत में मालिक और नौकरी की स्थिति नहीं है बल्कि उससे भी खराब है यह तो उन लुटेरों के हाथ में लूटे जाने वाले देश की अवस्था है जहाँ लुटेरा निरन्तर हांथ – पर – हांथ मारकर सब कुछ लूटे ही जा रहा है। अंग्रेजों से पहले भी भारत में बहुत से लुटेरे आये और लूट कर चले गये, परन्तु यह लुटेरे यहाँ से जाने का नाम ही नहीं ले रहे।।''[73]

भारत से धन के प्रवाह और भारत की गरीबी के सम्बन्ध में अंग्रेज अर्थशास्त्रियों ने कटु आलोचना की है। उन्होंने कहा कि – ''धन के प्रवाह की क्योंकि विदेश व्यापार और भारत से निर्मित भारतीय राष्ट्रीय आय का एक छोटा–सा अंश ही था।''[74] जबकि दूसरी ओर यह कहा गया था कि ''इंग्लैण्ड को अंग्रेजों की सेवाओं के बदल में या फिर भारत में लगायी गयी पूजी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिलता है।'' [75] अंग्रेज अर्थशास्त्रियों ने भारत में व्याप्त गरीबी के सम्बन्ध में कहा था कि भारत में जनसंख्या अर्थशास्त्र के सामान्य नियमों के अनुसार बढ़ती ही जा रही है। भारत में गरीबी ऊपर से नहीं लादी गयी बल्कि भारत की लगातार बढ़ती हुयी जनसंख्या इस बात के लिए उत्तरदायी है। किन्तु दादाभाई नौरोजी ने उनकी इस बात की कठोर भर्त्सना की। उन्होंने उनके इस विचार का खण्डन करते हुए स्पष्ट किया, ''हम सभी को यहाँ की अधिक जनसंख्या होने का ताना दिया जाता है जबकि वे इंग्लैण्ड के द्वारा की गयी धन की निकासी से उत्पन्न बर्बादियों को बिल्कुल ही भूल जाते हैं।'' [76] उन्होंने अंग्रेज अधिकारियों तथा जनता को आँकड़े देकर यह स्पष्ट कर दिया कि इंग्लैण्ड तीन व चार करोड़ पौण्ड की दर से भारतीय साधनों का शोषण करता है और यही भारती की गरीबी का मुख्य कारण है।

इस प्रकार भारत से लगातार प्रतिवर्ष बहुत अधिक मात्रा में धन चले जाने के कारण भारत की आर्थिक स्थिति डांवाडोल हो गयी और भारत में चारों तरफ गरीबी और बेरोजगारी की समस्या फैल गयी जिसका भारतीय कृषि पर भी बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। भारत के निवासियों का प्रमुख कार्य प्रारम्भ से ही खेती करना था। भारत की 8.3 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है और 69.8 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर ही निर्भर थी। भारतीय कृषकों की स्थिति यूरोपीय सभ्यता से बिल्कुल अलग थी, भारत में ऐसा कोई भी वर्ग नहीं था जिसको कि जमीन पर पूर्ण अधिकार प्राप्त हो। ''भारत की भूमि, जनजाति या ग्राम, समुदाय, गोत्र और बिरादरी की होती थी यह कभी–भी सम्राट की सम्पत्ति नहीं समझी गयी।''[77] सम्राट भूमि का मालिक न होने के कारण भारत में किसी भी उच्च वर्ग का जन्म नहीं हो सकता जिसका कि जमीन पर अधिकार हो। ''जमीन का स्वामित्व किसानों के अतिरिक्त अन्य किसी के अधिकार में नहीं था, न तो

[72]. भारतीय समाचार पत्र, 1896 का
[73]. यशपाल और ग्रोवर : आधुनिक भारत का इतिहास, पृष्ठ सं0 – 617
[74]. सरकार, सुमित : आधुनिक भारत (1885–1947) पृष्ठ सं0 – 47
[75]. स्ट्रेची, सर जॉन : भारत, पृष्ठ सं0 – 115
[76]. नौरोजी, दादाभाई : पावर्टी एण्ड अन ब्रिटिश रूल इन इंडिया।
[77]. मुखर्जी, राधा कमल : लैण्ड प्राब्लम्स इन इंडिया (1933) पृष्ठ सं0 – 16

सामंतियों के काल में और न ही सम्राटों के काल में था।''[78] देश में सम्राट के सामंतियों को सिर्फ इतना अधिकार था कि वे गावों से कर प्राप्त कर सकता था। सामंती गावों का केवल तहसीलदार होता था, जिसका प्रमुख कार्य कर वसूली का होता था। भारतीय शासन में विभिन्न कार्यप्रणालियों के द्वारा भूमि – कर का निर्धारण एवं उसकी प्राप्ति की प्रक्रिया थी। ''सभी सरकारों का प्रशासनिक ढाचा करके निर्धारण एवं कर की वसूली से सम्बन्धित था। इस कारण देश के प्रशासनिक एवं वित्त के इतिहास के निर्माण में कर–प्रणाली एवं इसको कार्यान्वित करने का ढ़ंग सबसे अधिक महत्वपूर्ण था। 19वीं शताब्दी के अन्त तक भारत में कृषि देश की आर्थिक स्थिति की सबसे महत्वपूर्ण आधार थीं। किसानों एवं उत्पादन के भाग्य का आधार कल लगान की मात्रा का निर्धारण एवं उसकी वसूली था।''[79] भारत में किसानों की अच्छी स्थिति का श्रेय प्रशासन को ही था। जब कर साधारण मात्रा में लिया जाता था तो प्रशासन को उदार तथा जनता का हितकर माना जाता था और जब इसमें आवश्यकता से अधिक वृद्धि कर दी जाती थी तो प्रशासन को क्रूर एवं अत्याचारी कहा जाता था।

भारत में मुस्लिम बादशाहों के काल में जो भी आवश्यक परिवर्तन किये जाते थे उनका भारतीय कृषि व्यवस्था व उसके उत्पादन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता था। यद्यपि उस समय भी रूपयों – पैसों के द्वारा कर देने की प्रणाली आरम्भ की गयी थी, लेकिन भूमि का वास्तविक अधिकारी ग्राम समुदाय ही था। मध्यकाल में अनेक शासकों ने कृषि को उन्नत करने के लिए नहरें, बाध, यातायात के लिए सड़कों एवं राजमार्गों का निर्माण कराया एवं अकाल के समय भूमि– कर माफ दिया जाता था। ''अंग्रेजों की भारत पर सफलता प्राप्ति के समय तक कुल मिलाकर भारत की आर्थिक स्थिति बिल्कुल ठीक थी। इस समय तक सभी जातियों के लोगों को रोजगार के समान अवसर प्राप्त थे आत्मनिर्भर ग्राम समाज था जहाँ पर भिन्न भिन्न वर्गों के लिये वंशानुगत काम–काज थे।''

[78]. मुखर्जी, राधा कमल : लैण्ड प्राब्लम्स इन इंडिया (1933) पृष्ठ सं0 – 36
[79]. दत्त, रामेश : भारत का आर्थिक इतिहास, भाग–1, पृष्ठ संख्या – 15

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

भारतीय लोकतन्त्र एवं मतदान व्यवहार

डा0 विजय प्रताप सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर
डिर्पाटमेंट ऑफ पोलिटिकल साइंस
दयानंद एंगलो वेदिक कॉलेज कानपुर

सार

वर्तमान में लोकतन्त्र सबसे अधिक स्वीकार्य शासन पद्वति है। लोकतन्त्र के प्रचलित प्रकार, अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र में जनता निर्वाचन के द्वारा अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करती है।निर्वाचकगण अर्थात मतदाता अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करते हैं। सामान्यतः मतदाता कुछ बातों को आधार बनाकर मत (वोट) देता है। इस विषय में कुछ निश्चयात्मक कारकों की खोज की जा सकती है। इनमें सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक कारक मतदाता के व्यवहार को केन्द्रीय रूप से प्रभावित करते हैं। वर्तमान सूचना क्रान्ति के युग में प्रचार भी मतदान व्यवहार पर विशिष्ट प्रभाव डाल रहा है। किसी राजनीतिक व्यवस्था में मतदान नागरिकों की राजनीतिक प्रक्रिया में सहभागिता का द्योतक है। मतदान प्रक्रिया लोकतान्त्रिक व्यवस्था के अस्तित्व–निर्माण एवं शासन–संचालन की आधारशिला है। जनतान्त्रिक व्यवस्थाओं में मतदान एक ऐसी सशक्त प्रक्रिया एवं साधन है, जिसमें भागीदारी करके जन साधारण अपनी इच्छानुसार प्रतिनिधियों का चयन करते हैं और राजनीतिक सत्ता की जन उत्तरदायी प्रकृति–प्रवृत्ति तथा जन सम्प्रभुता की अवधारणा की एक सीमा तक अपने प्रतिनिधियों पर नियंत्रण भी रखते हैं। इस प्रसंग में मैकेंजी की उक्ति कि, ''चुनाव किसी संगठन के नियमों द्वारा स्वीकृत कार्यविधि का वह स्वरूप या प्रकार है, जिसके माध्यम से सभी या कुछ सदस्य मिलकर संगठन में व्यक्ति या व्यक्तियों को सत्ता के पदधारण हेतु चयनित करते हैं।

कूट शब्द : राजनीतिक दला, चुनाव, जनतान्त्रिक व्यवस्था

परिचय

किसी भी राजनीतिक संस्था में चुनाव, सत्ता के निर्धारित पदों को प्राप्त करने की खुली या बन्द प्रतियोगिता है और जिस विधि से जनसाधारण अपने प्रतिनिधियों के चयन के लिये अपनी सार्वभौम शक्ति का प्रयोग करते हैं, उसको मतदान व्यवहार की संज्ञा दी जाती है। चुनावी राजनीति और मतदान प्रक्रिया, दोनों अन्योन्य राजनीतिक प्रक्रिया हैं, जो लोकतंत्र में राजनीतिक सत्ता के औचित्यपूर्ण स्वरूप का निर्माण करती है और सत्तारूढ़ राजनीतिक दलों को औचित्यपूर्ण शक्ति का अधिकारी बनाती

हैं।(ग्रीन,2002,14)राजनीति में मतदान मात्र प्रतिनिधियों के चयन तक ही सीमित नहीं है, अपितु मतदान सक्रिय राजनीतिक सहभागिता का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। मतदान के माध्यम से जन साधारण अपनी राजनीतिक व्यवस्था एवं सरकार में अप्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित होते हैं जिससे उन्हें सरकार के राजनीतिक दायित्व का भी बोध होता है। मतदान किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में शासक एवं शासित वर्ग के मध्य सूचनाओं–सम्पर्कों के आदान–प्रदान का माध्यम है। एडवर्ड शिल्स ने हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित करने का प्रयास किया है कि ''मतदान के माध्यम से व्यक्ति अपने महत्व तथा अपनी मनोवृत्ति को सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रतीकों के साथ संगठित करने में सफल होता है।'' मतदान प्रक्रिया के कारण राजनीतिक निर्णय लेने वाले, नीतियों का निर्धारण एवं कार्यान्वयन करने वाले, राजनीतिक दलों का ध्यान मतदाता वर्ग की मांगों, आवश्यकताओं और सरकारी स्तर से उसकी पूर्ति किये जाने वाले प्रतिशत की मात्रा की ओर आकृष्ट होता है। डाउले एवं ह्यूज़ का भी कहना है कि, ''मतदान प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य राजनीतिक दलों को यह अनुभव कराते रहना है कि उन्हें राजनीतिक पदों पर आसीन कराने का अधिकार जनता के हाथों में निहित है और मतदान प्रक्रिया के आधार पर जनता उन्हें सत्ता से वंचित भी कर सकती है।''लोकतान्त्रिक प्रणाली में मतदान का आधार जनविश्वास है जिसके आधार पर राजनीतिक दलों के प्रत्याशी जनता के समर्थन द्वारा राजनीतिक पदों पर एक निश्चित अवधि के लिए चयनित किए जाते हैं, परन्तु जनसमर्थन प्राप्त न होने पर उन्हें पराजय का भी सामना करना पड़ता है। 'मतदान व्यवहार' वह प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति अपने विचारों को घोषित तथा अघोषित रूप से व्यक्त करता है। चुनाव एवं निर्वाचकीय प्रक्रिया से सम्बन्धित एक अन्य पहलू मतदान आचरण है। डोनाल्ड ई. स्टोक्स ने कहा है– ''मतदान व्यक्तिगत प्राथमिकताओं का सामूहिक निर्णयों में समाहार करने का एक साधन है।'' मतदान आचरण का तात्पर्य व्यक्ति के मतदान को प्रभावित करने वाले कारकों के अध्ययन से है, ताकि यह ज्ञात किया जा सके कि व्यक्ति को मताधिकार का प्रयोग करने के लिये कौन से तत्व प्रेरित करते हैं तथा कौन से तत्व निरुत्साहित करते हैं? द्वितीय स्तर पर इस बात का भी अध्ययन किया जाता है कि कौन से तत्वों से प्रभावित होकर व्यक्ति एक विशेष प्रत्याशी और एक विशेष राजनीतिक दल के पक्ष में अपने मताधिकार का प्रयोग करने की आवश्यकता को अनुभव करते हैं। मतदान व्यवहार को प्रभावित करने में 1). सामाजिक कारक– धर्म, जाति, वर्ग, परिवार, क्षेत्रीयता, गुटबन्दी के अतिरिक्त– आयु, लिंग, आय, व्यवसाय, ग्रामीण एवं नगरीय निवास। 2). राजनीतिक कारक– दलीय नीतियाँ, दलीय संगठन, दलीय प्रतिबद्धता, स्थानीय सत्ता, चमत्कारी दलीय नेतृत्व योगदान देते हैं।

मतदाताओं का वर्गीकरण निम्न तीन आधारों पर किया जा सकता है–

पहला– सामाजिक आर्थिक ढांचे, धर्म, वर्ग तथा क्षेत्र के आधार पर।

दूसरा– एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में मानसिक भिन्नता के आधार पर।

तीसरा– एक सामाजिक समूह तथा दूसरे सामाजिक समूह के सदस्यों में वैचारिक मतभेद के आधार पर।

प्रचार–प्रसार के माध्यम से मतदाताओं को जोड़े रखने का प्रयास करते हैं। राजनीतिक दलों के स्थायी मतदाता ही चुनाव प्रचार में रुचि लेकर भागीदारी भी करते हैं। वह मतदाता जो रेडियो, टेलीविजन तथा समाचार–पत्रों के माध्यम से राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेते हैं, वह चुनाव प्रचार से पूर्व ही अपना मत निर्धारित कर लेते हैं। क्योकि दूर–संचार प्रणाली मतदाताओं को राजनीतिक गतिविधियों से परिचय कराती

हैं। चुनाव प्रसार के संदर्भ में यह पाया गया है कि सामाजिक गुटों पर किसी ऐसे व्यक्ति विशेष का भी प्रभाव पड़ता हैजो चुनाव परिणामों को आकस्मिक रूप में परिवर्तन करने की सामर्थ्य रखता है। किसी मतदाता का किसी राजनीतिक दलके पक्ष में मतदान मात्र व्यक्तिगत निर्णय नहीं होता, अपितु उससे जुड़े हुए सामाजिक चरों का भी उसमें एक निर्णायक योगदान होता है। चूंकि राजनीतिक दल, वर्ग विशेष तथा धर्म विशेष के महत्वपूर्ण व्यक्तियों के माध्यम से भी अपने–अपने धर्म व वर्ग के लोगों को प्रभावित करते हैं। अतः मतदाता उनके द्वारा निर्देशित राजनेता या प्रत्याशी को अपना मत देते हैं।(लैजरफिल्ड,1967,148)राजनीतिक दल मतदाताओं को दो प्रकार से आकर्षित करने का प्रयास करते हैं। पहला– किसी सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण व्यक्ति के माध्यम से जनता को अपनी ओर आकर्षित करके तथा दूसरा– आधुनिक प्रचार–प्रसार की तकनीक का प्रयोग करके जनता को अपनी कार्य तथा नीतियों से अवगत कराना हैं। सामाजिक कारकों का मतदान व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता इसे निम्नवत स्पष्ट किया गया है।

सामाजिक कारक मतदान व्यवहार की दीर्घकालीन स्थिरता को समझने में सक्षम है। परन्तु प्रत्येक चुनाव में मतदाताओं के व्यवहार में परिवर्तन, मतदाता का किसी सामाजिक समूह या समुदाय के संदर्भ में विचार तथा एक सामाजिक समूह के लोगों का दूसरे सामाजिक समूह के विचारों से मतभेद होना आदि कारणों को समझने में असफल रहता है।

एक व्यक्ति के लिये किसी सामाजिक समूह का चयन परिस्थितियों पर भी निर्भर करता है। ये परिस्थितियाँ पूर्ण रूप से पारिवारिक मूल्य, विचारधारा, सहकर्मी तथा मित्रों के विचार से प्रभावित होती हैं और जहाँ तक इन सामाजिक तथ्यों का प्रश्न है, ये सब एक धर्म से दूसरे धर्म के लोगों की मानसिकता के आधार पर भिन्न होते हैं और सामाजिक पक्षपात को जन्म देते हैं। राजनीति में सामाजिक पक्षपात एक अनावश्यक चर है जो मतदाता को उचित राजनीतिक दल का चयन करने में भ्रमित करता है। व्याख्यात्मक ढ़ांचा जो मतदान व्यवहार के चरों को एक दूसरे से संगठित करता है, उसे 'फनल ऑफ कैजुएलिटी' कहते हैं। मतदान व्यवहार के कार्यक्रमों को संगठित करने का कार्य यह मॉडल करता है। इस मॉडल में सामाजिक–आर्थिक, इतिहास, मूल्यों तथा समूह या समुदाय के सदस्यों को समीपस्थ चरों जैसे– मुद्दे, प्रत्याशी, चुनाव प्रचार–प्रसार, राजनीतिक तथा आर्थिक स्थिति, सरकार का व्यवहार, मित्रों के प्रभाव सम्मिलित है।

आरेख.1

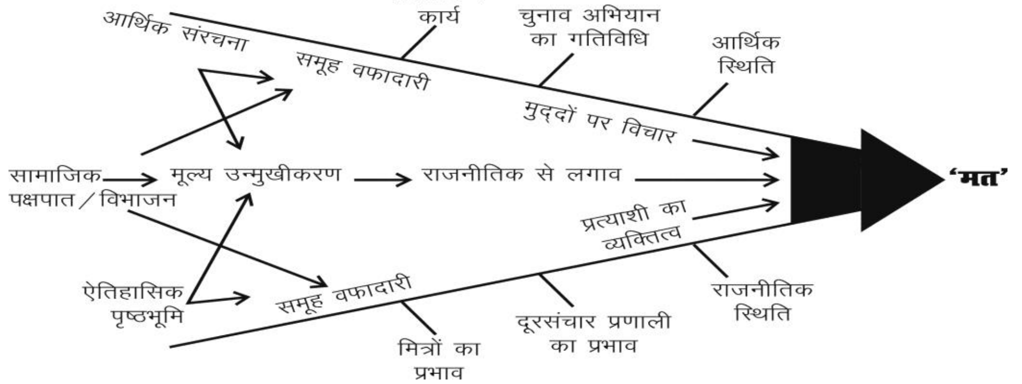

इस मॉडल के प्रारम्भ में देखा जा सकता है, कि सामाजिक चरों का सामाजिक विभाजन या पक्षपात पर प्रभाव पड़ता है। सामाजिक विभाजन किसी प्रत्याशी को समझने, चुनावी मुद्दों, प्रचार–प्रसार की घटना, जो दूरसंचार प्रणाली के द्वारा मतदाता तथा उनके परिवार तथा मित्रों के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस सामाजिक विभाजन व विभिन्न कारकों के प्रभाव का परिणाम 'मत' (Vote) होता है। मतदान के लिए मतदाता सरकार के कार्य, चुनाव आयोग की गतिविधि, आर्थिक स्थिति, मुद्दे मित्रों का प्रभाव, राजनीति से लगाव, प्रचार–प्रसार इत्यादि तत्वों से प्रभावित होता है व अपने मत की दशा व दिशा तय करता है। यह मॉडल सामाजिक विभाजन को केन्द्रीय भूमिका में रखते हुए उसके दीर्घकालीन चरों के मतदान व्यवहार पर अल्पकालीन प्रभाव को बताता है।

सामाजिक मतभेद भी चुनाव परिणाम को प्रभावित करते हैं, जिससे चुनाव में अनिश्चितता का वातावरण उत्पन्न होता है। इसके फलस्वरूप अलग–अलग विचारधाराओं तथा संदिग्ध अवस्था में सामाजिक समूहों का उद्गम होता है। अलग–अलग राजनीतिक दल अलग–अलग सामाजिक गुटों को आकर्षित करनेके लिये लुभावने वायदे करते हैं, जिससे एक सामाजिक गुट दूसरे सामाजिक गुट को अन्य राजनीतिक दलों से जुड़ा हुआ समझता है। परिणामस्वरूप सामाजिक राजनीति की गुटबाजी प्रेरित हो जाती है। वस्तुतः मतदान व्यवहार का निरीक्षण मतदाता के सन्दर्भ में न करके राजनीतिक दलों के कार्यों, संचार की भूमिका तथा देश की अर्थव्यवस्था के स्तर को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए, जिससे मतदाता तथा राजनीतिक दलों के मध्य दूरी समाप्त हो सके।

एन्थोनी डाउन्स ने 'एन इकोनॉमिक थ्योरी ऑफ डेमोक्रेसी' (1957) में मतदान व्यवहार को समझने का प्रयास किया। उनके अनुसार– ''राजनीतिक दल तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में कोई विशेष अन्तर नहीं होता। एक तरफ बहुराष्ट्रीय कम्पनी उपभोक्ता को आकर्षित के लिये आकर्षक उपहारों को अपने उत्पादन के साथ जोड़ती है, तो दूसरी तरफ राजनीतिक दल मतदाता को आकर्षित के लिये आकर्षक वायदे तथा नये कानूनों को बनाने का प्रलोभन देते हैं।'' सामान्यतः मतदाता तीन प्रकार के तत्वों से प्रभावित होते हैं। प्रथम– जो प्रत्याशी चुनाव में खड़ा है उसकी पार्टी वही हो, जिसको वह हमेशा मतदान करता रहा है, द्वितीय– मतदाता राजनीतिक दल के सिद्धान्तों तथा प्रत्याशी के कार्यों से प्रभावित होता है। तृतीय– मतदाता उन प्रत्याशियों को मत देता है जो कि उसके हित के अनुरूप नीतियों को गठित करने का वायदा करते हैं। मतदाता यह नहीं देखता कि वह किस राजनीतिक दल से सम्बन्ध रखता है, वह मात्र नीतियों के आधार पर मत देता हैं। प्रथम प्रकार का मतदाता राजनीतिक दल के आधार पर, द्वितीय सिद्धान्त व प्रत्याशी के व्यक्तित्व के आधार पर व तीसरा सोच समझकर नीति के आधार पर अपना मत देता है जो मतदाता इन तीनों के सम्मिश्रण को वोट देते हैं वह विवेकशील की श्रेणी में आते हैं व अन्य भावनात्मक की श्रेणी में आते हैं।

राजनीतिक दल किसी चुनाव में दो कारणों से सफलता चाहते हैं, 1. अपनी प्रतिष्ठा को बढ़ाने तथा बनाये रखने के लिये। 2. शक्ति को प्राप्त करने के लिये। शक्ति का प्रयोग यह दल अपने हितोंकी वृद्धि के लिये व चुनाव जीतने के लिए करता है। राजनीतिक दलों का एक ही सिद्धान्त होता है कि वह सामर्थ्य तथा वातावरण का अधिक से अधिक अपने हित में प्रयोग कर सकें,ताकि उन्हें सत्ता सुख प्राप्त हो सके। डाउन्स के अनुसार– ''राजनीतिक दल चुनाव से पूर्व नीतियाँ अपनाते हैं, न कि चुनाव में विजय प्राप्ति के पश्चात्।'' : मतदाता तथा राजनीतिक दल दोनों के निर्णय,

व्यक्तिगत स्वार्थ तथा व्यक्तिगत लाभ पर आधारित होते हैं। जबकि एक लोकतान्त्रिक राजनीतिक व्यवस्था में मतदाता का निर्णय तथा राजनीतिक दलों के प्रचार–प्रसार को उत्तरदायी तथा विश्वासपात्र होना चाहिए।(डाउन्स,1957,28)

राजनीतिक दल शक्ति व सत्ता सुख के लिए चुनाव में भागीदारी करते हैं। जब कोई राजनीतिक दल चुनाव में अत्यधिक मतों से विजयी होता है, तो मतदाताओं को यह उम्मीद होती है, कि वह राजनीतिक दल निष्पक्ष व्यवहार के साथ अपने वायदों को पूरा करेगा। परन्तु व्यवहार में राजनीतिक दल इस प्रकार अपना कार्य नहीं करते हैं। राजनीतिक दलों के चुनावी मुद्दे सामाजिक–आर्थिक ढांचे जैसे– वर्ग, धर्म, क्षेत्र पर निर्भर करते हैं। यद्यपि राजनीतिक दल अपने घोषणापत्र में वह सब लिखते हैं, जो जनता के लिये आवश्यक होता हैव जिससे मतदाता भावनात्मक रूप से उस राजनीतिक दल से जुड़ जायें। परन्तु व्यवहार में इनमें से अधिकांश घोषणाओं पर अमल नहीं होता है। राजनीतिक दल किसी समूह की आवश्कताओं तथा इच्छाओं को जानने के लिये सामाजिक सम्बन्धों का प्रयोग भी करते हैं व अपनी घोषणाओं व वायदों से उनको आकर्षित कने का प्रयास भी करते हैं।(ब्रेलशन,1954,106)राजनीतिक दल इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि उनकी घोषणायें या वायदे अन्य राजनीतिक दलों की तुलना में अलग तथा श्रेष्ठ हो। ताकि वे बड़ी संख्या में मतदाताओं का ध्यान आकर्षित कर सकें। इसलिए कई राजनीतिक दल व्यवसायिक तथा उच्च वर्ग के व्यक्तियों के हित के लिए अपनी नीतियाँ घोषित करते हैं तथा कई राजनीतिक दल गरीब, श्रमिकों तथा निम्न वर्ग के लोगों के हित में वायदे करके मतों को प्राप्त करना चाहते हैं।

मतदाता दो राजनीतिक दलों में पूर्ण भेद तब ही कर सकता है ,जब उसमें उत्सुकता, चर्चा, उत्साह तथा तर्कसंगत ज्ञान हो। यह विशेषताएं बहुत ही कम मतदाताओं में पायी जाती हैं। क्योंकि अधिसंख्यक मतदाता राजनीतिक गतिविधियों का सीमित ज्ञान रखते हैं। मतदाताओं को कुछ राजनीतिक समझ होनी आवश्यक है। जैसे– कौन से राजनीतिक मुद्दे उचित हैं। मुद्दे यथार्थ पर आधारित हैं, या मात्र भ्रामकता पर, राजनीतिक दलों का पिछला कार्यकाल तथा उनके उद्देश्य क्या व कैसे थे? तथा राजनीतिक दल के सत्ता में आने पर वास्तव में क्या परिणाम आ सकते हैं? चूंकि ऐसी समझ व दृष्टि बहुत कम मतदाताओं में होती है। इसलिए अधिकांश मतदाता कुछ सामाजिक गुटों के कथनानुसार किसी भी राजनीतिक दल को बिना सोच विचार के अपना मत दे देते हैं। तर्कसंगत सिद्धान्त के अनुसार ''मतदाता पर राजनीतिक दल के सिद्धान्तों से अधिक उनके सत्ता में आने के पश्चात् किये गये कार्यों का प्रभाव पड़ता है।'' हालांकि मतदाता को सरकारी नीतियों व कार्यों की पूरी समझ नहीं होती और उनको सरकारी कार्यों व नीति को समझाने में समय व परिश्रम दोनों लगता हैं। परन्तु यदि फिर भी मतदाता राजनीतिक दल के सिद्धात व कार्यों को एक दूसरे से जोड़ने में असफल रहता है, तो यह किसी भी राजनीतिक दल के भविष्य के लिए उचित नहीं होता है। आमतौर पर चुनाव का लक्ष्य सरकार का चयन करना होता है न कि सिद्धान्तों का। प्रत्येक मतदाता द्वारा राजनीतिक दल के चुनाव में विजयी होने के सन्दर्भ में पूर्व अनुमान लगाया जाता है। मतदाता उसी राजनीतिक दल को अपना मत देना पसन्द करते हैं जिसके सफलता की सम्भावना अधिक होती है। परन्तु यदि मतदाता को यह ज्ञात हो जाय, कि वह जिस राजनीतिक दल को 'मत' देने जा रहा है उसकी सफलता संदिग्ध है, तो वह अपना मत किसी अन्य राजनीतिक दल को भी दे सकते हैं। ऐसा करने से उनके मत का मूल्य बना रहेगा व योग्य प्रत्याशी का चयन भी हो सकेगा। परन्तु चुनावी राजनीति के भ्रामक प्रचार के चलते ऐसा विवेकपूर्ण निर्णय

अधिकांश मतदाताओं द्वारा नहीं लिया जाता है, जिससे कभी–कभी भ्रष्ट व अपराधिक छवि वाले राजनेता विजयी हो जाते हैं।

राजनीतिक दल की विचारधारा तथा मतदान व्यवहार

राजनीतिक दलों की विचारधारा का मतदान व्यवहार पर गहरा प्रभाव पड़ता है। केम्बेल ने भी राजनीतिक दल की विचारधारा को मतदान व्यवहार के कारक के रूप में अभिन्न माना है। उन्होंने इसकी व्याख्या चार बिन्दुओं के आधार पर करने का प्रयास किया है– (1). मतदाता प्रत्येक राजनीतिक दल के विषय में विचार का सार (सिद्धान्त) बनाते हैं, तथा उसके आधार अच्छे व बुरे का निर्णय करते हैं। मतदाता व्यापक व अमूर्त विचारों से राजनीतिक दलों द्वारा उठाये गये विशिष्ट मुद्दों के विषय में अपनी राय बनाते हैं। (2). मतदाता अपने समूह को अधिक महत्व देते हैं तथा ये जानने का प्रयास करते हैं कि कौन सा राजनीतिक दल व प्रत्याशी उनके समूह (किसान, मजदूर वर्ग, गरीब आदि) के विषय में किस प्रकार के विचार रखता है? इस प्रकार के मतदाता सामाजिक विकास की दीर्घकालीन योजनाओं के विषय में कम चिन्ता करते हैं। तीसरे स्तर के मतदाता समूह के हितों का विचार न करके अपने परिवार के हितों का विचार करते हैं और पारिवारिक हितों के आधार पर वह राजनीतिक दल के विषय में विचारधारा बनाते हैं। चौथे स्तर के मतदाता राजनीतिक दलों के मध्य नीतिगत मतभेद की अनदेखी करते हुए प्रत्याशी की व्यक्तिगत विशेषताओं (उनकी लोकप्रियता, ईमानदारी, धार्मिक प्रवृत्ति व व्यक्तिगत जीवन) के विषय में विचार करते हैं।केम्बेल ने 1960 में अपनी पुस्तक 'द अमेरिकन वोटर' में लिखा है, ''मतदाता मूर्ख नहीं हैं, वह अपनी प्राथमिकताओं के अनुसार अपनी विचारधाराओं को भी परिवर्तित कर लेते हैं।'' इस आधार पर कहा जा सकता है कि अधिकांश मतदाता राजनीतिक दलों के कार्यों, समूह के प्रति विचार, पारिवारिक हित या प्रत्याशी की व्यक्तिगत विशेषताओं को ध्यान में रख कर मत देते हैं, जिस राजनीतिक दल की विचारधारा के साथ वह अपने को जुड़ा पाते हैं। परन्तु कभी–कभी प्रत्याशी का व्यक्तित्व विचारधारा से ऊपर उठ जाता है तो मतदान प्रत्याशी के व्यक्तित्व के आधार पर किया जाता है।

वर्तमान में विकसित लोकतान्त्रिक देशों में मतदान व्यवहार के एक कारक के रूप में अर्थव्यवस्था को भी माना जा रहा है, क्योंकि आर्थिक विकास व्यक्ति तथा राज्य दोनों के लिए आवश्यक है। सरकार का मुख्य कार्य अर्थव्यवस्था का प्रबन्धन करना है। आधुनिक लोकतन्त्र में जनता के पास सबसे महत्वपूर्ण शक्ति मत देने की शक्ति है। जिससे वह सत्तारूढ़ दल को हटाने के लिये संगठित होकर नवीनीकृत जनादेश का निर्माण भी कर सकती है। चुनाव लड़ रहे राजनीतिक दलों को प्रायः अपने घोषणापत्रों में यह सुनिश्चित करना होता है, कि वह अपनी क्षमता से राज्य तथा लोगों की आर्थिक स्थिति को और श्रेष्ठ करेंगे। क्योंकि चयन की हुई सरकार सामान्यतः राज्य की अर्थव्यवस्था के लिए उत्तरदायी होती है। मतदाता अर्थव्यवस्था के स्वरूप के लिए सरकार को उत्तरदायी मानते हैं। मतदाता का सरकार के विषय में क्या विचार है तथा अर्थव्यवस्था की स्थिति कैसी है? उस पर भी चुनाव परिणाम निर्भर करता है। सत्तारूढ़ दल के लिए मत का अनुपात खराब व अच्छी अर्थव्यवस्था पर निर्भर करता है।

यद्यपि मतदान व्यवहार सामाजिक कारक, आर्थिक कारक, मनोवैज्ञानिक कारक, राजनीतिक दल की पहचान, प्रत्याशियों की पसन्द, ना पसन्द तथा राजनीतिक दलों के प्रदर्शन तथा वायदों पर भी निर्भर करता है। परन्तु यह जानना भी आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था मतदान व्यवहार को कैसे प्रभावित करती है? 'राजनीतिक अर्थव्यवस्था का

मतदान' पर प्रभाव के अध्ययन में लगे शोधकर्ता अर्थव्यवस्था के कारक को स्पष्ट करते हुए कहते हैं, कि 1/3 प्रतिशत मतदान अर्थव्यवस्था की गति से प्रभावित होता है। परन्तु कई शोधकर्ता इसको आवश्यक नहीं मानते हैं। जेफरीइवान्स का मत है कि, 'राजनीतिक दल की विशेषता उसके किये गये पिछले कार्यों से होती है न कि अर्थव्यवस्था की गति से'। इस सम्बन्ध में इनका विचार है कि चूंकि मतदाता अर्थव्यवस्था की पूरी सूचना नहीं रखते हैं। अतः यह कहना कदापि उचित नहीं होगा, कि मतदाता अर्थव्यवस्था के आधार पर अपना मत देते हैं।(लेविस,2002,113-121)

परन्तु सैन्डस इन तर्कों के उत्तर में कहते हैं, कि निश्चित ही मतदाता अर्थव्यवस्था की सम्पूर्ण जानकारी नहीं रखते हैं, किन्तु उन्हें यह ज्ञात होता है कि अर्थव्यवस्था में क्या परिवर्तन आया है? मतदाता अर्थव्यवस्था को प्रतिदिन की वस्तुओं के आधार पर देखते है और इसी से वह अनुमान लगाते है, कि अर्थव्यवस्था की स्थिति कैसी है। वस्तुतः बढ़ती मंहगाई, आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि, वस्तुओं की कमी आदि भी मतदाताओं को अर्थव्यवस्था की दशा व दिशा के विषय में आभास करा देती है। चूंकि साधारण मतदाता महगांई के बढ़ने को तत्कालीन सरकार की विफलता के रूप में देखते हैं। अतः उनका मतदान महंगाई पर नियन्त्रण न रखने वाली सरकार के विरोध में होता है। 2014 के लोक सभा चुनावों में कांग्रेस सरकार द्वारा मंहगाई पर नियन्त्रण न लगा पाना भी कांग्रेस सरकार की हार व भाजपा की विजय का एक कारण बना। इसके अलावा अर्थव्यवस्था की गिरती हुई स्थिति, कोलगेट, कामनवेल्थ गेम, स्पैक्ट्रम घोटाला आदि में अर्थव्यवस्था प्रभावित हुई, परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में गिरावट कांग्रेस की हार का कारण बनी। इस तरह,कि आर्थिक विषय मतदाताओं के व्यवहार पर निश्चयात्मक प्रभाव डालते हैं।

संदर्भ

1. मैकेजी,डब्यू.जे.एम.(1957),'इलेक्शन,' डेविड शिल्स सम्पादित टवस.5
2. फ्रैंकलिन, एम0, मैकी, टी0 टी0 एण्ड वैलेन, एच0 (1992), इलैक्टोरल चैंज रिसपोन्सेज इन वैस्टर्न कंट्रीज, कैम्ब्रीज यूनिवर्सिटी प्रेस
3. शिल्स, एडवर्ड (1965),'पॉलिटिकल डेवलेपमेन्ट इन दि न्यू स्टेट्स', ग्रॉन हेग
4. सूरी, के0 सी0 (2009), द इकोनोमिक एण्ड वोटिंग इन द फिफ्टीन्थ लोक सभा इलेक्शन, इकोनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, सितम्बर, 26, वॉल्यूम—प्ट न0—39

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

NAAGS KANPUR

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

विधि के स्रोत के रूप में याज्ञवल्क्य स्मृति

डॉ0 नवल किशोर मिश्रा
विधि संकाय
काशी हिंदू विश्वविद्यालय
वाराणसी

राज्यशास्त्र की भांति साहित्य एवं पुरातत्व से प्राचीन सभ्यता विधि स्रोत की जानकारी प्राप्त होती है। आदिम सभ्यता में परिवार और कबीलों के बनाये नियम ही विधिरुप में मान्य थे जिसके अनुसार कबीलों के सरदार न्याय करते और अपराधियों को दण्डित करते थे। महाभारत के शूांतिपर्व में राज्य के उदय के पूर्व की स्वर्णिम अवस्था का वर्णन करते हुए कहा गया है कि राज्य एवं दण्ड के अभाव में प्रजा धर्म द्वारा एक दूसरे की रक्षा करती थी और जीवन व्यतीत करती थी।[1] अर्थात् धर्म एवं समाज की प्रचलित मान्यताएं ही उस समय विधि अथवा नियम का कार्य करती थी। कालान्तर में सम्पत्ति के स्वामित्व एवं अराजकता की अवस्था व्याप्त होने पर ब्रह्मा ने सम्पत्ति के स्वामित्व एवं अराजकता की अवस्था व्याप्त होने पर ब्रह्मा ने दण्डनीति का उपदेश प्रजा को दिया था जिससे राज्य, राजा कर्मचारी की उत्पत्ति हुई। इस विवरण से ज्ञात होता है कि ब्रह्मा के दण्डनीति से विधि एवं व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ।[2] सामरांगणसूत्र मनुस्मृति, मत्स्यपुराण एवं दीर्घ निकाय आदि ग्रंथों से ज्ञात होता है कि विधि अथंवा दण्ड के अभाव में समाज अराजकता के भवंर में डूब रहा था और उस अराजक स्थिति से सुरक्षा हेतु राज्य का अम्युदय हुआ। इससे परोक्षतः ज्ञात होता है कि राज्य के अभ्युदय के साथ ही विधि अथवा कानून की भी स्थापना हुई जिससे समाज को नियंत्रित किया गया।[3] अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि मात्स्य न्याय से अभिभूति प्रजा ने समाज की सुरक्षा हेतु मनु को राजा बनाया जिसने विधि एवं नियम द्वारा समाज की रक्षा की।[4] कौटिल्य ने स्पष्ट रूप से कहा है कि समाज को समाज कंटको से मुक्त करने तथा प्रजा को सुख पूर्वक जीवन यापन करते हुए अपनी परम्परओं रूढ़ियों एवं धर्म–पालन करने का वातावरण बनाने हेतु न्याय

---

[1] महाभारत, शान्तिपर्व, 58 / 14–22
[2] वही, 66 / 17–28.
[3] समरांगण सूत्रधर, अध्याय–7, मनुस्मृति, 226 / 1, मत्स्य पुराण, 7 / 3, दीर्घ निकाय, भाग–2, पृ. 84–86.
[4] अर्थशासत्र, 1 / 9.

व्यवस्था की आवश्यकता हुई।[5] बौद्ध एवं जैन गंथों से भी प्राचीन विधि नियमों पर प्रकाश डाला गया है।[6]

प्राचीन आचार्यों ने धर्म को ही विधि माना है। जो धारण करे वहीं धर्म है।[7] अतः धर्म को न्याय व्यवस्था का आधार स्वीकार किया गया है।[8] धर्म के चार प्रमुख खोतों में श्रुति, स्मृति, सदाचार और आत्म संतुष्टि को समाविष्ट किया गया है।[9] नारद स्मृति में व्यवहार के चार अंगों का उल्लेख है–धर्म व्यवहार चरित्र और राजशासन।[10]

उपर्युक्त तथ्यो एवं साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि समाज एवं धर्म की प्रचलित मान्यताएँ, रीति–रिवाज एवं नैतिक तथा सामाजिक नियम ही विधि के प्रमुख स्रोत थे और उसी के अधार पर न्याय व्यवस्था अधारित थी। कलान्तर में जब राज्य व्यवस्था का उद्धव हुआ तो समाज की सुरक्षा हेतु नियम व कानून बनाय गये जिससे समाज एवं राज्य की सुरक्षा हुई। इसी प्रचीन राज्यशात्रियो ने 'दण्डनीति' को अत्यधिक महत्व प्रदान किया।[11] मनु ने दण्ड की महत्ता का विश्लेषण करते हुए उसे सम्पूर्ण प्रजा का रक्षक कहा है। जब सब सोते है तो दण्ड जाग्रत रहता है, वही सबकी रक्षा करता है। दण्ड ही धर्म है।[12]

जिस उपाय से मनुष्य असदाचार से निवृत्त और सदाचार में प्रवृत्त होता है उसे दण्ड कहते है।[13] दण्ड की उत्पत्ति दण्ड धातु से हुई है जिसका तात्पर्य नियंत्रण अथवा अवरोध से है।[14] ब्राह्मण ग्रन्थों में दण्ड का प्रयोग न्यायिक प्रशासन के रूप में हुआ है।[15] नियंत्रण होने से राजा को भी दण्ड कहा गया है।[16] दण्ड एवं धर्म को अभिन्न मानते हुए इसे ब्रह्मा द्वारा निर्मित बताया गया है।[17] यहाँ दण्ड का अभिप्राय विभिन्न अपराधों के लिए दिये गये प्रतिफल के रूप में ग्रहण किया गया है। महाभारत में दण्ड को भगवान विष्णु का रूप माना गया है।[18] मनु तथा याज्ञवल्क्य ने यहाँ तक कहा है कि अविचारपूर्वक दिया गया दण्ड नाश कर देता है।[19]

---

[5] वही, 3/1

[6] दीर्घ निकाय, भाग–2, पृ. 84–86., तेलपत्त जातक, महावग्ग, 1/70/3, चुल्लवग्ग, 4/6/9, कुरूधम्म जातक, 276.

[7] महाभारत, कर्ण पर्व, 69/58, धारयति इति धर्मः।

[8] वही।

[9] मनु, 2/22 –

वेदः स्मृति, सदाचारः चरित्र राजशासनम्
एतचर्तुविधं प्राहुः साक्षात् धर्म लक्षणम्।।

[10] नारद, 1/10 –

धर्मश्च व्यवहारश्व चरित्र राजशासनम।
चतुष्पाद, व्यवहारोऽयमुत्तरः पूर्वबाधकः।।

[11] अर्थशास्त्र, 1/3, 1/4

[12] मनु. 8/14 –

दण्डः शास्ति प्रजारू सर्वा दण्ड एवामिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्ड धर्म विदुर्बुधाः।।

[13] शुक्र, 4/1/43 –

निवृत्तिर सदांचारादूमन दण्डतश्व तत्।
येन संदभ्यते जन्तुरूपायो दण्ड एव स।।

[14] निरुक्त, 2/2, गौतम, 9/28,

[15] शतपथ ब्राह्मण, 5/4/4

[16] कामंदक, 2/15 – दमोदण्ड इति ख्यावस्तस्माद दण्डोमहीपति।

[17] मनु, 7/14–15 – ब्रह्मतेजोमयं दण्ड मसृजत्पूर्वमीश्वरः।

[18] महाभारत, शान्तिपर्व, 121/23.

दण्डो हि भगवान विष्णुदण्डो नारायण प्रभुः।

[19] मनु, 7/19 – विनाशयति सर्वतः। याज्ञवल्क्य

विधि के प्रमुख स्रोत –

प्राचीन भारत के विभिन्न राज्यशासत्र के अन्थों से प्राचीन विधि नियमों की जानकारी प्राप्त होती है। महाभारत में कहा गया है कि प्रारम्भ में ब्रह्मा ने समाज व्यवस्था स्थापित करने हेतु एक लाख श्लोकों वाले एक विशाल राज्यशास्र की रचना की। इसे शिव, विशालाक्ष, इन्द्र, वृहस्पति तथा शुक्र ने संक्षिप्त किया। राज्यशास्त्र के अन्य मान्यताओं में मनु, गौराशिरिस, भारद्वाज, मातरिश्वा, कश्यप, वैश्रवण, उतथ्य, वामदेव, शम्बर, कालकवृक्षीय, वसुहोम तथा कामंदक के नाम महाभारत के शान्तिपर्व में उल्लिखित है।[20] कौटिल्य का अर्थशास्त्र विधि श्रोत के रूप में काफी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। अर्थशास्त्र में उल्लिखित है कि कौटिल्य के पूर्व भी बहुत से आचार्यो ने रज्यशास्त्र की रचना की थी। जिनमें विशालक्ष, कणिक, भारद्वाज, पिशुनपुत्र एवं कि उजलक आदि आचार्यों का उल्लेख है। डॉ. अल्तेकर के अनुसार ये ग्रंथ यद्यपि मनुष्यों ने लिखे हैं परन्तु श्रेय देवताओं का ऋषियों को दिया गया है।[21] इसके अतिरिक्त कौटिल्य ने विभिन्न सम्प्रदायों का उल्लेख किया है, जिनमें 'मानवः, वार्हस्पत्या, औशानसाः, पराशरणः, आम्भीया' प्रमुख हैं। इसके साथ कौटिल्य ने और कई पूर्वाचार्यों के मतों का संग्रह किया है।[22]

उपर्युक्त अंथों में राजनीतिक सिद्धान्तों यथा षड्गुण्य, मंत्र, द्वैगुण्य मंत्र के साथ मंत्रिमण्डल, कोष, बल एवं दुर्ग से सम्बन्धित विषयों पर सविस्तार वर्णन किया गया है। इसके साथ ही इसमें दण्ड एवं व्यवहार से सम्बधित मान्यताओ पर प्रकाश डाला गया है। इस लिए उपर्युक्त अंथ विधि स्रोत के रूप में काफी महत्त्वपूर्ण है। इसी प्रकार कामंदकीय नीतिसार तथा शुक्रनीति विधि स्रोत के रूप महत्वपूर्ण ग्रंथ माने जाते है।[23]

समाज एवं व्यक्ति को नियत्रित करने के लिए समय–समय पर राज्य की ओर से कानून व्यवस्था थी। राजा का यह कर्त्तव्य था कि वह न्यायदान में निष्पक्ष रहे। स्मृति प्रणीत विधि नियमो के अनुसार ही न्याय करना उसका कर्त्तव्य था। प्राचीन भारत में राजा विधि निर्माता नहीं अपितु विधि–पालक था उसे दण्ड का संरक्षक कहा गया है। प्राचीन भारत में विधि–नियम विधान सभा द्वारा निश्चित नही किये जाते थे। जो धार्मिक स्वरूप के थे, वे श्रुति स्मृतियों द्वारा निर्धारित किये जाते थे। जो व्यवहारिक स्वरूप के थे, उनका ज्ञान व स्वरूप देश–धर्म, जाति–धर्म इत्यादि से निहित होता था। राजा को इससे अदल–बदल का अधिकार नहीं था। धार्मिक अन्थों के अनुसार विधि–नियम श्रेष्ठ माने जाते थे और राजा को भी उनका पालन करना होता था।[24] कहीं–कहीं विधान सभाओं द्वारा भी आवश्यकता पड़ने पर कानून का निर्माण किया जाता था, परन्तु अधिकतर परम्पराओं और प्रथाओं द्वारा निर्मित कानूनों का प्रयोग अधिक किया जाता था।

प्राचीन भारत अनेक छोटे–छोटे राज्यों में विभक्त था। अतः कानून में एकरूपता समस्त देशों में नहीं पायी जाती थी। प्रत्येक क्षेत्र में प्रथाएँ तथा परम्पराएँ पृथक–पृथक् थी। एक जनपद या राज्य में अनेक वर्ग, जातियाँ तथा निगम बने होते थे। इनके पृथक–पृथक् नियम होते थे, जिन्हें राज्य स्वीकार कर लेता था। इसके अतिरिक्त प्राचीनकाल में राजाओं का महत्त्व अधिक था, उनके द्वारा प्रकाशित आज्ञाएँ कानून का

---

[20] महाभार, शान्तिपर्व।

[21] डॉ. अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ. 5.

[22] वही, पृ. 5.

[23] वही, पृ. 5–6.

[24] वृहदारण्यक, 1/4/14 – तदेतत्वस्य क्षत्रं यद्धर्मः।

रूप रखती थी। धर्म का भी प्राचीनकाल में अधिक महत्त्व था। कोई भी कानून या नियम धर्म–विरुद्ध नहीं हो सकता था। धर्म का निर्धारण वेद, वेदांग, धर्मशास्त्र, स्मृतियाँ, उपनिषद तथा बौद्ध एवं जैन ग्रंथों द्वारा होता था।

वैदिककाल में वेदों का अधिक महत्त्व था। ये ग्रंथ ईश्वर प्रदत्त ज्ञान द्वारा ऋषियों ने निर्मित किये थे। प्रत्येक कानून वेदों की संहिताओं द्वारा पुष्टि या प्रमाणित माना जाता था। व्यक्तियों के आचरण उन धर्मग्रन्थों द्वारा नियन्त्रित था।[25] वशिष्ठ धर्म सूत्र में धार्मिक व्यवस्था का निर्धारण वेद, पुराण, धर्मशास्त्रों द्वारा किया गया है। वेदों को सूत्र ग्रन्थों में कानून का मुख्य आधार बताया गया है।[26]

मनु के मतानुसार, वेद, स्मृति, पुराण तथा सज्जन व्यक्तियों के वाक्य ही कानून का आधार होते हैं। इसके अतिरिक्त आत्म–तुष्टि भी कानून का आधार मानी जाती थी।[27] गौतम के विचार से कानून के निम्नलिखित आधार हैं[28]–

1. वेद और धर्मशास्त्र।
2. जाति–धर्म और कुल–धर्म।
3. व्यवहार।
4. शंका अथवा मतभेद होने पर आप्त पुरुषों का निर्णय।

आचार्य कौटिल्य का मत है कि कानून का मूल आधार धर्म, व्यवहार, चरित्र तथा राजशासन होता है। धर्म सत्य पर, व्यवहार साक्षियों पर चरित्र मनुष्यों के समूहों की परम्पराओं पर तथा राजशासन राजा की आज्ञाओं पर आश्रित है। कौटिल्य ने राजशासन को कानून का मुख्य अधार माना है। कौटिल्य का कथन है कि यदि किसी कारणवश धर्म व कानून में भेद पाया जाय तो उस समय न्याय को प्रधानता दी जानी चाहिए।[29] कौटिल्य के अनुसार समाज के विभिन्न घटको का अस्तित्व राज्य पर ही निर्भर करता है। समस्त विद्याओं, आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता एवं दण्ड़नीति का संरक्षण भी राज्य द्वारा होता है इसीलिए कौटिल्य ने दण्ड को ही उनका रक्षक कहा है।[30]

आपस्तम्ब धर्म सूत्र के अनुसार धर्म व्यवस्था का मूल अधार वेद है। पर इतिहास, स्मृति एवं आचार से भी धर्म व्यवस्था का ज्ञान होता है। वशिष्ठ के अनुसार जब धर्म व्यवस्था का निर्णय वेद् इतिहास तथा स्मृतियाँ द्वारा भी न हो सके तो वहाँ शिष्टजनो का अधार ही प्रमाण रूप है। जाति व कुलों के चरित्र भी वेदा के विरुद्ध न हो तो उनका भी अनुकरण किया जाना चाहिए। बौधायन सूत्र में उल्लिखित है कि वेद, स्मृति एवं शिष्टजनो के आचार के आधार माने गये है।[31]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि धर्म का आधार वेद, शास्त्र, स्मृति एवं इतिहास है। इसके अतिरिक्त प्रथाएँ, रूढ़ियाँ एवं आप्त पुरुषों के आचार भी कानून के स्रोत हो सकते हैं चूंकि राज्य रूपी संस्था का उस समय पूर्ण विकास नही हो पाया था अतः

---

[25] ऋग्वेद, 10/33/9, 9/73/6, यजुर्वेद 1/5, 29/41, अथर्ववेद, 17/1/29, वृहदारण्यक, 5/2/3.

[26] वशिष्ठ धर्मसूत्र,

[27] मनु, 8/128, 8/11.

[28] गौतम, 18/12–13 –

व्यवहारो वेदा धर्मशास्त्रण्यं गान्युपवेद पुराणं,
देश, जाति कुल धर्माश्वाम्नापैः अविरुद्धा प्रमाणः ।।
न्याया विगमेत कोऽभ्युपाय स्तेनाभ्यु हय तथा स्थानं गमयेत,
विप्रति पतौत्रयी विद्या वृद्धिभ्यः प्रत्यवहल निष्ठं गमयेत्।।

[29] अर्थशास्त्र, 3/1.

[30] वही, 1/4/4 – अविन्क्षकीय वार्तानां योग क्षेम साधनो दण्डः।

[31] डॉ. अल्तेकर, वही, पृ. 176–77.

राज्य निर्मित कानूनो का उल्लेख इन धर्म ग्रंथों में नही मिलता। कालान्तर में राज्य के उदय एवं विकास के साथ राजकीय कानूनों अवश्यकता एवं महत्त्व में वृद्धि हुई इसी से कौटिल्य ने शासन को कानून का स्रोत माना है।[32] राज्य संस्था के विकसित होने पर न्याय व मीमंसा को भी कानून अथवा विधि का आधार माना जाने लगा।

याज्ञयवल्क्य के अनुसार श्रुति, स्मृति, शिष्टाचरण, विविध समूहों के चरित्र व व्यवहार, न्याय, मीमांसा तथा राजकीय आज्ञाएँ कानून के अंग हैं।[33] याज्ञयवल्क्य का मत है कि राजा को श्रुत, मीमासा, व्याकरण, वेद, धर्मशास्त्र के अनुसार निर्णय करना चाहिए।[34] शुक्रनीतिसार में कहा गया है कि विविध मनुष्यो व उसके समूहों द्वारा जिस प्रचीन व नवीन धर्म का अनुसरण किया जा रहा है, शास्त्रों में धर्मो का प्रतिपादन किया जा रहा हो, पण्डित उनका चिंतन करके बतायें और साथ ही यह भी संकेत कर दे कि कौन सा धर्मशास्त्र व लोक के विरुद्ध है।[35]

इस प्रकार प्रमुख धर्मग्रंथ जिसमें वेद, स्मृति, पुराण, महाभारत, अर्थशास्त्र, बौद्ध एवं जैन–अंथ आदि रीति–रिवाज, परम्परायें, आप्त पुरुषों के वचन, राजाज्ञाएँ आदि विधि के प्रमुख स्रोत के रूप में मान्य थी। इसके अतिरिक्त काव्य, नाटक व इतिहास ग्रंथ जिनमें रघुवंश, कादम्बरी, हर्षचरित राज तरंगिणी तथा विदेशी विवण में मेगस्थनीज की इंडिका, फाह्मान तथा ह्नेनसांग आदि के विवरण आदि से विधि व्यवस्था अथवा विधिस्रोत की जानकी प्राप्त होती है।

साहित्यक स्रोत के अतिरिक्त पुरातत्विक साक्ष्यो सें भी विधि स्रोतो का ज्ञान प्राप्त होता है। जिसमें अशोक के अभिलेख, हाथी गुम्फा अभिलेख, रुद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख, समुद्रगुप्त का प्रयाग प्रशस्ति, चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा स्कंदगुप्त का अभिलेख, हर्षवर्धन का मधुवन, बांसखेरा ताम्रपत्र आदि प्रमुख है। इनमें तत्कालीन शासन व्यवस्था के साथ विधि–नियमो एवं राजकीय कानूनो का संकेत प्राप्त होता है।

याज्ञयवल्क्य स्मृति –

प्राचीन भारत के प्रमुख विधिशास्त्रीयो में याज्ञयवल्क्य का महत्वपूर्ण स्थान है। मनुस्मृति के बाद दूसरी महत्त्वपूर्ण स्मृति याज्ञयवल्क्य स्मृति मानी जाती है। याज्ञयवल्क्य ने सम्पूर्ण स्मृति ग्रंथ को तीन भागो आचार, व्यवहार एवं प्रायश्चित में विभाजित किया है तथा विषयो को उनके समुचित स्थान पर रखा है उसमें पुनुक्ति दोष नही आने पाया है। मनु के दो श्लोक याज्ञयवल्क्य के बराबर माना गया है। विद्धानो का अनुमान है कि याज्ञयवल्क्य स्मृति के प्रणयन कर्ता के समक्ष मनु स्मृति रही होगी क्योंकि दोनों स्मृतियों में कहीं–कहीं शब्दों में समानता पाई जाती है।

याज्ञयवल्क्य स्मृति के श्लोक अनुष्टुप छन्द में निबद्ध है। शैली सरल, सुबोध व धारा प्रवाह है। विष्णु धर्मसूत्र और कौटिल्य के अर्थशास्त्र एंव याज्ञवल्क्य स्मृति बहुत समानताएँ है। यद्यपि मनुस्मृति एवं याज्ञवल्क्य स्मृति में बहुत समानताएँ हैं तथापि याज्ञवल्क्य मनु की बहुत सी बाते नहीं मानते। जैसे मनु ने ब्राह्मण को शूद्र कन्या से

---

[32] अर्थशासत्र, 3/1

[33] याज्ञवल्क्य, 2/1, 2, 3

[34] वही, 2/–3, मनु, 8/, गौतम, 8/2–3, नारद /47–53.

[35] शुक्रनीतिसार –

वर्तमानश्व प्राचीनधर्माः केच लोक सश्रितः।
शास्त्रेषु के सम्रदिष्टा विरुध्यन्ते च सेऽधुना।।
लोकशास्त्र विरुद्धा के पण्डित वात् विचित्त्य च।
नृपसम्बोधयेत तैश्व परत्रेह सुखपदेः।।

विवाह करने का आदेश देते है।[36] परन्तु याज्यवल्क्य इससे सहमत नही है।[37] इसी प्रकार मनु ने नियोग का वर्णन करके उसकी भर्त्सना की है।[38] परन्तु याज्ञयवल्क्य ने नहीं। मनु ने 18 व्यवहार पदों के नाम गिनाये हैं।[39] जबकि याज्ञवल्क्य ने ऐसा न करके केवल व्यवहारपद की परिभाषा दी है।[40] मनु ने जुआ की भर्त्सना की है, किन्तु याज्ञवल्क्य ने उसे राज्य नियंत्रण में रखकर आय का एक माध्यम माना है।[41] मनु की तुलना में याज्ञवल्क्य अधिक उदार व प्रगतिशील विधिशास्त्री के रूप में दृष्टिगत होते हैं, क्योंकि अपराध एवं दण्ड के संदर्भ में मनु के तुल्य विचार रखते हुए भी अनेक स्थलों पर पृथक विचार रखते हैं, यह निश्चित ही समय के बदलते हुए परिदृश्य ओर विधि के विकास का द्योतक है। मनु स्मृति की तुलना में याज्ञवल्क्य स्मृति में वर्णित दण्ड व्यवस्था उदार है। याज्ञवल्क्य स्मृति में साधारण अपराधों के लिए हल्के दण्ड की व्यवस्था वर्णित है। डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल ने इसका कारण बौद्ध धर्म का प्रभाव स्वीकार किया है। मनु की अपेक्षा याज्ञवल्क्य में वर्गवादी अथवा जातीय तत्त्व अधिक क्रियाशील नहीं है, इसका कारण सम्भवतः याज्ञवल्क्य के समय जातीय मतवैभिन्नता के स्थान पर समायोजन की भावना लोगों में प्रवाहित हो रही थी अथवा यह युग की आवश्यकता थी।

वाक्पारुष्य के दण्ड विधान में जहाँ मनु ने जातीय तत्त्व के आधार पर निर्णय किया है, वहीं याज्ञवल्क्य ने सामान्य मानवीय आधार ग्रहण किया है।[42] इसी प्रकार दण्ड के संदर्भ में शूद्रों के प्रति अधिक कठोर है, जबकि याज्ञवल्क्य में उतनी कठोरता नहीं है।[43] मनु जहाँ ब्राह्मण की समानता करने वाले और बौद्ध धर्मावलम्बी बौद्ध शूद्रों को उग्रतम दण्ड देने के समर्थक हैं, वहीं याज्ञवल्क्य मनु के इस दृष्टिकोण से प्रभावित नहीं हैं। वे केवल वैदिक धर्म विरोधी शुद्रों एवं आजीवकों के प्रति ही मनु का अनुसरण करते हैं। इसी प्रकार कुछ ऐसे अपराध हैं, जिनके लिए मनु ने मृत्युदण्ड की व्यवस्था दी है, उनके लिए याज्ञवल्क्य ने अंगच्छेद एवं अर्थदण्ड का निर्देश दिया है, जो विधि के विकास का द्योतक है।

पूर्वमध्यकालीन स्मृतिकार पराशर ने 19 स्मृतिकारों के नाम गिनाए हैं, जिनमें याज्ञवल्क्य को रखा है। अग्निपुराण एवं गरुड़ पुराण में याज्ञवल्क्य में अनेक श्लोक मिलते हैं। याज्ञवल्क्य एवं अग्निपुराण के व्यवहार सम्बन्धी बहुत सी बातों में समानता है, इसी प्रकार गरुड़ पुरण में याज्ञवल्क्य में कुछ समानताएँ दृष्टिगत होती हैं।[44]

---

[36] मनु, 3/13

[37] याज्ञवल्क्थ, 1/56 –

यदुच्यते द्विजातीनां शूद्राद्दारोपसंग्रहम्।
नैतन्यम मतं यस्मात्तत्रायं जायते स्वयं।।

[38] मनु, 9/59–68

[39] मनु, 8/4–7.

[40] याज्ञवल्क्य 2/5

स्पृत्याचारण्यपेतेन मार्गेणाऽऽधर्षितः परेः।
आवेदयति चेदाग्रे व्यवहार पदं हि तत्।।

[41] याज्ञवल्क्य, 200–203.

[42] मनु, 8/279–284, याज्ञवल्क्य 2/204–209.

[43] मनु, 8/129–135. याज्ञवल्क्य 2/274–290.

[44] गरुड़ पुराण, 93/1 –

याज्ञवल्क्येन वै पूर्व धर्मः प्रोक्तः कथं हरे।
तन्मे कथय केशिघ्न यथातत्वेन माधव।।

शतपथ ब्राह्मण[45] तथा वृहदारण्यक उपनिषद[46] में याज्ञवल्क्य का उल्लेख आता है, जिसके अनुसार वे शुक्ल यजुर्वेद के द्रष्टा थे। शुक्ल यजुर्वेद के द्रष्टा याज्वल्क्य को इस स्मृति का रचविता मानने में विद्वानों में मतभेद है। इस ग्रंथ की शैली और विषय नये हैं। शुक्ल यजुर्वेद से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है।[47] मिताक्षरा का साक्ष्य भी इस ग्रंथ के लेखक के विषय में बहुत अधिकारिक इसलिए नहीं माना जाता, क्योंकि यह टीका बहुत बाद की है।[48] प्राचीन भारत में प्रायः लेखक अपने ग्रंथ को लोकप्रिय बनाने के लिए किसी ऋषि के नाम से सम्बद्ध कर देते थे।[49] कुछ विद्वान याज्ञवल्क्य स्मृति को एक मौलिक ग्रंथ की अपेक्षा संग्रह ग्रंथ मानते हैं। लेखक ने धर्मसूत्रों, मनुस्मृति, विष्णु स्मृति और पुराणों से अनेक विचार ग्रहण किए हैं।[50]

स्थान –

अनेक विद्वानों ने याज्ञवल्क्य का सम्बन्ध मिथिला से माना है, परन्तु जायसवाल ने अपने ग्रंथ मनु एण्ड याज्ञवल्क्य में बताया है कि इस स्मृति की रचना मध्य प्रदेश अथवा पश्चिमी भारत में कहीं हुआ।[51] यह स्मृति तब लिखी गई जब म्लेच्छो का प्रभुत्व था। म्लेच्छो के प्रति किसी प्रकार का कटुता का संकेत इसमें नहीं मिलता। इस अधार पर यह कहा जा सकता है कि यह कह ग्रंथ बाद में लिखा गया जब म्लेच्छो के प्रति शत्रुभाव का अभाव हो गया।[52]

गणेश एवं नव ग्रहों की पूजा[53] तथा दान से सम्बाश्वित धर्मों एवं ताम्रपत्र लेखो का निर्देश याज्ञवल्क्य स्मृति में मिलता है।[54] याज्ञवल्क्य ने बौद्धमत का खण्डन किया है।[55] शरीर रचना चिकित्सा सम्बन्धि कई बातों में मनु एवं याज्ञवल्क्य में भेद है।[56] याज्ञवल्क्य स्मृति ने मानव गृहय सूत्र से विनायक शान्ति के तत्व को ग्रहण किया है।[57]

काणें का विचार है कि शंखलिखित धर्म सूत्र ने याज्ञवल्क्य का उल्लेख किया है और याज्ञवल्क्य ने स्वयं शंखलिखित को धर्मशास्त्रकार के रूप में माना है। इससे प्रतीत होता है कि शंखलिखित के सामने कोई प्रचीन याज्ञवल्क्य स्मृति रही होगी। विश्वरूप एवं मिताक्षरा के संस्करणों की तुलना यदि अग्नि एवं गरुण पुराण से की जाय तो यह प्रतीत होता है कि याज्ञवल्क्य स्मृति में 800 ई0 से 1100 ई0 तक कुछ शाब्दिक परिवर्तन अवश्य हुएँ है। किन्तु मुख्य स्मृति 700 ई0 से अब तक अपरिवर्तित है। 11वीं शताब्दी का अरबी यात्री अलबरूनी ने याज्ञवल्क्य का स्मृतिकार के रूप में उल्लेख किया है। याज्ञवल्क्य स्मृति पर चरकसंहिता का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है। चिकित्सा एवं ब्रह्म विषय विचारों में समानता देखी जा सकती है।[58]

तिथि निर्धारण –

---

[45] शतपथ ब्राह्मण, 4/9/4/33.

[46] वृहदारण्यक उपनिषद, अध्याय–3.

[47] डॉ. राय गंगासागर, याज्ञवल्क्य स्मृतिः, पृ–1,

[48] वही, पृ–.1

[49] वही, पृ–2.

[50] वही, पृ–2.

[51] जायसवाल, के. पी. – मनु एण्ड याज्ञवल्क्य, पू–61.

[52] वही, पृ–67.

[53] याज्ञवल्क्य, 1/227–308

[54] वही, 1/198 तथा 319–20.

[55] वहीं, 1/273.

[56] तुलनीय – याज्ञवल्क्थ, 3/75–108, मनु 8/114, 3/13.

[57] मानवगृह्यसूत्र, 2/17.

[58] तुलनीय – याज्ञवल्क्य, 349–350, च. शा. 3/36, याज्ञवल्क्य प्रायश्चित 120, च. शा. 1/8.

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

अवांग सेकमाई हराओबा में लाईचिंग नृत्य पर लाक्षणिक अध्ययन

Semiotic Study on Laiching Dance in Awang Sekmai Haraoba

अकोईजम रंजीता देवी
Akoijam Ranjita Devi
संबद्धता नृत्य और संगीत विभाग
मणिपुर विश्वविद्यालय, कांचीपुर, मणिपुर, भारत

सार

यह पेपर अवांग सेकमाई इबुधौ कुब्रू हराओबा के नृत्यों को सांकेतिक ढांचे में परिभाषित करने का एक प्रयास है और यह संकेतों और उनके बीच मौजूद संबंधों पर उचित ध्यान देने के साथ एक संचार प्रक्रिया के रूप में नृत्य के अर्थ और महत्व का पता लगाने के लिए भी किया जाता है। वह संदेश जो वे संप्रेषित करते हैं। अवांग सेकमाई हराओबा के बारे में जानने में भी मदद मिलती है, जो अवांग सेकमाई समुदाय के महत्वपूर्ण वार्षिक अनुष्ठान त्योहारों में से एक है। इस त्यौहार में सृष्टि की पूर्वव्यापी कहानी, बच्चे के जन्म की प्रक्रिया, पालन–पोषण, वयस्कता, विवाहित जीवन और घर का निर्माण, कृषि प्रक्रिया, बीज बोना, कपास के पौधे उगाना, बुनाई, कपड़े पहनना और प्रशासन शामिल है, जिसे अनुष्ठान प्रदर्शन, गीत और नृत्य द्वारा दर्शाया जाता है। . एक परंपरा के रूप में, कोई भी लाई–हाराओबा तब तक नहीं मनाया जा सकता जब तक कि अवांग सेकमाई में इबुधौ कुब्रू लाई–हाराओबा उत्सव नहीं मनाया जाता। यह लाक्षणिक विश्लेषण के माध्यम से नृत्य के अध्ययन के परिणामस्वरूप समाज के भीतर अर्थ के विभिन्न आदेशों के रहस्योद्घाटन को समझने का भी एक प्रयास है। जीवन का दर्शन लाइ–हरोबा उत्सव में प्रतिबिंबित होता है जिसमें नृत्य अपनी ऐतिहासिक जड़ों के विवरण को संरक्षित करने और उनके अर्थ निर्माण के माध्यम से समाज के साथ संवाद करने में एक प्रतीक के रूप में कार्य करता है।

कीवर्ड लाई हराओबा, अवांग सेकमाई, लाइचिंग नृत्य, लाक्षणिकता, भाषा, संचार,

परिचय

इस दुनिया में हर समुदाय के विभिन्न पारंपरिक त्यौहार हैं जो प्राचीन काल से मनाए जाते हैं। यह त्यौहार वर्तमान पीढ़ी के लिए संस्कृति, रीति–रिवाजों, विश्वासों, जीवन शैली आदि को दर्शाता है। यह विभिन्न समुदायों के बीच किसी की विशिष्ट पहचान को संरक्षित करने और समझने में मदद करता है। मणिपुर का एक महत्वपूर्ण पारंपरिक त्योहार है लाई हरोबा त्योहार। जाहिर है, लाई हराओबा उत्सव मणिपुर के विभिन्न समुदायों के लोगों द्वारा हर साल बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता रहा है।

शाब्दिक रूप से, लाई हराओबा जिसमें लाई का अर्थ है देवता और हराओबा, खुश होना

या आनंदित होना। इसकी व्याख्या देश के कई प्रसिद्ध विद्वानों ने की है। मोइरांगथेम चंद्रसिंग का मानना है कि लाई हराओबा लाई (भगवान) की खुशी है या लाई को खुश करना है (चंद्रसिंह एम., 1992)। और एक अन्य विद्वान ने इस मामले के संबंध में कहा कि यह देवी—देवताओं की प्रसन्नतापूर्ण रचना है (नीलकांत, 1982)।

लाई—हाराओबा मैतेई समुदाय के पारंपरिक देवताओं को खुश करने के लिए मनाया जाने वाला एक भव्य अनुष्ठान त्योहार है। यह मणिपुर के सांस्कृतिक कब्जे में सबसे अद्वितीय अस्तित्व में से एक है। त्योहार स्वदेशी मेइतेई धर्म का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं जो पारंपरिक मेइतेई समाज का एक अनिवार्य घटक था। यह न केवल एक प्रमुख सामुदायिक त्योहार है, बल्कि मेइतेई और मणिपुर के अन्य समुदाय की एक महान जीवित परंपरा भी है। इस त्योहार की मूल प्रकृति देवताओं की आत्मा का आह्वान करना और उन्हें वर्ष में एक बार व्यवस्थित मौखिक—भौतिक परंपरा के माध्यम से प्रसन्न करना है और बदले में लोगों को आशीर्वाद देना है। एम. माचा चाओरीइकनबा का कहना है कि यह न केवल मानव जाति के विकास, बेहतरी, उत्पादकता और बेहतर सुरक्षा के लिए देवी—देवताओं को प्रसन्न करने के लिए एक अनुष्ठान के रूप में कार्य करता है, बल्कि यह एक सामाजिक स्थान भी प्रदान करता है जिसमें ब्रह्मांड और मानव जाति, आजीविका और सांसारिक के बारे में शिक्षा प्रदान की जाती है। मामला, विभिन्न मूर्त और अमूर्त प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व, भौतिक आंदोलन, नृत्य और गीत अनुक्रम आदि के माध्यम से करता है और नहीं करता है। इसलिए, यह पूरे समुदाय के कल्याण के लिए एक प्रकार का समर्पण है (चोरीकनबा एम.एम., 2018)। त्योहार का महत्व यह है कि यह मणिपुर के स्वदेशी लोगों, मेइतेई के सामाजिक—सांस्कृतिक जीवन और लोकाचार को दर्शाता है। यह त्योहार नृत्य, गीत, अनुष्ठान, खेल और मेइतेई के देवताओं और पूर्वजों की पूजा से बनता है। यह त्योहार इस ब्रह्मांड की पहली उत्पत्ति और अतिया शिदाबा (सर्वोच्च भगवान) की इच्छा के माध्यम से पौधों और जानवरों के विकास के साथ देवताओं द्वारा निभाई गई सृजन कहानियों की याद का एक हिस्सा है। और यह देवताओं को प्रसन्न करने का भी प्रतीक है जो मैतेई संस्कृति के हृदय का प्रतिनिधित्व करता है। त्योहारों का वास्तविक सार देवताओं के सभी कार्यों को याद करना और नृत्य, गीत और अनुष्ठानों के माध्यम से उन्हें प्रसन्न करना है ताकि हम उनका आशीर्वाद प्राप्त कर सकें और सभी का पक्ष ले सकें। समय। नृत्य उच्च सौंदर्य जागरूकता और विभिन्न दार्शनिक विचारों को इंगित करता है। गाने के बोल बेहद काव्यात्मक हैं. यह देखा गया है कि लाई—हरोबा उत्सव में प्राचीन मैतेई जीवन जीने का तरीका, संस्कार, समारोह, परंपरा और रीति—रिवाज आदि प्रतिबिंबित होते हैं और इसे मणिपुर के नृत्य, संगीत, संस्कार और अनुष्ठान, स्वदेशी खेल और आदिम जीवन का मूल स्रोत भी माना जाता है। ई. नीलकंठ ने इस संबंध में इस प्रकार व्यक्त कियारू लाई—हराओबा के कुछ प्रकार मान्यता प्राप्त हैं, वे कांगलेई, मोइरांग और चकपा हरोबा हैं। लाई—हराओबा के इन प्रकारों में विभिन्न अनुष्ठान प्रक्रियाएं, बोली और नृत्य, गीतों के अंतर देखे जाते हैं।

फिर से एल. जॉयचंद्र ने इसे छह प्रकारों में विभाजित किया— चकपा, काकचिंग, कांगलेई, मोइरांग, एंड्रो और सेकमाई हरोबा (सिंह एल.जे., 2009)। हालाँकि, आम तौर पर लाई हरोबा के तीन प्रकार क्रमशः कंगलेइहाराओबा, मोइरांग हरोबा और चकपा को स्वीकार किया जाता है।

अवांग सेकमाई हराओबा को सभी विभिन्न प्रकारों में सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है। एक परंपरा के रूप में, लाई हरोबा त्योहारों में से कोई भी तब तक नहीं मनाया जा

सकता है जब तक कि इबुधौ कुबरू हरोबा त्योहार अवांग सेकमाई में नहीं मनाया जाता है। गीत ष्अवांग कुबरू असुप्पा, आईन खुंदा अहनबाष का अर्थ प्राइमेसी में उत्तरी कुब्रू है, जो निपटान का आदिम स्थान है जो सिद्धांत का वर्णन करता है इस रचना को लगभग सभी लाई हरोबात्योहारों में गाया गया है। (एन. सनाजाओबा, 1991रू25) अवांग सेकमाई मणिपुर के सबसे पुराने अनुसूचित जाति गांवों में से एक है। यह मणिपुर के उत्तरी भाग में स्थित है और राजधानी इंफाल से लगभग 18 किमी दूर है। सेकमाई शब्द के मोटे तौर पर तीन अलग–अलग अर्थ हैं, इस स्थान को सेकमाई के नाम से जाना जाता है, सेकमाई के लोगों को सेकमाई के नाम से जाना जाता है और स्थानीय आसुत शराब को सेकमाई के नाम से जाना जाता है। सेकमाई को मुख्य रूप से ख्वायरकपम जैसे 11 सेगी (वंश) के लोइस द्वारा बाधित किया जाता है।

अंगोम, महाराबम, युमलेम्बम, थांगजम, मोरंगथेम, उशम, लाइमायुम, चंदम, अयांगबम और लाईशांगबम। उन्हें कांगलेइपाक (वर्तमान में मणिपुर में परिवर्तित) के पहले दर्ज राजा नोंगडा लायरेन पखांगबा का वंशज माना जाता है और माना जाता है (पंडित वाई. याइमा, 2022)। यह मणिपुर के उत्तरी भाग में स्थित है। इबुधौ कुब्रू लाई हराओबा सेकमाई में सबसे महत्वपूर्ण सामुदायिक त्योहार है। यह विशुद्ध रूप से एक पारंपरिक कैलेंडर त्योहार है जो प्राचीन काल से हर साल मनाया जाता है। यह त्यौहार तीसरे या पांचवें दिन शुभ दिन से शुरू होता है। फेयरेल (फरवरीध्मार्च) महीने का सोमवार या शुक्रवार और लगभग 2 सप्ताह तक जारी रहा। उत्सव की समयावधि गांव के पंडित (पुजारीधविद्वान) द्वारा तय की जाती है। त्योहारों में विभिन्न वर्ग शामिल हैं। वे हैंरू –

1.1. लाईफिसुबा – लाई–हरोबा उत्सव से 3 दिन पहले पास की नदी में देवताओं के धार्मिक कपड़े धोने की एक रस्म होती है।

1.2. यमसुबा – यह लाईफिसुबा के अगले दिन किया जाता है जहां चावल को पीसने वाला चावल को चावल के आटे में बदल देता है जिसे यमसुबा कहा जाता है। और चावल का आटा भगवान कोबरू और लोयारकपा (भगवान कोबरू के पुत्र) को अर्पित किया गया।

1.3. लाईफिसेटपा – यह अनुष्ठान लाई हराओबा उत्सव की शुरुआत से ठीक एक दिन पहले किया जाने वाला देवताओं का श्रृंगार है और उन्हें खगेम्बा लोइसांग (पारंपरिक सभा) में रखा जाता है। अवांग सेकमाई हरोबा में 12 देवी–देवता हैं। उपरोक्त 3 अलग–अलग अनुष्ठान इबुधौ कुब्रू हराओबा का अभिन्न अंग हैं। पहले दिन के उत्सव से लेकर विभिन्न अनुष्ठान होते हैं जिन्हें मोटे तौर पर वर्गीकृत किया जा सकता हैरू

1.4. लाई इकोउबारू (त्योहार का पहला दिन)

1.5. लाईबौ चोंगबारू त्योहार के सामान्य दिन।

1.6. लैलमथोकपारू दर्शन–दर्शन की एक अनुष्ठान प्रक्रिया।

1.7. लैरोईरू उत्सव का अंतिम दिन।

1.8. लैरोई नोंगनबारू लाई हराओबा के अंत के बाद का दिन।

अब तक अधिकांश उपलब्ध साहित्यों में अवांग सेकमई हराओबा की चर्चा चक्पा हराओबा की श्रेणी में की गई है, हालाँकि इसका एक अनोखा और विशिष्ट रूप है। प्रकाश सिंह ने अवांग सेकमाई हराओबा को चक्पा हराओबा के प्रकार में शामिल किया। इसके अलावा एन कुल्लचंद्र ने भी इसे चकपाहरोबा में वर्गीकृत किया। हालांकि व्याख्या जॉयचंद्र सिंह व राकेश सिंह ने की. अवांगसेकमाई हराओबा लाई–हराओबा के प्रमुख प्रकारों में से एक है। यह लाई–हरोबा उत्सव के क्रम में प्रथम स्थान पर है।

अवांग सेकमाई हराओबा उत्सव में, विभिन्न नृत्य अनुक्रमों को इसके एक अविभाज्य

भाग के रूप में शामिल किया गया है। नृत्य को क्षेत्रीय शब्द में श्जागोईश के नाम से जाना जाता है क्योंकि इस शब्द के नामकरण के विभिन्न संदर्भों के बारे में हम बाद में चर्चा करेंगे। लाई हराओबा में लाईबौ के नृत्य क्रम सेकमाई समुदाय की संपूर्ण संस्कृति को दर्शाते हैं, जिसमें पृथ्वी के निर्माण की कहानी, मानव शरीर के निर्माण से लेकर उसके जन्म तक, रहने के लिए घर का निर्माण, कृषि की शुरुआत, बुनाई संस्कृति और अन्य सामाजिक गतिविधियाँ शामिल हैं। इस प्रकार लाई–हाराओबैडेंस ने अपने सार्थक महत्व के कारण इसे ऐतिहासिक अभिलेखों के मुख्य स्रोतों में से एक माना है। इसमें एक विशाल कवरेज है क्योंकि यह कई चीजों के लिए एक विरासत बन गया है, ऐतिहासिक घटनाओं ब्रह्मांड विज्ञान, मौसमी गतिविधि, कृषि, भावनाओं और भावनाओं, इंसान की रचना आदि का वर्णन और चित्रण करता है। लाई हरोबा में नृत्य प्रदर्शन न केवल देवताओं को प्रसन्न करते हैं बल्कि उन्हें पूरा भी करते हैं। कुछ शारीरिक, सामाजिक और धार्मिक आवश्यकताएँ। इसके अलावा, खुशी और ज्ञानोदय के लिए प्रदर्शन करने की मेइती समुदाय की क्षमता, उनके लाई हराओबा नृत्य में एक शक्तिशाली संकेत प्रणाली बुनती है। यह समय की कसौटी पर भी खरा उतरता है। हालाँकि, यह कहना भी दुखद है कि यह केवल सतही स्तर पर ही उछाल पर है, जिसमें कई बदलाव और संशोधन साथ–साथ हो रहे हैं और समय में बदलाव के साथ–साथ बदलाव भी हो रहे हैं। इस प्रकार, उत्पन्न करने के लिए लाइहाराओबा के नृत्यों के नीचे मौजूद गहरी संरचना को समझना आवश्यक है

1.9.11. लीनेट जागोई

यहां पैर ऊपर की ओर उछलते हैं, लेकिन शरीर को मोड़ते समय उठाया गया कदम ऊपर जैसा ही होगा। जब शरीर बाईं ओर मुड़ता है तो बायां हाथ नाभि के पास होता है। जबकि दाहिना हाथ बाकी मुड़ी हुई उंगली के ऊपर सीधा मुड़ा हुआ बनाते हुए आगे की ओर है। और दाहिनी ओर मुड़ते समय, यदि हाथ एक दूसरे की जगह ले लेते हैं तो स्थिति बदल जाती है। इसके बाद ख़ुबक जागोई आती है।

1.9.12. लैनिंगथौ लैरेम्बी जगोई

नृत्य के इस रूप में, शरीर 3 बार मुड़ता है, अर्थात क्रमशः बाएँ से दाएँ और फिर बाएँ। पैरों की सीढ़ियां वही हैं जो ख़ुबाक जगोई में जारी रहती हैं, लेकिन यहां केवल अंतर यह है कि चरणों की संख्या 18 गुना है, हाथ की उपस्थिति कांगबोल जगोई की तरह ही होगी। इस प्रकार उंगलियों से चुम्सा जागोई का प्रदर्शन किया जाता है। यहां दोनों हाथों के सिरे दाहिनी ओर झुकें। बाएं हाथ के अंगूठे और तर्जनी को उनके सिरों से जोड़ा जाता है, जबकि बाकी उंगलियों को एक के बाद एक फैलाकर घुमाया जाता है। दाहिना हाथ उस दिशा से मुड़ता है जहां छोटी उंगली होती है, इस तरह से, उसकी हथेली ऊपर की ओर और फिर शरीर की ओर होती है जबकि उसके सिरे ऊपर की ओर होते हैं। जैसे ही ऐसा किया जाता है, बायां हाथ भी विपरीत दिशा में मुड़ जाता है जहां दाहिना हाथ मुड़ गया है. जब बायीं हथेली ऐसी स्थिति में आ जाती है जहां हथेली ऊपर की ओर चपटी हो जाती है और दाहिनी हथेली नीचे की ओर हो जाती है, तो उंगलियों की पकड़ छूट जाती है। इस प्रकार, नृत्य के इस रूप को तीन बार दोहराया जाता है और प्रार्थना के रूप में देवता की प्रतिज्ञा के साथ समाप्त होता है।

नृत्य का यह रूप गांव में रहने वाले कुलों और लोगों के लिए शांति और सद्भाव, धन, स्वास्थ्य और अच्छाई की प्रार्थना करते हुए देवता से प्रार्थना के रूप में किया जाता है। यह एक भेंट है ताकि स्थानीय लोगों की जीवन यात्रा को सभी कष्टों और बीमारियों से

मुक्त किया जा सके।

2. लाई चिंग नृत्य संचार और संकेतन के एक रूप के रूप में

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि लाई–हरोबा मणिपुर का एक अनुष्ठान पारंपरिक त्योहार है जिसमें नृत्य गीत, अनुष्ठान, मंत्र, खेल और खेल एक अविभाज्य भाग के रूप में संयुक्त रूप से कार्य करते हैं। इस त्योहार में, नृत्य एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और संचार का मुख्य रूप बन जाता है, जो संबंधित लोगों के लिए मैतेई और सेकमाई के विभिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक पहलुओं के संबंध में संकेत लाने के लिए संकेत–वाहन के रूप में कार्य करता है। लाई हराओबा नृत्य आम तौर पर कई तरीकों से कई विचारों और ज्ञान का प्रतीक है क्योंकि पूर्वजों ने समाज की कई बहुमूल्य चीजों और मूल्यों को शामिल किया था ताकि नृत्य के रूप में इसके संचार के माध्यम से, वे लोगों के लिए महत्व ला सकें। इसलिए अध्ययन का उद्देश्य संचार के माध्यम से होने वाले विभिन्न अर्थों का पता लगाना है जिसके परिणामस्वरूप अंततः इसके संदर्भ के संबंध में नए अर्थ और अवधारणाओं का निर्माण होता है। आम तौर पर, नृत्य गैर–मौखिक संचार के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि हम नृत्य में इशारों, चाल, चेहरे के भाव और मुद्रा से संबंधित संकेत और प्रतीक पा सकते हैं। यह एक सहज प्रकार का संचार है जिसमें संगीत की लय और सामाजिक सम्मेलन द्वारा निर्मित एक आरामदायक, सुरक्षित स्थिति में चेतना और अवचेतन दोनों की भागीदारी शामिल होती है। नृत्य सामाजिक संरचना और जहां यह मौजूद है वहां के लोगों के पारंपरिक मूल्यों का प्रतीक है। यह एक कृत्रिम वस्तु है लेकिन मनुष्य द्वारा अपनी सांस्कृतिक स्थिरता, गतिशीलता और संवेदनशीलता के लिए बनाई या परिवर्तित की गई चीज है। जैसा कि कहा जा सकता है कि नृत्य एक अभिव्यक्तिवादी उपकरण है जिसका उपयोग हमारी संक्रमणकालीन संस्कृति के किसी भी प्रतिनिधित्व को पकड़ने, व्यक्त करने, मूर्त रूप देने और तैयार करने के लिए किया जाता है। नृत्य पर सांस्कृ तिक प्रभाव इसकी तकनीक और अभिव्यक्ति की शैली को परिभाषित करता है, जिससे सांस्कृतिक अभिव्यक्ति और नृत्य आंदोलन के बीच संबंध मजबूत होते हैं। सकारात्मक

निष्कर्ष

कई विज्ञानों में, दुनिया का निर्माण डेमीर्जिक प्रदर्शनकारी उच्चारण की शक्तियों के माध्यम से किया गया है। हालाँकि, भारतीय परंपरा इसके लिए ऐकोरोग्राफिक विकल्प लाती है। ब्रह्मांड के अंत और पुनर्जन्म का संरक्षण करने वाले भारतीय देवता, भगवान शिव, ष्कॉस्मिक डांसरष हैं। इसी तरह, मणिपुरी परंपरा में लाई–हरोबा उत्सव नृत्य, गीत और अनुष्ठानों के माध्यम से ब्रह्मांड विज्ञान की कहानी का पता लगाता है। एम. चंद्रसिंग ने कहा है कि लाई हराओबा हाथ की हरकतों, नृत्य, गीतों और मंत्रों के माध्यम से ब्रह्मांड के निर्माण के देवताओं का पुनरू अधिनियमन है, जो लाई–हराओबा की भाषा बन गई है । मणिपुर समाजों में, नृत्य सामाजिक उद्देश्यों की एक जटिल विविधता के रूप में कार्य करता है। एक नृत्य परंपरा के भीतर, प्रत्येक प्रदर्शन में आमतौर पर एक प्रमुख के साथ–साथ कई सहायक उद्देश्य होते हैं जो लोगों के सांप्रदायिक मूल्यों और सामाजिक संबंधों को व्यक्त या प्रतिबिंबित कर सकते हैं। लाई हराओबा नृत्यों की सांस्कृतिक प्रभावशीलता ने वास्तव में एक ही समुदाय के लोगों और डायस्पोरा में रहने वाले लोगों को एक साथ आने और अपनी सांस्कृतिक विरासत को बनाए रखने और बनाए रखने के लिए सालाना अपने पारंपरिक त्यौहार का प्रदर्शन करने में सहायता की है।

संदर्भ

1. Chaoreikanba, M. M. (2010). Awang Sekmai Haraoba. Imphal: Amar Offset.
2. Dhananjoy, P. (2022). Meireng Songh. (A. Ranjita, Interviewer)
3. Eco, U. (1976). A Theory of Semiotics of Culture and Language. London: Frances Printer.
4. Harvey, S. (1982). Semiotic Perspectives. London.
5. Keir, E. (1980). The Semiotics of Theatre and Drama. London and New York.: Menthuen.
6. Kh Rakesh Singh, a. K. (2012). Significance of Awang Koubru Lai Haraoba Festival of Sekmai Village, Manipur. International Journal of Social science Tomorrow, 5, 3-4.
7. Maibi, N. K. (1988). Kanglei Umang Lai Haraoba. Imphal: Thambal Angoubi Devi.
8. Nilakanta, E. (1982). Aspect of Indian Culture. Imphal: Jawaharlal Nehru Manipur dance.
9. Prakasan, V. (1999). Semiotics of Language, Literature and Culture. Allie Publishers Limited.
10. Singh, J. (1982). Semiosis and Semiotics. Chandigarh: Lokayat Prakashan.
11. Singh, L. J. (2009). Umang Lai Haraoba- Traditional Dances and Music. Imphal.
12. Singh, N. K. (1963). Meitei Lai Haraoba. Imphal: Unique Printing Networks.
13. Vatsyan, K. (1974). Indian Classical Dances. New York: Director Publications Division, Patiala House.
14. Yaima, P. (2002). Laibou Dance. (A. Ranjita, Interviewer)
15. Yaima, P. (2022). Chakpa Khoira. (A. Ranjita, Interviewer)

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

बांदा जनपद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

हर्षिता मालवीय
छात्रा इतिहास विभाग
विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कॉलेज कानपुर

बांदा जिले की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के बारे में ऐतिहासिक साक्ष्यों एवं उपलब्ध ग्रन्थों के आधार पर यह परिक्षेत्र प्रागैतिहासिक काल से अब तक विविध प्रकार से इतिहास का निर्माण करता आया है। क्षेत्रीय स्तर पर इतिहास की जानकारी प्राप्त रकने के लिये हमें ऐतिहासिक साक्ष्यों, पुरातात्विक साक्ष्य एवं धार्मिक ग्रन्थों के ऊपर निर्भर रहना पड़ता है। यहाँ का इतिहास अत्यन्त महात्वपूर्ण एवं चिरस्मरणीय रहा है। बांदा ऐतिहासिक दृष्टि से उसी गौरवपूर्ण भू–चिन्हों का हिस्सा रहा है। जिसे महाजनपद काल में चेदि प्रदेश के नाम से जाना जाता था। और इतिहास के पन्नों में समय–समय विन्ध्य आटविक देश, मध्य देश, दशार्ण प्रदेश या जेजाक भुक्ति था जुझौती और वर्तमान में बुन्देलखण्ड नाम से जाना जाता है।

बुन्देलखण्ड का क्षेत्र जिसमें बांदा जनपद भी आता है प्रागैतिहासिक पुराअवशेष, प्राचीन एवं मध्य कालीन स्थापत्य कला मूर्तिकला व चित्रकला की गौरवशाली विरासत यहाँ रही है। कालिंजर एवं चित्रकूट यहाँ के प्राचीन, धार्मिक स्थल रहे है। जो प्राचीन काल एवं मध्य काल में बांदा के इतिहास केन्द्र बिन्दु भी थे। जिनका वर्णन भारत वर्ष के प्राचीनतम महाग्रन्थों, पुराणों एवं महाकाव्यों वाल्मीकि रामायण से लेकर महाभारत एवं रघुवंश, ऐतिहासिक ग्रन्थों, अर्थशास्त्र, आइने अकबरी एवं मध्य कालीन काव्य रामचरितमानस एवं जगनिक के आल्हाखण्डों में भी मिलता है। अध्ययन क्षेत्र बांदा विन्ध्याचल प्रदेश के अन्तर्गत आता है। भागवत पुराण में विन्ध्य व उससे लगे पाद प्रदेश को ब्रम्हा की सृष्टि रचना स्थान बताया गया है।

इसके अलावा ऐसी मान्यता भी है कि इसी स्थान पर कालिंजर पर्वत समुद्र मंथन के पश्चात निकले कालकूट नामक विष की पीकर शिव ने सर्वप्रथम यही पर आकर विश्राम किया और शान्ति की अनुभूति हुई कालकूट विष को धारण करने के कारण इस स्थल का नाम कालिंजर पड़ा वायु पुराण में इसका वर्णन ब्रह्मपुराण में भी इस परिक्षेत्र के अन्तर्गत कलिंजर क्षेत्र को शिव का महान तीर्थ कहा गया है।

कालजयी दुर्ग कालिंजर दुर्गः–

कालिंजर दुर्ग की ख्याति विश्व में एक प्राचीन तीर्थ है और इसका राजनीतिक, सैन्य एवं धार्मिक महत्व भी असाधारण है। प्राचीन काल में कालिंजर दुर्ग पर अपना अधिपत्य स्थापित करना राजसूय एवं अश्वमेघ यज्ञ करने से भी महान समझा जाता

था। तात्कालिक सम्पूर्ण राजाओं और नृपों पर विजय प्राप्त करना समझा जाता था। इस दुर्ग पर विजय प्राप्त करने वाले राजा को 'कालिजंराधिपुरीश्वर की उपाधि धारण करने में अपने आप को सशक्त एवं गौरान्वित समझते थे।[1] पदमपुराण अध्याय में स्वयं एक शंकर भगवान ने कहा है कि—अर्थयोजन विस्तीर्ण तत क्षेत्र मम मदिरम् कालंजरंति विख्यात मुक्तिवंद शिव सन्धिो। गंगाय दक्षिण भागे कालन्जर इति स्मृति। सर्वतीर्थ तत्र पुष्यचेंव हवानन्तकम।

इस प्रकार पदमपुराण में उल्लेख मिलता है कि रेणुका शुकरा काशी काली काल बटैश्वरी कालंजर महाकाव्य ऊखला नव कीर्तिकः कालिंजर पर्वत के विभिन्न नाम भिन्न कालखण्ड में मिलते रहे है। जैसे सतयुग में इसे कीर्तिगिरी, त्रेता में महदगिरी द्वापर में पिंगलगढ तथा कलियुग में इसको कालिंजर गिरी कहा जाने लगा। शिवजी के अनेकों नाम में कालिंजर उस समय से है जब शिवजी ने इस पर्वत पर काल को जीर्ण किया था। अर्थात काल को जीर्ण करने के ही कारण शिवजी का नाम कालंजर पड़ा।

पृथ्वीराज रासों में ठीक ही कहा गया है—

कलहि जीर्ण करब जेहि गिर पर ताकर नाम होय कालिंजर।

कालिंजर में जब हम प्रवेश करते है तो हम पाते है कि इसमें सात प्रवेश द्वार है। इसके पहला प्रवेश द्वार को सिंहद्वार कहते है इसको कालांतर में औरंगजेब के समय 1673 में मुराद ने निर्मित कराया था। जिस पर उसने एक शिलालेख खुदवाया था जिस पर निम्न पंक्तियों खुदवाई थी जो इस प्रकार

'' शाह औरंगजेब दीन परवर
शुद मरम्मत चूंकि लिए कालिंजर
यूँ मुहम्मद मुराद अज दुकमश साख्त दरहा
मुहकिमो खुश्तर आज खिर्द साल जस्तश युग अत
शुद अजी यूँ सिंद्धो सिकन्दर

दुर्ग की आदर्श स्थिति यह है कि सातों प्रवेश द्वार एक ही दिशा उत्तर पूर्व में है। एक मुस्लिम इतिहासकार ने इसकी तुलना अलेक्जेण्डर की दीवार से की है। आजकल के बुन्देलखण्ड पर जिसे उस युग में जुझौति कहते थे। यहाँ पर चन्देलों का अधिकार हुआ, करता था। चन्देलों के काल (नवीं से तेरहवीं) शताब्दी तक में अत्यन्त सुन्दर और विलक्षण कला मन्दिरों और मूर्तियों का निर्माण हुआ चन्देलों के उपरान्त यह दुर्ग मुस्लिम आक्रमणिकारियों के हाथ आया।

टालमी ने इस स्थान का नाम 'कनगौर' नाम से वर्णन किया है। चंदेल राजा यशोवर्धन ने इस दुर्ग को कलचुरियों की सहायता से प्रतिहारों से छीना और उसके बाद उसका पुत्र धंग गड़ी पर बैठा था। धंग के बाद गंड 1008 में कालिंजर का राजा बना सन् 1019 में महमूद गजनी ने कालिंजर पर आक्रमण किया सन् 1166ई0 में पृथ्वीराज चौहान—तृतीय ने कालिंजर पर चढ़ाई की।

मुगल काल में शेरशाह सूरी ने1545ई0 में दुर्ग पर आक्रमण किया परन्तु हुक्का नामक तोप का गोला बारूद के ढेर पर गिर जिससे कि शेरशाह बुरी तरह जल गया और फिर उसकी दुखद मृत्यु हो जाती है। यह घटना 22 मई, 1545 को कालिंजर में घटी थी। 1569 में यह दुर्ग अकबर की अधीनता में रहा करीब—करीब 120 वर्ष तक

---

[1] पॉग्सन, डब्ल्यू.आर., 'एक हिस्ट्री ऑफ बुन्देलाज', प्रथम प्रकाशित वैप्टस्ट मिशन प्रेस, कलकत्ता, 1828, पुर्नमुद्रित बी.आर. पब्लिशिंग कारपोरेशन, दिल्ली, 1974, पृ.132

मुगलों की अधीनता में यह दुर्ग रहा और फिर 1812 में इस दुर्ग के किलेदार जुझौतियों को अन्यत्र जमीन देकर दुर्गपर अंग्रेजों ने अपना अधिकार जमा लिया था। वर्तमान समय में कालिंजर एक महात्वपूर्ण पर्यटक स्थल है जिसका विकास जनपद स्तर पर जिलाधिकारी हीरालाल महोदय ने कालिंजर पर्यटक बोर्ड बनाकर और कई सांस्कृतिक कार्यक्रम कराकर राष्ट्रीय स्तर पर इसको पुनः पहचान दिलाई थी।[2]

अध्ययन क्षेत्र बुन्देलखण्ड के अंतर्गत बांदा एवं चित्रकूट का बड़ा ही धार्मिक महत्व रहा है विशेषतौर पर चित्रकूट का सम्बन्ध पौराणिक आख्यानों से जुड़ा है। चित्रकूट विस्तृत भू–क्षेत्र में फैला हुआ नैसर्गिक रम्यता का प्रागस्थल है। चित्रकूट अंचल के झरने, तालाब, बाबली, कुएं पहाड़ तथा अन्य पुरातात्विक धरोहरें गौरवमयी है। ऐसे ही सुरम्य प्राकृतिक वनाच्छादित संवाहक है।

चित्रकूट, बांदा जनपद का ही एक भाग है। बांदा जनपद की तहसील कर्वी एवं मऊ के क्षेत्र को समाविस्ट करके 13.05.1997 को मायावती ने अपने शासन काल में छत्रपति शाहू जी महाराज नगर नाम से पृथक जनपद बना दया तब जन भावनाओं का सम्मान करते हुये 08 सितम्बर, 1998 को जनपद का नामकरण पुनः चित्रकूट किया गया। चित्रकूट जनपद उत्तर में 82–22′ देशान्तर एवं पूर्व में 25–20′अक्षांश के मध्य स्थित है जनपद की उत्तरी सीमा में जनपद फतेहपुर उत्तर पूर्व में जनपद कौशाम्बी व इलाहाबाद दक्षिण पूर्व में म0प्र0 के जनपद रीवा व दक्षिण में जनपद सतना तथा पश्चिम में पैतृक जनपद बांदा स्थित है।

वाल्मीकिय रामायण में जब श्रीराम वनगमन को प्रस्थान करते है तो गंगा एवं यमुना नदी को पार करने के पश्चात चित्रकूट पर्वत पर पहुँचते है। जहाँ वे लगभग साढ़े 11 वर्ष निवास करते है। चित्रकूट में वाल्मीकि युगीन स्थलों मं चित्रकूट पर्वत, मन्दाकिनी नदी भरतकूप, अत्री मुनि का आश्रम कामदगिरी आज भी अपनी प्राचीनता एवं ऐतिहासिकता को दर्शा रहे है भारद्वाज ऋषि के कहने पर जब श्रीरामचन्द्र जी चित्रकूट की ओर प्रस्थान करते है तो सबसे पहले बाल्मीकि आश्रम पहुँचते है।

यह आश्रम लालापुर गांव के पास एक पहाड़ की कठिन चढ़ाई के पश्चात चोटी पर अवस्थित है। यही पर श्रीराम की मुनि से भेंट हुयी थी। यही पास से ही वाल्मीकि गंगा नाम से नदी भी प्रवाहित होती है। इस आश्रम का उल्लेख वाल्मीकि रामायण में हुआ है–

"इति सीता च रामश्च लक्ष्मणश्च कृतान्जलिः।
अभिगम्याश्रमं सर्वे वाल्मीकिमभिवादयन।।

अर्थात ऐसा निश्चय करके सीता, श्रीराम और लक्ष्मण ने हाथ जोड़ कर महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में प्रवेश किया और सबने उनके चरणों में मस्तक झुकाया। इसी प्रकार चित्रकूट पर्वत का भी वाल्मीकि युग में वर्णन हुआ है। चित्रकूट के विषय में वाल्मीकि रामायण का प्रसंग अयोध्या काण्ड में आता है। जब श्री राम लक्ष्मण को चित्रकूट पर्वत का दर्शन कराते हुये कहते है–

"मातङ्गयूथानुसृतं पक्षिसंधानुनादितम्।
चित्रकूट मिमं पश्च प्रवृद्धि शिखरं गिरिम।।

आज भी चित्रकूट जनपद विद्यमान है तथा लोग यहॉ दर्शन करने आत है। यहां पर श्रीराम चन्द्र जी अपने वनवास काल की सबसे अधिक अवधि व्यतीत की थी।

---

[2]ब्रोकमैन, डी.एल. ड्रेक, ''डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स ऑफ यूनाइटेड पोविन्सेज ऑफ आगरा एण्ड अवध–बाँदा ए गजेटियर', इलाहाबाद, 1909, पृ.124

कामदगिरी को श्रीराम का प्रत्यक्ष शरीर माना जाता है। इसी संदर्भ में श्रीरामचरित मानस का यह प्रसंग प्रचलित है।

कामद में गिरिराम प्रसाद। अवलोकत अपहरत विषादा।

अर्थात् भगवान श्रीराम के प्रसाद से सभी पर्वत कामद पर्वत के समान बन गये जो दर्शन मात्र से ही सभी दुखों को हर लेते हैं।

इसके अतिरिक्त श्रीराम भरत मिलाप मंदिर रामघाट, भरतकूप, मन्दाकिनी, वाल्मीकि युगीन भूगोल को स्वीकारते हुये आज भी बांदा जनपद एवं चित्रकूट जनपद में अपने प्राचीन स्वरूप में विद्यमान है।[3]

"सुरम्यमा साघ तु चित्रकूटं नदी च तां माल्यवती स्वतीर्थाम्
ननन्द पृष्टो मृगपक्षिजुस्टां जहाँ च दुःखं पुरवि प्रवासात।।

भारतीय धर्मशास्त्रों में ऐसी मान्यता विद्यमान है कि चारो धाम की यात्रा तब तक पूर्ण नही मानी जायेगी जब की चित्रकूट में परिक्रमा न पूर्ण हो जाये।

आधुनिक काल में बांदाः—

औरंगजेब के शासन काल की बात करे तो बांदा इलाहाबाद सूबे का हिस्सा था। अठारहवीं शताब्दी में बुन्देला शासकों ने बांदा एवं कालिंजर को प्राप्त किया था। बुन्देला शासक छत्रसाल के समय मुगल शासक बहादुर शाह (1707ई0—1712ई0) ने बुन्देलखण्ड में शासन किया था। हिन्दू इतिहास में जहाँ छत्रसाल को महान योद्धा, प्रशासक एवं राजनीतिज्ञ की तरह प्रस्तुत करता है। वही मुस्लिम इतिहासकार छत्रपाल को एक प्रकार से अपने अधिनस्थ शासक के रूप में प्रस्तुत किया करते है।

फर्रूखसियर जब 1713 में दिल्ली की गद्दी पर आसीन हुआ था। तब बुन्देलखण्ड के यह जनपद और परगना सिहोड़ाऔर मौदाहा मोहम्मद खॉ बंगश की जागीर को सौंप दिये गये थे।मोहम्मद खॉ बंगश को हम फर्रूखाबाद के नवाब के नाम से भी जानते है। 1720 में मुहम्मद खॉ बंगश इलाहाबाद का नवाब घोषित किया गया था। मुहम्मद खॉ बंगश ने न तो सूबेदार और न तो जागिरदारों को सैन्य कार्यवाहियों की अनुमति नही दी थी।

छत्रसाल बुन्देला के बाद बांदा की स्थितिः—

छत्रसाल बुन्देला अपने समय के पराक्रमी शासक थे। उस समय बांदा जनपद उनके साम्राज्य का अंग था और बांदा जनपद उनके साम्राज्य के पूर्वी सीमा पर स्थित था वास्तविकता यह कि 1676 ई0 तक पन्ना छत्रसाल सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड के एक मात्र प्रभावशाली शासक हो चुके थे। उनके साम्राज्य की पूर्वी सीमा में बांदा तथा जबलपुर तक स्पर्श करती थी।

अपनी वृद्धावस्था के आस पास जब मोहम्मद खॉ बंगश ने बुन्देलखण्ड को प्राप्त करना चाहा तभी उन्होने मराठा पेशवा बाजीराव प्रथम से सहायता प्राप्त की बाजीराव प्रथम ने छत्रसाल की हिन्दू धर्म की रक्षा और हिन्दू संस्कृति के संवर्धन के प्रयास हेतु छत्रसाल की सहायता की जिसके फलस्वरूप छत्रसाल ने मुगल सूबेदार मो0 बंगश का बाजीराव प्रथम की सहायता से पराजित किया था। पेशवा सम्राट बहादुर बाजीराव प्रथम को उन्होने तृतीय पुत्र मान कर और फिर अपने साम्राज्य के तीन हिस्से किये थे। इसमें एक हिस्सा पेशवा को शेष दो हिस्से हदयशाह और जगतराज को मिले। इस साम्राज्य विभाजन के उपरान्त छत्रसाल के बड़े पुत्र हदयशाह को कालिंजर

---

[3] कैडेल, ए., 'सैटलमेंट रिपोर्ट ऑफ बाँदा डिस्ट्रिक्ट', नार्थ वेस्ट फ्रंटियर ऐंड अवध गवर्नमेंट प्रेस इलाहाबाद, 1881, पृ.108

का क्षेत्र, बदौसा का दक्षिणी भाग तथा अधिकांशतः कर्वी सब डिवीजन शामिल था जब छत्रसाल के छोटे पुत्र जगतराज को भूरागढ तथा रामगढ के क्षेत्र प्राप्त हुये थे जिसे जैतपुर राज्य कहा जाता था। तथा जगतराज को जैतपुर, अजयगढ चरखारी, वीजागढ, सरीला, भूरागढ व बांदा का क्षेत्र प्राप्त हुआ जिसकी वार्षिक आय 36000 रूपये थी।

छत्रसाल द्वारा किये गये साम्राज्य विभाजन के फलस्वरूप पेशवा को बुन्देलखण्ड में जो क्षेत्र मिले उसे संगठित करते हुये मराठों ने उत्तर भारत में अपने महात्वपूर्ण अभियानों में इन क्षेत्रों का सामरिक उपयोग करना प्रारम्भ किया। मराठा–बुन्देला मैत्री के बल पर जगत राज बुन्देलखण्ड में अपने प्रशासन क्षेत्र में काफी वृद्धि कर ली थी।

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

NAAGS KANPUR

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

आधुनिककालीन वाराणसी की शिक्षा व्यवस्था

करवीर सिंह
शोध छात्र इतिहास विभाग
महाराज बलवंत सिंह पीजी कॉलेज गंगापुर वाराणसी
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,वाराणसी

वाराणसी (काशी) प्राचीन काल एवं मध्यकाल की तरह आधुनिक काल में भी शिक्षा में अग्रणी रही । यह इसलिये भी संभव हुआ कि नवागत विदेशी शासकों अंग्रेजों का ध्यान इस ओर गया। ये यूरोपीय शिक्षा को भारतीयों पर लादना चाहते थे । उन्होंने इस हेतु मिशनरियों के माध्यम से विद्यालयों की स्थापना भी प्रारंभ कर दी । बनारस संस्कृत कालेज (1793 ई.) और जयनारायण स्कूल (1814 ई.) की स्थापना इस क्षेत्र में एक प्राथमिक प्रयास था । भारतीय समाज ने सभी युगों में अच्छे और बुरे वक्तों पर शिक्षा के मूल्य को स्वाभाविक रूप से समझा और सराहा है । विद्वानों का समाज में सदा आदर होता था चाहे उनकी आर्थिक दशा कितनी भी खराब क्यों न हो। जाति–पांत की भावनाओं ने बहुत से लोगों को शिक्षा के अधिकार से वंचित रखा लेकिन उच्च जातियों के लोगों के लिए शिक्षा के द्वार सदा खुले थे। आर्थिक कठिनाइयों के कारण निर्धन वर्ग के लोगों के लिए शिक्षा प्राप्त करना असंभव था । लेकिन शिक्षा प्राप्ति की इच्छा सदा रहती थी और जब कभी भी कोई अवसर या सहायता उपलब्ध हुई तो गरीब माता–पिता ने अपने बच्चों को स्कूल भेजा। पुरोहित वर्गों के लिए तो शिक्षा आवश्यक थी ताकि वे धर्मग्रथों का अध्ययन कर सकें या उन्हें समझ सकें । लेकिन समाज के अन्य वर्ग के लिए भी कम से कम गणित का सामान्य ज्ञान होना आवश्यक था जिससे कि वे अपने दैनिक जीवन में हिसाब–किताब कर सकें । दुकानदार, व्यापारी, साहूकार, ग्रामप्रधान करों की वसूली करने वाले, हिसाब–किताब रखने वाले मुंशी, बड़े किसान और ऐसे ही अन्य लोग अपने बच्चों को पढ़ाना आवश्यक समझते थे । प्राय यह देखा गया है कि हिन्दू और मुसलमान स्वयं जीवन में अच्छे दर्जे – पर थे या जो ऐसी आकांक्षा रखते थे कि उनके लड़के राज दरबारों में नौकरियाँ पाएं। अतः लोग उच्च अध्ययन का मूल्य समझते थे और अपने लड़कों को यथासंभव अच्छी से अच्छी शिक्षा दिलाने का प्रयत्न करते थे। इस प्रकार कई कठिनाइयों और अड़चनों के बावजूद भारत में आमतौर पर शिक्षा की मांग थी ।आधुनिककालीन काशी की शिक्षा व्यवस्था ब्रिटिश विजय के समय पूरे भारत में कुछ निश्चित ढंग की देशी शिक्षण संस्थाएं थीं। सबसे निचले स्तर पर विभिन्न गांवों में ग्राम पाठशालाएं या प्रारंभिक स्कूल थे, जिसमें

प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती थी। सभी गावों में तो पाठशालाएं नहीं थीं, लेकिन अधिकांश बड़े या सम्पन्न गांवों में 2ध्7 आमतौर पर ऐसे स्कूलों की संख्या काफी थी लेकिन कुछ एक की छोड़कर अन्य सभी की दशा खराब थी । सरकारों ने शिक्षा के साथ अपना कोई सरोकार नहीं रखा था । कोई प्रणाली नहीं थी, कोई समान पद्धति नहीं थी और न ही स्कूलों को नियमित ढंग से चलाने की कोई सुविचारित योजनाएं थीं । अधिकांश पाठशालाएं मंदिरों या धार्मिक स्थलों, बरामदों, झोपड़ियों यहाँ तक कि गोशालाओं या पेड़ों के नीचे हुआ करती थीं । अध्यापक गण पूरी योग्यता प्राप्त नहीं थे । उनका अध्यापन केवल गणित तक ही सीमित था ।

आजकल के पढ़ाई के विषय जिनसे छात्रों के मानसिक क्षितिज व्यापक बनते हैं, उस जमाने के अध्यापकों को पता ही नहीं थे कोई छपी हुई पुस्तकें नहीं द्य थीं, और न ही कोई पांडुलिपियां थीं । यदि लड़के लिखना, पढ़ना और बोलना सीख जाते थे तो माता–पिता इसी को काफी समझते थे। आधुनिक काल में जिसे वेतन कहा जाता है इस तरह की कोई राशि नियमित रूप से अध्यापकों को नहीं मिलती थी । वे समय–समय पर गांव के बड़े लोगों से मिलने वाले मामूली से उपहारों पर ही अपना जीवन बिताते थे। पाठशालाओं की शिक्षा पद्धति की एक सबसे अधिक खराब बात यह थी कि अध्यापकों ने अपने छात्रों के मन में अपने डंडे या छड़ी का भयंकर भय बिठा दिया था और अध्यापक को अपने छात्र की किसी भी गलती के लिए शारीरिक सजा देने का पूरा–पूरा अधिकार था। अज्ञानी माता–पिता ने इस तरह के व्यवहार की अनुमति यह मान कर दे रखी थी कि भय के बिना शिक्षा संभव नहीं है और डंडे से बड़ा डर और किस बात का हो सकता था । ऐसा देखा गया है कि छात्रों को अपने अध्यापकों द्वारा की गई पिटाई बुढ़ापे तक याद रहती थी । इस तरह की सजाओं की कहानियां वे लोग अपने बच्चों और नाती–पोतों को सुनाते थे जिससे कि उनके मन में शिक्षा का मूल्य घर कर सके और अध्यापकों का महत्व भी समझ सकें ।

प्रायः यह देखा गया है कि प्रखर बुद्धि छात्र पहाड़े याद कर लेते थे और गणित के पेचीदा सवाल हल कर लेते थे, वे अपने गुरु के योग्य शिष्य माने जाते थे । जो लोग कमजोर थे लेकिन संभवतः अन्य तरह का ज्ञान प्राप्त करने के लिए जिनके मस्तिष्क बहुत अच्छे थे, बेचारे दीवारों के साथ खड़े कर दिए जाते थे और सजा भुगतते थे । उन्हें ऐसे विषय सीखने का कभी मौका ही नहीं मिलता था जिनमें वे अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन कर सकते गणित के अलावा धार्मिक

और पौराणिक कथाएं तथा रामायण और महाभारत की गाथाएं पढ़ाई जाती थीं । गांवों की पाठशालाएं कुल मिलाकर समाज की जरूरतें पूरी करती थीं और अध्यापक अपनी अज्ञानता और बर्बरता के रहते हुए एक लाभकारी सेवा करता था। हिन्दुओं की पाठशालाओं की तरह मुसलमान गांवों में मुस्लिम बच्चों के लिए मकतब हुआ करते थे । इस मकतबों में भी वैसी ही मध्यकालीन दुर्दशापूर्ण परिस्थितियों में प्रारंभिक शिक्षा दी जाती थी लेकिन इनमें रामायण और महाभारत की जगह मुस्लिम धर्मग्रन्थ पढ़ाए जाते थे ।

संस्कृत की उच्च शिक्षा के लिए टोल और अरवी तथा फारसी के लिए मदरसे थे । इस तरह की शिक्षा संस्थाओं को आमतौर पर शासक सरकार जमींदार और अमीर तथा दानी लोग आर्थिक सहायता देते था । 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के दौरान स्थानीय

राजे महाराजे आपस में लड़ते रहते थे और विदेशी आक्रमणकारियों के शिकार बनते जा रहे थे। इधर अमीर लोग भाग्य के उतार–चढ़ाव के दौर से गुजर रहे थे और इसके परिणामस्वरूप उच्च शिक्षा देने वाली संस्थाएं संरक्षकों के अभाव में कठिनाइयां झेल रही थीं। फिर भी वे जैसे– तैसे चल रही थीं ।

टोल शिक्षा संस्थाओं की शैक्षणिक प्रणाली वही पुरानी घिसी–पिटी थी। वहां के नियम और दिनचर्या कठोर थी। सबेरे से मध्यान्ह तक, मध्यान्ह के बाद से शाम तक और फिर शाम से रात के 10 या 11 बजे तक शिक्षार्थियों को पढ़ाई ही करनी होती थी । इनमें पढ़ाई के मुख्य विषय थे व्याकरण, सामान्य साहित्य, पौराणिक कथाएं, तर्कशास्त्र और विविधशास्त्र वैसे व्याकरण अध्ययन का मुख्य विषय होता था । व्याकरण का विशेष कर पाणिनी के व्याकरण का पूरा– पूरा ज्ञान प्राप्ति करने के लिए शिक्षार्थियों को 10 से 12 साल तक अध्ययन करना होता था । मदरसों की संख्या इतनी अधिक नहीं थी, लेकिन इनकी हालत कुछ बेहतर थी। मुगल सम्राट अकबर के जमाने से राज दरबार की भाषा फारसी थी इसलिए हिन्दू मुसलमान दोनों ही इसे सीखने के उत्सुक थे । अरबी भाषा का अध्ययन अधिकतर कट्टर पुरातनपंथी मुसलमान ही करते थे जो अपने धर्मग्रन्थों का पूरा–पूरा ज्ञान प्राप्त करना चाहते थे । इन मदरसों की सहायता, मुस्लिम शासक, नवाब और दरबारी तथा समाज के अन्य सम्पन्न लोग करते थे । प्रायः यह देखा गया है कि अधिकांश मदरसे मस्जिदों में होते थे । आधुनिक कालीन शिक्षा का स्वरूप मध्ययुगीन था। पढ़ाई केवल धर्मग्रन्थों और धार्मिक नियमों तक ही सीमित थी हिन्दू धर्म और इस्लाम के गहन दार्शिनिक तथ्यों को समझना तो कुछ ही लोगों के बस की बात थी, लेकिन अधिकांश शिक्षार्थियों के लिए शिक्षा का अर्थ था रूढ़िगत बातों का अध्ययन । पढ़ाई कवल और धार्मिक नियमों तक ही सीमित थी हिन्दू धर्म और इस्लाम के गहन दार्शिनिक तथ्यों को समझना तो कुछ ही लोगों के बस की बात थी, लेकिन अधिकांश शिक्षार्थियों के लिए शिक्षा का अर्थ था रूढ़िगत बातों का अध्ययन । शिक्षार्थी का मुख्य काम किसी विषय को समझना नहीं बल्कि उसे कंठस्थ कर लेना, किसी अध्याय का गहरा अध्ययन करना ही नहीं बल्कि उसका बार–बार अभ्यास करना ही था । व्यापक ज्ञान प्राप्ति शिक्षा का अंग नहीं थी । तर्क, जिज्ञासा, गवेषणा और अनुसंधान तथा विज्ञान और मानव शास्त्र इन अलग– अलग बातों के अध्ययन से उपजने वाला ज्ञानबोध शिक्षा की सीमाओं के बाहर की बातें थी । इससे भी अधिक दुःख की बात यह थी कि प्राचीन प्रज्ञता और विज्ञान के सबसे अच्छे और वास्तविक पहलुओं की उपेक्षा कर दी गई और शिक्षितों के मन पर केवल धार्मिक अवस्थाओं के बाहरी प्रभाव ही हावी रहे । इसके परिणाम स्वरूप उच्च शिक्षा केवल पुराने उद्देश्यों को ही पूरा कर सकी । ऐसी परिस्थितियों में भारतीय शिक्षा मानो परिवर्तनशील पश्चिम के ज्ञानबोध के से नए निर्देशों की प्रतिक्षा कर रही थी। युग

17वीं शताब्दी में काशी में पढ़ाये जाने वाले विषयों (पाठ्यक्रम) का उल्लेख बर्नियर के यात्रावृतांत से पता चलता है। उसके अनुसार पाठ्यक्रम में पहले तो विद्यार्थी व्याकरण की सहायता से संस्कृत सीखते थे, बाद में पुराण पढ़ते थे और आगे चलकर दर्शन, आयुर्वेद, ज्योतिष इत्यादि अपने इच्छित विषय का अध्ययन करते थे बनारस में बर्नियर ने एक प्रसिद्ध पुस्तकालय भी देखा जो सम्भवतः कवीन्द्राचार्य का पुस्तकालय था ।

सन्यासी ने पूछा– और भी कुछ पढ़ा है ? ब्राह्मण ने उत्तर दिया काव्य, नाटक, अलंकार और स्मृति भी पढ़ी है ।ʺ संन्यासी अब संतुष्ट हुए ʺक्या खूब, तू श्रोत्रिय है ? यह त्रिविक्रम तेरे यहां भिक्षा ग्रहण करेगा । गीर्वाण पद्मंजरी में ही आगे भी चर्चा आयी है

जिससे तत्कालिक शिक्षा व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है । एक स्वामी जी ने पूछा ष्अरे, तेरा पिता बनारस छोड़कर बहुत दिनों तक बंगाल में किस लिए रहा ? पंडित – ष्स्वामीजी, वे विद्याभ्यास के लिए वहाँ रहे । स्वामी ष्क्या काशी में – अध्ययन नहीं हो सकता था ?पंडित ष्क्यों नहीं हो सकता था । पर वहाँ उन्होंने तर्क पढ़ा ।स्वामी– क्या पढ़ा ? पंडित– ष्स्वामी जी, जिस तरह पिता ने अभ्यास किया वह तो मैं नहीं कर सका, पर उसका आधा कुछ कुछ मैंने भी अभ्यास किया । स्वामी – तूने क्या पढ़ा। पंडित मैने पहले पंच – प्रकरण और चिन्तामणि पढ़ी। बाद में शिरोमणि, मथुरानाथी, भावानन्दी और मिश्रान्त का अभ्यास किया । अठारह कोश देखे, भाण्यान्त व्याकरण पढ़ा, अठारह पुराण पढ़े, वेदान्त में परिश्रम किया, छंद अलंकार, नाटक तथा साहित्य के साथ काव्य पढ़ा । ज्योतिष में अभ्यास किया तथा वैद्यक में परिश्रम । अब जो कुछ बच रहा है उसमें भी मेरी रुचि हैं। स्वामी षशिव शिव, तूने सब कुछ – पड़ा सिवाय वेद के पंडित स्वामी, बिना वेद के ब्राह्मणत्व कहाँ । ब्राह्मणों में पहले वेदाध्ययन और बाद में और कुछ होता है । इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि 17 वीं शताब्दी में भी पूर्व की भाँति अध्ययन अध्यापन की परम्परा विधिवत् चलती रही । 18वी सदी में काशी में संस्कृत शिक्षा का वही प्रबन्ध था जो मुगल काल में या उसके भी पहले से चला आ रहा था । विद्यार्थियों को काशी के 5६7 था। र पढ़ाते थे साथ ही उनके भोजन और रहने का प्रबन्ध भी करते थे 5 कुछ उनका व्यय होता था उसको पूरा करने के लिये महाजनों तथा राजाओं की जो सहायता अपेक्षित होती थी । जान पड़ता है, यह सहायता पर्याप्त रूप में मिलती थी । जब से पेशवों का बनारस से सम्बन्ध हुआ तब से तो दक्षिणी पण्डितों के सहायतार्थ महाराष्ट्र तथा मराठों की दूसरी अमलदारियों से भी अन्नसत्र और पाठाशालाएँ चलाने के लिए काफी रुपए आते रहे । अट्ठारहवीं सदी के अन्त में काशी में संस्कृत शिक्षा का वही प्रबन्ध था जो मुगल काल में या उसके भी पहले से चला आ रहा था । विद्यार्थियों को काशी के पढ़ाते थे साथ ही उनके भोजन और रहने का प्रबन्ध भी करते थे कुछ उनका व्यय होता था उसको पूरा करने के लिये महाजनों तथा राजाओं की जो सहायता अपेक्षित होती थी । जान पड़ता है, यह सहायता पर्याप्त रूप में मिलती थी । जब से पेशवों का बनारस से सम्बन्ध हुआ तब से तो दक्षिणी पण्डितों के सहायतार्थ महाराष्ट्र तथा मराठों की दूसरी अमलदारियों से भी अन्नसत्र और पाठाशालाएँ चलाने के लिए काफी रुपए आते रहे ।

संदर्भ

1. श्री रामानन्दपीठ संस्कृत महाविद्यालय, कर्णघण्टा, वाराणसी

2. बर्नियर, फ्रांकोआ ट्वेल्स इन दि मोगल एंपायर, एस. डी. 1656 1668 (अनुवाद) कांस्टेबल, लंडन, 1891, पृ. 335–40.

3. श्री मुमुक्षुभवन वेद–वेदांग संस्कृत महाविद्यालय, अस्सी, वाराणसी

4. डॉ. मोतीचन्द्र, काशी का इतिहास, पृ. 222.

5. डॉ. मोतीचन्द्र, काशी का इतिहास, पृ. 228.

6. आचार्य व्याकरण, साहित्य, दर्शन, शास्त्री वेद, वेदान्त, पुराण

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

NAAGS KANPUR

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एवं सामाजिक समरसता के सृजनात्मक आयाम

डॉ0 उमेश कुमार राय
पोस्ट डॉक्टोरेल फैलो, (ICSSR)
राजनीति विज्ञान विभाग,
सामाजिक विज्ञान संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी उ0प्र0

सारांश

ऋग्वेद में भारतीय वैदिक सभ्यता एवं संस्कृति के संस्थापको के 'आर्य' कहा गया है। प्राचीन भारतीय समाज 'वर्ण व्यवथा' पर आधारित था, पूर्व में वर्ण से आधारित परिकल्पना में पूर्ण परिवर्तन आया। परिवर्तित दौर में भारतीय समाज एवं संस्कृति के ऊपर अनेक चुनौती उपस्थित हुई, जिसके कारण भारत की आध्यात्मिक स्वरूप व सांस्कृतिक विरासत पर कुठाराघात हुआ है। हुआछूत, अस्पृश्यता, ऊँच–नीच का भेद इत्यादि कई प्रकार की भ्रांतियॉ मजबूती के साथ रखी और आगे की ओर बढ़ाई गई। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, जो 'पारिवारिक निष्ठा व समरसता' से युक्त भावो से निर्मित संगठन है।संघ में संस्कारयुक्त, आध्यात्मिकता के गुणों से युक्त राष्ट्रभक्तों का निर्माण होता है। इसका प्रमाण संघ के द्वारा 'उत्सवों' के मनाने की परम्परा से है। आपसी संवाद होता रहे ऐसे मन्तव्य में संघ के उत्सव प्रमुख भूमिका निभा रहे है, अतएव समाज में सामजिक समरसता का निर्माण हो रहा है।

मुख्य शब्द– समादर्शिनः, समरसता, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, राष्ट्र निर्माण, व्यक्ति निर्माण।

ऋग्वेद में भारतीय वैदिक सभ्यता एवं संस्कृति के संस्थापको के 'आर्य' कहा गया है। आर्यो की पद्धति आगे चलकर भारतीय संस्कृति को मजबूती प्रदान करती है। उन्नत समाज की व्यवस्थाएँ सृजित होने लगी। एक समाज में रहने वाले सदस्यों का पारम्परिक लगाव ही उसकी सम्भावनाओं को मजबूती प्रदान करता है। प्राचीन भारतीय समाज 'वर्ण व्यवथा' पर आधारित था, जो 'कर्म की प्रधानता को स्वीकार करता है परन्तु इस प्रक्रिया में धीरे–धीरे परिवर्तन आना शुरु हुआ, स्थितियाँ बदलती गयी कर्मनिष्ठ व्यवस्था के सिद्धान्त पर आधारित सोच एवं परम्परा परिवर्तित होकर 'वर्ण' का रुपान्तरण 'जाति' ने ले लिया। क्रमशः 'जाति' जन्म के आधार से उत्पन्न हुआ। जन्म से ही व्यक्ति जिस जाति में जन्म लिया, वह उस जाति का होगा। ऐसा प्रायः साफ सफाई एवं अन्य कार्यो की करने वाले शुद्र के घर जन्म लेने वाला बालक शुद्र होगा। वैश्य का कार्य करने वाले व्यक्ति के घर जन्म लेने वाला–वैश्य की जाति, ब्राह्मण के घर–ब्राह्मण,

क्षत्रिय के यहाँ नवजात शिशु–क्षत्रिय ऐसी सोच व मानसिकता का विकास प्रारम्भ होने लगा। पूर्व में वर्ण से आधारित परिकल्पना में पूर्ण परिवर्तन आया। फिर भी भारतीय समाज व्यवस्था को इस व्यवस्था ने प्रतिबंधित करने का कार्य किया है।

जाति आधारित व्यवस्था की नवीन सांगोपागी दृष्टि से देखा जाए तो भारतीय व्यवस्था में एक व्यवस्था है– 'समादर्शिनः' का सिद्धांत है जो भगवान् श्री कृष्ण के श्री मुख से 'श्रीमद्भग्वद गीता' में मिलती है।

'समदर्शिन' अर्थात् सभी का समान देखने का भाव जो समरसता में है। समरसता एक ऐसा विषय है जो सार्वभौमिक है। सामाजिक व्यवस्था की संकल्पनात्मक अवधारणा है। समस्त मानव समाज में समानता हो, सम् दृष्टि रखी जाए। मनुष्य ईश्वरीय शक्ति से निर्मित है। कोई भी यह दावा नहीं कर सकता कि वह अन्य व्यक्ति की तुलना में श्रेष्ठ है। जीवन में मानवीय मूल्यों के सन्निवेश से सभी लोगों को जीव मात्र का महत्व समझमें आने लगा तथा प्रकृति के साथ तादात्मय स्थापित करने के लिए प्रवृत्त होने लगे। सभी की समस्याएँ प्रायः समान थी इसलिए सभी से पारस्परिक सहयोग की अपेक्षा की जाने लगी।[1]

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में इस भाव के अनुरूप ही संस्कृति का निर्माण भी हुआ परन्तु मायने परिवर्तित होते गए है। संस्कृति के मायने मनुष्य में कुछ अन्दरूनी विकास है? बेशक संस्कृति के यही मायने होने चाहिए। क्या दूसरों के प्रति किसी मनुष्य के व्यवहार को संस्कृति कहते है? निश्चित रूप से संस्कृति का यही अर्थ होना भी चाहिए, दूसरे व्यक्ति का दृष्टिकोण यदि कोई व्यक्ति न समझ पाए तो उसे सीमित कहा जाएगा। उसके विचार एवं भाव ही उसे गतिशील करते है। परिवर्तित दौर में भारतीय समाज एवं संस्कृति के ऊपर अनेक चुनौती उपस्थित हुई, जिसके कारण भारत की आध्यात्मिक स्वरूप व सांस्कृतिक विरासत पर कुठाराघात हुआ है। यह प्रक्रिया और भी मजबूत विदेशी आंक्रताओं के कारण भी दिखाई देती है। भारत परतंत्रता की जंजीरों में जकड़ता गया अनेक नवीन विषय–नस्ल, धर्म जाति, वर्ग एवं आस्था के आधार पर भारतीय समाज की सभ्यता व संस्कृति बॅटती चली गई। ब्रिट्रिशो के 200 वर्षो के शासन के दौरान नवीन समस्याओं के रूप भारतीय समाज का विघटित स्वरूप सामने आया एव हुआछूत, अस्पृश्यता, ऊँच–नीच का भेद इत्यादि कई प्रकार की भ्रांतियॉ मजबूती के साथ रखी और आगे की ओर बढ़ाई गई। भारत के अन्दर कई संगठनों व दलो ने इन समस्याओं का दूर करने का बीड़ा उठाया। जैसे– राजा राममोहन राय, (ब्रह्मसमाज) स्वामी दयानन्द (आर्यसमाज) सरस्वती, ज्योति राव फूले (सत्यशोधक समाज), डॉ0 भीमराव अम्बेडकर प्रमुख रूप से थे, परन्तु समाज में 'यह बीमारी अपनी उच्च भयानकता की ओर पूर्णः गतिशीलता के साथ बढ़ रही थी। भारत में अनेक छोटे–बड़े संगठन इस दिशा में प्रयास कर रहे थे वहीं इसमें एक अन्य महत्वपूर्ण सांस्कृतिक संगठन का नाम आवश्यक है, जिसने भारतीय समाज की बुराईयो को दूर करने थी एवं राष्ट्रवाद के निर्माण मे महत्वपूर्ण योगदान दिए है। वह संगठन कोई और नहीं वर्ष 1925 में स्थापित डॉ0 केशव बलिराम हेडगेवार के द्वारा स्थापित 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' है। संघ अपने निर्माणकाल से अलग हटकर 'राष्ट्र की परतंत्रता' के कारणो को चिंह्नित किया। किस प्रकार भारतीय सभ्यता व संस्कृति को विकृत किया गया। उन कारणो की रेखांकित कर रहा है। एक स्वस्थ समाज कैसे इतना अधिक दूषित हो गया, धर्म की ऑड़ को लेकर, अच्छाईयों की जगह बुराईयों को चित्रित किया गया। समाज में सामूहिक अनुशासन में कमी दिखाई देने लगी जिससे भावनात्मक एवं सकारात्मक रूप में आत्मचिंतन की आवश्यकता पड़ी, जिसका उत्तर डॉ0 केशवराव बलिराम हेडगेवार के

द्वारा दिया गया 'शक्ति व अनुशासन' से निर्मित संस्कारयुक्त व्यक्ति ही देश में सम्भाव निर्मित कर सकते है।' आवश्यक है कि व्यक्ति समाज के भावानात्मक पक्षों से जुड़ा रहे। समान विचार वाले लक्ष्य, पद्धति, रीतियुक्त सर्मपण–सम्पन्न भाव से समाज की सेवा करने के लिए तत्पर रहे। इस प्रकार का भाव निर्मित्त करने के लिए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एक योग्य 'औषधि'(दवा) है, जिसका असर धीरे–धीरेलेकिन दीर्घकालिक होता है। जो 'पारिवारिक निष्ठा व समरसता' से युक्त भावो से निर्मित संगठन है। जो इस मातृभूमि के सभी कष्टो व दुःखों को दूर करने के लिए समर्पित है। संघ की प्रार्थना की प्रथम पंक्ति ही इसका द्योतक है– 'नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमे' जिसका अर्थ हे वत्सल मातृभूमि! मैं तुझे सदैव प्रणाम करता हूँ। आगे की पंक्ति में– 'त्वया हिन्दुभूमे सुखवँ वीर्धतोऽहम्'[2] हे हिन्दूभूमि! तूने ही मुझे सुख में बढ़ाया है। कहने का आशय है– हिन्दुओं से युक्त भूमि जिसको प्रणाम किया जा रहा है वहाँ की समस्त कठिनाईयों को समाप्त करने में मेरी कोई भूमिका हो, ऐसा भी भाव 'संघ' का है। जिसने इस भूमि के सभी समस्याओं के लिए कार्य किया है।

सामाजिक समरसता व्यक्तियों की एक साथ रहने की एकता है। मनुष्य का निर्माण व उसकी चेतना एक ही होने के कारण सामाजिक समरसता का विकास होता है, यह हिन्दु व हिन्दुत्व का स्थायी भाव है जिसका संकल्प व्यक्तिगत रूप से होकर सामूहिकता की ओर गतिशील होता है। सहिष्णुता, समादार एवं समन्वयात्मक दृष्टिकोण से सम्दृष्टि का भाव उत्पन्न होगा, ऐसा संघ की क्रिया कलापो से ज्ञात होता है। संघ 'शाखा' के माध्यम से व्यक्ति–निर्माण की प्रशिक्षणशाला के अन्तर्गत योग्य–नागरिक व आदर्श–चरित्र निर्माण करता है। एक घण्टे की शाखा मानसिक, शारीरिक, बौद्धिक सामाजिक, धार्मिक सभी क्षेत्रों से उत्पन्न हुई व्याधियों का समाप्त करती है। नए स्थानों पर, मंडली, मिलन निवासी वर्ग, प्रशिक्षण वर्ग, सेवा–शिक्षण के माध्यम से राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ स्वस्थ नागरिक समाज की रचना कर रहा है जिसमें संस्कारयुक्त, आध्यात्मिकता के गुणों से युक्त राष्ट्रभक्तों का निर्माण होता हैनिर्मित व्यक्ति में दायित्व का बोध, समाज के प्रति उत्तरदायित्व का आभास बना रहे सदैव इसके प्रति निरन्तर संघ कार्यरत है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वारा कार्यकारी विभाग से– बौद्धिक, शारीरिक, व्यवस्था, सेवा, सम्पर्क, प्रचार के स्तरों में भी सहयोग लेकर 'सम्भाव' निर्माण का कार्य किया जा रहा है। जिसमें–वनवासी कल्याण परिषद, भारत विकास परिषद् (ध्येय वाक्य–सम्पर्क, सहयोग, संस्कार, सेवा व समर्पण) विश्व हिन्दू परिषद्, सेवा भारती, सामाजिक समरसता मंच इत्यादि के द्वारा कार्य किए जा रहे है।

संघ के दूसरे संरसंघचालक गुरु जी ने राष्ट्रजीवन के प्रायः सभी पहलुओं पर विचार दिए है। सत्य को समाज के सामने रखकर हमेशा निर्भर व निरवर रहकर चिंतन किया है। सामाजिक समरसता का दीप स्थापित करने हेतु– 'शाश्वत, सनातन, आध्यात्म' का विचार संगठित हिन्दू समाज के संदर्भ में चलता रहा है। यदि समाज आत्मविस्मृति, की स्थिति में आएगा तब राष्ट्र भी उसी स्थिति में जाएगा इसलिए आवश्यक है कि, हिन्दू समाज का उत्थान हो, तभी हिन्दु राष्ट्र अर्थात् 'हिन्दुस्तान' का उत्थान सम्भव है। इसी क्रम में उनके आचरणों व कार्यावाहियों से ज्ञात होता है कि समरसता के भाव निर्माण में सहयोगी कौन है–

(1) आदर्श समाज रचना
(2) आदर्श समाज के निर्माणकारी तत्व
(3) हिन्दू समाज की स्थिति

(4) वर्णव्यवस्था
(4) वनवासीभाव
(5) सेवा
6) वैश्विक भाव
7) अस्पृश्यता का अंत

जाति–प्रथा की सबसे भयाक्रांत स्थिति–अस्पृश्यता की रुढ़ि है जहाँ स्पर्श, छाया को अपवित्र माना जा रहा था। सामाजिक दासता का घृणित स्वरूप, व्यक्ति की जानवर जैसी स्थिति की, जिसे धर्म के आड़म्बर से ढ़क दिया गया हो, अस्वीकार है। अस्पृश्यता की रूढ़ी से श्री गुरुजी अत्यंत दुःखी रहा करते थे।[3] इस घृणित प्रथा को हटाने का चिंतन सदैव उनके मध्य रहा। उन्होंने अस्पृश्यता को तीन स्लॉट में बाँटा।

(1) सवर्ण समाज, जो अस्पृश्यो का अस्पृश्य कहते है।
(2) अस्पृश्यता का शिकार बना, अस्पृश्य समाज स्वयं, जो अपने को अस्पृश्य समझता है।
(3) धर्मोचायो का एक वर्ग, जो इस रुढ़ी को धार्मिक मान्यता (बल) प्रदान करता है।

माधवराव सदाशिव गोलवलकरजी के द्वारा इन तीनों मोर्चो पर कार्यकर नवीन समरसता का भाव लाने का कार्य किया गया। गुरु जी का कथन है– "सवर्णो के मन के क्षुद्र भाव का नाम अस्पृश्यता है।"[4] एकतत्व का भाव, भ्रातृत्व, सेवा के भाव से ही समरसतता आएगी। संघ की 'शाखा' रूपी पौंधशाला से इन्हीं गुणों से सींचित वृक्षो को(व्यक्ति–निर्माण) लगाया जा रहा है।

विश्व हिंदू परिषद के सहयोग से श्री गुरुजी ने यह कार्य किया तथा प्रयाग (1966) उडुपी (1969) सम्मेलन कीइसमें काफी महत्वपूर्ण भूमिका रही। घर वापसी का प्रस्ताव–प्रयाग सम्मेलन में आया जिसकी काफी महत्वपूर्ण भूमिका रही। घर वापसी का प्रस्ताव–प्रयाग सम्मेलन में संघ के पटल पर लाया गया। वही दूसरी तरफ अस्पृश्यता को धर्म सम्मत उडुपी सम्मेलन में माना गया। जिसमें शैव, वीर शैव, महव, वैष्णव, जैन, बौद्ध आदि समस्त हिन्दू जगत का आह्वान भी किया है। जिसका भाव है–

"हिंदवः सोदराः सवै"

यह एक ऐतिहासिक पल है जब विकृत परम्परा पर सच्ची धर्म–भावना की विजय हुई।

अस्पृश्यता समाप्ति के लिए बहुत बड़ा संघर्ष डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने किया था। उन्होंने भी कहा था कि अस्पृश्यता धर्ममान्य नहीं है जिसे माधवराव सदाशिव गोलवलकर ने उडुपी के सम्मेलन में कर दिखाया। महात्मा गाँधी जी ने अस्पृश्यो को 'हरिजन' कहा है, जिस पर अम्बेडकर व गोलवलकर ने भी आपत्ति की थी। 'हरिजन' शब्द कितना भी पवित्र क्यों न हो लेकिन इसका नवीन प्रचलन अलगाववादी चेतना को जन्म देगा और सामाजिक समरसता व एकता निर्माण के लिए राजनितिक स्वार्थ समूहों का निर्माण करेगा, ऐसा मानना गोलवलकर का था, जो आगे चलकर दिखाई भी देता है।

अस्पृश्यता के सन्दर्भ में गुरू जी ने कहा कि, ''अस्पृश्यता केवल अस्पृश्यो का ही प्रश्न नही है। कौन कहाँ जन्म लेता है? यह किसी के वश की बात नही है। मैं इसी कुल में जन्म लूँगा, यह कोई नही कह सकता।" अतः अस्पृश्यता, सवर्णो के संकुचित मनोभावना का नामकरण है।[5] इस संकुचित भावना को समाप्त करना आवश्यक है। यद्यपि भारतीय राज्य के अर्न्तगत संविधान के अनुसार अस्पृश्यता की समाप्ति (अनुच्छेद–17)[6] हो चुकी है। ऐसा स्वीकार किया गया है परन्तु अनेको के मन में

आशंका बनी है कि धार्मिक मदान्धता के चलते ऐसी परिस्थितियाँ अभी भी भारतीय समाज में बनी हुई है।

बाबा साहब डॉ0 भीमराव अम्बेडर से पहले भी अनेक दलित समाज के सुधारक हुए थे। समता के संदर्भ को राजनीतिक चेतना व शैक्षिक अनिवार्यता से जोड़कर डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने एक सार्थक हस्तक्षेप किया।[7] भारतीय समाज को उनकी फटकार एक मुक्तिदाता की फटकार है व चेतावनी भी है।[8] इस क्रांति के प्रेरणा–पुरुष 'वीर मेघमाया' भी थे, उन्होंने' समाज में लोगों की चेतना को जागृत करने का कार्य किया।[9] तत्कालीन राज्य व्यवस्था को भी प्रभावित किया तथा राजसत्ता से माँग की, "हमें तुलसी और पीपल की पूजा का अवसर मिले" यह एक छोटी सी माँग, आगे आने वाले भविष्य का दर्शन था। वही तो ऐसा विचार किसे आता केवल 'दो एकड़ जमीन दो, जिससे बच्चे सुखी होगें' तक सीमित रहता। उन्होंने समस्त समाज के सुख की कल्पना की है, हिन्दू समाज को समरस बनाने की योजना, उनके हृदय में थी। जिसे डॉ0 अम्बेडकर ने आगे बढ़ाया, दलित समाज के विकास की दिशा क्या समता या समरसता?[10] इस द्वन्द्व का उत्तर सम्भवतः यह हो सकता है कि 'समरसता के अभाव में समता बेईमानी' होगी। समता को स्थापित करने के लिए निर्भयपूर्ण समाज आवश्यक है। सम्भाव में ममभाव की स्वीकार्यता ही समाज के इस रोग का उपचार है, जो हिन्दू समाज की ताकत होगी। वस्तुतः सामाजिक समरसता के मूल घटको में शांतिपूर्ण सह अस्तित्व, सहिष्णुता, सहयोग (सहकार्य), बंधुत्व, आत्मीयता, सर्वहित, परावलम्बन निर्भरता, समन्वय, सरोकार, समूह चेतना, सदस्यता का दायरा व्यापक है। वही दूसरी तरफ आदश समाज रचना, हिन्दू समाज की स्थिति, वर्ण–व्यवस्था की पूर्ण समाप्ति, अस्पृयता का अवसान, वनवासी बांधव सेवा से ही इसे वैश्विक आयाम प्रदान करके सामाजिक समरसता स्थापित होगी। प्राचीन काल में परम्परागत घटकों में –(1) धार्मिक एवं सामाजिक कार्यक्रम (2) धार्मिक ग्रन्थ (जैसे– वेद, पुराण, महाकाव्यो, आदि ने मनुष्य को एक दूसरे से प्रेम करना सिखाया है)(3) कला (4) संयुक्त परिवार प्रथा (5) ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था (6) विशिष्ट खान–पान (7) रीति–रिवाज इत्यादि वही आधुनिककालीन समरसता के घटकों के रूप में विभिन्न तथ्य दिखाई पड़ते है जैसे–

(1) संविधान (संविधान से सामाजिक समरसता संभव है)

जैसे–(a) अनु–14 विधि के समक्ष समानता

(b) अनु0 15– धर्म, वंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान आदि के आधार पर भेदभाव का निषेध किया गया है।

(2) विभिन्न सामाजिक विधान (जैसे– सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम और अनुसूचित जाति एवं जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम)

(3) मीडिया सामाजिक समरसता का पोषक है

(4) साहित्य एवं सामाजिक समरसता

(5) सिविल सोसाइटी

(6) शिक्षा एवं जागरूकता

(7) क्षेत्रीय विषमता को दूर करने के सरकार के अनुवर्ती प्रयास

(8) प्रौद्योगिकी एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होना।

सामाजिक समरसता की वृद्धि के लिए किए गए प्रमुख कार्यः–

(1) 6 दिसम्बर – सामाजिक समरसता दिवस

(2) सर्वधर्म सर्व जाति समरसता समारोह

(3) 26 नवम्बर– संविधान दिवस

(4) राज्य सरकारो की अंतर जातीय विवाह प्रोत्साहन योजना
(5) ग्राम उदय से भारत उदय मिशन
(6) 14 अप्रैल– सामाजिक न्याय दिवस
(7) आरक्षण प्रदान किया गया तथा सामाजिक विधानों का क्रियान्वयन – जैसे SC/ST एक्ट इत्यादि।

आज राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ समाज में समरसता, का भाव स्थापित करने में सफल रहा है। संघ ने अपने क्रियाशीलता के जरिए सम्पूर्ण भारतीय समाज को नव चैतन्यता से जागृत करने में सफल रहा है। इसका प्रमाण संघ के द्वारा 'उत्सवों' के मनाने की परम्परा से है। जो 'सामाजिक समरसता' निर्माण के वाहक है, जिससे समाज आंनदित होता है। उत्सव सामाजिक जीवन से भी सम्बन्धित होते है और व्यक्तिगत जीवन से भी, व्यक्तिगत जीवन में अपने अतीत को याद करने के लिए उत्सव आयोजित किए जाते है।[11]उत्सवो से तात्कालिक व दीर्घकालिक दोनों उद्देश्यों की पूर्ति होती है– आनन्द व गुणात्मक विकास। संघ भी इसी योजना पर निरंतर कार्य करते हुए गतिशील है। समाज को 'संस्कारयुक्त' और समाज में रहने वाले लोगों के मध्य आपसी संवाद होता रहेऐसे मन्तव्य में संघ के उत्सव प्रमुख भूमिका निभा रहे है, अतएव समाज में सामजिक समरसता का निर्माण हो रहा है।

(1) वर्ष प्रतिपदा (नव–संवत्सर) भारतीय नववर्ष चैत्र शुक्ल प्रथम को आयोजित होता है।
(2) गुरु–पूर्णिमा
(3) रक्षा बंधन उत्सव
(4) हिन्दू साम्राज्य उत्सव (शिवाजी महराज का राज्याभिषेक और हिन्दू राज्य की स्थापना)
(5) विजयदशमी उत्सव (हिन्दू संस्कृति के विजय पताका के रूप स्थापित–श्रीराम विजय)
(6) मकरसक्रांति उत्सव (सूर्य के दक्षिणायन से उत्तरायण होव का उत्सव)

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा समय–समय पर अनेक कार्यवाहियों एवं कार्यो के द्वारा सामाजिक समरसता के माहौल को मजबूती देने के लिए समाज में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाहन कर रहा है। संघ ने स्वयंसेवको की 'कर्म शक्ति' को 'राष्ट्र भक्ति' में परिवर्तित करके राष्ट्र निर्माण एवं समाज निर्माण को मजबूती प्रदान की है।

वर्तमान में सामाजिक समरसता की आवश्यकता :–

'सामाजिक समरसता' का भाव केवल विचारबोध नहीं है अपितु सामूहिक दृढ़ संकल्पित प्रयास से ही निर्धारित होगा, जिसके लिए कुछ विशेष कार्य करने की आवश्यकता है जैसे–

(1) स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए सहयोग किया जाए।
(2) आपसी सम्बन्धो में प्रेम भाई चारा बढ़ाने हेतु प्रयास हो।
(3) सामाजिक एकता के निर्माण के लिएसमाज के लोग आपस में मेल–जोल को बढ़ावा दे।
(4) शाश्वत मूल्यों की पुनर्स्थापना की जाए।
(5) धार्मिक सहिष्णुता को मजबूती प्रदान करने के लिए वैचारिक एवं व्यवहारिक सहयोग।
(6) जातिगत द्वन्द्व, छुआ छूत को कम करने के लिए सदैव प्रयासरत रहना।

(7) सफल राष्ट्र के निर्माण हेतु, नागरिको के मध्य समभाव से ममत्व भाव उत्पन्न करना होगा।

उपरोक्त सभी उद्देश्यों के लिए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ सदैव स्व प्रेरित भाव से समाज में बन्धु–बान्धव का निर्माण तथा समाज में समरसता के भाव को स्थायी करने के लिए कार्यरत है। साधारण से प्रतीत होने वाले कार्य 'रचनात्मक समाज' के पुनर्निर्माण के आधार है। संघ के द्वारा भारतीयों को शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक एवं आर्थिक दिशा में मजबूती व सहायता प्रदान करके, समाज में परिवर्तन लाने का दृष्टिकोण प्रदान किया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सामाजिक समरसता निर्माण के लिए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने महत्वपूर्ण प्रयास किए है। समाज में जिन बुराईयों से घिरा था, उनके प्रति आलोचनात्मक दृष्टि प्रस्तुत की तथा इसके लिए वैकल्पिक विचार एवं कार्यवाहियों के जरिए सामाजिक समरसता को सम्बलता प्रदान करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील है। जिससे आदर्श व्यक्तियों से परिवेशित समाज का निर्माण हो, श्रेष्ठ समाज व्यवस्था में ही एक मजबूत राष्ट्र का निर्माण होगा। भारतीयों के द्वारा निर्मित होने वाला "राष्ट्र" पूर्णतः सामाजिक सद्भाव, बन्धुता, समता, छुआछूत रहित होगा। इस प्रकार की व्यववस्था का राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वारा की जाती है। जिसको साकार एवं सफल करने की जिम्मेदारी सभी भारतीयों की है।

<u>सन्दर्भ</u>

1. कुमार प्रवेश, "सामाजिक समरसता और भारतीय दर्शन" IJHSSR, , VOL-5, . . ISSUE 4, July-2019 Page No. 168.
2. शाखा दर्शिका, 'प्रार्थना',राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, काशी प्रांत.
3. पंतगे, रमेश, "श्री गुरु जी और सामाजिक समरसता"
4. वही पृष्ठ सं0–13.
5. श्री गुरु जी समग्र : खंड 9 पृष्ठ सं0–179
6. वसु. डी0डी0, "भारत का संविधान" पृ0सं0–
7. मोदी नरेन्द्र, "सामाजिक समरसता" प्रभात पेपर बैक्स पृ0सं0– 25.
8. द्विवेदी, संजय, "सामाजिक समता का संदर्भ और डॉ0 आम्बेडकर" मीडिया नवचिंतन, अप्रैल 2018, पृ0सं0–55.
9. नवचिंतन, अप्रैल 2018, पृ0सं0–56.
10. मोदी नरेन्द्र, "सामाजिक समरसता" प्रभात पेपर बैक्स, पृ0सं0–27.
11. बत्रा, डॉ0 अशोक, "सामाजिक संवाद के वाहक संघ के छह उत्सव", मीडिया नवचिंतन, अक्टूबर–दिसम्बर, 2017,पृ0सं0–12.

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

NAAGS KANPUR

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

प्राचीन भारतीय आर्षग्रन्थों में मानवाधिकार : वर्तमान परिप्रेक्ष्य

दिनकर पाठक
शोध छात्र, राजनीतिशास्त्र
छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय कानपुर
डॉ0 दिनकर त्रिपाठी
एसोसिएट प्रोफेसर राजनीतिशास्त्र
परास्नातक राजनीतिशास्त्र विभाग,
फिरोज गाँधी कालेज, रायबरेली (उ0प्र0)

शोध सार

भारतीय आर्ष ग्रन्थों में वस्तुतः अधिकार, मानव मात्र का सम्मान व उसकी गरिमा की रक्षा, संवर्द्धन तथा परिसंचरण का पूर्ण उल्लेख प्राप्त होता है। मानवाधिकार मात्र मानव ही नहीं अपितु चराचर जगत के सभी जीवों के पाने का अधिकार, आर्षग्रन्थों में दर्शाया गया है। जहाँ एक ओर वे सभी अपने प्राकृतिक पर्यावरण के साथ नित नवीनतम् आदर्श कती प्राप्ति की और उन्मुख होते हैं, वहीं दूसरी ओर वे वर्तमान बदलाव के साथ अपने अधिकारों, दायित्वों व मूलभूत आवश्यकताओं की प्रापित हेतु आशान्वित तथा प्रयासरत रहते हैं। मानवीय सभ्यता के प्रारम्भ से ही इस विषय पर विभिन्न ऋषि, मनीषियों, विचारकों के द्वारा चिन्तन किया गया तथा यथोचित, देश, काल व परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न सिद्धान्तों के आधर पर विधियों व नियमों का निर्माण भी होता रहा है। वर्तमान समय में जब समस्त विश्व में लोकतांत्रिक व्यवस्था व संविधानवाद का काल परिव्यप्त हो रहा है, ऐसे समय में भी उन सिद्धान्तों व विचारों का विभिन्न रूपों में अनुप्रयोग किया जा रहा है तथा विधियों के निर्माण में इनका विशेष योगदान है। भारत जैसे विशाल लोकतांत्रिक देश में इनकी प्रासंगिकता तो ध्येय के रूप में स्वीकार्य की गई। भारतीय संविधान व विधि में तो इनका समायोजन मानो 'शरीर में रीढ़' की भाँति किया गया है। भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था समस्त विश्व के लिए एक आदर्श रूप में भी विद्यमान है।

विश्व में प्राचीन काल से अनेकों सभ्यताओं, मान्यताओं, प्रथाओं एवं परम्पराओं का उद्भव, विकास व विनाश होता रहा। कभी–कभी ये समाज की दिशा के निर्धारक तत्व के रूप में समाहित होते दिखते हैं, तो कभी समाज मे ये बुराइयों का स्वरूप धारण कर हेय व निन्दा का विषय बन जाते हैं। जिन प्रथा व परम्परा को प्राचीन काल से वर्तमान युग तक मान्यता प्राप्त है अथवा वे आज भी सामाजिक–राजनीतिक क्रियाओं को नियंत्रित करती है या सम्पादित करती है, इन्हे आर्ष व श्रेष्ठ ग्रन्थ की मान्यता

प्रदान की जाती है। कला, ज्ञान, विज्ञान व समाज मे इन विचार –धाराओं, कृतियों से सम्बद्ध ग्रन्थ को आर्ष ग्रन्थ के रूप में स्वीकार्य किया जाता है। भारतीय प्राचीन राजनीति के क्षेत्र में मनुस्मृति, कौटिल्य अर्थशास्त्र, शुक्रनीति, महाभारत, याज्ञवल्क्य स्मृति, बृहस्पति स्मृति आदि ग्रन्थों को आर्ष ग्रन्थ की मान्यता प्रदान की जाती है। वास्तव में ऐसे ग्रन्थ समाज के प्रतिनिधि ग्रन्थ रूप में भी माने जाते हैं। प्राचीन ग्रन्थों की एक विशेषता यह रही है कि ये किसी एक समुदाय क्षेत्र, बिन्दु या समाज का कल्याणमयी विचार प्रतिपादन नही करते है, अपितु सम्पूर्ण भू–भाग पर स्थित जीव के कल्याण व विकास की अभिधारणा विकसित करते है। किसी भी विषय से सम्बन्धित आर्ष ग्रन्थ में उस विषयगत आने वाली सभी चुनौतियों, क्रियाविधियों व परिणामों पर गम्भीरता से विचार किया जाता है। भारतीय प्राचीन आर्ष ग्रन्थ 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' के विषय में यदि विचार किया जाय तो प्राप्त होता है कि यह आर्ष ग्रन्थ राजनीति से सम्बन्धित सभी विषयों जैसे राजनीति के प्रारम्भिक बिन्दु राज्य, समुदाय, समाज से लेकर राजनीतिक शासन पद्धति, यथा लोकतंत्र, गणतंत्र, राजतंत्र, निरकुंशतंत्र कुलीनतंत्र आदि, राजा की योग्यता, वंशानुक्रम, दण्डविधान, प्रजा, प्रजापालन, राजतंत्रीय अंग यथा मंत्री, पुरोहित, अमात्य, रक्षक आदि की योग्यता, पद, सेवा, इत्यादि, सामाजिक अंग यथा स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध, रोगी आदि की स्थिति सुधार, कल्याण आदि तथा अन्य राज्यों के प्रति नीतिगत निर्णय, नियम आदि का विस्तृत उल्लेख व विवेचन किया गया है। जो आज के परिप्रेक्ष्य में सिद्ध व परिमार्जन का ध्येय है अर्थात राजनीतिक श्रेष्ठता की प्राप्ति के विषय में इन सिद्धान्तों का अनुपालन किया जाये तो परम कल्याणकारी व सुखद राज्य की अवस्था प्राप्ति की जा सकती है। मनुस्मृति तो दण्ड विधान का सर्वोत्तम ग्रन्थ माना जाता हैं। यदि प्राचीन परम्परा के अपराधों, कृत्यों व उनके निवारण पर स्पष्ट विचार किया जाये तो प्राप्त होता है कि इस ग्रन्थ में दण्ड की जो परम्परा अपनाई गई है, आज भी भारतीय दण्ड विधान में समाहित दिखती है। उदाहरणार्थ, चोरी के अपराध को पण्य (अर्थ) दण्ड व कुछ कालावधि तक कैद रखने का प्रावधान (परिस्थिति अनुसार) किया गया था। आज वर्तमान भारतीय दण्ड संहिता 1860 की धारा–441 से धारा 447 तक चोरी की विभिन्न परिस्थितियों में भी यही प्रावधान दिखलाई पड़ते हैं। मनुस्मृति को सुधारात्मक विधि का स्वरूप माना जाता हैं। इस आर्ष ग्रन्थ मे भेदभाव से रहित एक सत्यनिष्ठ नियमों, प्रावधानों व दण्डों का विधान किया गया है, अर्थात राजा से प्रजा तक सभी के अकृत्य कार्यों के लिए विभिन्न स्तरों पर दण्ड देने, अर्थदण्ड तथा पदच्युत व कैद तक का प्रावधान है। कई आलोचकों द्वारा यह उद्धृत किया जाता है कि राजा को कम सजा व प्रजा को अधिक सजा का प्रावधान किया गया है जो न्याय पूर्ण नहीं है, परन्तु इस पर विचार किया जाय तो प्राप्त किया जाता है कि किसी भी सजा या[1] दण्ड का प्रावधान निम्न बिन्दुओं को ध्यान मे रखकर किया जाता है।'

(I) सजा, किस अपराधकर्ता के लिए किया जाता है?
(II) अपराध कर्ता की मानसिक व शारीरिक स्थिति।
(III) अपराध की प्रकृति।
(IV) अपराध कर्ता का परिवेश।

---

[1] मनुस्मृति (मूल), गीता प्रेस गोरखपुर, संस्करण–2019, टीकाकार, श्री पं0 हरगोविन्द शास्त्री

वास्तव में, उदाहरणार्थ, यदि एक बालक चोरी का अपराध करता है तथा वहीं अपराध एक वयस्क करता है, तो दोनों को क्या एक समान दण्ड संभव है? न्यायपूर्ण है? नहीं। एक आम कृषक वर्ग जो शारीरिक रूप से बलिष्ठ व कर्मणशील है, उसकी अवस्था तथा एक राजकुमार, दोनों को समान अपराध की सजा नियमतः एक सी होनी चाहिए परन्तु क्या वह सजा राजकुमार द्वारा अवधार्य है? नहीं। क्योंकि वह उस दण्ड को कृषक की भांति सहन नहीं कर सकता और यदि वही दण्ड विधान कृषक की सजा को. राजकुमार की सजा से दण्डित किया जाय तो वो बिना किसी दर्द, पश्चाताप के धार्य करेगा। वास्तव में दण्ड किसी भी प्रकार से हानिप्रद न होकर सुधारात्मक होता है जिसमें यह भावना छिपी होती है कि व्यक्ति ऐसे अपराध की पुनरावृत्ति न करे। वास्तविकता में आज आधुनिक विधि भी उपर्युक्त तत्वों को अपराध के अंगो के रूप में निम्न रूप से समाहित करती हैं।"[2]

(1) आपराधिक मनः स्थिति

(II) प्रयास / प्रयत्न

(III) कृत्य या लोप

(IV) दुष्प्रेरण / प्रेरणा

भारतीय दण्ड संहिता 1860 की अभिभावना में निहित माना गया है कि अपराध का प्रारम्भ व्यक्ति की मनः स्थिति से होता है अर्थात् आपराधिक कृत्य की प्रारम्भावस्था मे वह व्यक्ति के विचारों, विकल्पों तथा अवचार के रूप मे आती है तथा सतत् मंथन का स्वरूप धारण करती है। फिर वह उस पर योजनाबद्ध स्वरूप प्रदान करने का प्रयास करता है। द्वितीय चरण मे वह प्रयास करता है और सहायक विषयवस्तु, संसाधनों का एकत्रीकरण, साध्य योजन तथा उचित व उपयुक्त संचारण का प्रयास करता है। वास्तव में यदि यह विचारधारा अपरिपक्व, अक्षम व्यक्ति (यथा–बालक, वृद्ध, स्त्री आदि) में आता है तो उनकी अवस्था का स्वरूप अभिपरिवर्तित हो जाता है। जहाँ तक बालकों का प्रश्न है, मा० उच्चतम न्यायालय के ''चरणजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य (1990)'' के वाद में स्पष्ट किया गया है कि बालक, वास्तव में कृत अपराधों की प्रकृति व परिणाम दोनो से अपरिचित होता है। वह पूर्णतः यह निर्धारित करने मे अक्षम होता है कि इसके द्वारा कृत कार्य, अविधिक, आपराधिक व दण्डनीय होता है। इसी परिप्रेक्ष्य में सजा का प्रावधान, अन्य सक्षम वयस्क की सजा के अनुरूप कम होता है। मा० उच्चतम न्यायालय ने ऐसे मामले में दुष्प्रेरणा या प्रेरणा को सर्वोत्तम माना है तथा यह अभिभाषित किया है कि अक्षम वर्गों के कृत अपराधों मे यह देखना आवश्यक है कि ये किस अवस्था, विचार व व्यक्ति से प्रेरित होकर किए गए हैं? ऐसे अपराधों में बालकों व अक्षम वर्गों के विचारण की प्रक्रिया भी अलग से है। अवयस्क व बालको के विचारण हेतु दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 के अनुपालन के परिप्रेक्ष्य मे बालक संरक्षण अधिनियम 1960 ई0 में, भिन्न प्रकार की व्यवस्था की गई है। इसमें किशोर न्याय बोर्ड के माध्यम से प्रक्रिया का संचालन किया जाता है तथा इन्हें सजा अवधि के लिए बाल संरक्षण अभिगृह भेजा जाता है। तात्पर्य यह है कि विधि में भी मानव के प्रावस्थागत स्थितियों

---

[2] विधिशास्त्र तथा विधि के सिद्धान्त, डॉ0 एन0वी0 परांजपे, सेन्ट्रल लॉ एजेंसी इलाहाबाद, संस्करण–2019, अध्याय–4 पृष्ठ संख्या 171, 172, 174

का ध्यान दिया जाता है। वास्तव में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से उत्तरोत्तर सुधारों व प्रक्रिया का सतत् प्रयास किया जा रहा हैं।[3]

वास्तव में प्राचीन आर्ष ग्रन्थों की एक महती विशेषता यह रही है कि उसमें निहित राजनीति' विषयक तत्व, वर्तमान राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में सर्वथा भिन्न प्रतीत होते है। 'अर्थशास्त्र' में राजनीति को स्पष्ट करते हुए व्यक्त किया गया है कि समस्त स्पष्ट भूभाग पर निवास करने वाले प्राणी के हितप्रद, कल्याणप्रद तथा विद्वेष रहित स्थितियों में सृजित हितबद्ध नियम, व्यवस्था व व्यापार का सृजन राजनीति का समावेशित रूप होता है। अर्थशास्त्र में स्पष्टतः निम्न पांच बिन्दुओं को राजनीति का अभिन्न अंग माना गया है।

1. एक स्पष्ट भू–भाग
2. निवासी प्राणियों / प्राणी
3. हितप्रद, कल्याणप्रद व विशेष रहित
4. नियम, व्यवस्था व व्यापार
5. नियामक (राज्य)

प्रथमतः स्पष्ट भू–भाग को परिमाणिक रूप में अभिव्यक्त करते हुए कहा गया कि किसी निश्चित क्षेत्र विशेष के प्राणी व आधार वस्तुओं के विचार व प्रकृति भिन्नता से लगभग परे होती है अर्थात् वे समान रूप से परिष्कृत होती हैं। उदाहरणार्थ–हिमालयी परिक्षेत्र में निवास करने वाला जनमानस जिस विशेष विचाराधारा व व्यवस्था की आकांक्षा व अपेक्षा करता है, वह एक मैदानी या तटीय क्षेत्र में निवासी व्यक्ति की अपेक्षा व आकांक्षा से भिन्न होता है। मानवाधिकार की अवधारणा में भी उस विषय की स्पष्ट ज्ञात अवस्था परिमार्जित की गयी है। अर्थात् समुद्री जलीय या तटीय क्षेत्रों मे निवास करने वाले व्यक्तियों को कुछ विशेष अधिकारों का सृजन किया गया हैं जैसे–मैदानी क्षेत्रों के निवास व्यक्तियों को भोजन के अधिकार के तहत शिकार करना एक दण्डनीय अपराध माना जाता है, वही तटीय हिमालयी या जंगली क्षेत्रों में उसे 'जीवन के अधिकार' के रूप मे मान्यता प्रदान की गई हैं। मनुस्मृति में भी ऐसे 'ऐच्छिक अधिकारों' को मान्यता प्रदान की गई है। वनचर व जंगली जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति को यह 'आखेट' के अधिकार के रूप मे मान्यता दी गई है जबकि अन्य के लिए बिना राजाज्ञा के यह दण्डनीय अपराध है।[4]

हितप्रद या कल्याणप्रद व विद्वेष–रहित भावना से तात्पर्य राजा के ऐसे दायित्त्व के सृजन के रूप में उल्लिखित किया गया है कि राजा में किसी विशेष वर्ग समूह या अन्य प्राधिकार प्राप्त व्यक्तियों को उच्च मान्यता नहीं देनी चाहिए। वह ऐसे व्यवस्था का सृजन करे जो समान रूप से सभी के लिए संचरित हो तथा वर्गों में सामन्जस्य स्थापित करे। यदि राजा किसी को अधिक अधिकार प्रदान कर दे तो वस्तुतः कालान्तर में वह विखण्डन की अवस्था सृजित कर देगा तथा राज्य को विभाजन की विभीषिका देखनी पड़ सकती है। मनुस्मृति व याज्ञवल्क्य स्मृति में यह दर्शाया गया है कि व्यक्ति समाज में समान रूप से जन्म लेता है और फिर अपने वर्ग व परंपरा के अनुसार कार्य में रत

---

3 दण्ड प्रक्रिया संहिता–1973, डॉ0 बसंती लाल बावेले, सेन्ट्रल ला एजेन्सी, इलाहाबाद संस्करण–2021 अध्याय– पृष्ठ सं0 21–25

4 कौटिल्य अर्थशास्त्र, वाचस्पति गैरोला, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, संस्करण–2017 तृतीय अधिकरण प्रकरण–56–57 अध्याय–1 श्लोक 3–4

हो जाता है। मनुस्मृति में ऐसी समानता प्रदान करने के विशेष नियम बनाने का अधिकार दिया गया है कि वह समानता प्रदान करने व प्राप्त कराने के लिए विशेष वर्ग के लिए विशेष नियम बना सकता है। परन्तु यह इस दशा व प्रकृति का होना चाहिए कि उससे किसी के अधिकारों का हनन, अतिव्यापन व उल्लंघन न हो। कौटिल्य के अनुसार, एक प्रभावशाली राजा व उसके न्याय के बीच समतापूर्ण व्यवहार ही साध्य होता है। वहीं अर्थशास्त्र के अनुसार समस्त प्राणी हित की कामना करते है तथा इन्हें प्राप्त करने के लिए अनेकों प्रयास भी करते हैं और यह कामना राज्य की अवधारणा के विचार से पुष्ट हो जाये तो सिद्ध व श्रेयष्कर आदर्श राजा व राज्य दोनों का प्रादुर्भाव हो जाता है।

अर्थशास्त्र में नियम व्यवस्था व व्यापार को विशिष्ट मान्यता प्रदान की गई है जबकि मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति व महाभारत में इसे शासन या सत्ता के प्राण के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। मनुस्मृति में नियामक या विधान के रूप मे यह कहा गया है कि यदि मानवीय सृष्टि में उसके निरन्तर सभ्यता व विकास की कल्पना की जाय तो यह परम आवश्यक है कि वहाँ नियमों का संयमित व श्रेष्ठ पुंज होना चाहिए तथा उस नियम की श्रेष्ठता इस बात पर निर्भर करती है कि वह प्राणियों या निवासियों द्वारा कितनी स्वीकार्य है?

''आकमस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्।
यद्यध्दि कुरुते किंचतत्तकामस्य चेष्टितम्।।''

अर्थात् कामना से सिद्धि की पूर्ति तभी संभव है जब आप विशेष प्रकार से कल्याण प्रद कामना करें तथा यह समस्त समाज में सम्माननीय व हितपूर्ण हो।

मनुस्मृति कालीन समाज में प्रायः अधिकारो के विभेद प्राप्त होते है। वास्तव में मनुस्मृति कालीन समाज में प्रायः अधिकारों के विभेद का आधार लिंग व अवस्था प्रधान था, यथा –स्त्री, पुरूष, बालक व वृद्ध आदि। इस विभाजन के अन्तर्गत वर्णीय व्यवस्था के अनुरूप अन्य विशेष अधिकार भी प्रदान किए गये थे। उदाहरणार्थ–

(क) पुरूष को शिक्षा हेतु बहिर्गमन व व्यापार हेतु पर पुरूष सहचर्य कार्य–पद्धति का अधिकार।
(ख) स्त्री को पति की आज्ञा के बिना बहिर्गमन निषेध था। (सुधारात्मक)
(ग) बालकों को गुरूकुल शिक्षा अनिवार्य (अधिकार)।
(घ) वर्णीय व्यवस्था के अनुरूप व्यापार व कार्य के प्रति समान अधिकार।
(ड) पुरुष को स्त्री, बालक, वृद्ध और रोगी के भरण–पोषण व जीवन के प्रति कठोर दायित्त्व (अधिकार)।
(च) निज सम्पत्ति का वितरण, उत्तरदायित्व, उत्तराधिकार संबंधी अधिकार।
(छ) राजधर्म में निर्वाचन, राज्य स्थापन में सहभागिता का अधिकार।
(ज) निजरक्षा हेतु समस्त साक्ष्य व पवित्र उपाय का अधिकार ।

मानव अधिकारों के प्रति आर्ष ग्रन्थों में भी विशेष प्रबन्ध किया गया है। पौराणिक साहित्यों से लेकर वर्तमान आलोक तक यह किसी न किसी रूप में विद्यमान रहा है। मानव अधिकार समस्त आर्ष ग्रन्थ की विशेषता के रूप में निहित रहे है। कौटिल्य अर्थशास्त्र मे निम्न प्रकार से ये मानव अधिकार दृष्ट होते है।

द्वादशवर्षीया स्त्री प्राप्तव्यवहारा भवति, षोडशवर्षः पुमान्।
अत ऊर्ध्वमश्रूशुभूषायां द्वादशपणः स्त्रिया दण्डः पुंसो द्विगुणः।

अर्थात विधिक आलोक में यह सुनिश्चित किया गया कि यदि अपरिपक्व अवस्था मे विवाह आदि भ्रम आदि का प्रतिरूपण किया जायेगा तो वह दण्ड का अधिकारी होगा।

'तदेव स्त्रियां भर्तरि प्रसिध्दमदोषाया ईर्ष्याम बाहयविहारेषु द्वारेषु अल्पयों यथा निर्दिष्टः। इति पारूष्यम् (विवाह सम्बन्ध–1)

भर्तारं द्विषती स्त्री सप्तार्त वान्य मण्डयमाना तदानीमेव स्थाप्याभरणं निधाय भर्तारम् अनया सह शयानमनुशयीत। (2)

अर्थात् स्त्री या अक्षम के भरण–पोषण, जीवन आदि का अधिकार संरक्षक के दायित्व के रूप में किया गया, जिससे उसे सामाजिक सुरक्षा व व्यवहार में समानता व सम्मान की प्राप्ति हो सके। आधुनिक परिप्रेक्ष्य मे अधिकारों के सृजनात्मक स्वरूप का निरूपण उत्तराधिकार के विशिष्ट रूप में प्राप्त होता है। अर्थशास्त्र में तृतीय अधिकरण को सामान्यतया 'अधिकार अधिकरण' की उपमा प्रदान की जाती है। इस अधिकरण के समस्त प्रकरण व श्लोक अक्षरशः अधिकार की पराकाष्ठा को अभिव्यक्त करते हैं। वास्तव में इसमें सामान्य नागरिक यथा पुरुष, स्त्री, बालक, भिक्षु, वृद्ध आदि के अधिकारों के विषय में स्पष्ट प्रावधान दिया गया है। भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 ई0 लगभग सभी प्रावधान इस अधिकार प्रकरण से प्रेरित प्रतीत होते है। यथा उत्तराधिकार की योग्यता, वितरण व वंशानुगत क्रम तथा सम्पत्ति अर्जन की संरक्षकता, दायित्व व सम्पादन आदि। उदाहरणार्थ पिता की सम्पत्ति का विभाजन उसकी सम्मति के बिना या उसके जीवन काल में संभव नहीं होता है। पुत्रों द्वारा स्वयमेव अर्जित संपत्ति का विभाजन नहीं किया जा सकता। पुरूष के अधिकार में ही स्त्री व बालकों का अधिकार निहित होता है यही विधि मे भी प्रावधान किया गया है। (तृतीय अधिकरण, प्रकरण 61, अध्याय–5)

महर्षि बाल्मीकि ने रामायण महाकाव्य मे अधिकारों के विषय में निम्न भी अभिव्यक्त किया है।

अद्य मे पारूषं दृष्टमद्य पौरूषं मे सकल श्रमः अद्य तीर्ण प्रतिज्ञो अहं प्रभवाम्यद्य चात्मनः।
या त्वं विरहिता नीता चलचितेन रक्षसा। दैव सम्पादितो दोषो मानुषेण मया जिता।

वास्तव में पौरूष का सीधा सम्बन्ध अधिकार सृजन व सम्पादन से होता है और पवित्र संकल्प से ही अधिकार उत्पन्न होते है, जिसके साध्य के रूप में श्रम की आवश्यकता होती है तथा श्रम से प्राप्त अधिकार ही फलदायी होता है। वास्तव में फलदायी अधिकार ही कल्याणप्रद व सुखमयी होते हैं। यदि नीति हीन व्यक्ति मन के अनुसार चलता है तथा बिना सम्बद्ध प्रकृति का स्वयमेव अनुपालन करता है तो वह दैवीय आपदा व संकट से घिर जाता है। यदि वह सम्पादन में नीति श्रेष्ठता व न्याय का निरूपण करता है तो उसे दैव कृपा से समस्त सम्पन्नता प्राप्त हो जाती है अर्थात् यदि अधिकार, नियम व प्रकृति के विरूद्ध होते हैं तो समस्त जनमानस दुःख का भागी होता है। अधिकार स्वतः फल प्राप्त कराने का विशेष माध्यम होता है। समस्त युग श्रेष्ठो में अधिकार का सृजन 'अवधारण की क्षमता', 'मानसिक योग्यता' व 'निर्वहन की शक्ति' के आधार पर किया जाता है। यदि वह इस योग्यता के अनुरूप नही है तो संरक्षकता के माध्यम से इसे प्रदान किए जाने का प्रावधान किया जाता है।[5]

---

5 वाल्मीकि कृत रामायण महाकाव्यं, गीता प्रेस गोरखपुर, संस्करण–2019 युद्ध काण्ड, पंचमशाधिकशतम सर्ग, श्लोक संख्या–4, 5

आश्वसिहि नरश्रेष्ठ प्राणिनः कस्य नापदः।संस्पृशन्त्यग्निवद् राजन क्षणेन व्यापयान्ति च(6) 'दुखितो हि भवांल्लोकांस्तेजसा यदि धक्ष्यते। आर्ताः प्रजा नरव्याघ्रः क्व नु यास्यन्ति निर्वृहिम"। (7)

अर्थात् व्यक्ति अपने जीवन में क्या नही प्राप्त कर सकता? अर्थानुसार वह समस्त शक्ति व अधिकार का एकमात्र स्रोत व केन्द्रबिन्दु होता है। विखण्डन ही सभी विपदा का कारण होता है तथा विखण्डन का एक मात्र मूल कारण 'अधिकारातीत' कृत कार्य होता है। सभी को सभी के अधिकारों का सम्मान करना चाहिए तथा वस्तुतः अधिकार ही समस्त एकता का कारण भी है।

विद्या विवादाय धनं मदाय शक्ति परेषाम् परपीडनाय।
खलस्य साधुन विपरीतमेतद् ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय।।

आचार्य भवभूति ने इस उक्ति में यह स्पष्ट किया कि अधिकारों का अतिव्यापन सर्वत्र एक विवाद व अपराध को जन्म देता हैं। विद्वान व सशक्त राष्ट्र वह होता है (सभ्य राष्ट्र या व्यक्ति) जो अपने ज्ञान का उपयोग कल्याण के लिए करे, अपने धन, वैभव व सम्पदा को दान अर्थात अशक्त राष्ट्र को योग्यता प्राप्त कराने में करे तथा शक्ति व अधिकार का प्रयोग किसी भी रक्षा, निःशक्त की सहायता व वंचितों को अधिकार प्रदान करके करना चाहिए। इसके विपरीत एक विनाशकृत राष्ट्र वह है जो अपने ज्ञान का प्रयोग अन्य राष्ट्रों मध्य विवाद को जन्म देने के लिए करता है। धन का पूर्णतम् प्रयोग स्वयमेव सर्वोच्चता सिद्ध करने मे करता है तथा शक्ति व अधिकार का प्रयोग केवल अन्य को परेशान करने में करता है।[6]

जननी जनक बंधु सुत धारा। तनु धनु सुह्रद सहित परिवारा।।
सब कर ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बांध बरि डोरी।।[7]

हिंदी साहित्य के आर्ष ग्रन्थ 'रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास ने नीतियों का विभिन्न रूपों में निरूपण किया तथा प्राणि मात्र के अधिकारों को पूर्ण अनुसमर्थन किया। वास्तव मे यह विचार इन्होने विभिन्न आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन से प्राप्त किया और इसका उल्लेख मंगलाचरण, बालकाण्ड में निम्न प्रकार से किया है–

नानापुराणनिगमागम सम्मतंयद् रामायणे निगदते क्वचिदन्यो अपि।
स्वांतः सुखाय रघुनाथगाथा भाषा निबन्धमतिमंजुलमातनोति।।

इस अभिधारणा में उन्होंने सर्वाधिक प्रमाण 'वाल्मीकिकृत रामायण से प्राप्त किया जहां अवध मे राज्य नीति व दायित्वों को प्रमाणपुंज अभिनिहित है। वस्तुतः रामायण की पृष्ठभूमि ही 'अधिकारों' के प्राप्ति अनुप्रयोग व सम्पादन से हुई है। जहां नियमों के अनुसार राज्यभिषेक में ज्येष्ठ पुत्र को यह अधिकार प्राप्त होना चाहिए परन्तु एक वचन की प्रामाणिकता, जो तत् समय प्रवृत्त के अनुसार ध्येय थी। यह पूर्वाधिकारों पर अधिव्यापित हो गया। अर्थात् अधिकारों की सर्वत्र, सर्वकालिक अभिधारणा होती है।[8]

अधिकार वस्तुतः वह सारगर्भित अभिभावना है जो व्यक्ति को उसे तो स्वयमेव प्रकृति द्वारा प्राप्त होता है, या तो किसी सम्प्रभुसत्ता द्वारा विधि के अधीन प्रदान किया

---

6 नीतिशतकम् आचार्य भवभूति, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण–2018 (मूल) श्लोक संख्या 17 अध्याय–5

7 रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदासकृत, गीताप्रेस गोरखपुर, संस्करण–2015 सुदरकाण्ड दोहा, सं0–49

8 रामायण महाकाव्यं, वाल्मीकि कृत, गीताप्रेस गोरखपुर, मूलमातम, पंद्रहवा संस्करण–2018, अरण्यकाण्ड, श्लोक संख्या–44 अध्याय–2

जाता है। भारतीय विधि में अधिकार को 'हक' के रूप में दृष्टिगत किया गया है और परिभाषिक रूप मे यह कहा गया है कि हक एक स्रोत है तथा अधिकार उस स्रोत की उपज। विधि में अधिकार या हक के दो स्वरूप बताये गए है–(तथ्य)

1. भौतिक 2. मनोवैज्ञानिक

भौतिक तथ्यों से आशय ऐसी वस्तु से है जिनकी अनुभूति इन्द्रियों द्वारा हो सकती है जैसे–मकान बेचना, पुस्तक खरीदना आदि। मनोवैज्ञानिक तथ्य से आशय मानसिक चेतना से है जैसे किसी व्यक्ति के कर्ज अदा न करने का इरादा या चोरी करने का इरादा आदि मनौवैज्ञानिक तथ्य है। तथ्य या स्वत्व व्यक्ति को अधिकार दिलाते भी है और अधिकार से वंचित भी कर सकते है। जो तथ्य अधिकार दिलाते है, उन्हें 'विनिहितकारी तथ्य' कहा जाता है जबकि जो तथ्य अधिकार छीन लेते है अर्थात् व्यक्ति को अधिकार से वंचित करा देते है, उन्हें 'निहितकारी तथ्य' कहा जाता है। तथ्यों से अधिकारो का सृजन होता है और अधिकार का विनाश भी। अतः (1) निर्माण (2) अन्तरण (3) विनाश, ये अधिकार के तीन प्रमुख चरण होते है।[9]

वस्तुतः आजादी के उपरान्त भारत के संविधान निर्माता मनीषियों ने इन आर्ष ग्रन्थों मे उल्लिखित अधिकारों का पूरा समर्थन किया तथा यथा साध्य प्रावधानो के सृजन हेतु इन विचारों का समायोजन भी किया। भारत एक प्रजातांत्रिक देश है। प्रजातांत्रिक शब्द का अर्थ यह है कि सरकार अपना प्राधिकार जनता की इच्छा से प्राप्त करती है। सरकार, सामान्य जनता द्वारा निर्वाचित होती है, और यह जनता के प्रतिनिधियों का निकाय होती है। इस प्रकार से विधिक सम्प्रभुता के साथ ही राजनैतिक सम्प्रभुता जनता मे निहित होती है। इस उद्देश्य के साथ अन्य उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए संविधान के भाग –3 तथा भाग –4 मे क्रियान्वयन प्रक्रिया निर्धारित की गई है। जिसे क्रमशः : मूल अधिकारएवं राज्य के नीति–निदेशक तत्व के नाम से जाना जाता है।[10]

वास्तविकता मे संविधान के अन्तर्गत निहित सभी आदर्श नियमतः 'वसुधैव कुटुम्बकम' का अनुपालन करते प्रतीत होते हैं। जहां मूलाधिकारों के द्वारा व्यक्तियों को कतिपय अधिकार दिये गये है, वहीं नीति निदेशक तत्वों द्वारा राज्य को यह निर्देशित किया गया है कि वह अपनी जनता को विनिर्दिष्ट मामले में कुछ अन्य अधिकारों का प्रावधान करे। निदेशक सिद्धान्त यद्यपि न्यायालयों में प्रवर्तनीय नहीं होते, फिर भी उन्हें मूलाधिकारों से कम नही समझा जाना चाहिए। (मिनर्वा मिल्स बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया, ए0आई0आर 1980, एस०सी० 1789)। मूलाधिकार एवं निदेशक तत्व मिलकर संविधान की आख्या का निर्माण करते हैं। (केशवानन्द भारती बनाम स्टेट ऑफ केरल (1973) 4 एस0सी0225)

अनु0–5 के अन्तर्गत भारत के संविधान मे भारत की विश्व के प्रति सामान्य प्रतिबद्धता का प्रावधान किया जाता है। जिसमे यह कहा गया है कि राज्य

(क) अन्तर्राष्ट्रिय शान्ति एवं सुरक्षा की अभिवृद्धि का

(ख) राष्ट्रों के बीच न्यायसंगत और सम्मानपूर्वक सम्बन्धों को बनाये रखने का

---

9 विधिशास्त्र, डॉ0 एन0पी0 परांजपे, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद, अध्याय–9 पृष्ठ संख्या– 447–449।

10 भारत का संविधान, 1950, डॉ0 जय जयराम उपाध्याय, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन इलाहाबाद (बेयर एक्ट) अध्याय–4, संस्करण–2021

(ग) संगठित लोगो के एक दूसरे से व्यवहारो में अंतर्राष्ट्रिय विधि और संधि बाध्यताओं के प्रति आदर बढ़ाने का और

(घ) अन्तर्राष्ट्रिय विवादों के माध्यस्थम् द्वारा निपटारो के लिए प्रेरित करने का प्रयास करेगा।

भारत ने अन्तर्राष्ट्रिय सिविल और राजनैतिक अधिकार प्रसंविदा तथा अंतर्राष्ट्रिय आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रसंविदा का अनुसमर्थन 27 मई, 1979 को किया है।[11] अनुसमर्थन द्वारा इसने अन्तर्राष्ट्रिय स्तर पर उनके आबद्ध होने के लिए अपनी सहमति प्रदान की। महाभारत के शांतिपर्व में उल्लिखित किया गया है कि एक सम्पन्न राष्ट्र का यह परम कर्तव्य है कि समस्त परिप्रेक्षित राष्ट्रों से मित्रवत् सामन्जस्य स्थापित करे तथा ऐसी नीति का निर्माण करे जिससे संलग्न व संबद्ध दोनो राष्ट्रों का कल्याण हो। 'एक प्रभुसम्पन्न व योग्य राष्ट्र अपने मित्र राष्ट्रों व हित आबध्य राष्ट्रों' की नीति हित तथा समृद्धि का ध्यान करेगा तथा अभिवृद्धि में सहायता प्रदान करें।'[12]

'सभी जन को सम्मान कल्याण की ओर प्रेरित करे तथा उन्हें अन्य विधि व नियमों की अवधारणा को धारित कराने हुत जागरूक व प्रेरित करे। विपत्ति काल में परिवार की भांति व्यवहार करें।'

संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के बाद से द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका में पीड़ित व असहाय वर्गों के अधिकार के संरक्षण, पुर्नस्थापन का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया गया। यह सतत् प्रयास का क्रम चलता रहा। राज्यों में मानव अधिकारों की एक निष्पक्ष संस्था के सृजन के विचार की पहल 1946 ई0 के प्रारम्भ में यूनेस्को द्वारा की गई थी। सचिवालय ने 1947 ई0 में मानव अधिकारो का पर्यवेक्षण तथा प्रवर्तन ज्ञापन में राज्यों में इस प्रकार के निकाय के सृजन का सुझाव दिया था। महासभा में 1966 ई0 में सिविल एवं राजनैतिक प्रसंविदा तथा आर्थिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार प्रसंविदा के अनुपालन से सम्बन्धित कतिपय कार्यों के लिए जाने के लिए राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के सृजन के लिए प्रस्ताव की वादनीयता पर विचार करने के लिए एक संकल्प अंगीकार किया था। संकल्प द्वारा आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् को प्रश्न के सभी पहलुओं की परीक्षा करने के लिए मानव अधिकार आयोग से करने के लिए कहा गया।

---

11 संयुक्त राष्ट्र का घोषणापत्र (चार्टर), बेयर एक्ट, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद, संस्करण–2021

12 महाभारत, डॉ0 मुनीन्द्र नाथ, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी शांतिपर्व, स्कन्ध–3, सर्ग–5 श्लोक7108–11 संस्करण–2019

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

NAAGS KANPUR

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

राष्ट्र निर्माण में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की भूमिका का समसामायिक मूल्यांकन

पवन कुमार पांडेय
शोध छात्र इतिहास विभाग
विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कॉलेज कानपुर
छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय कानपुर

सारांश

इस समीक्षा ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की राष्ट्र निर्माण में भूमिका का गहन अध्ययन किया है। समीक्षा का मुख्य उद्देश्य था समाज के विभिन्न क्षेत्रों में संघ के योगदान को समझना और इसकी प्रभावशीलता एवं चुनौतियों का मूल्यांकन करना। मुख्य निष्कर्षों में पाया गया कि संघ ने शिक्षा, सामाजिक समरसता, आर्थिक स्वावलंबन, और आपदा प्रबंधन जैसे क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। हालांकि, इसकी गतिविधियां और वैचारिक आधारों को लेकर विवाद और आलोचनाएं भी रही हैं। निष्कर्षों के निहितार्थ यह हैं कि संघ की भूमिका राष्ट्र निर्माण में बहुआयामी है, लेकिन इसे समग्र रूप से समझने के लिए और अधिक विश्लेषण और संवाद की आवश्यकता है। अंत में, यह समीक्षा नीति निर्माताओं और सिविल सोसाइटी के लिए सिफारिशें प्रस्तुत करती है, जैसे कि समावेशी संवाद और सहयोग पर जोर देना, विविधता और विषमता को संबोधित करने वाले मुद्दों को प्राथमिकता देना, और स्थायी विकास और सामाजिक न्याय की दिशा में नवाचारी समाधानों की तलाश करना। यह अध्ययन भारत में राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को समझने में एक महत्वपूर्ण योगदान देता है।

मुख्य शब्द राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, सामाजिक समरसता, आर्थिक स्वावलंबन, राष्ट्र निर्माण, नीति निर्माण

परिचय

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ भारतीय समाज में एक प्रमुख स्वयंसेवी संगठन है, जिसकी स्थापना 1925 में हुई थी। इसका उद्देश्य भारतीय समाज में राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक समरसता, और आत्म–सम्मान को बढ़ावा देना है। संघ ने शिक्षा, स्वास्थ्य, ग्रामीण विकास, और आपदा प्रबंधन में अपनी विशेष भूमिका निभाई है। इसने सामाजिक और आर्थिक चुनौतियों के समाधान में योगदान दिया है, जिससे राष्ट्र निर्माण में इसकी प्रासंगिकता बढ़ी है (शर्मा, 2020)। संघ की गतिविधियाँ और पहलें भारतीय समाज के विभिन्न क्षेत्रों में सकारात्मक परिवर्तन लाने में मदद करती हैं, जिससे इसका महत्व और भी अधिक हो जाता है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ भारत में एक प्रमुख सामाजिक–सांस्कृ

तिक संगठन है, जो राष्ट्रवाद, हिंदू संस्कृति के प्रसार और समाजिक समरसता के प्रोत्साहन पर केंद्रित है। इसकी स्थापना 1925 में हेडगेवार द्वारा की गई थी, जिसका मुख्य उद्देश्य भारतीय समाज को एक सशक्त और आत्मनिर्भर राष्ट्र के रूप में स्थापित करना था। संघ ने शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक न्याय, और राष्ट्रीय सुरक्षा के क्षेत्रों में विशेष रूप से योगदान दिया है, जिससे इसकी भारत में राष्ट्र निर्माण के संबंध में प्रासंगिकता स्थापित होती है (कुमार, 2021)। इस संगठन ने विविध सामाजिक और आर्थिक परियोजनाओं के माध्यम से समाज के विभिन्न वर्गों में सकारात्मक परिवर्तन की दिशा में काम किया है। अध्ययनों के चयन और बहिष्करण मानदंड शोध की विश्वसनीयता और वैधता सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। चयन मानदंड में अध्ययन की प्रकृति (प्रायोगिक, सर्वेक्षण, मेटा–विश्लेषण), प्रकाशन की तारीख, शोध का भौगोलिक क्षेत्र, और डेटा संग्रह की पद्धतियाँ शामिल हो सकती हैं। बहिष्करण मानदंड उन अध्ययनों को अलग करने के लिए होता है जो शोध प्रश्नों के लिए अप्रासंगिक हैं, जैसे कि निम्न गुणवत्ता वाले अध्ययन, पूर्वाग्रह से प्रभावित अध्ययन, या अनुपलब्ध पूर्ण–पाठ। इस प्रक्रिया से सुनिश्चित होता है कि शोध में शामिल किया गया डेटा विश्लेषण के लिए उपयुक्त और प्रासंगिक है, जिससे शोध परिणामों की सटीकता और विश्वसनीयता बढ़ती है (कुमार और शर्मा, 2021)। इस अध्ययन के लिए अपनाई गई पद्धति अध्ययनों के चयन और बहिष्करण मानदंड पर आधारित है, जो विश्वसनीयता और वैधता को सुनिश्चित करती है। इसमें शोध की प्रकृति, प्रकाशन तिथि, भौगोलिक क्षेत्र, और डेटा संग्रह की पद्धतियों के आधार पर सटीक और प्रासंगिक अध्ययनों का चयन शामिल है। निम्न गुणवत्ता वाले या अप्रासंगिक अध्ययनों को बहिष्कृत किया गया है।

डेटा संश्लेषण विभिन्न अध्ययनों से प्राप्त जानकारी को एकत्रित करने और उसका विश्लेषण करने की प्रक्रिया है, जिससे नए निष्कर्ष या समझ का निर्माण होता है। इस प्रक्रिया में विविध स्रोतों से डेटा की तुलना, विपरीतता और सम्मिश्रण शामिल होते हैं। डेटा संश्लेषण के लिए व्यवस्थित समीक्षा, मेटा–विश्लेषण, और थीमेटिक विश्लेषण जैसे दृष्टिकोण प्रयोग किए जाते हैं। यह प्रक्रिया शोध प्रश्नों के उत्तर खोजने, नीतियों के लिए सिफारिशें प्रस्तुत करने, और भविष्य के अनुसंधान के लिए दिशानिर्देश सुझाने में मदद करती है (मिश्रा और वर्मा, 2023)। इस शोध के लिए अपनाई गई पद्धति डेटा संश्लेषण की प्रक्रिया पर आधारित है, जिसमें विविध अध्ययनों से प्राप्त जानकारी का एकत्रीकरण, विश्लेषण, और मूल्यांकन शामिल है। इस प्रक्रिया में व्यवस्थित समीक्षा, मेटा–विश्लेषण, और थीमेटिक विश्लेषण जैसे दृष्टिकोण का उपयोग किया गया है। इससे नए निष्कर्षों का निर्माण होता है, जो शोध प्रश्नों के उत्तर खोजने, नीतियों के लिए सिफारिशें प्रस्तुत करने, और भविष्य के अनुसंधान के लिए दिशानिर्देश सुझाने में मदद करते हैं।

राष्ट्र निर्माण में संघ का ऐतिहासिक अवलोकन

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का गठन 1925 में डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार द्वारा नागपुर में किया गया था, जिसका उद्देश्य भारतीय समाज में राष्ट्रीय एकता, हिंदू संस्कृति के संरक्षण, और देशभक्ति के भाव को बढ़ावा देना था। संघ ने अपनी स्थापना के बाद से विभिन्न सामाजिक, शैक्षिक, और राष्ट्रीय मुद्दों पर काम किया है। इसका विकास समय के साथ सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य में इसकी भूमिका के अनुरूप हुआ है। ने राष्ट्र निर्माण में अपनी भूमिका को मजबूती से स्थापित किया है, जिसमें उसने शिक्षा, आपदा प्रबंधन, और सामाजिक समरसता के क्षेत्रों में विशेष योगदान दिया है (शर्मा,

2023)। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने भारत के राष्ट्र निर्माण प्रयासों में कई महत्वपूर्ण मील के पत्थर स्थापित किए हैं। संगठन का योगदान सामाजिक समरसता, शिक्षा, ग्रामीण विकास, और आपदा प्रबंधन में उल्लेखनीय रहा है। संघ ने अनेक स्वयंसेवकों को तैयार किया, जिन्होंने देश की सेवा में अपना जीवन समर्पित किया। इसने सेवा भारती, विद्या भारती जैसी सहायक संस्थाओं के माध्यम से सामाजिक और शिक्षण संस्थानों की स्थापना की, जिससे भारतीय समाज में गहरा प्रभाव पड़ा (गुप्ता एवं देसाई, 2022)। आपदा के समय में, स्वयंसेवकों ने राहत और पुनर्वास कार्य में अग्रणी भूमिका निभाई। ये प्रयास न केवल भारत के राष्ट्र निर्माण में, बल्कि सामाजिक समरसता और एकता के विकास में भी योगदान करते हैं।राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के वैचारिक आधार हिन्दू राष्ट्रवाद पर केंद्रित हैं, जिसमें भारतीय समाज की एकता, अखंडता और सांस्कृतिक विरासत को महत्व दिया जाता है। संघ भारत को एक शहिन्दू राष्ट्रश के रूप में देखता है, जहाँ सभी नागरिकों का समान अधिकार और महत्व हो। इसके वैचारिक आधार स्वयंसेवा, समर्पण और चरित्र निर्माण पर जोर देते हैं। इसका मानना है कि शिक्षा, सामाजिक समरसता और राष्ट्रीय सुरक्षा के माध्यम से राष्ट्र को मजबूत किया जा सकता है (कुमार एवं मेहता, 2023)।

राष्ट्र निर्माण के विभिन्न क्षेत्रों में संघ की भूमिका

शिक्षा और युवा संवर्धन

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने भारत में शैक्षिक सुधारों और पहलों के माध्यम से महत्वपूर्ण योगदान दिया है। संघ की स्थापना के बाद से, इसने विद्या भारती जैसी शैक्षिक संस्थाएँ स्थापित कीं, जो भारतीय संस्कृति और मूल्यों के प्रति जागरूकता बढ़ाने पर केंद्रित हैं। इसके अलावा, संघ ने सामुदायिक शिक्षा और वयस्क शिक्षा कार्यक्रमों के माध्यम से ग्रामीण विकास में भी योगदान दिया है। इन पहलों का उद्देश्य समाज के सभी वर्गों तक शिक्षा की पहुँच सुनिश्चित करना और आत्म–सम्मान एवं राष्ट्रीय एकता की भावना को मजबूत करना है (शर्मा एवं गुप्ता, 2022)।

युवा क्लब और प्रशिक्षण शिविर भारतीय समाज में युवाओं के चरित्र निर्माण और नेतृत्व क्षमता विकास में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। ये क्लब और शिविर विभिन्न कौशल सेट, सामाजिक जागरूकता, और राष्ट्रीयता की भावना को बढ़ावा देने के लिए डिजाइन किए गए हैं। यहाँ युवा स्वास्थ्य, स्वच्छता, सामाजिक सेवा, टीम वर्क, और आत्म–अनुशासन जैसे विषयों पर प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। इन पहलों से युवाओं में आत्मविश्वास और समाज के प्रति जवाबदेही की भावना विकसित होती है, जिससे वे समाज और राष्ट्र के निर्माण में सक्रिय भूमिका निभा सकते हैं (वर्मा और खान, 2022)।

सामाजिक समरसता और सुधार

सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने के प्रयास समाज में एकता, सहिष्णुता और भाईचारे की भावना को मजबूत करते हैं। इन प्रयासों में विविधता को स्वीकार करने, सामाजिक विषमताओं को कम करने और समुदायों के बीच संवाद और समझदारी विकसित करने के लिए कार्यक्रम और गतिविधियां शामिल हैं। सामाजिक संगठनों और एनजीओ द्वारा चलाए गए शैक्षिक अभियान, सामुदायिक बैठकें, और सांस्कृतिक आदान–प्रदान कार्यक्रम समाज में समरसता को बढ़ावा देने के लिए प्रभावी साबित हुए हैं। इसके अलावा, शिक्षा प्रणाली में समावेशिता और विविधता पर जोर देने से युवा पीढ़ी में सामाजिक समरसता के मूल्यों को मजबूत किया जा सकता है (शर्मा और गुप्ता, 2023)।

सामाजिक सुधार आंदोलनों में भागीदारी समाज के विकास और प्रगति की दिशा में एक कदम है, जिसमें व्यक्तियों और संगठनों द्वारा लैंगिक समानता, जातिवाद के उन्मूलन,

शिक्षा के प्रसार, और स्वास्थ्य सेवाओं की बेहतरी के लिए कार्य किया जाता है। इन आंदोलनों के माध्यम से, समाज के पिछड़े और हाशिए पर रहने वाले वर्गों को सशक्त बनाया जाता है, और उन्हें समाज की मुख्यधारा में लाया जाता है। सामाजिक सुधार आंदोलनों की भागीदारी से न केवल समाज में परिवर्तन होता है, बल्कि यह परिवर्तन व्यक्तियों की सोच और दृष्टिकोण में भी आता है, जिससे एक समावेशी और न्यायपूर्ण समाज की रचना होती है (मेहरा और शर्मा, 2022)।

आर्थिक विकास

आर्थिक स्वावलंबन की दिशा में पहलों में भागीदारी, समाज के सभी वर्गों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए महत्वपूर्ण है। इसमें ग्रामीण विकास कार्यक्रम, उद्यमिता विकास पहल, और स्थानीय उत्पादन को बढ़ावा देने की योजनाएं शामिल हैं। ये पहल आर्थिक गतिविधियों को संवर्धित करने, रोजगार सृजन, और आय के नए स्रोतों की खोज के माध्यम से समाज के सबसे कमजोर वर्गों की सहायता करते हैं। स्वदेशी उत्पादों और सेवाओं को प्रोत्साहित करके, ये पहल स्थानीय अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करते हैं और आत्मनिर्भर भारत की दिशा में एक कदम आगे बढ़ते हैं (सिंह और वर्मा, 2023)।

लघु और मध्यम उद्यम समाज के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, रोजगार सृजन करते हैं, और स्थानीय समुदायों को सशक्त बनाते हैं। इन उद्यमों का समर्थन करने के लिए, सरकार और निजी सेक्टर दोनों से वित्तीय सहायता, प्रशिक्षण कार्यक्रम, और मार्केट तक पहुँचने में सहायता जैसी पहलें की जाती हैं। इन पहलों का उद्देश्य उद्यमिता की भावना को बढ़ावा देना, नवाचार को प्रोत्साहित करना, और वैश्विक बाजार में प्रतिस्पर्धी बनने में सहायता करना है (कुमार और पटेल, 2022)। ये विकसित करने और अर्थव्यवस्था में उनके योगदान को मजबूती प्रदान करने में केंद्रीय हैं।

सांस्कृतिक संरक्षण और प्रोत्साहन

भारतीय संस्कृति और विरासत का संरक्षण और प्रोत्साहन देश की अमूल्य धरोहरों को सजीव रखने और भावी पीढ़ियों तक पहुंचाने का महत्वपूर्ण प्रयास है। सरकारी नीतियां, निजी संस्थान, और गैर–सरकारी संगठन विविध सांस्कृतिक फेस्टिवल्स, कला प्रदर्शनियों, शिल्प कार्यशालाओं, और विरासत यात्राओं का आयोजन करके इस दिशा में काम कर रहे हैं। इन प्रयासों के माध्यम से, भारतीय संस्कृति की विविधता और समृद्धि को प्रदर्शित किया जाता है, साथ ही सामुदायिक भागीदारी को बढ़ावा मिलता है (मिश्रा और जोशी, 2022)। यह संस्कृति और विरासत के महत्व को नई पीढ़ी के मध्य पुनः स्थापित करने में महत्वपूर्ण है।

नीति और शासन में योगदान

नीति निर्माण पर प्रभाव विशेष रूप से तब महत्वपूर्ण होता है जब सामाजिक, आर्थिक, और पर्यावरणीय नीतियों को विकसित करते समय समाज के सभी वर्गों के हितों और आवश्यकताओं को संतुलित किया जाना हो। शोध संस्थान, नीति विश्लेषक, और सामाजिक कार्यकर्ता सरकारी नीतियों पर व्यापक प्रभाव डालने के लिए अनुसंधान, डेटा विश्लेषण, और जन जागरूकता अभियानों का उपयोग करते हैं। इन प्रयासों से नीति निर्माताओं को समाज के व्यापक हितों को समझने और उनके अनुसार नीतियों को आकार देने में मदद मिलती है (कौशिक और राव, 2023)। ऐसी गतिविधियां नीति निर्माण प्रक्रिया को अधिक समावेशी, पारदर्शी, और प्रभावी बनाती हैं।

शासन और सार्वजनिक प्रशासन में भागीदारी समाज के सभी सेक्टरों के समन्वय और सहयोग से निर्णय लेने की प्रक्रिया को सशक्त बनाती है। इसमें सिविल सोसाइटी, निजी क्षेत्र, और सरकारी एजेंसियों के साथ–साथ आम नागरिकों की सक्रिय भागीदारी शामिल

है। यह पारदर्शिता, जवाबदेही, और नागरिकों की आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशीलता में सुधार करता है। सहभागिता लोकतांत्रिक मूल्यों को मजबूत करती है और सार्वजनिक नीतियों और कार्यक्रमों की प्रभावशीलता में वृद्धि करती है। इस प्रक्रिया के माध्यम से, सरकारी योजनाओं का विकास और कार्यान्वयन अधिक जन–केंद्रित और समावेशी बनता है (कपूर और चौहान, 2023)।

राष्ट्र निर्माण में संघ की भूमिका का समसामायिक मूल्यांकन

हाल की गतिविधियों में, विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय मुद्दों पर ध्यान केंद्रित किया गया है, जिनका भारतीय समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इनमें जलवायु परिवर्तन, स्वच्छ ऊर्जा की ओर परिवर्तन, डिजिटलीकरण के माध्यम से शिक्षा में सुधार, और स्वास्थ्य सेवाओं में नवाचार शामिल हैं। इन पहलों ने न केवल समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का सामना किया है, बल्कि विकास की नई दिशाओं को भी प्रशस्त किया है। आधुनिक तकनीकी समाधानों और स्थिरता के लिए प्रतिबद्धता ने भारत को वैश्विक मंच पर एक उत्तरदायी और प्रगतिशील देश के रूप में स्थापित किया है (कृष्णन और मालहोत्रा, 2023)। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अपने वैचारिक आधार और गतिविधियों को लेकर विवादों और आलोचनाओं का केंद्र रहा है। इसकी सबसे प्रमुख आलोचना इसके हिन्दू राष्ट्रवादी विचारों को लेकर है, जिसे कुछ वर्ग सांप्रदायिक और बहुलतावादी भारतीय समाज के लिए खतरा मानते हैं। इसके अलावा, संघ पर कई बार राजनीतिक गतिविधियों में अत्यधिक संलग्नता और उसके चलते समाज में ध्रुवीकरण बढ़ाने के आरोप लगे हैं। हालांकि, संघ इन आरोपों का खंडन करता है और खुद को सामाजिक और राष्ट्रीय सेवा के लिए समर्पित संगठन के रूप में पेश करता है (अग्रवाल और मेहता, 2023)।

भारत में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अलावा अन्य राष्ट्र निर्माण आंदोलनों जैसे कि गांधीवादी आंदोलन, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के प्रयास, और समाजवादी आंदोलन ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इन आंदोलनों की तुलना में, संघ का दृष्टिकोण हिन्दू राष्ट्रवाद पर अधिक केंद्रित है, जबकि गांधीवादी आंदोलन अहिंसा और सत्याग्रह पर जोर देता है। समाजवाद और साम्यवाद के सिद्धांतों पर कार्य करती है, जबकि समाजवादी आंदोलन समाज आर्थिक समानता और न्याय की खोज में लगे हुए हैं। इन आंदोलनों का उद्देश्य भारत को एक समृद्ध और समावेशी समाज में परिवर्तित करना है, जिसमें उनके अपने विशिष्ट तरीके और विचारधाराएँ हैं (शर्मा और कुमार, 2023)।

साहित्य समीक्षा से प्राप्त निष्कर्षों का संश्लेषण विभिन्न अध्ययनों और लेखों में उल्लिखित विचारों, निष्कर्षों, और अवधारणाओं को एकीकृत करने की प्रक्रिया है। यह समझने के लिए कि विशेष विषय पर क्या ज्ञान मौजूद है और किन क्षेत्रों में अनुसंधान की आवश्यकता है, यह प्रक्रिया महत्वपूर्ण है। संश्लेषण से शोधकर्ता को विषय की गहरी समझ विकसित करने, विभिन्न ष्टिकोणों को एकीकृत करने, और नई अंतर्दृष्टि प्राप्त करने में मदद मिलती है। इससे अनुसंधान की दिशा निर्धारित होती है और भविष्य के अध्ययनों के लिए संभावित प्रश्नों की पहचान होती है (कृष्णा और मालवीय, 2023)।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की राष्ट्र निर्माण में भूमिका समाज के विभिन्न आयामों पर गहरा प्रभाव डालती है। संघ के प्रयासों ने शिक्षा, सामाजिक समरसता, आपदा प्रबंधन, और आर्थिक स्वावलंबन की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। संगठन का उद्देश्य एक मजबूत, समृद्ध और एकजुट भारत का निर्माण करना है, जिससे राष्ट्रीय एकता और अखंडता को बढ़ावा मिलता है। हालांकि, संघ की गतिविधियां और विचारधारा विवादों और आलोचनाओं का विषय भी रही हैं, जिससे इसके प्रभाव पर विभिन्न दृष्टिकोण

सामने आए हैं। राष्ट्र निर्माण में इसकी भूमिका का निहितार्थ समाज में व्यापक और गहराई से महसूस किया जाता है, जिसे समय के साथ और अधिक विश्लेषण और समझने की आवश्यकता है (शर्मा एवं राव, 2022)।

वर्तमान साहित्य में मौजूद अंतराल का पता लगाना और भविष्य के अनुसंधान के लिए दिशानिर्देश निर्धारित करना शोध की दिशा और प्रभाव को मजबूत करता है। समीक्षा के दौरान यह पाया गया कि अधिकतर अध्ययन शहरी क्षेत्रों और विशिष्ट समुदायों पर केंद्रित हैं, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों और वंचित समूहों पर कम ध्यान दिया गया है। भविष्य के अनुसंधान में इन क्षेत्रों पर फोकस करने की आवश्यकता है, साथ ही अधिक व्यापक और समग्र दृष्टिकोण को अपनाने की जरूरत है। इसके अतिरिक्त, अंतरराष्ट्रीय संदर्भ में भारतीय अध्ययनों की तुलना और विश्लेषण पर भी ध्यान केंद्रित करना चाहिए (कुमार और सिंह, 2023)।

निष्कर्ष

इस अध्ययन से प्राप्त प्रमुख निष्कर्षों का सारांश यह है कि समाज में सामाजिक समरसता, आर्थिक स्वावलंबन, शिक्षा, और स्वास्थ्य सेवाओं के विकास में विभिन्न पहलों का महत्वपूर्ण योगदान है। विशेष रूप से, सामाजिक संगठनों और सरकारी नीतियों की भागीदारी से समाज में परिवर्तन संभव हुआ है। इसके अलावा, भविष्य के अनुसंधान के लिए वर्तमान साहित्य में मौजूद अंतराल की पहचान की गई है, जो आगे की दिशा निर्धारित करता है। यह निष्कर्ष समाज के विकास और उसके सतत प्रगति के लिए मार्गदर्शक सिद्ध होंगे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की राष्ट्र निर्माण में प्रभावशीलता और महत्व को समझने के लिए इसकी विविध गतिविधियों और पहलों का विश्लेषण महत्वपूर्ण है। शैक्षिक पहलों, सामाजिक समरसता, आर्थिक स्वावलंबन, और आपदा प्रबंधन में इसके योगदान ने समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हालांकि, इसकी विचारधारा और कुछ गतिविधियों को लेकर विवाद और आलोचनाएं भी रही हैं। राष्ट्र निर्माण में संघ की प्रभावशीलता और महत्व का मूल्यांकन इसके समग्र योगदान और समाज पर इसके प्रभाव के व्यापक आकलन पर आधारित होना चाहिए। नीति निर्माताओं और सिविल सोसाइटी के लिए सिफारिशें यह हैं कि वे समाज के सभी वर्गों के साथ समावेशी संवाद स्थापित करें और सामाजिक समरसता, आर्थिक स्वावलंबन, और शिक्षा में बेहतरी के लिए साझा प्रयासों पर ध्यान केंद्रित करें। नीतियों का निर्माण करते समय, विविधता और विषमता को संबोधित करने वाले मुद्दों को प्राथमिकता देनी चाहिए। सिविल सोसाइटी को नीति निर्माण प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए और नागरिकों की आवाज को मजबूत करने के लिए कार्य करना चाहिए। साथ ही, स्थायी विकास और सामाजिक न्याय की दिशा में नवाचारी समाधानों की तलाश में शोध और विकास पर निवेश बढ़ाना चाहिए।

संदर्भ

1. अग्रवाल, आ., और मेहता, बी. (2023). राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघरू विवादों और आलोचनाओं का विश्लेषण. समकालीन राजनीतिक अध्ययन, 20(2), 45—60.
2. कपूर, ए., और चौहान, बी. (2023). शासन और सार्वजनिक प्रशासन में नागरिकों की भागीदारीरू नवीन परिप्रेक्ष्य. प्रशासनिक विज्ञान पत्रिका, 29(1), 98—115.

3. कुमार, अ. और मेहता, ब. (2023). राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघरू वैचारिक आधार और सामाजिक प्रभाव. भारतीय समाजशास्त्रीय समीक्षा, 45(2), 234—250.
4. कुमार, आ. (2021). भारत में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और राष्ट्र निर्माण. नई दिल्लीरू भारतीय विद्या प्रकाशन.
5. कृष्णा, ए., और मालवीय, बी. (2023). विषय—वस्तु साहित्य से प्राप्त निष्कर्षों का संश्लेषणरू पद्धति और अनुप्रयोग. शोध मेथडोलॉजी जर्नल, 19(1), 88—102.
6. कौशिक, ए., और राव, म. (2023). नीति निर्माण प्रक्रिया में अनुसंधान का प्रभाव. नीति विज्ञान पत्रिका, 19(2), 203—222.
7. गुप्ता, आ. (2021). राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघरू भारतीय राष्ट्रवाद का विकास और प्रभाव। भारतीय समाजशास्त्रीय समीक्षा, 11(2), 45—59.
8. गुप्ता, ए. और देसाई, ब. (2022). राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघरू राष्ट्र निर्माण में योगदान। भारतीय समाजशास्त्र जर्नल, 39(4), 112—129.
9. मिश्रा, ए., और जोशी, बी. (2022). भारतीय संस्कृति और विरासत के संरक्षण में नवीन प्रयास. सांस्कृतिक अध्ययन जर्नल, 30(5), 142—158.
10. मिश्रा, ए., और वर्मा, एस. (2023). अनुसंधान में डेटा संश्लेषण के आधुनिक दृष्टिकोण. भारतीय शोध पत्रिका, 14(7), 102—110.
11. मेहरा, प., और शर्मा, र. (2022). सामाजिक सुधार आंदोलनों में भागीदारी का महत्व. भारतीय सामाजिक अध्ययन पत्रिका, 31(2), 89—107.
12. शर्मा, आ. (2023). राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ गठन, विकास और राष्ट्र निर्माण में योगदान. भारतीय समाजशास्त्र पत्रिका, 15(2), 112—125.
13. शर्मा, आ., और गुप्ता, ब. (2023). सामाजिक समरसता के विकास में सामाजिक संगठनों की भूमिका. समाज विज्ञान अध्ययन पत्रिका, 25(4), 157—175
14. शर्मा, आ., और गुप्ता, ब. (2022). भारत में शैक्षिक पहलों में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का योगदान. शिक्षा और समाजशास्त्रीय समीक्षा, 36(1), 142—158.
15. शर्मा, ए., और कुमार, बी. (2023). भारत में राष्ट्र निर्माण आंदोलनों का तुलनात्मक विश्लेषण. भारतीय राजनीतिक विज्ञान समीक्षा, 31(4), 55—75.
16. शर्मा, ए., और राव, बी. (2022). राष्ट्र निर्माण में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की भूमिका एक गहन विश्लेषण. भारतीय समाजशास्त्र और राजनीति विज्ञान पत्रिका, 38(2), 101—120.

Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301
International Journal of humanities, Law and Social Sciences
Published by New Archaeological & Genological Society
Kanpur India

Vol. X, Issue I(C), June 2023
DOI: 10.13140/RG.2.2.10456.47360
www.kanpurhistorians.org

वैदिक शिक्षा से अनुप्राणित आधुनिक शिक्षा

प्रो0 प्रीति राठौर
विभाग प्रभारी संस्कृत विभाग
डी0बी0एस0 पी0जी0 कॉलेज, कानपुर

मानव व्यवहार के परिवर्तन में शिक्षणाभ्यास की प्रक्रिया का अभूतपूर्व योगदान है। शिक्षा ही जीवन है और जीवन ही शिक्षा है। दोनों के इस अभेद्य सम्बन्ध को नकारा न जाने के कारण ही ''सा विद्या या विमुक्तये'' अथवा ''सा विद्या या ब्रह्मगतिप्रदा'' के द्वारा विद्या महत्व को पूर्ववर्ती आचार्यों ने विवेचित किया है, जिसका बोध हमें ज्ञान की उस विधा द्वारा होता है, जिसमें व्यक्ति के वैयक्तिक गुणों की अभिवृद्धि के साथ–साथ उसके सामाजिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय कर्तव्यों को निश्चित करना रहा है। निश्चय की यह अवस्था जो हमें वर्तमान के रुप में प्राप्त हुयी है, वह अनायास ही नहीं है, अपितु उसका अपना एक निश्चित क्रम और एक विस्तृत इतिहास है, जिसके जानने, संरक्षित करने और वृद्धि को प्राप्त करने के लिये अनुभवजन्य ज्ञान को लिपि के रुप में व्यवस्थित करने की आवश्यकता है।

शिक्षा शब्द का अभिप्राय है अन्तर निहित शक्ति को बाहर की ओर प्रकट करना है, जिसे ''ज्ञानं मनुजस्य ततृीयं नेत्रं अथवा ज्ञानं ब्रह्म प्रज्ञानं ब्रह्म'' ''सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'' के द्वारा भारतीय दर्शनशास्त्र में वर्णित किया गया है। यजुर्वेद के 40 वें अध्याय में विद्या–अविद्या अथवा परा–अपरा नामक ज्ञान की दो विधाओं का उल्लेख कर आत्मतत्त्व को जानने का निर्देश दिया गया है–

विद्या चाविद्यां च यस्तदवेदोभयं सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यामृतमश्नुते।।[1]

हितोपदेश में शिक्षा के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्षों के स्वरुपों में बिम्ब–प्रतिबिम्व सम्बन्ध को वर्णित करते हुये कहा गया है–

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः, यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्।
सुचिन्तितं चौषधमातुराणां, न नाममात्रेण करोत्यरोगम्।। [2]

अर्थात् अनेकानेक विषयों का अध्यापन करना और उनके अर्थ–ज्ञान के अभाव में कण्ठस्थीकरण करना ही शिक्षार्थी का उद्देश्य नहीं है, अपितु उसके लिये प्राप्त ज्ञान का व्यावहारिक पक्ष भी जानना अनिवार्य है, जिसके कारण आधुनिक शिक्षाविदों ने ज्ञान की विधा के रुप में शिक्षा शब्द को संकुचित और व्यापक अर्थ में निरुपित करते हुये शिक्षण के औपचारिक–अनौपचारिक साधनों को अधिगम की प्रक्रिया में समाहित कर शिक्षक और शिक्षार्थी की प्रमुख भूमिका को दर्शाया है। इस सम्बन्ध में आधुनिक

पाश्चात्य दार्शनिक एडम्स ने अपनी पुस्तक Evolution of Educational Theory में शिक्षा को एक द्विमुखी प्रक्रिया के रुप में चित्रित किया है, जिसके अन्तर्गत एक पक्ष दूसरे पक्ष को प्रभावित करता है, जिसके लिये अनादिकाल से ''ऊँ मम व्रते ते हदयं दधामि मम चित्तम्नुचित्तं तेउस्तु'' इस प्रतिज्ञा वाक्य द्वारा गुरु शिष्य को अपना सानिध्य प्रदान करता था, जिसकी पुष्टि अथर्ववेद के एक मन्त्र द्वारा होती है, जिसमें यह संकेत दिया गया है कि उपनयन संस्कार द्वारा ब्रह्मचारी को आचार्य अपने गर्भ में तीन रात्रि तक रखकर उसे कलुषित संस्कारों से मुक्त कराता हुआ अपने व्यक्तित्व के अनुरुप उसके व्यक्तित्व को ढालने का प्रयास करता है–

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे विभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंचयन्ति।। [3]

आचार्य मनु का कथन है कि आचार्य ही एक ऐसा प्रमाणिक व्यक्तित्व है, जो शिक्षा रुपी संसाधन के द्वारा समीप में आये हुये जिज्ञासु की जिज्ञासा का समाधान कर उसे इस योग्य बनाता है कि वह अज्ञानान्धकार से निकलकर ज्ञानालोक से आच्छादित हो जाता है–

जन्मनः जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते।
विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रिय उच्यते ।।[4]

इसी कारण शिक्षणाभ्यास की प्रक्रिया में शिक्षक–शिक्षार्थी के महत्व को प्रतिपादित करते हुये पाश्चात्य शिक्षाविद् एडम्स ने शिक्षक और शिक्षार्थी उभयपक्ष की समान सक्रियता पर बल दिया है। वेद अनुप्राणित गुरु–शिष्य के अभेद सम्बन्वों के विषय में प्रसिद्ध अमरीकी की शिक्षा दार्शनिक जॉन डीवी ने अधिगम की प्रक्रिया में तीसरे मुख को समाहित करते हुये शिक्षण की विधा को त्रि–मुखी बताया है। उनके अनुसार बालक को शिक्षित करने के लिए उसकी मूल प्रवृष्टियों का ज्ञान होना आवश्यक है। समाज के सहयोग के बिना बालक के मनोभावों का उचित दिशा में विकास नहीं हो सकता, यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है, जिसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि वंशानुक्रम से कहीं अधिक वातावरण बालक के वैयक्तिक विकास में सहायक सिद्ध होता है। इसी आधार पर प्रसिद्ध दार्शनिक जॉन डीवी ने सामाजिक पृष्ठ–भूमि को अधिगम की प्रक्रिया में विशिष्ट स्थान दिया है। उनका विचार है कि प्रतिकूल परिस्थितियों के परिहार हेतु समाज को यह निश्चित करना होगा कि बालक को आत्म–निर्भरता और सामाजिकता के निमित्त कौन–कौन से विषय और किस शिक्षण–पद्धति द्वारा पढ़ाया जाये, जिससे उसमें कार्यकुशलता और समाज–स्वीकृत आचरण के अनुरुप क्षमता का विकास हो सकें और यह तभी सम्भव हो सकता है, जब सामाजिक आवश्यकता पर आधारित पाठ्यक्रम को अधिगम की प्रक्रिया के अन्तर्गत समाहित किया जाये। इस प्रकार शिक्षा द्वि–मुखी प्रक्रिया न होकर शिक्षा–शिक्षार्थी और पाठ्यक्रम के महत्वपूर्ण सम्मिश्रण के आधार पर जॉन डीवी ने इस त्रि–मुखी प्रक्रिया के रुप में चित्रित किया है।

प्रसिद्ध शिक्षा–शास्त्री एडम्स और जॉन डीवी द्वारा अधिगम की प्रक्रिया में शिक्षक–शिक्षार्थी और पाठ्यक्रम की उपयोगिता सम्बन्धी विचार कोई नया नहीं है। इसकी झलक हमें छान्दोग्योपनिषद् ''सोऽहं भवतो मन्त्रतिदेवास्मि''[5] इस वचन में मिलती है, जहाँ महर्षि नारद को पाठ्य विषयों में ज्ञाता होने के कारण मन्त्रविद् शब्द से अभिहित किया गया है तथा पाठ्यक्रम के रुप में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और इतिहास–पुराण की गणना की गयी है। [6] आचार्य शंकर ने छान्दोग्योपनिषद् में चारो वेदों के अध्ययन के लिये व्याकरण के ज्ञान की अनिवार्यता पर बल दिया है। [7]

इन दृष्टान्तो के आधार पर कहा जा सकता है कि एडम्स और जॉन डीवी द्वारा प्रतिपादित द्वि–मुखी व त्रि–मुखी शिक्षण प्रक्रिया सम्बन्धित विचार धारा कोई नयी नहीं है।

''सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः....[8] इत्यादि वाक्य आधुनिक शिक्षा के निर्धारण में पूर्णतः सहायक है, जिसका चरमोत्कर्ष लक्ष्य बालक के वैयक्तिक उत्थान के साथ–साथ सामुदायिक विकास का मार्ग प्रशस्त करते हुये भौतिक संसाधनो द्वारा राष्ट्र के नवनिर्माण में पूर्णत : सहायक सिद्ध है। शिक्षणाभ्यास की प्रक्रिया पर यदि सूक्ष्मता से दृष्टिपात किया जाये तो वैदिक–कालीन शिक्षा पद्धति के समान वर्तमान प्रक्रिया भी बालक के वैयक्तिक उत्थान के साथ–साथ सामाजिक उत्थान को विशेष महत्व प्रदान करती है। हाँ, इतना अवश्य है कि वर्तमान शिक्षणाभ्यास की प्रक्रिया में बालक की नैसर्गिकता की और विशेष महत्व प्रदान किया गया था, इसके साथ ही साथ तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था में आध्यात्मिक चिन्तन प्रधान ज्ञानात्मक उद्देश्य की और विशेष घ्यान दिया जाता था, जबकि वर्तमान पाठ्यक्रम में कौशल विशेष की ओर ध्यान देते हुये आत्मनिर्भरता के उद्देश्य से मानव को पूर्ण मानत्व प्रदान करने का प्रयत्न किया जा रहा है। शिक्षणाभ्यास की प्रक्रिया में पाठ योजना का अत्यधिक महत्व होता है। पाठ–योजना में प्रयुक्त आदर्श वाचन, अनुकरण वाचन और अशुद्धि–संशोधन वेदांग के रुप प्रतिपादित शिक्षाशास्त्र के विषय है, जिसका उद्देश्य वर्णादि का ठीक–ठीक ज्ञान कराना है। वैदिक–कालीन शिक्षण परम्परा में पाठ प्रारम्भ करने के समय शिष्य द्वारा प्रस्तुत जिज्ञासा का मान होता है, जिसके अनेकानेक दृष्टान्त भारतीय शिक्षण पद्धति में मिलते है यथा–''अथातो ब्रह्म जिज्ञासा'', [9]''अथ योगाऽनुशासनम्'', [10] ''अथ शब्दानुशासनम्'', [11] आदि। प्रश्नोपनिषद् तथा बृहदारण्यकोपनिषद् में याज्ञवल्क्य स्मृति और मैत्रेयी का वृतान्त प्रसिद्ध है। यदि वैदिक कालीन शिक्षण व्यवस्था का सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाये तो ज्ञात होगा कि वहाँ प्रयुक्त ''यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'' मानव जाति को सत्कर्म भावना, कर्तव्यनिष्ठ और दायित्व बहन करने की प्रेरणा देता है। इसलिये अथर्ववेद में एक स्थान पर कहा गया है कि हमारे दाहिने हाथ में पुरुषार्थ और बायें हाथ में सफलता है–

कृतं में दक्षिणे हस्ते जयो मे सत्यं आहित :।[12]

इस विचारधारा के अंकुर हमें उपनिषद् साहित्य और अनुप्राणित अन्य साहित्य में दिखायी देते हैं, जिसके मूल में मानव व्यक्तित्व विकास और सामाजिक उन्नयन सम्बन्धी विचार निहित है। इतना ही नहीं शिक्षा के उद्देश्यों की दृष्टि से भी आधुनिक शिक्षण विधा वैदिक शिक्षण विधा से अनुप्राणित है। यदि लोग यह मानते है, कि वेदानुप्राणित संस्कृत भाषा कर्म–काण्ड प्रधान होने के कारण वैज्ञानिक चिन्तन से अछूती है, उसमें अध्यात्मिकता का पुट अधिक और ज्ञान के सैद्धान्तिक पक्ष का अभाव है, तो उनका इस प्रकार का सोचना उनकी भ्रान्ति है, क्योंकि आज के कम्प्यूटर युग ने यह सिद्ध कर दिया है कि संस्कृत भाषा जितनी कम्प्यूटर के समीप है, विश्व की अन्य भाषाएँ नहीं है।

ऋग्वेद में अन्यत्र कहा गया है कि मनुष्य जिस पदार्थ के ऐश्वर्य को प्राप्त करने में अपना मन लगा लेता है, उसे वह अपने पुरुषार्थ से प्राप्त कर ही लेता है। जो मनुष्य स्वयं परीश्रम करता है, वहीं अपने काम को पूरी तरह सिद्ध करता है–

यादृशमिमन्धायि तपस्पया विदद् स उ स्वयं वहते सो अरं करत्।[13]

यजुर्वेद में भी कर्तव्य कर्म के साथ सौ वर्ष पर्यन्त तक जीने की कामना की गयी है। [14] अथर्ववेद में भी कर्म के अंगो का उल्लेख है जिनके नाम हैं– उत्साह, सावधानी, स्फूर्ति, जागृति, रक्षण और दक्षता।[15] कर्म में सफलता प्राप्त करने के लिये जीवन तथा व्यवहार में इन साधनों का व्यवहार होना चाहिये। वैदिक कालीन शिक्षण व्यवस्था में स्वास्थ्य सम्बन्धी विचारों को महत्ता प्रदान की गयी है। अथर्ववेद में प्रतिपादित औषध विज्ञान इसका ज्वलन्त उदाहरण है, जिसमें स्वास्थ्य सम्बन्धी अनेक सुझाव दिये गये हैं। मानव जीवन का परम लक्ष्य पुरुषार्थ चतुष्ट्य की प्राप्ति है,। उत्तम स्वास्थ्य के अभाव में धर्म–अर्थ–काम और मोक्ष की प्राप्ति सम्भव नही है। आरोग्य के लिये स्वास्थ्य शिक्षा परमावश्यक है। वेदों में आरोग्यता के लिये अनेक प्रकार के यज्ञों का विधान है। चातुर्मास्य यज्ञ को गोपथ ब्राह्मण में भैषज्य कहते हैं। ऋतु परिवर्तन के समय अनेकानेक उत्पन्न व्याधियों के रोकथाम के निमित्त पर्यावरण की शुद्धता के लिये ज्ञान सम्पादित किये जाते है–

भैषज्ययज्ञा वा ते। ऋतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते।
तस्माद् ऋतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते।[16]

अथर्ववेद में यज्ञों में प्रयुक्त विशिष्ट औषधियों और वनस्पतियों का उल्लेख है। यथा पीपल, कुश औषधियों का राजा सोम, अन्न, जल, चावल और जौ आदि ऐसे अमरतत्व हैं जिससे दीर्घायु की प्राप्ति हो सकती है–

अश्वत्धो दर्भो वीरुधी सोमो राजामृंत हविः। ब्रीहिये वृश्रच भेषजौ द्विवस्पुत्रावमत्यौ।।[17]

इस प्रकार वैदिक वाड्मय ने अनेकानेक औषधियों का रोगों के निदान के लिये निर्देश दिया गया है। वैदिक वाड्मय में ऋषियों द्वारा पर्यावरण चिन्तन भी वर्णित है। पर्यावरण प्रदूषण वर्तमान में ज्वलन्त समस्या का रुप धारण किये हुये है। पर्यावरण निदान के लिये सम्पूर्ण विश्व चिन्तित दिखाई देता है, जिसके निदान के लिये विभिन्न क्षेत्रों के वैज्ञानिक और समाज सुधारक प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। उनका यह मानना है कि इससे मानव जीवन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।। वर्तमान का यह चिन्तन वैदिक वाड्मय अपने में संजोये हुये है। वहाँ मानव समुदाय को प्रकृति–संरक्षण और यज्ञ के अनुष्ठान द्वारा आध्यात्मिक वातावरण का सृजन कर पर्यावरण से सम्बन्धित विपदाओं के निदान से सम्बन्धित निर्देश दिये गये हैं। इन निर्देशों में सत्य सम्वेष्टित कर्म–अनुष्ठान पर बल दिया गया है–

सर्वः समग्रा औषधीर्बोधन्तु वचसो मम।
यधेमं पारंयामसी पुरुषं दुरिताद्धि।।[18]
मित्रावरुणौ वृष्टयाधिपती तौ भावताम्।[19]

कर्म भावना जहाँ एक ओर श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने का उपदेश देती है, जिसका मूलमन्त्र हमें आज के अनुष्ठान की शिक्षा द्वारा ऋषि–मुनियों ने दिया है। श्रीमद्भगवद्गीता के कर्मयोग का दृष्टिकोण यही है कि निज–स्वार्थों का परित्याग करके लोक–कल्याण के उद्देश्य से कर्म में प्रवृत्त रहना चाहिये–

नियतं गुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्मकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेद्कर्मण ः।।[20]

गीता में कृष्ण द्वारा अर्जुन को दिये गये उपदेशों को अपने जीवन में समाहित करते हुये वर्तमान समाज के पथ–प्रदर्शन की भूमिका का निर्वाह करने वाले महात्मा गाँधी ने अधिगम के क्षेत्र में बुनियादी शिक्षा को अपनाने का सुझाव दिया था। इस विषय में उनका मानना यह था कि मात्र अक्षर बोध से मानव का अभ्युदय सम्भव नहीं है, इसके लिये आत्म निर्भरता सम्बन्धित नैसर्गिक गुणानुसार मानव को कार्यानुभव

प्रणाली द्वारा प्रशिक्षित किया जाना चाहिये'', तभी शिक्षा अपने वास्तविक उद्देश्य को प्राप्त कर सकेगी। श्रीमद्भगवद्गीता के कर्मयोग का दृष्टिकोण भी यही है।

इस प्रकार तुलनात्मक दृष्टि से वैदिक शिक्षा पद्धति एवं इसके दार्शानिक परिप्रेक्ष्य का पाश्चात्य शिक्षा पद्धति से विश्लेषण करते है तो हम वैदिक शिक्षा पद्धति में वैज्ञानिक तत्व–समाज दर्शन–एवं जीवन मूल्यों को पाश्चात्य विचारधारा श्रेष्ठतम पाते हैं।

सन्दर्भ

1. यजुर्वेद–40 / 14, ईशावास्योपननिषद्–14
2. हितोप्रदेश–1 / 171
3. अथर्ववेद–11 / 5 / 3
4. मनुस्मृति–4 / 8
5. छान्दोग्योपनिषद्–7 / 1 / 3
6. छान्दोग्योपनिषद्–7 / 1 / 2–3
7. भातर प चमानां वेदं व्याकरणमित्यर्थ :।
   व्याकरणेन हि पदादि विभागश : ऋग्वेदादयो ज्ञायन्ते।। छान्दोग्योपनिषद् (शाडर भाष्य)7 / 1 / 2
8. तौत्तिरीयोपनिषद्–1 / 11
9. ब्रह्मसूत्र–(शाडर भाष्य)–1 / 1
10. पात जलि योग प्रदीप–1 / 1
11. पाणिनीय व्याकरण–1 / 1
12. ऋग्वेद–7 / 52 / 8
13. ऋग्वेद–7 / 44 / 8
14. कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
    एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।
    यजुर्वेद–40 / 2
15. अथर्ववेद–8 / 1
16. गोपथ ब्राह्मण–2 / 1 / 10
17. अथर्ववेद–8 / 7 / 20
18. अथर्ववेद–8 / 7 / 19
19. अथर्ववेद–5 / 24 / 5
20. श्रीमद्भगवद्गीता–3 / 8